मनोरञ्जन

व्यवस्थापक

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

वर्ष १

संख्या ७

१९

दिल्ली

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

सम्पादक
श्री चिरंजीत

इस अंक में

मूल्य आठ आने

वार्षिक मूल

दिल्ली

श्री 'बच्चन'

यह दिल्ली कौरव-पांडव के बल-तेजों की,
चौहान, तुर्क, मुगलों की औ' अंग्रेजों की,
संग्राम, संधि, बलवों की, गोली सेजों की,
गौरी, बाबर,
क्लाइव की,
जफर, जवाहर की।

इस दिल्ली ने तख्तों का परिवर्तन देखा,
इस दिल्ली ने कौमों का संघर्षण देखा,
पापों का, जुल्मों का नंगा नर्त्तन देखा;
यह बनी जमीन
जियारत की
भारत भर की।

गुरु तेग बहादुर दिल्ली में कुर्बान हुए,
औ' स्वामी श्रद्धानन्द यहीं बलिदान हुए,
नंगे फकीर सरमद का सर भी यहीं कटा,
अर्पित इसको ही बापू जी के प्राण हुए;
दे रक्त शहीदों
ने इसकी
मिट्टी तर की!
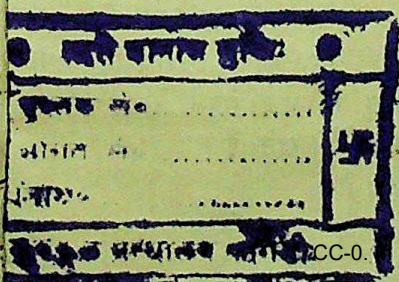
गाड़ी ने सीटी दी। रमेश ने राहत की सांस खींची कि तभी शीघ्रता से एक वृद्ध व्यक्ति ने खिड़की के पास आकर कहा—"मुझे अन्दर आ जाने दीजिये!"

जैसे उन्होंने ततैयों के छत्ते में हाथ डाल दिया। एक साथ अनेक क्रुद्ध आंखें उस ओर उठीं। सौभाग्य से यह सतयुग नहीं था; नहीं तो विश्वमित्र या दुर्वासा की तरह वे उस वृद्ध को वहीं भस्म कर देते। हुआ यह कि रमेश के मित्र ने चुपचाप दरवाजा खोल दिया। वृद्ध हांफते-हांफते अन्दर घुस आये—घुसे आये क्योंकि अनेक नवयुवकों ने उनको बाहिर फैंक देने की पूरी-पूरी कोशिश की थी। आ गये तो देखा, उनकी देह कांपती है, चेहरा झुर्रियों से भरा हुआ है और आंखों में ऐसा कुछ है कि न देखते बनता है, न दृष्टि हटाने को जी करता है। आंखें जैसे बन्द होती हैं कि हरहरा कर फिर खुल जाती हैं। फिर तो हृदय में धड़कन ही नहीं होती; ऐसा लगता है जैसे कोई उसे आरी से चीरने लगा है······

गाड़ी धीरे-धीरे गति पा रही थी और दूसरे लोगों का ध्यान उस वृद्ध की ओर बढ़ चला था। वे भी जो किसी गहरे वाद-विवाद में व्यस्त थे, धीरे-धीरे फुसफुसाते और फिर चुप होकर उन्हें देखने लगते। वे दयनीय और करुण पूर्वतः पाखाने के पास खड़े थे। सामने की बर्थ पर जो एक अधेड़ सज्जन बैठे थे, वे एकटक वृद्ध को देख रहे थे। वे ही पीछे को खिसके, बोले—"आप यहां बैठ जायें!"

वृद्ध सहसा चौंके—"जी!"

"आप यहां बैठ जाइये!"

वृद्ध ने ऐसे देखा जैसे स्वयं पानी-पानी हो चले; फिर बैठते-बैठते कहा—"भगवान तुम्हें सुखी रखे, भइया!"

अधेड़ व्यक्ति ने फिर पूछा—"आप कहां जा रहे हैं?"

"कहां जा रहा हूँ?" जैसे किसी ने वृद्ध के अन्तर्मन पर चोट की थी। एक क्षण ऊपर देखा, कहा—"क्या बताऊं, भइया! जहां भी भाग्य ले जायेगा, जाऊंगा।" कहते-कहते झुर्रियों में एक हल्का सा कम्पन हुआ। ओठ हिले, पलकें मुंद सी गयीं। खुलीं तो उनमें पानी नहीं था, हल्की चिपचिपाहट थी। उस व्यक्ति के पास ही एक युवक बैठा था। वह बोल उठा—"आप दिल्ली रहते हैं?"

"हां बेटा!"

तब नगर में बड़ी मार-काट मची थी। उसका इकलौता लड़का खो गया था—खो गया था या...

उसे विश्वास था कि उसका लड़का कहीं न कहीं जीवित है। युगों-युगों से पितृ-हृदय इसी छलना का शिकार होता आया है...

पर, इस छलना का — मृग-मरीचिका का कहीं अन्त भी है?

"कोई दुख है आपको?"

तब तक एक और अधेड़ व्यक्ति का ध्यान उधर खिंच गया। वे बोले—"आपका कोई रिश्तेदार खोया गया है? आजकल गुमशुदगी की घटनायें बहुत हो रही हैं।"

"जी शायद आपका बेटा है?" तीसरे आदमी ने कहा।

रमेश ने एक बार उन आदमियों को देखा, फिर उस वृद्ध को। फिर उन आदमियों को देखा और फिर उस वृद्ध को कि वृद्ध बोले—"हां बेटा, तुम ठीक कहते हो। मेरा बेटा ही खोया गया है।"

'मैंने कहा था न," अधेड़ सज्जन बोले। "वह तो आपकी सूरत ही कह रही है। बेटे का दर्द अलग होता है।"

"क्यों जी, दिल्ली में ही था?"

"जी हां।"

"कित्ता बड़ा था जी?"

"सोलह वर्ष का था।"

डिब्बे की एक मात्र स्त्री ने अपने बच्चे को गोद में अन्दर को खींच कर धोती का पल्ला उढ़ा दिया। ऊपर की बर्थ पर लेटे हुए महाराष्ट्रीय सज्जन ने अब नीचे झांका। शोर आप ही आप बुदबुदाहट में बदलने लगा था। एक व्यक्ति ने पूछा—"क्यों जी, कैसे चला गया था?"

"जी स्कूल गया था······"

"और फिर लौट कर नहीं आया। मेरे एक दोस्त हैं, उनका लड़का भी स्कूल गया था, आज तक नहीं लौटा।" सुनकर वृद्ध कुछ अस्पष्ट स्वर में बुदबुदाये, पर प्रश्नकर्त्ता ने फिर प्रश्न किया—"कितने दिन हो गये जी?"

"यही दो महीने से कुछ ज्यादा।"

"दो महीने? तब तो दिल्ली में बड़ी मार-काट मची हुई थी।"

वृद्ध ने गहरी सांस खींची, कहा—"तभी की बात है। स्कूल में इम्तिहान हो रहे थे। अचानक कुछ लोगों ने हमला कर दिया······"

"मुसलमानों ने किया होगा"- महाराष्ट्रीय सज्जन बोल उठे।

"जी नहीं······"

"तो?"

"तो आप समझ लीजिये। उन लोगों ने एक जात के सभी लड़कों को मार डाला।"

"सब को······?"

"जी हां।"

स्वर तब जैसे घुटकर सरसराहट में बदल रहा था। सब के मन भय और वेदना के धुएं से घुट चले। एक व्यक्ति ने पूछा—"कितने होंगे जी?"

इसका जवाब दिया रमेश के मित्र ने – "कितने थे, यह कभी कोई नहीं जान सकेगा और जानने का महत्व ही कितना है!"

"पर आपका बेटा क्या······?" ट्रंक पर बैठे हुए युवक ने सकुचाते हुए पूछा।

वृद्ध के नयन फिर चिपचिपा रहे थे। बोझिल वाणी में कहा—"कहते हैं, वह डर कर कहीं भाग गया।"

"जी हां, हिन्दू हिन्दू को नहीं मार सकता।"

"अजी कुछ न पूछो, आजकल तो·····"

"आज की बात नहीं है। आज मुसलमान हैं कहां ?"

"हैं क्यों नहीं ?"

रमेश के मित्र हंस पड़े—"मुसलमान अब हिन्दुस्तान में नहीं हैं, मेरे दोस्त ! जो मुसलमान-नुमा सूरतें दिखाई देती हैं, वे उनकी लाशें हैं—चलती फिरती लाशें।"

और यह कह कर वे और भी जोर से हंसे। वह हंसी डिब्बे वालों को बहुत बुरी लगी, जैसे कोई मरघट में हंस पड़ा हो। महाराष्ट्रीय सज्जन ने कहा—"आप पाकिस्तान की बात नहीं सोचते। वहां तो एक भी हिंदू नहीं बचा है।"

"नहीं बचा है तो अच्छा है; तड़पना तो नहीं पड़ेगा।"

नीचे बैठे हुए अधेड़ व्यक्ति ने उधर ध्यान न देकर फिर पूछा—'क्यों जी, कुछ अता-पता लगा है ?"

"जी हां, सुना है वह कराची चला गया है। वहां से जो लोग बम्बई आये हैं, उन से पता लगा है कि वह भी शायद बम्बई आ गया है। वहीं जा रहा हूँ।"

रमेश के पीछे जो व्यक्ति बैठे थे, उन्होंने धीरे से कहा—"बात समझ में नहीं आती। स्कूल से भाग कर लड़का घर क्यों नहीं आया ? कराची क्यों गया और कैसे गया ?"

रमेश सब की बातें सुन रहा था, परन्तु बोलता नहीं था, क्योंकि उसकी दृष्टि बार-बार वृद्ध सज्जन पर जा अटकती थी। वह सोचने लगता था—उस दिन सवेरे जब इनका बेटा स्कूल में परीक्षा देने गया होगा तो क्या इन्होंने सोचा होगा कि वह अब नहीं लौटेगा ? उसकी मां ने प्यार से उसे दही और लड्डू खिलाया होगा। कहा होगा—'बेटा, पर्चे अच्छे करना और देख, सीधा घर आना ! आजकल बुरे दिन हैं।' और फिर बेटा खिलता हुआ स्कूल गया होगा और फिर सन्ध्या को जब वह बेटे की राह देख रही होगी, तब उसने वह दर्दनाक खबर सुनी होगी। तब—तब...रमेश कांपा। उसने गरदन को झटका दिया। उसके अपने नयन भर आये। उसने वृद्ध को देखा, वे उसी तरह कह रहे थे—"उसे घूमने का बहुत शौक था। उमर भी चंचल थी। उसे वे लोग भगा कर ले गये।"

"आपने अखबारों में निकलवाया है ?"

"जी हां। अखबारों में निकलवाया है रेडियो पर भी एलान हुआ है, पर आप जानते हैं, वहां हमारे अखबार नहीं जाते, न कोई रेडियो सुनता है।"

"जी हां। सब कुछ गड़बड़ ही गड़बड़ है।"

रमेश का मस्तिष्क घूम फिर कर वहीं आ गया। खबर लाने वाले ने कहा होगा—स्कूल में कत्ले-आम मच गया। सब बच्चे मार डाले गये। तब हतभागिनी-सी उसकी मां के हृदय से एक तेज चीख निकली होगी और अपने बच्चे को देखने के लिये पागल-सी आतुर वह बाहिर भागी होगी। किसी ने कहा होगा—ठहरो बीबी ! वहां खतरा है। अभी इन्तजार करो·····और उसने इन्तजार किया होगा। शायद अब तक कर रही है। अभी भी वह अपने दरवाजे से बाहिर झांक कर, उस चिर-परिचित मार्ग को देखती होगी जिस पर उसका बेटा आता जाता होगा·····

रमेश के लिये सोचना असम्भव सा हो गया। वह दिल्ली में रहता था। उसने उस घटना की चर्चा सुनी थी, पर उससे अधिक नहीं जितनी वह आज सुन रहा था। तभी सहसा उसके मित्र ने कहा—"सामान उठा लो, रमेश ! हम यहीं उतरेंगे।"

गाड़ी धीमी पड़ने लगी और शोर बढ़ चला। रमेश ने ऊपर से होल्डोल उतार लिया। फिर उन वृद्ध को देखा, उस धका-पेल में वे उसी तरह शून्य में ताकते हुए बैठे हैं। वह नीचे उतर गया। उतर गया तो जैसे होश आया, परन्तु वृद्ध की झुर्रियां और चिपचिपाहट से पूर्ण दृष्टि वह नहीं भुला सका। वे उमड़-घुमड़ कर विचारों का तूफान पैदा करती ही रहीं। कई दिन बाद जब लौटकर दिल्ली आना हुआ, तब भी कभी-कभी बिजली की तरह वह मूर्ति उसके नेत्रों में कौंध जाती थी। इन्हीं दिनों अचानक एक पुराने मित्र मिल गये। कई बार उनका निमंत्रण आ चुका था। वास्तव में उनकी पत्नी का बड़ा आग्रह था। रमेश उन्हें भाभी

कहता था। वे कार में बिठाकर उसे घर पर ले गईं। चाय का वक्त था, बिना पुकारे नौकर मेज पर सामान जुटा गया और भाभी चाय तैयार करने लगीं। मित्र किसी जमाने में कालेज के प्रोफेसर थे। कांग्रेस-आन्दोलन में बहुत दिन जेल काटी। अब शरणार्थी-विभाग में कोई बड़ा-सा पद उन्हें मिला था; इसलिये यह स्वाभाविक था कि चर्चा 'सब रास्ते रोम को जाते हैं' वाली कहावत के अनुसार हर कहीं होकर शरणार्थियों की समस्या पर आ अटकती थी। बातों-बातों में रमेश उन वृद्ध की चर्चा कर बैठा। अचरज से मित्र ने मुस्करा कर कहा—"मैं उन्हें जानता हूं।"

रमेश ने पूछा—"क्या वे आपके पास आये थे?"

"कई बार आये हैं। उनको पूरा यकीन है कि उनका लड़का कहीं न कहीं जिन्दा है।"

"पर क्या यह सच हो सकता है?"

"असम्भव। वह उसी दिन मारा गया होगा।"

"पर वह तो हिन्दू था।"

मित्र मुस्कराये—"मौत जात-पात नहीं पूछती। और वह तो सामूहिक वध था; बहुत मुमकिन है हत्यारे उसे न पहिचान सके हों।"

"शायद।"

"और नहीं तो वह कहां जाता?"

"पर उसकी लाश...?"

बात काट कर मित्र ने कहा—"ऐसे मौकों पर जो कुछ होता है वह मैं जानता हूँ। कौन कह सकता है कितनी लाशें उन्होंने जला या दबा नहीं दी होंगी। तब तो गिनती कम करने का प्रश्न होता है।"

भाभी ने प्याला ठक से मेज पर रख दिया और करुणा से उद्वेलित होकर अंग्रेजी में कहा—"आदमी कितना बर्बर हो गया है!"

मित्र हंसे, बोले—"आदमी वास्तव में बर्बर ही है। कौन कह सकता है मैं कब तुम्हारा गला नहीं घोंट दूंगा। कम से कम मुझे तो इसमें कुछ असम्भव नहीं लगता। और फिर इधर जो कुछ हम देख चुके हैं, वह तो इस सम्भावना पर मोहर लगाने वाला है। हां, यह बात दूसरी है कि कुछ लोग मानते हैं—एक दिन मनुष्य शारीरिक बल की तरह बौद्धिक बल का परित्याग करके सम्मिलित जीवन को प्राप्त करेगा। पर जब तक बुद्धि है, बर्बरता से छूटने का कोई उपाय नहीं है।"

रमेश ने चाय की घूंट भरी और फिर कहा—"भविष्य में क्या होगा, इस पर विचार करने से इतना लाभ नहीं है जितना वर्त्तमान पर। मैं कहता हूँ, वे क्यों नहीं मान लेते उनका लड़का अब दुनिया में नहीं रहा। इस दुख को स्वीकार किये बिना क्या उन्हें शान्ति मिलेगी?"

"दुख तो यही है," मित्र बोले—"उन्होंने इस दुख को स्वीकार नहीं किया है। विधि के इस दान का तिरस्कार ही उन्हें साल रहा है।"

भाभी ने पूछा—"तुम इसे विधि का दान कहते हो?"

"कोई चिन्ता नहीं," वे बोले—"तुम इसे व्यक्ति का दान कह सकती हो।"

रमेश ने सिगरेट जलाई और दियासलाई को बुझाते हुए कहा—"तो तुम उन्हें समझाते क्यों नहीं?"

"समझाना चाहता हूँ," मित्र ने धुएं के उठते हुए बादलों को ध्यान से देखा—"पर उनकी आंखें देख कर कलेजा मुंह को आने लगता है। कुछ कहने को मन नहीं करता। बुद्धि बहुतेरा जोर लगाती है, पर उनकी दृष्टि—रमेश मैं तुम से क्या कहूँ—सब विचारों को पाश-पाश कर देती है। तब मैं सोचता हूँ, आज यदि मुझ में नारद की शक्ति होती तो अपने तपोबल से राजा के बेटे की तरह उनके बेटे की आत्मा को बुला कर दिखाता कि जिसे वे अपना बेटा समझे थे, वह उनका दुश्मन था। तभी तो बुढ़ापे में तड़पा कर चला गया!"

रमेश ने उनका प्रतिवाद करना चाहा, पर तभी देखा कोई अन्दर चला आ रहा है, लेकिन यह देखकर कि साहब अकेले नहीं हैं वह ठिठक गया है। न जाने

क्या हुआ, दूसरे ही क्षण रमेश चौंक कर उठा—"अरे, ये तो वही वृद्ध हैं!"

मित्र मुड़े—"कौन?" और फिर खड़े होकर कहा—"आइये, चले आइये। ये मेरे मित्र हैं।"

आज उनके वेश में इतना ही परिवर्तन था कि हजामत बढ़ गयी थी और उसने उनके मुख की भयंकरता को और भी गहरा कर दिया था। वे बैठ गये तो मित्र ने कहा—"चाय पियेंगे?"

एक फीकी-सी मुस्कराहट झुर्रियों में उठी और वहीं खो भी गयी, बोले—"चाय पिऊंगा, पर पहले मेरी बात सुन लो। मुझे निश्चित रूप से पता लगा है कि किशोर मुलतान कैम्प में है।"

"जी, मुलतान?" मित्र ने चौंककर संभलते हुए कहा।

"जी हां, मुलतान कैम्प में। बम्बई में एक सज्जन मिल गये थे। वे सिंध से आये थे। मैंने उन्हें हुलिया बताया। ठीक उसी तरह का एक लड़का उन्होंने मुलतान कैम्प में देखा था—वही रंग, वही आंखें, वही कपड़े। नीला नीकर, सफेद कमीज, नीली धारी की जुराबें और काला जूता। माथे पर दाहिनी ओर चोट का निशान भी उन्होंने बताया। अंग्रेजी बोलना पसन्द करता है और शरारती है।"

रमेश ने देखा, कहते कहते वृद्ध की आंखें ऐसे चमकीं जैसे घोर अन्धकार में कोई जुगनू चमक उठता है, बार बार चमक उठता है। मित्र नें साहस करके पूछा—"पर वह मुलतान कैसे जा सकता है?"

उन्होंने दृढ़ता से कहा—"वह मुझ से अक्सर मुलतान जाने की बात कहा करता था। सच तो यह है, उसे पंजाब बड़ा प्यारा था। जान पड़ता है, वह हत्यारे से जान बचाने के लिये स्कूल से भाग गया था। स्टेशन पास था। कोई गाड़ी जाती होगी, उसी में बैठकर चला गया।"

"हो सकता है।"

"जी हां, यही हुआ है।"

तो फिर?

"तो आप कृपा कर मुलतान कैम्प के इन्चार्ज को लिख दें। जरा तसल्ली से लिख दें। आपकी दया से उसका पता लग गया तो..."

आंसू न जाने कहां रुके थे। झुर्रियों में अटक-अटक कर बहने लगे। रुंधे गले से उन्होंने अपनी बात जारी रखी—"आपने मुझ पर बहुत मेहरबानियां की हैं। मैं उन्हें नहीं भूल सकता। एक बार और कोशिश कर देखिये। उसकी मां को पूरा यकीन है वह मुल्तान में ही है।"

और फिर सदा की तरह जेब से एक चिट्ठी निकाल कर उन्होंने कहा—"उसकी मां ने यह चिट्ठी लिखी है। आप भी कैम्प-इन्चार्ज को लिख दें कि वह उसे समझा दे कि बेटा, तुम्हारी मां तुम्हारी याद में तड़प रही है। तुम इसी वक्त चले आओ; नहीं तो हम दोनों मर जायेंगे।"

एक बार फिर कुर्ते की जेब में हाथ डाला। कई नोट निकाले और बोले—"किशोर की मां ने कहा है, पैसों की चिन्ता न करें। जो कुछ है उसी का है।"

मित्र की अवस्था बड़ी विषम थी। वे एकटक अपने नीचे धरती को देख रहे थे। वह न हिलती थी, न डुलती थी। नोटों की बात सुनकर उन्होंने दृष्टि उठाई, कहा—'इन्हें आप रखिये। पता लगने पर यदि जरूरत हुई तो मैं फिर मंगवा लूंगा। और देखिये, आप अपना ख्याल कीजिये। क्या हालत हो गयी है! आपको अब समझ लेना चाहिये....."

बात काट कर उन्होंने कहा—"मैं सब समझता हूँ। न समझता तो क्या अब तक जीता रहता। पर किशोर की मां की बात अलबत्ता है। खाट से लग गयी है। हर वक्त दरवाजे पर आंखें गड़ाये बैठी रहती है। कोई वक्त-बेवक्त दरवाजा खटखटाता है तो चिल्ला कर कहती है—'देखो तो कौन है? शायद मेरा किशोर है!'"

फिर जैसे वे कहीं खो गये, जैसे कण्ठ भावों के उन्मेष में जकड़ा गया था। कई क्षण शून्य में ताका

किये और सन्नाटा गहर गहर कर सबके दिलों को कचोटने लगा। उन्होंने ही कहा — "आप मेरी चिन्ता न करें। आप बहुत अच्छे हैं, बहुत अच्छे! बस आप उन्हें लिख दें — बहुत-बहुत बिनती करके लिख दें कि अपना काम है। समझें वे अपना ही बेटा ढूंढ रहे हैं..."

और अपनी डबडबाई आंखों को कोहनी से पोंछ कर वे उठे — "तो मैं जाऊं। आप लिखेंगे?"

"जरूर लिखूंगा और हो सका तो मैं आपके जाने के लिये पैसेज का प्रबन्ध भी कर दूंगा।"

वे मुड़े। श्वास फूलने लगी, जैसे कोई सम्पदा मिली हो, कहा—"सच?"

"देखिये, कोशिश करूंगा। चाय पीजिये।"

रमेश एकटक उनके मुख को देख रहा था। उन झुर्रियों में शिशु की सरलता उमड़ रही थी और वे दयनीय तथा डरावनी आंखें एक अज्ञात प्रकाश से भर उठी थीं, जैसे वे किसी सुहावने स्पर्श का अनुभव कर रहे थे। उन्होंने कहा—"पियूंगा, एक दिन आप सब लोगों के साथ अपने घर बैठ कर पियूंगा। तब तक किशोर भी आ जायेगा। वह दिन अब दूर नहीं है। मैं जानता हूँ, वह मुलतान में है, क्योंकि जब घर से आपके पास आने को चला था तो मैंने रास्ते में एक मुर्दा देखा था।"

"किशोर की मां ने कहा है, पैसों की चिंता न करें। जो कुछ है, उसी का है।"

अन्तिम बात उन्होंने बड़े धीरे से कही और कह कर शिशु की तरह हंस पड़े। रमेश से देखा नहीं गया। उसने मुंह फेर लिया और वे जिस तरह आये थे उसी तरह चले गये। चाय ठण्डी हो गयी थी और साथ ही उन दोनों के दिल भी। भाभी जो अन्दर चली गयी थीं, कुछ देर उन्हीं से बातें करके रमेश भी लौट आया। मन उसका और भी अशान्त हो गया था। उसने सोचा—यह कैसा अप्राकृतिक जीवन है! इस छलना का अन्त होना ही चाहिये, होना ही चाहिये।
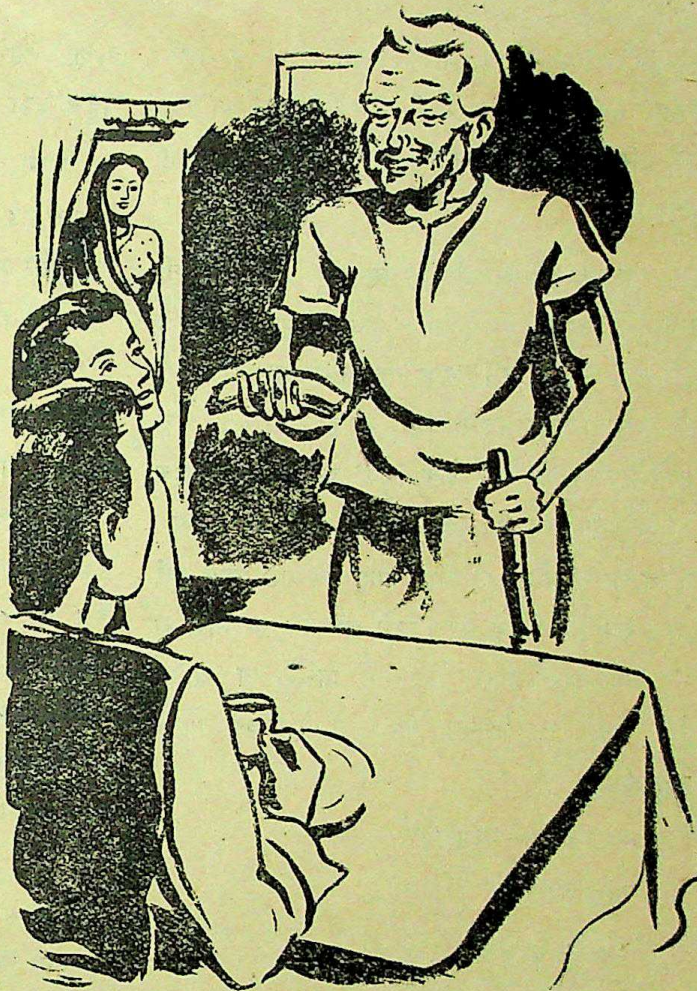
बुद्धि जब सोचती है तो उसके पास रास्तों की कमी नहीं रहती। रमेश को आखिर एक राह दिखाई दी। एक दिन बड़े तड़के उठ कर उसने वृद्ध के घर जाने का निश्चय कर डाला। जो कुछ हुआ, वह बुरा था; पर उस बुरेपन को सम्पदा की तरह सहेज कर रखना तो निरा पागलपन ही नहीं, देश के साथ विश्वासघात भी है। उन्हें साफ-साफ कहना होगा — तुम्हारा बेटा मर चुका है और केवल तुम्हारा बेटा ही नहीं मरा है, असंख्य मां-बापों ने अनगिनित गोदी के लाल गंवा

कर आजादी पायी है। मां के बन्धन काटने के लिये सन्तान को प्राण-होम करने ही पड़ते हैं। मौत आजादी का पारितोषक है। इसके लिये तुम्हें गर्वित होना चाहिये।

बहुत ढूंढने पर उसे घर मिला। एक पंचायती मकान में उनका कमरा था। कुछ कम्पन-सा हुआ। वैसे सर्दी के दिन थे। ऊपर तक कपड़े लाद लेने पर भी वायु त्वचा का संसर्ग प्राप्त कर ही लेती थी; इस लिये मफलर को जरा ठीक करके दरवाजे पर दस्तक दी तो पता लगा वे खुले पड़े हैं; गिरते-गिरते बचा। तनिक-सा खोल कर झांकना चाहा कि तभी सुना कोई बोल रहा है। ठिठक कर सुनने लगा। स्वर नारी का था; लगा, थका होकर भी उसमें प्रार्थना का आवेग है। सुना — "अच्छा अब उठो भी। क्या दफ्तर नहीं जाओगे ?"

जबाव मिला—"नहीं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि यह सब झूठ है !"

"सुनो तो..."

"कुछ नहीं, किशोर की मां ! अब कब तक हम इस भुलावे में पड़े रहेंगे। कब तक झूठ-मूठ मन को बहलाते रहेंगे। किशोर अब नहीं लौटेगा। वह वहां पहुँच चुका है जहां से कोई नहीं लौटता और जहां..."

आगे के शब्द कण्ठावरोध में खोये गये। रुदन से फूटी हुई उसांस ही रमेश सुन सका, परन्तु नारी का स्वर और भी दृढ़ था। उसने कहा — "तुम तो यूं ही दुखी होते हो जी ! भगवान की माया कौन जानता है ! हमारे गांव के गोविन्द पण्डित का बेटा सात साल में लौटा था। और सुनो तो, मैंने आज सवेरे एक सपना देखा है कि किशोर तुम्हारे पीछे-पीछे दरवाजा खोल कर अन्दर आया है। उसने नीली नीकर, सफेद कमीज, नीली धारी की जुराबें और काला जूता पहिना है। कह रहा है—'मां, मैंने आज का परचा बहुत अच्छा किया है, बहुत अच्छा !' और तुम जानते हो सवेरे का सपना हमेशा सच्चा होता है। लो उठो, मैंने चाय बना ली है। पीकर बड़े बाबू के पास हो आओ। देर होगयी तो वे दफ्तर चले जायंगे। उठो...... उठो भी..."

उसके बाद क्या हुआ, यह जाने बिना रमेश वहां से सीधा अपने घर लौट आया। उसे लगा, उस वृद्ध दम्पती का स्वप्न भंग करने के लिए उसे जिस हिम्मत की जरूरत थी, उसे प्राप्त करने के लिए अभी उसे बहुत परिश्रम करना होगा।
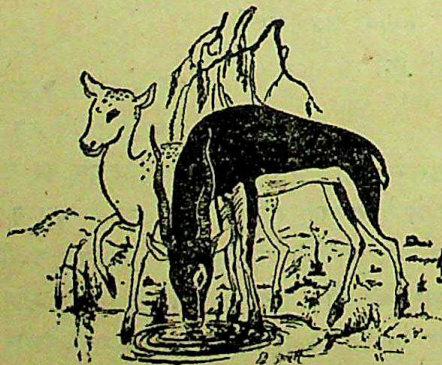
एकांकी

कहाँ से कहाँ

श्री रामकुमार वर्मा

पात्र-परिचय

केसरी नन्दन—एक मध्य वर्ग का सम्भ्रांत गृहस्थ।
भवानी—केसरी नन्दन की माता।
पद्मा—केसरी नन्दन की नव विवाहिता पत्नी।

समय—रात के आठ बजे।

[दृश्य—केसरी नन्दन के मकान का भीतरी कमरा। कोई विशेष सजावट नहीं है, किन्तु वस्तुएं ढंग से रक्खी हुई हैं। दीवालों पर राजा रवि वर्मा द्वारा चित्रित राधा-कृष्ण, लक्ष्मी और राम-सीता के चित्र लगे हुए हैं। कमरे में दाहने और बाएं दो दरवाजे हैं। कमरे के बीचों बीच पिछली दीवाल से सट कर एक चारपाई है, जिस पर एक दरी बिछी हुई है। बाईं ओर एक कुरसी और उसके सामने एक तिपाई है, जिस पर खद्दर का एक टेबल-क्लाथ पड़ा हुआ है। चारपाई से हट कर पटियों का एक 'बुक-रैक' है, जिस पर कुछ धार्मिक पुस्तकें रक्खी हुई हैं।

परदा उठने पर पद्मा कुर्सी पर बैठी हुई एक पुस्तक ध्यान से पढ़ रही है। वह सोलह वर्षीया नव-विवाहिता है। गौर वर्ण और स्वभाव की सौम्य। शरीर पर वायल की छपी हुई सफेद साड़ी और सफेद काले चैक का ब्लाउज है। सिर में सिन्दूर और माथे पर बिन्दी। हाथ में आसमानी रंग की चूड़ियां।

नेपथ्य से तीखे स्वर में भवानी का स्वर गूंजता है—"अरी कहां गई! कहां गई, बहू! इधर घर का काम अधूरा पड़ा हुआ है, उधर वह गायब हो गई!" पद्मा सिर उठा कर नेपथ्य की ओर देखती है, फिर शीघ्रता से पुस्तक रखने के लिए 'बुक रैक' के समीप जाती है। वह पुस्तक रख ही रही है कि भवानी का प्रवेश। भवानी पचास वर्ष की स्त्री है। स्वभाव में चिड़चिड़ापन और स्वर में तीखापन। वह नीले रंग की देसी जनानी धोती पहने है और कत्थई रंग का सलूका। हाथ में मोटी-मोटी लाल चूड़ियां और कड़े। नाक में लौंग और कान में भद्दे कर्णफूल। वह पान खाए हुए है।]

भवानी—(प्रवेश करते हुए) बस, फिर वही किताब ! किताब !! केसरी से कह क्यों नहीं देती कि तू घर बैठ, नौकरी मैं कर लूंगी। बड़ी पढ़ने वाली ! बहुत बहुएं देखी हैं, काम से जी चुराने वाली ऐसी बहू कहीं नहीं देखी !

पद्मा—(नीचे दृष्टि कर नम्रता से) मां जी ! अभी तो दूध आग पर रख कर आई हूँ।

भवानी—(हाथ नचा कर) जिससे वह उबल कर गिर जाय ! दूध से यह भी कह दिया है कि जब तक मैं न आऊं तब तक उबलना मत। वाह रे काम का ढंग ! जब काम करना नहीं आता तब काम करने का स्वांग क्यों भरती हो ? अस्पताल की मेमों की तरह कपड़े पहन कर कहीं घर का काम होता है ? कपड़े बचाती फिरती हैं महारानी जी कि कहीं मैले न हो जायं, कहीं दाग-धब्बा न लग जाय ! अरे, काम में दाग धब्बे लगना तो गिरहस्थी की शोभा है शोभा। दो पैसे का साबुन तो दुनियां से उठ नहीं गया है। लेकिन लगाए कौन ? हाथ की मेंहदी न फीकी पड़ जायगी !

पद्मा—मैंने तो इसका कभी खयाल भी नहीं किया, मां जी।

भवानी—तो खयाल तुम रखती किन-किन बातों का हो ? बर्तन मलने में कभी तो रानी जी ऐसे मलेंगी कि बेचारा बर्तन ही टूट जाय, और कभी तश्तरी दो उंगलियों से ऐसे उठायेंगी जैसे वह डस लेगी या जहर का डंक मार देगी। कहीं उंगलियों से तश्तरी उठाई जाती है ? यों ! (अभिनय करती है।) कहीं खिसक जाय—अरे घी-तेल की चिकनाहट लगी ही रहती है — तो नुकसान किसका होगा ? तुम तो 'अरे' कह कर रह जाओगी ! बहुत हुआ तो रोने लगोगी, जिससे मालूम हो कि रानी जी बेकसूर हैं। मैं खूब जानती हूं तुम्हारे रंग-ढंग। इतना भी नहीं जानूंगी ? बाल सफेद हो गए !

पद्मा—मैं तो कुछ नहीं कहती।

भवानी—तुम कहोगी क्या ? चार किताबें पढ़ के क्या तुम समझतीं हो कि तुममें मुझसे बात करने की लियाकत आ गई ? तीस बरस से गिरस्थी चला रही हूँ, अच्छे बुरे दिन देख चुकी हूं, दो लड़कियों के हाथ पीले किए और केसरी का ब्याह कर तुमको लाई हूं—गा-बजा के। तो तुमसे काम न लूंगी ? तुम्हारी पूजा करूंगी ? केसरी को खिला-पिला के बड़ा किस लिए किया था ? इसी दिन के लिए कि तुमको ला के किताबें पढ़ाऊं और खुद काम में जुती रहूं ?

पद्मा—तो मैंने काम के लिए मना कब किया, मां जी ?

भवानी - मना कर कैसे सकती हो ? लेकिन ऐसे काम करने से न करना अच्छा ! कभी बर्तन ऐसे हलके मलती हो जैसे किसी के पैर सहलाती हो ! झाड़ती-बुहारती ऐसे हो जैसे बालों में कंघी दे रही हो ! घर का काम इतना सहज नहीं है कि बालों में तेल डाल सिंगार कर लिया ! घर के भीतर मीलों चलना पड़ता है, तब घर का काम होता है !

पद्मा—तो मां जी, मैं बैठी तो रहती नहीं, मैं भी तो चलती रहती हूँ।

भवानी—ऐसे तो घड़ी भी चलती रहती है; लेकिन घर के कामों में चलना दूसरी बात है। मैं तो कहती हूँ ....

पद्मा—(बीच ही में) मां जी, कहीं दूध न उबल गया हो ! (शीघ्रता से भीतर जाती है।)

भवानी—अच्छा, अब मेरी बात भी काटोगी ? (पद्मा के जाने की दिशा में देखती हुई) मेरी इतनी उमर बीत गई, मेरी बात केसरी के पिता तक ने नहीं काटी, और कल की छोकरी की यह मजाल कि मेरी बात काट कर चली जाय ? (ओठ चबा कर) देखो, आज तुम्हारी कौन गत कराती हूँ ! आने दो केसरी को ! सिर पर चढ़ गई है ! केसरी के पिता तक मेरा गुस्सा सह जाते थे; आज मेरे ये दिन आ गए कि... (गला भर आता है।) अच्छा मैं देखती हूँ—

['बुक-रैक' से पद्मा की पुस्तक उठा कर चारपाई पर भारीपन से बैठ कर फाड़ने लगती है। आंखों से जैसे चिनगारियां बरस रही हैं।]

पद्मा—(शीघ्रता से आकर) मां जी, गजब हो गया !
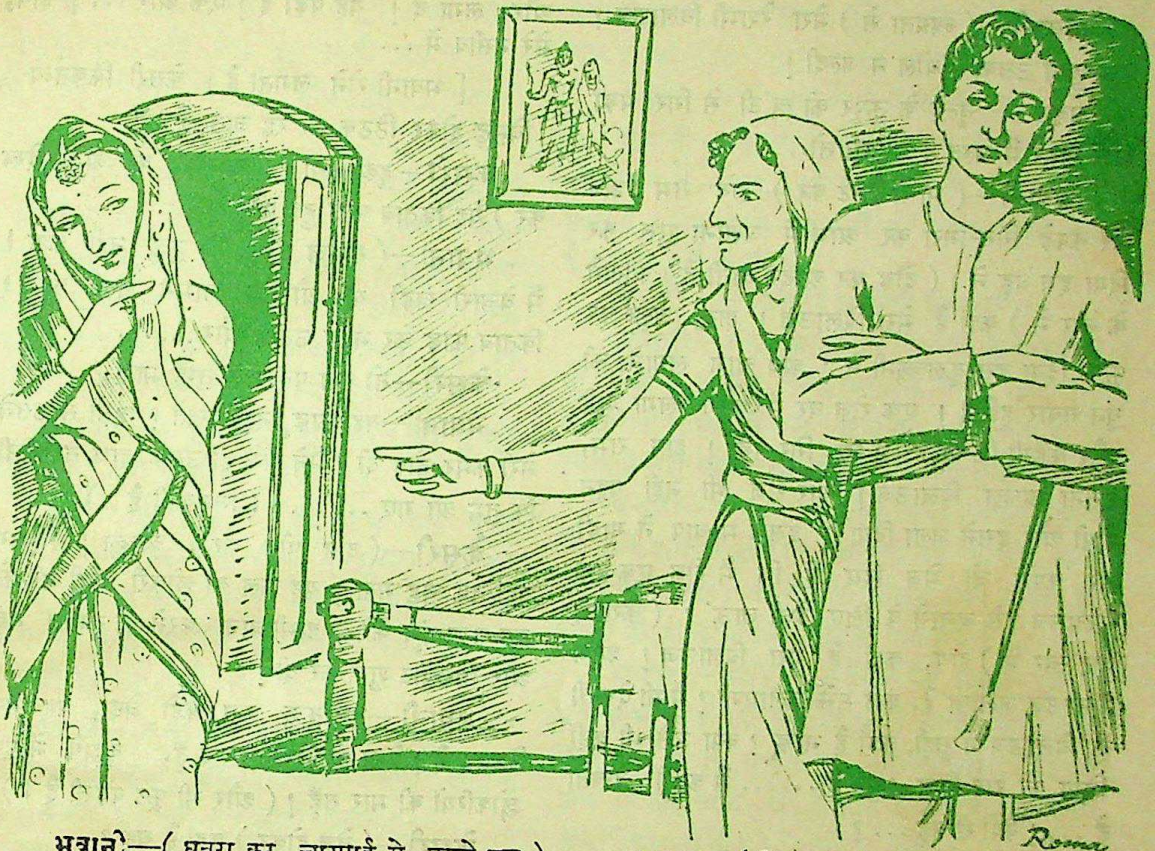
भवानी—(घबरा कर चारपाई से उठते हुए) क्या हुआ ? दूध उबाल कर गिरा दिया क्या ?

पद्मा—(अपराधी की तरह) नहीं मां जी, दूध तो मैंने उतार कर रख दिया था, लेकिन...

भवानी—(कर्कशता से) क्या बिल्ली को पिला दिया ?

पद्मा—गरम दूध बिल्ली कैसे पी सकती है ?

भवानी—तुम्हारी तरह उसके भी नखरे हैं ? कहो तो ठंडा कर दिया करूं उसके लिए !

पद्मा—मां जी, आप तो... ...

भवानी—अच्छा, बिल्ली के पीछे अब मुझसे बहस की जायगी ? मैं बिल्ली से भी गई-बीती हूँ ? कम्बख्त बिल्ली ......! यह बिल्ली ...! (राम-सीता के चित्र की ओर देख कर हाथ जोड़ते हुए) हाय, भगवान ! देख लो, कलजुग आ गया ! सास बिल्ली ... सास बिल्ली से भी गई बीती ......!

पद्मा—(चिढ़ कर) आप तो मुझे यों ही दोष देती हैं !

भवानी—(हाथ झुला कर) लो, अब बहू सास को गालियां भी देने लगी। मेरे तो भाग्य ही फूट गए हैं कि अब बुढ़ापे में यह सब देखूं और सहूँ ! मेरी किस्मत में यह ('यह' पर जोर) बहू लिखी थी—यह बहू जो बोलती है तो भाले मारती है ! मेरा हीरा जैसा लड़का केसरी ऐसी ही बहू के पल्ले .... (गला भर आता है।)

पद्मा—मैं ही मर जाती तो अच्छा था ! घर में काम करते-करते खटती हूँ, फिर भी दो मीठे बोल...

भवानी—(व्यंग्य से) मीठे बोल ! मैं रानी जी की बांदी हूँ न कि रात दिन हंसाती रहूँ और भौंहों के बल देखा करूं !

पद्मा—मेरे भौंहों के बल देखेगा कौन ! मैं तो आप ही मरी जाती हूँ कि आपका रेशमी ब्लाउज...

भवानी—(व्यग्रता से) मेरा रेशमी ब्लाउज़ ? क्या हुआ उसका ? बोल न जल्दी !

पद्मा — चूल्हे के ऊपर की खूंटी से गिर पड़ा और अगर मैं जल्द न उठाती तो...

भवानी—(माथा पीट कर) हाय राम ! अब मेरे कपड़े गिरा-गिरा कर आग में जलाना शुरू कर दिया इस बहू ने । (दौड़ कर अन्दर जाती है । चीखने के स्वर में) कहां है मेरा ब्लाउज ! हाय, जला कर फूंक दिया इस कुलच्छनी ने ! अब आग लगाने की धुन सवार हुई है ! एक रोज़ घर में आग लगा देगी और कहेगी कि चूल्हे में घर गिर पड़ा ! हाय राम, इतना अच्छा ब्लाउज ! चार रोज भी नहीं पहन पायी और इसने जला दिया ! इसके मां-बाप ने गाड़ी भर कपड़े जो भेज दिए हैं कि मैं रोज एक-एक ब्लाउज इसे जलाने के लिए देती जाऊं ! (कराहते हुए स्वर में) हाय, कहां है मेरा ब्लाउज ! आज ब्लाउज जलाया है, कल मुझे जलाएगी ! मैं भी देखती हूं. ब्लाउज न सही, कहां है झाड़ू ? क्या उसे भी कहीं छिपा कर रख दिया ? यह है ...... मैं अभी देखती हूँ ... ! क्यों री बहू ... ?

[भवानी जैसे ही आती है वैसे ही बाहर के दरवाजे से केसरी आता है । केसरी लगभग पचीस वर्ष का युवक है । देखने में सुन्दर, नाक लम्बी और ओंठ कसे हुए जो उसकी निश्चयात्मकता की सूचना देते हैं । दिन भर काम करने की वजह से उसके मुख पर मलिनता है, बाल बिखरे हुए हैं । शरीर पर साफ कुरता और धोती । पैर में चप्पल और हाथ में एक डंडा ।]

केसरी—(प्रवेश करते हुए तीव्र स्वर से) क्या है मां ?

(पद्मा भीतर चली जाती है ।)

भवानी—(केसरी को देखते ही झाड़ू फेंक कर क्रोध से) मां ? मां को तुम भी मारो; मारो तुम भी । (रोने लगती है ।) बहू ने तो मारना शुरू ही कर दिया । तुम भी मारो । (सिसक कर) हाय, राम ! मैं मर भी नहीं गई ! (पुकार कर) बहू ! एक झाड़ू और लगा दे ! यह पड़ी है ! एक और ... ! हाय, मेरे नसीब में ...

[भवानी रोने लगती है । केसरी किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर ठिठक कर रह जाता है ।]

केसरी—हुआ क्या ? (चारपाई की ओर देख कर) यह किताब फटी हुई पड़ी है ?

भवानी—(सम्हल कर) मैंने कुछ नहीं कहा । मैं बेचारी खड़ी थी और वह सामने चली आई । किताब फाड़ कर झाड़ू उठाई और ......

केसरी—तो क्या पद्मा ने तुम्हें मारा ?

भवानी—यह झाड़ू नहीं देखते ? इसी से उसने मेरी कमर तोड़ दी ! मैंने जैसे ही उसके हाथ से छीनी कि तुम आ गए ...... ! (सिसकती है ।)

केसरी—(दांत पीस कर) अच्छा ! दिमाग यहां तक चढ़ गया ! यह कल की छोकरी बूढ़ी मां को इस तरह तंग करे ! अभी बात करने की तमीज नहीं और मार-पीट शुरू कर दी !

भवानी—तुम कुछ मत कहो बेटा, यह मेरी किस्मत है ! ऐसा ही लिखा लाई हूँ, बुढ़ापे में इन छोकरियों की मार सहूँ ! (और भी फूट पड़ती है ।)

केसरी—(तेज होकर) कहां है वह ?

भवानी—(रोते हुए) होगी कहां ! यहीं कहीं होगी ! मेरे रोने का तमाशा देख रही होगी !

केसरी—तमाशा ? तमाशा क्या वह देखेगी ? मैं उसे दिखलाऊंगा तमाशा—उस बेवकूफ बदतमीज को । चूर-चूर होकर मैं घर लौटता हूँ, तो यह महाभारत सुनता हूं । मैं आज इसका आखिरी फैसला करूंगा । यह रोज-रोज का हंगामा मुझे पसन्द नहीं है ।

भवानी—(सम्हल कर) मुझे भी पसन्द नहीं, बेटा ! मेरे लिए एक किराए का मकान ले दो, मैं अपने अलग रहूँगी । राम का नाम लूंगी बुढ़ापे में । तुम अपनी रानी को लेकर चैन से रहो । मरते वक्त अपने हाथ-पैर नहीं तुड़वाने हैं मुझे । (सिहर कर कराहते हुए) हाय, बहुत बुरा मारा है इश्वर ! हाय राम ! (फिर रोने लगती है ।)

केसरी— कहां लगा है मां, जरा देखूं ? (आगे बढ़ता है ।)

भवानी—(हाथ से दूर करते हुए) अब आये हो देखने, जब उसने मेरी हड्डी-पसली एक कर दी! मार डालती तो चैन से जला देते मुझे! (सिसकती है।)

केसरी—(झुंझला कर) कैसी बातें करती हो मां? तुम्हें जलाने के बजाय आज उसे जिन्दा जलाऊंगा। देखूंगा, कहां भाग के जाती है। बहुत दिमाग चढ़ गया है उसका। (मां की ओर तीव्रता से) यह सिसकना बन्द करो, मां! मैं आज दिखला दूंगा कि बूढ़ी मां पर हाथ उठाने का नतीजा क्या होता है।

भवानी—तुम कुछ मत कहो, बेटा! कहीं तुम्हारे लिए भी वह हाथ में झाड़ू न उठा ले!

केसरी—मेरे लिए? दोनों हाथ तोड़ दूंगा उसके! उसने समझ क्या रखा है मुझे! ऐसी मार मारूंगा कि जोड़-जोड़ ढीले हो जायंगे। मैं औरत का गुलाम नहीं हूँ। सीधे-सीधे रहे तो सिर-माथे पर, नहीं तो जमीन पर पीस दूंगा उसे·····!

भवानी—सो तो मैं जानती हूँ बेटा, मगर···

केसरी—हुआ क्या? जरा उसकी शैतानी सुनना चाहता हूँ। बात कैसे बढ़ाई उसने?

भवानी—सो तो उसके बाएं हाथ का खेल है। चौबीसों घण्टे किताब पढ़ती है। मैंने बड़े मीठे ढंग से कहा—'बेटी, इतना मत पढ़ो, आंखें खराब हो जायंगीं, रानी बिटिया की आंखें खराब हो जायंगी। यों तो मैं घर का सारा काम करती हूँ, लेकिन इस वक्त हाथ खाली नहीं है, तो जरा दूध ही गरम कर दो। तुम्हारे हाथ का दूध केसरी को बहुत अच्छा लगता है।' मैंने तो ऐसे पुचकार कर कहा और उसने चिढ़ कर सारा दूध बिल्ली को पिला दिया।

केसरी—बिल्ली को पिला दिया?

भवानी—अरे, गरम किया हुआ दूध इस तरह रख दिया कि बिल्ली पी जाय। पी गई बिल्ली। और फिर मेरा रेशमी बिलाउज—कितनी मेहनत से कमा कर तूने चार दिन हुए मेरे लिए बनवाया था—सो··

केसरी—(उत्सुकता से) सो क्या हुआ?

भवानी—उस पर चांद तारे काढ़ दिए, यह सुनना चाहते हो? अरे, चूल्हे में झोंक दिया उसने। आग में भसम कर दिया। मुझे भसम कर देती तो और अच्छा होता; तुम भी खुश हो जाते।

केसरी—कैसी बातें करती हो मां तुम भी!

भवानी—जिसका ब्लाउज जलता है, उसका ही जी जानता है, बेटा; तुम क्या जानो! बनवा देना सहज है, मगर उसके जल जाने का सदमा दूसरी बात है। हाय, मेरा बिलाउज!

केसरी—तो जला दिया उसने बिल्कुल?

भवानी—और जब मैंने बहू को मीठे से समझाया तो ले आई झाड़ू। बेटा, तुम मुझे अलग कर दो। मैं अकेली आराम से मर जाऊंगा; अंग-भंग हो के चिता में नहीं जलना चाहती! (सिसकने लगती है।)

केसरी—अच्छा, मां तुम अन्दर जाओ। आज मैं उसके हाथ-पैर तोड़ूंगा। आयंदा वह हाथ में झाड़ू उठा भी न सके। आज उसे मालूम हो जायगा कि केसरी की मां को सताना आसान बात नहीं है।

भवानी—बेटा, दस वर्ष हुए मैंने अपनी सास से एक आधी बात कही थी, तो तुम्हारे पिता जी ने मुझे ऐसा पीटा था कि चार रोज उठ न सकी थी। इस हाथ पर उसी चोट का निशान है। देखो। (अपना हाथ दिखलाती है।)

केसरी—तो आज उसके सारे बदन पर चोट के निशान न बना दूं तो केसरी नाम नहीं। जाओ मां अन्दर तुम। मैं दरवाजा बन्द कर आज उसकी खबर लेता हूँ, जिससे वह कहीं भाग भी न सके।

भवानी—अब बेटा, ऐसा भी न मारना कि पुलिस में रपट हो जाय। तुम्हें बहुत गुस्सा आता है, मैं जानती हूं। गुस्से में तुम आगे-पीछे की नहीं सोचते। दरवाजा बन्द मत करना बेटा!

केसरी—यह हो नहीं सकता। बीच में आकर कहीं तुमने उसे बचाया तब? आखिर तुम भी स्त्री हो! पत्थर का दिल तो तुम्हारा है नहीं। आज मैं इस तरह मार मारूंगा कि अगले जन्म तक उसकी याद बनी रहे।

भवानी—बेटा, ऐसा मत करना। अगले जन्म की बात कौन जानता है। अगर इसी जन्म में तुम जेल चले गये तो मैं तो बे-सहारे हो जाऊंगी। ऐसा

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

हिन्दी के पुजारी

पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

'सरस्वती' और द्विवेदी जी के प्रति श्रद्धा का जो प्रवाह गुरुकुल के अध्यापकों और ब्रह्मचारियों में चल रहा था, उसे अकस्मात् एक धक्का लगा। किसी सज्जन ने महर्षि दयानन्द के गुरु दण्डी विरजानन्द जी का जीवन-चरित लिखा था। साल और महीना तो याद नहीं, परन्तु बात उन दिनों की है जब हिन्दी जगत् दो दलों में विभक्त होता जा रहा था। एक दल में वे लोग थे, जो द्विवेदी जी के भक्त थे। द्विवेदी जी की प्रत्येक बात उन्हें भाती थी, उनकी प्रत्येक बात पर वे सिर हिलाते थे। दूसरा दल उन लोगों का था, जो द्विवेदी जी से असन्तुष्ट थे। असन्तोष का कारण मुख्य रूप में यह था कि द्विवेदी जी समालोचक थे। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में खरी समालोचना का श्रीगणेश उन्होंने ही किया था। खरी समालोचना प्रायः कड़वी हो जाती है और यदि समालोचक प्रायः कब्ज का शिकार रहे, तब कभी-कभी उसकी समालोचना की कटुता सीमा से अधिक बढ़ जाती है। स्वामी विरजानन्द जी की जीवनी की आलोचना में भी ऐसा ही हुआ। जीवनी के लेखक ने पुस्तक में इस लोक-प्रसिद्ध चर्चा का भी उल्लेख किया था कि दण्डी जी अपने शिष्यों से 'सिद्धान्त कौमुदी' की पुस्तक पर जूते लगवाया करते थे। इससे रुष्ट होकर द्विवेदी जी ने समालोचना में जो कुछ लिखा था, उसका अभिप्राय यह था कि यदि कोई दण्डी जी पर या जीवनी के लेखक पर जूते मारने की बात कहे, तो वह आर्यसमाजियों को कैसी लगेगी? तर्क की दृष्टि से बिल्कुल सङ्गत होती हुई भी समालोचना सीमा से अधिक कड़वी थी; क्योंकि यदि इसी आशय की आलोचना को दोनों ओर से बराबर दोहराया जाय, तो अन्त में उसका रूप गाली-गलौज ही बन जायेगा। जैसे दण्डी जी और जीवनी-लेखक भट्टो जी दीक्षित के प्रति कठोर व्यवहार पर द्विवेदी जी के मन में रोष उत्पन्न हुआ था, वैसा ही समालोचना के शब्दों से भी आर्यसमाजियों के हृदयों में रोष उत्पन्न हो गया। विशेष अपवादों को छोड़ कर आर्यसमाज के लोगों में द्विवेदी जी के प्रति विरोध की जो हल्की-सी भावना उत्पन्न हो गयी थी, उसका मूल कारण यही जूते वाली चर्चा ही थी। हम लोगों पर भी इसका असर हुआ। जहां पहले 'सरस्वती' और द्विवेदी जी की निष्कलङ्क प्रशंसा होती थी, वहां अब बीच-बीच में विरुद्ध आलोचना भी होने लगी।

इसी प्रसंग में मैं नियम-भंग के एक चक्कर में आ गया था। यहां उसकी चर्चा भी अप्रासङ्गिक न होगी। गुरुकुल का नियम था कि उसका कोई अन्तेवासी आचार्य की आज्ञा के बिना किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार न करे। 'सरस्वती' की आलोचना से मुझे जो आघात पहुंचा, वह एक मानसिक द्वन्द्व के रूप में परिणत हो गया। एक ओर द्विवेदी जी के लिये श्रद्धा, दूसरी ओर समालोचना से असन्तोष—हृदय में दो परस्पर-विरोधी भावनाओं का संघर्ष पैदा होगया, जिससे राहत पाने के लिये मैंने एक पत्र लिख डाला। पत्र द्विवेदी जी के नाम लिखा। उसमें जहां एक ओर उनमें भक्ति प्रदर्शित की गयी थी, वहां दूसरी ओर समालो-

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में लेखक व पत्रकार के रूप में श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति का अपना एक ऊंचा स्थान है। हमारा अनुरोध मानकर उन्होंने अपने लम्बे साहित्यिक-जीवन के संस्मरण लिपि-बद्ध करना स्वीकार किया है। ये संस्मरण लेखमाला के रूप में समय-समय पर 'मनोरंजन' में प्रकाशित होते रहेंगे। प्रस्तुत लेख फरवरी के 'मनोरंजन' में प्रकाशित लेख का एक तरह से उत्तरार्द्ध है और इसमें विद्वान लेखक ने अपने विद्यार्थी-जीवन तथा तत्कालीन हिंदी-जगत की हलचलों का चित्रण किया है।

चना पर दुःख प्रगट करते हुए बाल-बुद्धि के अनुसार सहिष्णुता का उपदेश भी दे डाला था। पत्र बहुत लम्बा था; कोई ८-१० पन्ने का होगा। कहीं से एक लिफाफा लेकर मैंने पत्र को उसमें बन्द कर दिया और डाक के डब्बे में डाल दिया। उन दिनों गुरुकुल की सारी डाक मुख्याधिष्ठाता की नज़रों से गुज़र कर डाकखाने में जाती थी। जालन्धर के प्रसिद्ध वकील श्रद्धेय ला० रामकिशन जी मुख्याधिष्ठाता और आचार्य दोनों का कार्य कर रहे थे। मेरा पत्र डाक देखते समय उनके हाथ लग गया। मेरी पेशी हुई। यद्यपि मैंने पत्र में अपना नाम नहीं लिखा था, तो भी कुशल वकील ने लिखने की स्याही और मेरी लेख-शैली से पहिचान लिया कि पत्र मैंने लिखा है। मुझे दोष स्वीकार करना ही पड़ा। मुझे नियम-भंग करने के सम्बन्ध में कठोर चेतावनी देते हुए अन्त में मुख्याधिष्ठाता जी ने कहा, "यद्यपि तुमने नियम-विरुद्ध पत्र लिखा है तो भी इसमें जो बातें लिखी गयी हैं, वे बुरी नहीं हैं; इसलिये मैं इसे डाक में डाल देता हूँ। आगे से ऐसी भूल मत करना।" मुख्याधिष्ठाता जी द्वारा भेजा हुआ हिमाकत-भरा वह नियम-विरुद्ध पत्र जब द्विवेदी जी के पास पहुँचा होगा, तब उन्होंने उसे आद्योपान्त पढ़ा भी या नहीं, और यदि पढ़ा भी तो फाड़ कर रद्दी की टोकरी में डाल दिया अथवा किसी फाइलों के दराज़ में धर दिया, यह मैं नहीं कह सकता। हां, इतना याद है कि पत्र के रवाना हो जाने के पश्चात् मेरी यह इच्छा बनी रही कि यदि मेरा पत्र कहीं रास्ते में ही गुम हो जाय, और द्विवेदी जी की आंखों के सामने न पहुंचे, तो अच्छा हो।

'सरस्वती' की उपर्युक्त आलोचना का एक परिणाम यह भी हुआ कि जब 'भाषा की अनस्थिरता' वाला शब्द-युद्ध प्रारम्भ हुआ, तब गुरुकुल के अध्यापकों और ब्रह्मचारियों में भी उसी प्रकार दो दल हो गये जैसे समस्त हिन्दी-संसार में हुए थे। शायद आजकल के हिन्दी-पाठकों को भाषा की अनस्थिरता वाले शब्द-युद्ध का पूरा परिचय न हो, इसलिये मैं इसका थोड़ा-सा वृत्तान्त सुना देता हूँ। वह शब्द-युद्ध अंग्रेजी की 'चाय की प्याली पर तूफान' इस कहावत का एक ज्वलन्त उदाहरण था। बात यों हुई, 'सरस्वती' में द्विवेदी जी ने 'भाषा की अनस्थिरता' इस शीर्षक से कुछ—शायद दो—लेख लिखे। लेखों का उद्देश्य यह दिखलाना था कि हिन्दी-संसार में व्याकरण सम्बन्धी अराजकता फैली हुई है। एक ही वाक्य को एक लेखक एक तरह लिखता है तो दूसरा दूसरी तरह। इस अव्यवस्था को सिद्ध करने के लिये द्विवेदी जी ने जो दृष्टान्त दिये थे वे भारतेन्दु-काल से लेकर द्विवेदी-काल तक के लेखों से इकट्ठे किये गये थे। जब लेख प्रकाशित हुए, तब 'सरस्वती' के साधारण पाठकों का विशेष ध्यान उधर नहीं गया। यह समझ कर कि द्विवेदी जी के अन्य समालोचना-सम्बन्धी लेखों की तरह ये लेख भी साहित्यिकों के लिये लिखे गये हैं, साधारण पाठकों ने उन्हें सरसरी नज़र से पढ़ कर छोड़ दिया। उन लेखों की ओर हिन्दी-जगत् का ध्यान विशेष रूप से तब खिंचा, जब कलकत्ते के 'भारतमित्र' में उन लेखों की आलोचना में एक लेख-माला आरम्भ हुई। लेखमाला क्या थी, बम के गोलों की एक बौछार थी, जो कई सप्ताह तक द्विवेदी जी पर

होती रही। लेखक का नाम, जो लेख के नीचे दिया जाता था, 'आत्माराम' था। परन्तु जानकारों ने पहले लेख की कुछ पंक्तियां पढ़कर ही ताड़ लिया था कि 'आत्माराम' के पर्दे में छुपे हुए असली लेखक स्वयं 'भारतमित्र' के सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त हैं। बाबू बालमुकुन्द गुप्त की लेखनी 'शिवशम्भु का चिट्ठा' लिखकर यश प्राप्त कर चुकी थी। जब पाठकों ने भाषा की अनस्थिरता सम्बन्धी लेखमाला पढ़ी और उसमें वही चिट्ठे वाला भाषा-प्रवाह, वही चुलबुलापन, वही जोरदार नोक-झोंक और भाषा में उर्दू का पुट पाया, तो समझ गये कि गुप्त जी लड़ाई के सारे साजो-सामान से लैस होकर मैदान में उतर आये हैं। 'आत्माराम' का सबसे पहला हमला 'भाषा की अनस्थिरता' इस शीर्षक पर हुआ। 'आत्माराम' ने पूछा — "अनस्थिरता क्यों ?" "अस्थिरता क्यों नहीं ?"। शीर्षक से आरम्भ करके लेख के अन्तिम वाक्य तक शायद ही कोई ऐसा वाक्य हो, जिसकी फबती न उड़ाई गयी हो। लेखों में द्विवेदी जी पर विशेष कृपा की गयी थी। व्यंग का प्रत्येक तीर चाहे किसी लक्ष्य की ओर चलाया गया हो, अन्त में द्विवेदी जी पर ही पहुँच जाता था। आज जब हम शान्तभाव से विचार करते हैं, तब आश्चर्य होता है कि एक साहित्यिक विवाद में इतनी गर्मी क्यों लायी गयी; परन्तु यदि उस समय की समालोचनाओं का सापेक्षक अध्ययन करें, तो आश्चर्य जाता रहेगा। न जाने क्यों, उस समय की समालोचनाओं में व्यक्तिगत आक्षेपों और तीखे शब्दों की मात्रा बहुत अधिक रहती थी। शायद यह कारण हो कि उस समय हिन्दी व्यावहारिक भाषा बन रही थी; इस कारण लेखकों का ध्यान भाव की अपेक्षा भाषा की ओर ही अधिक रहता था।

'भारतमित्र' के लेखों से हिन्दी-संसार में एक तूफान-सा मच गया। द्विवेदी जी के विरोधियों ने कहा — 'वाह-वाह' और भक्तों ने कहा — 'छीःछीः।' भक्तों की संख्या बड़ी थी, तो विरोधियों की संख्या भी कुछ कम नहीं थी। तीव्र आलोचना करने वाले व्यक्ति के शत्रु बन ही जाते हैं। जिस आदमी की कटु आलोचना कीजिये, उसके भाई-बन्द, रिश्तेदार और भक्त—ये सब रुष्ट होकर विरोधियों की श्रेणी में खड़े हो जाते हैं। उस समय की आलोचना का एक दृष्टान्त दण्डी जी की जीवनी की आलोचना के रूप में दिया जा चुका है। दूसरा दृष्टान्त 'आत्माराम' की लेखमाला थी। 'सतसई-संहार' आदि अन्य अनेक समालोचना-ग्रन्थ भी उदाहरण-रूप में पेश किये जा सकते हैं। 'आत्माराम' के लेखों की हिन्दी-जगत् में धूम मच गयी। क्या समर्थक और क्या विरोधी, सभी सातवें दिन 'भारतमित्र' की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते थे, और पत्र खोलकर सबसे पहले 'आत्माराम' के ही लेखों को पढ़ते थे। गुरुकुल में भी वे लेख बड़े चाव से पढ़े जाते थे। पढ़ने के बाद आलोचना होती थी। पं० पद्मसिंह शर्मा और कुछ अन्य अध्यापक द्विवेदी जी के परम भक्त थे। वे 'आत्माराम' के लेखों को कुरुचिपूर्ण और योग्यता-हीन बतलाया करते थे। कुछ अध्यापकों और छात्रों के हृदयों को 'आत्माराम' के लेख अधिक भाते थे। इस भेद का मुख्य कारण 'आत्माराम' के लेखों का चुलबुलापन था या द्विवेदी जी के प्रति छुपा हुआ रोष-भाव, यह कहना कठिन है।

कुछ समय पीछे 'आत्माराम' के लेखों के उत्तर में कई लेखमालायें प्रकाशित हुईं। 'बंगवासी' में एक लेखमाला निकली, जिसका शीर्षक था — 'आत्माराम की टें-टें।' इस लेखमाला में ईंट के जवाब में पत्थर मारने का यत्न किया गया था और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये 'आत्माराम' की भाषा का अनुकरण किया गया था। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि वह नकल असल से बहुत घटिया रही। उन लेखों में तीखापन तो आगया, पर विनोद और चटकीलापन बिल्कुल न आ सका। गुप्त जी की भाषा को वह शायद उर्दू की देन थी।

अनस्थिरता-काण्ड के कई वर्ष पीछे द्विवेदी जी स्वास्थ्य-सुधार के लिये महाविद्यालय ज्वालापुर आये। पहले यह यत्न किया गया कि द्विवेदी जी को निमन्त्रित करके गुरुकुल बुलाया जाय। निमन्त्रण भेजा गया, पर वे नहीं आये। तब तक पं० पद्मसिंह शर्मा, पं० भीमसेन शर्मा आदि कई अध्यापक गुरुकुल कांगड़ी से महाविद्यालय जा चुके थे। गुरुकुल कांगड़ी के निवासियों में

द्विवेदी जी के दर्शनों की अभिलाषा बहुत प्रबल थी। जब निमन्त्रण भेजने पर वे नहीं आये, तब हम लोग इकट्ठे होकर महाविद्यालय गये। जब हम वहां पहुँचे तो द्विवेदी जी कुछ मित्रों के साथ नहर के किनारे घूमने जा रहे थे। देखने में द्विवेदी जी बहुत ही सीधे-सादे पण्डित श्रेणी के सज्जन प्रतीत हुए, जिनमें विशाल और उन्नत ललाट को छोड़कर और कोई विशेषता दिखाई नहीं दी। उन्होंने हम से कोई दो मिनट तक बातचीत की और फिर क्षमा मांगकर घूमने के लिये चल दिये। उन दो मिनटों की बातचीत में द्विवेदी जी ने पं० श्रीधर पाठक के 'एकान्तवासी योगी' के दो पद किसी प्रसङ्ग में बहुत भव्य रीति से कहे। और बस, द्विवेदी जी से यह मेरी पहली और अन्तिम भेंट समाप्त हो गयी। जब हम लोग गुरुकुल को लौटे, तो उस छोटी-सी मुलाकात के रूखेपन से हमारे हृदय असन्तुष्ट और उद्विग्न-से थे।

रेखा-चित्र

श्री गिरिजाकुमार माथुर

दिन भारी हो जाता है ज्यों बादल घिर आने से,
संध्या धुंधली हो जाती उजलापन मिट जाने से,
वैसे ही निज अनुभव के
अवसादों में डूबा मन,
कटुताएं छोड़ गई हैं
जिस पर अपना छाया तन।
सब चीजों के रंगों में कुछ फीकापन दिखाता है,
अब रुंआ उड़े फूलों-सा सारा जीवन लगता है।
फिर ज्यों वर्षा होने पर
जगती का मुख धुल जाता,
नभ की निखरी परछाईं—
से जल-थल है खिल जाता,
बस उसी भांति इस संध्या में मेरे आंसू बरसे,
उड़ गया विषाद धुंआ-सा जो संचित था बरसों से।

रेडियो-रूपक

अबीर-गुलाल

श्री चिरंजीत

(वाद्य-यंत्रों पर सङ्गीत उभरता है और कुछ देर बाद मन्द होता जाता है।)

सूत्रधार — दूर, बहुत दूर जाती हुई इस मधुर कोमल स्वर-लहरी का छोर पकड़ कर, कल्पना का दीपक लिये हम सहस्रों वर्षों के इतिहास की सीमाओं से परे समय के उस धुंधलके में पहुँचते हैं, जिसमें मनुष्य-जाति ने पहले पहल आंखें खोली थीं। यह रहा हिमाच्छादित गिरिमाला की उपत्यका का एक भाग। शिशिर के कारण यह उजाड़-बियाबान-सा लगता है। मनुष्य ने अभी नगर-गांव बसाना व खेती-बाड़ी करना नहीं सीखा है। अभी वह कंदराओं और गुफाओं का ही वासी है।

सामने उस बन्द गुफा से धुआं निकल रहा है। इसमें अवश्य ही कोई रहता होगा। रक्त जमा देने वाला जाड़ा पड़ रहा है। पर्वतों के शिखर हिमाच्छादित हैं। नदियों और निर्झरों का चिर चंचल जल भी जमा हुआ है। पत्रहीन वृक्ष ठूंठ से खड़े हैं। आस-पास सूखी व मुरझाई हुई लताओं के पंजर बिखरे हुए हैं। चारों ओर निस्तब्धता का राज्य है— प्रकृति जैसे निर्जीव, निष्प्राण हो गई हो! (कुछ क्षण रुक कर) धीरे-धीरे ऋतु बदलती है और एक दिन—शायद पहली बार — ऋतुराज वसंत धरती पर पधारते हैं — मानों कोई जादूगर आ गया हो जिसका स्पर्श पाते ही जड़ प्रकृति सजीव हो उठती है, चारों ओर नूतन जीवन लहराने लगता है।

(वाद्य-यन्त्रों पर वसंत की धुन उभरती है और समस्त वातावरण पर छा जाती है।)

सूत्रधार—नवजीवन की इस मादक वेला में सामने की गुफा के मुंह पर पड़ा हुआ भारी शिला-खण्ड एकाएक सरकता है और अपने हृष्ट-पुष्ट, गौर-वर्ण शरीर के अधोभाग पर वृक्षों की छाल लपेटे, घुंघराले केशों वाला एक पुरुष बाहर निकलता है। उसकी दृष्टि प्रकृति के नूतन रूप-लावण्य पर पड़ती है। आश्चर्य-चकित हो विस्फारित नेत्रों से वह इस वनश्री को देखता ही रह जाता है। यह दृश्य उसने पहले कभी नहीं देखा था। आनन्द-विभोर हो, गुफा की ओर मुंह करके वह पुकारता है —

पुरुष — नीरा! नीरा! बाहर आओ। देखो। (पांव की चाप, जैसे नीरा जल्दी २ आ रही हो।) नीरा, प्रकृति का नया रूप देखो। कितना सुन्दर!

स्त्री — (एकाएक ठिठक कर, आश्चर्य से) अरे! (आंखें मलने लगती है।)

पुरुष — आंखें क्यों मलने लगीं। यह स्वप्न नहीं, सत्य है! सत्य!

स्त्री — मुझे तो अपनी आंखों पर विश्वास ही नहीं होता। लगता है जैसे हम किसी और ही लोक में पहुँच गये हों! ये हरे-भरे वृक्ष, ये कोमल सुकुमार लतायें, ये रंग-बिरंगे फूल, मंजरियों से लदे आम, उन पर कूकती हुई कोयल, झर-झर गाते हुए निर्मल झरने, दूर-दूर तक फैली हुई हरियाली, मन्द-मन्द डोलती सुखद वायु, ये सब — ये सब पहले नहीं थे!

पुरुष — हां, नहीं थे। प्रकृति का यह सौन्दर्य देख कर मेरा मन तो हर्ष और उल्लास से भरा जा रहा है!

स्त्री — मुझे तो लगता है जैसे मेरी नस-नस में कोई मधुर नशीला रस लहराने लगा हो!

पुरुष — हम ही नहीं, आज सभी प्राणी आनन्द-विभोर हैं। हरिणों के जोड़े मस्ती से चौकड़ियां भर रहे हैं, पंछी मधुर गीत गा रहे हैं...

स्त्री — जी चाहता है, आज मैं इन हरिणों की भांति चौकड़ियां भरूं, कोयल की भांति मधुर स्वर में

गाऊं, जल-लहरियों की भांति लहराऊं, थिरकूं, इस मतवाली पवन की भांति वन-वन डोलूं और...

पुरुष — और मेरा जी चाहता है कि मैं भी इन भौंरों की भांति कली-कली पर मंडराऊं, नाचूं, गाऊं, झूम-झूम कर मधुरस पीऊं !

स्त्री — (एक फूल तोड़ कर) देखो, यह फूल कितना सुन्दर है !

पुरुष — लाओ, मुझे दो; इसे मैं तुम्हारे केशों में सजा दूं। (केशों में फूल को लगा कर) आहा ! नीरा, आज तुम कितनी सुन्दर दिखाई देती हो ! ठहरो, मैं और फूल तोड़ कर लाता हूँ। आज मैं फूलों से तुम्हारा—तुम्हारा शृङ्गार करूंगा।

स्त्री — चलो, मैं भी फूल तोड़ती हूँ।

(दोनों दूसरे स्थान पर जाते हैं)

पुरुष — नीरा, देखो, यहां कितने रंगों के फूल खिले हैं !

स्त्री — यहां तो जैसे रंगों का सागर लहरा रहा है।

पुरुष — यह देखो, लाल और गुलाबी फूल। इनका रंग आंखों को कैसा भला लगता है।

स्त्री — (नदी की ओर देख कर) अरे, आज तो नदी का जल भी लाल है और···और उधर सामने आकाश पर भी लाली झलक रही है।

पुरुष — कुहरा हट गया है और अब सूर्य निकल रहा है। नन्ही सुकुमार किरणें सभी वस्तुओं पर लाली बिखेर रही हैं।

स्त्री — सामने के पर्वतों के हिमाच्छादित शिखर भी इसी लाल रंग से रंगे गये हैं...

पुरुष — मानों किसी ने इन शिखरों पर, वृक्षों पर, जल-लहरों पर...पर...

स्त्री — गेरू बिखेर दी हो !

पुरुष — हां, गेरू बिखेर दी हो। और नीरा, सूर्य की किरणों ने तो तुम्हारे मुख पर भी गेरू मल दी है।

स्त्री — और तुम्हारे मुख पर भी !

(दोनों हंसते हैं)

पुरुष — यह देखो, यहां कितनी गेरू पड़ी है। लाओ, तुम्हारे मुख पर थोड़ी-सी मल दूं !

(मुख पर गेरू मलता है)

स्त्री — यह भी खूब खेल सूझी ! लाओ, अब मैं तुम्हारे मुख पर मलूं !

(दोनों हंसते हैं। यह हंसी देर तक गूंजती रहती है।)

* * *

सूत्रधार — आदि पुरुष और स्त्री के इसी हर्षोल्लास ने आगे चलकर, जब मनुष्य-जाति कंदराओं से निकलकर नगरों और गांवों में रहने लगी, मदनोत्सवों व मधुपर्वों का रूप धारण किया। इन उत्सवों के कारण भारत का अतीत कितना रङ्गीन और सरस जान पड़ता है ! एक झलक उस अतीत की भी देखलें —

(भीड़ के कोलाहल के साथ वीणा की झनकार)

यह रही महाराज उदयन की नगरी कौशांबी। प्रत्येक गृहद्वार, हाट, बाज़ार तोरणों, बन्दन-वारों और मधु-कलशों से सजा हुआ है। नगर के सभी नर-नारी अबीर-गुलाल के थाल, केशर-जल से भरे कलश और पिचकारियां लिये हंसते-गाते मकरंद-उपवन में एकत्र हो रहे हैं। उत्सव देखने के लिए दूर दूर से ग्रामीण लोग भी आये हैं जिनमें सुनन्द और मालिनी भी हैं।

(भीड़ का कोलाहल)

मालिनी — बाप रे ! कितनी अपार भीड़ है !

सुनन्द — आओ मालिनी, हम इस शिला पर खड़े होकर उत्सव देखें। हमारे गांव में भला ऐसी रौनक कहां !

मालिनी — सुनंद, मेरा तो जी चाहता है कि हम भी इस उत्सव में भाग लें, अबीर-गुलाल उड़ायें, रंग से भर भर कर पिचकारियां छोड़ें, नाचें, गायें —

सुनंद — हां-हां, यह सब होगा; परन्तु अभी नहीं। उत्सव आरम्भ होते ही हम अपने आप उसमें सम्मिलित हो जायेंगे। अभी तो महाराज भी नहीं पधारे।

मालिनी — तो क्या वे आयेंगे?

सुनन्द — निश्चय। आज के दिन राजा और प्रजा का भेद नहीं रहता।

मालिनी — (एकाएक जैसे कुछ देखकर) सुनन्द, वह देखो, स्त्रियों का वह झुरमुट थालों में धूप-दीप, पुष्प और चंदन सजाये उस अशोक-वृक्ष की ओर जा रहा है।

सुनन्द — सम्भवतः ये स्त्रियां भगवान काम-देव की पूजा करने जा रही हैं।

मालिनी — आओ, हम भी चलें।

सुनन्द — ओहो! तो तुम चाहती हो कि भगवान कामदेव प्रसन्न होकर हमें शीघ्र ही विवाह-सूत्र में बांध दें।

मालिनी — (लजाकर) हटो!

सुनन्द — अरे, लजाती क्यों हो? ठीक ही तो है। एक दिन हमारा विवाह तो होगा ही। लो, भगवान कामदेव की पूजा प्रारंभ हो गई —

(स्त्रियों के गाने का स्वर उभरता है।)

गीत

स्त्रियां — जय रति-पति देव-दुलारे!

यह मधुर बसंती बेला,
कोई क्यों रहे अकेला,
खिंच प्रेम-डोर से आयें —
परदेसी सजन हमारे!

हो मनोकामना पूरी,
हो दूर दिलों की दूरी,
उर उर में प्यार जगादें —
फूलन के बान तिहारे!
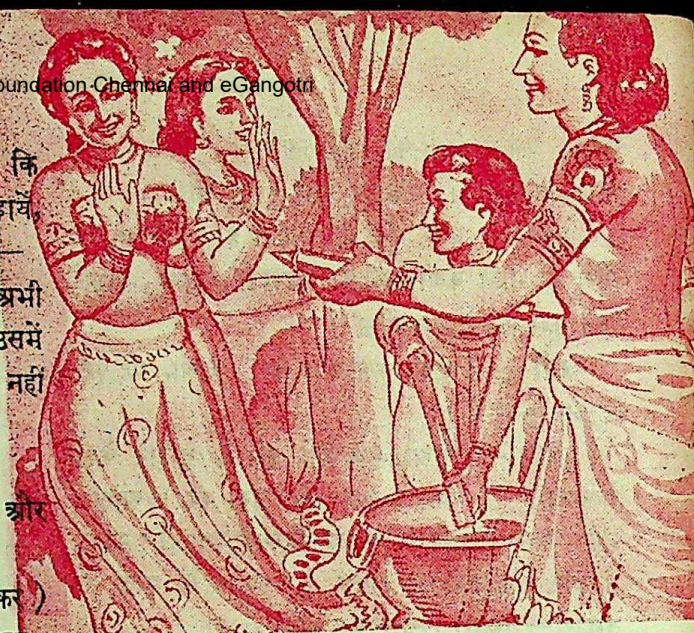
(गीत समाप्त होते ही भीड़ का कोलाहल फिर से उभरता है)

एक पुरुष — मित्र, ज़रा उठाओ तो गुलाल के थाल। सुंदरियों का यह झुरमुट क्यों बचकर जाये!

दूसरा पुरुष — ठहरो, महाराज तो आजायें। लो, वे आ पहुँचे —

(तुरही का शब्द और साथ ही दूर से आवाज़ आती है — "कौशांबी नरेश महाराज वत्सराज पधार रहे हैं!" यह घोषणा बार बार दोहराई जाती है और भीड़ में जयजयकार होता है।)

महाराज — गौतम, मेरी ओर से सब लोगों से कह दो कि आज राजा और प्रजा का कोई भेद नहीं। आज मैं औरों की भांति केवल कौशाम्बी का नागरिक हूँ, महाराजा नहीं। लाओ, गुलाल का थाल मुझे दो।

गौतम — जो आज्ञा।

(नगारे पर चोट पड़ती है। संगीतमय कोलाहल के साथ साथ चारों ओर अबीर-गुलाल उड़ने लगता है।)

मालिनी — सुनन्द, सुनन्द, कहां हो, सुनन्द!

सुनंद — मालिनी, मैं यहां हूँ। तुमने आंखें क्यों मींच रखी हैं? देखो, कितना सुन्दर दृश्य है! लोग मुट्ठियां भर-भर कर एक दूसरे पर गुलाल फेंक रहे हैं। चारों ओर अबीर-गुलाल के बादल छा गये हैं।

"चपल खिलाड़ी की तरह गाय एक क्षण में ही सम्भल गई। उसने अपने अगले पैर के घुटने जमीन पर टिका दिये और सींगों से उसके आक्रमण को रोका, किन्तु बाघ का दाहिना पंजा खिसक कर उसकी गर्दन पर जा गिरा था। उसने अपने तेज धारदार नाखून उसकी गर्दन में गड़ा दिये। गाय तिलमिला उठी। उसने अपनी समस्त शक्ति एकत्रित कर, घुटने उठा, बाघ को नीचे गिरा दिया और अपने सींगों से उसकी पसलियों में बार बार वह मार लगाई कि उसे छटी का दूध याद आ गया। वह घबरा कर उठा और गाय से दस कदम दूर जाकर खड़ा हो गया और जोर से दहाड़ा। उसकी दहाड़ से सारा जंगल गूंज उठा।

"वात्सल्यमयी मां फिर बछड़े को चाट रही थी। पाशविक शक्ति से लोहा लेने वाली मां और अपने रक्त से बनी सन्तान को प्रेमपूर्वक चाटने वाली मां—मां के ये दो रूप एक ही समय में किसी विरले भाग्यवान को ही देखने को मिलते हैं!

"चांद अब कुछ पश्चिम की ओर ढल गया था। उसकी तिरछी किरणों में हमने देखा कि हमारी दाहिनी बाजू से बाघनी बाघ की ओर मन्द गति से जा रही है। गाय को देख वह रुकी। फिर कुछ सोच बाघ की ओर चल पड़ी। मैंने अपने साथी से कहा, 'अब गोली दागने का समय आगया है, तुम भी अपनी बन्दूक साध लो।' मैंने देखा बाघनी बाघ के पास जाकर खड़ी हो गई है। उसने उसे सूंघा। बाघ पुलकित हो गया, उसके शरीर के बाल खड़े हो गये। जीभ से उसने मुंह को चाटकर साफ किया और एक जोर की हुंकार भरी और अपनी आंखों का रुख गाय की ओर कर दिया। बाघनी अपना मुख बाघ के मुख के पास ले गयी। वह उकडूं बैठ गया। मानो बाघनी ने उससे कहा हो, तुम बैठो यह शिकार मेरा है। फिर वह गाय की ओर मुड़ी और अपनी सम्पूर्ण शक्ति से उस पर हमला बोल दिया; किन्तु इससे पूर्व कि बाघनी से गाय की टक्कर होती, मेरी बन्दूक की गोली उसकी बायीं पसली में घुसकर उस पार निकल गई। बाघनी अचेत होकर गिर पड़ी।"

सभी बच्चों ने तालियां पीटकर कहा—"शाबाश काका, तुमने बाघनी को मार दिया, नहीं तो वह गाय को खा जाती।"

तारा ने कहा—"और बाघ का क्या हुआ, काका?"

बलधारी ने कहा—"वह तो बेचारा इस आकस्मिक घटना से नितान्त अपरिचित था। वह तो अपनी प्रेयसी की वीरता देखते निश्चिंत बैठा था। गोली की आवाज से वह उठकर खड़ा हो गया और इधर उधर देखने लगा, मानो अपने शत्रु की खोज कर रहा हो और उसकी शक्ति को तौल रहा हो। बाघ कभी भयभीत नहीं होता बिटिया, वह लड़ना भी जानता है और मरना भी। मैंने उसे संभलने का मौका नहीं दिया। उसके कपाल को लक्ष्यकर मैंने गोली चला दी। गोली ने उसका कपाल छार-छार कर दिया और वह जमीन पर गिरकर मर गया।"

चन्द्र ने कहा—"गाय बच गई, काका; फिर क्या हुआ?"

बलधारी ने कहा—"हम सब गाय के पास गये। बाघ से न डरने वाली गाय बन्दूक की आवाज से डर कर थर-थर कांप रही थी। वह गांव का युवक उसके पास गया। उसने अपना मुख गाय के कान के पास ले जाकर कहा—'गंगा।' गाय हुं हुं करके उसे सूंघने लगी। उसने उसे पहिचान लिया। रात अभी बहुत बाकी थी। हम वहीं बैठ गये। कोई गाय का गला खुजलाने लगा, कोई उसके शरीर पर हाथ फेर रहा था, कोई उसके पांव दाब रहा था। जब पूर्व की ओर प्रभात की लाली फैलने लगी, तब हम गाय को लेकर गांव की ओर चल पड़े। सूर्य की पीली किरणों के स्वर्णिम प्रकाश में सभी ने देखा कि गाय के सींगों पर बाघ के बालों के गुच्छे चिपके हुए हैं। बताओ रवि, तुम उन गुच्छों-भरे सींगों को कौन-सी उपमा दोगे? बताओ, मानो ·······।"

रवि ने कहा—"मानो, मानो वे मां की ममता के दो विजय-ध्वज हों!"

कल्पना

(पृष्ठ २४ का शेष)

"तिलक है ! कब ?" कल्पना सीढ़ियों पर चढ़ते हुए बोली — "अम्मा का पत्र तो परसों ही आया था एक, उसमें तो कुछ भी नहीं लिखा था उन्होंने !"

"हां, कल तक तो यों बातचीत हो रही थी। रात की ही गाड़ी से छोटे भैय्या घर आये हैं। उन्होंने शादी मंजूर कर ली है। तुम ज़रा जल्दी से चलो !"

बहुत दिनों से मां के लिये व्यग्र रहने पर भी कल्पना असमंजस में पड़ कर बोली – 'मैं चलूं, पर वे — वे तो अभी कालिज से लौटे भी नहीं, और लौटें भी शायद क्लब से होकर। आठ तो बज जायेंगे..."

प्रदीप ने बात काटी — "मैं कालिज से जीजा जी से मिल कर आ रहा हूं। तुम चलो। वे भी शाम को शायद सीधे वहीं आयें। तुम जरा जल्दी करो न !"

पर कल्पना जानती थी कि शेखर कालिज के कपड़े बगैर बदले कहीं न जायेगा; इस लिये घर जरूर आयेगा। घर की एक चाबी उसके पास रहती थी। कल्पना ने जल्दी २ स्टोव जला कर कुछ जलपान तैय्यार किया। उसे मेज पर ढक कर रख दिया, कपड़े पलंग पर सजा कर रख दिये, डब्बे में पान लगा कर रक्खा। फिर एक छोटी-सी चिट्ठी लिखी — 'जलपान जरूर कर लीजियेगा। जाली में खीर और बर्फी भी है, निकाल लीजियेगा। कपड़े सब पलंग पर हैं। पान डब्बे में दबा हुआ है। आपको तकलीफ़ तो होगी ही, पर प्रदीप आपसे मिल कर आज्ञा ले चुका है... इत्यादि।'

लगभग डेढ घण्टे बाद वह सब व्यवस्था करके प्रदीप के साथ चली गई।

शेखर क्लब नहीं गया। पांच बजे तक वह घर लौट आया। घर की दूसरी चाबी उसके पास थी ही। ताला खोल कर जब वह घर में प्रविष्ट हुआ तो आंगन सुनसान था। वह ऊपर गया। कमरे में सबसे पहले उसकी दृष्टि मेज पर पड़ी — कल्पना की चिट्ठी पर। उसने झटसे चिट्ठी को उठाया। पढ़ कर मुस्कराया। जूते का फीता खोल कर पलंग पर लेट गया। बहुत दिनों से जो शरीर कल्पना की सेवा का अभ्यस्त था, वह शिथिल होकर पलंग पर पड़ रहा। जलपान की इच्छा रहते हुए भी वह उठ न सका। लेटे लेटे सोचने लगा — कितनी भोली है कल्पना ! वह नहीं जानती कि मैं एकाकी रहने का कितना अभ्यस्त हूँ। उसने मुस्करा कर तकिये के नीचे से एक किताब निकाली। उसमें दबा हुआ एक अधूरा पत्र, जिसे लिखते-लिखते कल्पना शायद किसी कार्यवश उठी होगी और फिर पूरा न कर सकी होगी, नीचे गिर पड़ा। पत्र उसने अपनी किसी सहेली को लिखा था। अक्षर काफ़ी सुन्दर और साफ़ थे। शेखर ने किताब रख दी और उत्सुकता से पत्र पढ़ने लगा।

प्रिय शेफाली,

तुम्हारे तीनों पत्र मिले। अब तक पत्रोत्तर न पाने की वजह से तुम मुझसे नाराज हो। यह स्वाभाविक भी है। किन्तु तुम्हारी शिकायतों का उत्तर क्या लिखूं, समझ में नहीं आता। अपने वैवाहिक जीवन के इन तीन ही महीनों में तुम बेहद कल्पना-शील हो गई हो। इस कल्पना का आधार कदाचित् तुम्हारा स्वयं का सुखद वैवाहिक-जीवन है। तुम्हारे 'वे' स्वयं तुम्हारे प्रेम में मीरा बन रहे हैं, कवि हो रहे हैं। शायद कुछ दिनों में सफल चित्रकार भी बन जायें। तुमने स्वयं लिखा है, ये नये-नये शौक 'उन्हें' विवाह के बाद से आरम्भ हुए हैं। वे एक क्षण के लिये भी तुमसे अलग होने में कष्ट का अनुभव करते हैं। कितनी सुन्दर हैं तुम्हारे सुख सौभाग्य की ये अनमोल घड़ियां ! तुम्हारे पत्र कई-कई बार पढ़ने से मुझे कंठस्थ हो गये हैं। अपनी इन मधुर रंगरलियों के बीच रहते हुए भी तुम मेरे लिये पत्र लिखने का समय निकाल लेती हो, यह मेरा सौभाग्य ही तो है। तुमने लिखा है, इसी सप्ताह में तुम दोनों एक महीने के लिये घूमने के

विचार से बाहर जाने वाले हो। इसमें कम से कम एक सप्ताह मां के पास भी रहने की तुम्हारी इच्छा है। तुम्हारी योजनानुसार कम से कम वह अन्तिम सप्ताह मुझे भी मां के ही यहां बिताना चाहिये, जिससे हम दोनों अधिक से अधिक एक दूसरे के साहचर्य का लाभ उठा सकें। किन्तु मैं पूछती हूं, शेफाली! क्या अपने 'उन' का सम्पूर्ण प्यार, सम्पूर्ण आदर और स्नेह पा कर भी अभी तुम्हें मेरे साहचर्य की आवश्यकता है? कदाचित् नहीं! यह मैं अपने निजी अनुभव से नहीं लिख रही हूँ। ये शब्द मैंने अपने मानसिक तर्क-वितर्क के बाद बहुत सोच कर ही लिखे हैं। प्रतिवाद न करना; यह मैंने तुम्हारे ही मन की बात निकाल ली है। जहां दो मतवाले हृदयों का आत्म-समर्पण हो, वहां तीसरे का स्थान ही कहां? मेरे विषय में तुमने कई बार पूछा है। तुम क्या जानना चाहती हो, यह जानते हुए भी क्या लिखूं, समझ में नहीं...

पत्र यहीं आकर अधूरा छूट गया था। शेखर को लगा, इस पत्र के भीतर से कल्पना की सदा मूक रहने वाली आत्मा बोल रही है। वह कल्पना जिसे वह अनुभवहीन नन्ही-मुन्नी लड़की समझ रहा था, वही अपने अतृप्त हृदय में भावों का स्रोत छिपाये निरन्तर आठ महीने से मूक संघर्ष कर रही थी। उसके सामने कल्पना का उदास मुरझाया हुआ म्लान मुखमण्डल उभर आया। ओह, कितनी भूल की मैंने! वह फूल जो खिलने की आशा में पंखुड़ियां फैलाने जा रहा था, अचानक मानो किसी बोझ से दब गया।

वह शीघ्रता से उठा, कपड़े पहने, दरवाजा बन्द किया और एक टैक्सी लेकर अपने ससुराल को चल दिया।

जब वह वहां पहुँचा, तब ८ बज चुके थे। घर में नर-नारियों की काफी भीड़ थी। उसने एकान्त में प्रदीप को बुला कर कल्पना से मिलने की इच्छा प्रकट की।

किसी प्रकार सखी-सहेलियों की दृष्टि बचा कर कल्पना कमरे में आकर शेखर से मिली और सभीत बोली — "आपने मुझे बुलाया है?"

"हां" — शेखर ने कल्पना का हाथ अपने हाथों में ले लिया।

"कहिये?" आश्चर्य से भर उठी थी कल्पना, 'चाय नहीं पी होगी आपने? जलपान किया या नहीं?"

"कुछ नहीं किया! पर सुनो, यहां का काम कब तक समाप्त होगा?"

"बारह-एक तो बज ही जायेंगे।"

"तैयार रहना, मेरे साथ चलना होगा तुम्हें!"

"मुझे? पर आज तो शायद अम्मा जाने भी न देंगी।"

"मैं मां से छुट्टी ले लूंगा। तुम्हें मेरे साथ चलना होगा। घर में मैं अकेला कैसे रह सकता हूँ!"

"क्या कहते हैं आप?"

"सच कह रहा हूँ, रानी! तुम्हारे बगैर आज वह घर श्मशान-सा लग रहा है।"

कल्पना की आंखें विस्मय से फैल उठीं, उसका रोम-रोम पुलक उठा। उसने आंखें नीची कर लीं।

उसकी हथेलियां अपनी मुट्ठियों में दबा कर शेखर ने कहा — "तुम्हारे ओठों पर जिस मुस्कान को देखने की आशा लिये मैं आया था..."

किन्तु कल्पना का हृदय वेग से उमड़ रहा था। आठ महीने का संचित स्वाभिमान और संकोच मानो गल कर बहा जा रहा था। वह शिथिल-सी हो कर पति के वक्षस्थल पर सिर रख कर फफक-फफक कर रो उठी।

शेखर ने उसे हृदय से लगा कर कहा—"तुम मेरे निकट रह कर भी मुझसे इतने दिन दूर रहीं। तुमने न मुझे अपने निकट खींचने की कोशिश की, न मेरे निकट स्वयं आने की। अपराध जितना मेरा है, उतना ही तुम्हारा भी। अच्छा, जाओ काम समाप्त होते ही तैयार रहना मेरे साथ चलने के लिये।" शेखर ने कल्पना के आंसू पोंछ दिये!

कल्पना कमरे के बाहर निकली। उसकी पलकें भीगी हुई थीं, किन्तु ओठ मुस्करा रहे थे!

★

विजय पुस्तक भण्डार से उपलब्ध कथा-साहित्य

आपका चिर-प्रतीक्षित उपन्यास

शाह आलम की आंखें

[ले०—श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति]

पुनः प्रकाशित हो गया

* इसका प्रथम संस्करण तीस वर्ष पूर्व छपा था, पर आज भी इसकी मांग ज्यों की त्यों है।
* इस उपन्यास की कथा का आधार ऐतिहासिक है जो कि सत्य है। इसलिये इसे पढ़ते समय वास्तविक घटनाचक्र सामने उपस्थित हो जाता है।
* उपन्यास की भाषा ओजपूर्ण है और कथानक बहुत ही रोचक है।
* पुस्तक की मांग बहुत अधिक है इसलिए अपनी कापी आज ही मंगा लें।

मूल्य केवल ३।) सवा तीन रुपये।

सामाजिक उपन्यास

सरला की भाभी

[ले०—श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति]

इस उपन्यास की अधिकाधिक मांग होने के कारण पुस्तक प्रायः समाप्त होने को है। आप अपनी कापियें अभी से मंगा लें, अन्यथा इसके पुनः मुद्रण होने तक आपको परीक्षा करनी होगी। मूल्य २)

तिरंगा झण्डा

श्री विराज जी रचित तीन एकांकी नाटकों का संग्रह—स्वाधीन देश के झण्डे के लिए बलिदान की पुकार। मूल्य १।) डाक व्यय।−)

सम्राट् विक्रमादित्य (नाटक)

[लेखक—विराज]

उन दिनों की रोमांचकारी तथा सुखद स्मृतियां, जब कि भारत के समस्त पश्चिमोत्तर प्रदेश पर शकों और हूणों का बर्बर आतंक राज्य छाया हुआ था; देश के नगर नगर में द्रोही विश्वासघातक भरे हुए थे जो कि शत्रु के साथ मिलने को प्रतिक्षण तैयार रहते थे। तभी सम्राट् विक्रमादित्य की तलवार चमकी और देश पर गरुड़ध्वज लहराने लगा।

आधुनिक राजनीतिक वातावरण को लक्ष्य करके प्राचीन कथानक के आधार पर लिखे गये इस मनोरंजक नाटक की एक प्रति अपने पास सुरक्षित रख लें।

मूल्य १॥), डाक व्यय।≈)।

नया आलोक : नई छाया

[श्री विराज]

रामायण और महाभारत काल से लेकर आधुनिक काल तक की कहानियों का नये रूप में दर्शन।

मूल्य २) डाक व्यय पृथक्।

मैं भूल न सकूं

[सम्पादक—श्री जयन्त]

प्रसिद्ध साहित्यिकों की सच्ची कहानियों का संग्रह। एक बार पढ़कर भूलना कठिन।

मूल्य १) डाक व्यय।−)

प्राप्ति स्थान—विजय पुस्तक भण्डार, श्रद्धानंद बाजार, दिल्ली।

आज तुमसे प्यार करना भी हुआ अपराध क्या ?

श्री इन्दुशेखर

स्वप्न में भी जब तुम्हारा था न मुझको ध्यान,
तब नियति ने क्यों दिया था स्नेह का वरदान ?
पा तुम्हें कुछ और पाया था नहीं जब शेष,
तुम मिलीं मानों युगों की थी कभी पहिचान।

किन्तु मैंने प्यार के अर्पित किये जो फूल,
बन गये दुर्दैव कैसे आज वे सब शूल ?
अब उमंगों की चिता से उड़ रही है धूल,
पर न तुम को भूलने की कर सकूंगा भूल !
तुम न जब अपनी रहीं तब रह गई फिर साध क्या !
आज तुम से प्यार करना भी हुआ अपराध क्या ?

प्यार का पहिला प्रहर है और तुम बेपीर,
क्या हुए वे प्रण तुम्हारे, वे वचन गम्भीर ?
वह शपथ, वे भावनायें, वे हृदय के बोल,
याद जिनकी आज भी देती हृदय को चीर ?

छिन गये मँझधार में जब हाथ के पतवार,
कौन जाने कब लगूंगा धार के उस पार !
दो विदा मेरे सजीले स्वप्न के संसार,
विश्व का व्यापार है यह, है न मेरी हार !
स्नेह सरिता भी कभी है बह सकी निर्बाध क्या !
आज तुम से प्यार करना भी हुआ अपराध क्या ?

अब नियति की लाल आंखें कर न सकतीं भीत,
जो मिलन के चार दिन थे वे गये जब बीत !
झूमती आती डराती क्यों लहर उन्मत्त,
अब मुझे परवाह ही क्या, हार हो या जीत !

गिर पड़ी जब नीड़ पर मेरे गगन से गाज,
क्यों व्यथा का भार लेकर मैं रहूँ चुप आज !
कब तलक छिपते रहोगे यूं नयन की ओट,
मेघ, जी भर कर बरस लो, आज कैसी लाज !
रोक पायेंगे नयन के आंसुओं के बांध क्या !
आज तुम से प्यार करना भी हुआ अपराध क्या ?

★

याद किसी की आती !

(श्री हरिश्चन्द्र वर्मा)

आ जाती तब याद किसी की, याद किसी की आती !

सजल वेदना लिये घटायें
नभ पर जब लहरातीं,
और न चातक की मनुहारें
मेघ-हृदय छू पातीं,
यौवन-भार-झुकी लतिका जब तरुवर सँग इठलाती,
आ जाती तब याद किसी की, याद किसी की आती !

किसी टूटते तारे का जब
रजत हास लुट जाता,
पथ भूला राही निराश हो
आंखें है भर लाता,
और मिलन की आस लिये जब विरहिन दीप जलाती,
आ जाती तब याद किसी की, याद किसी की आती !

दूर दिशा के प्रियतम को जब
तरु के शिखर बुलाते,
दिन भर के जब बिछुड़े पंछी
नीड़ों में मिल जाते,
दूर कहीं चरवाहे की जब बंसी है बज जाती,
आ जाती तब याद किसी की, याद किसी की आती !
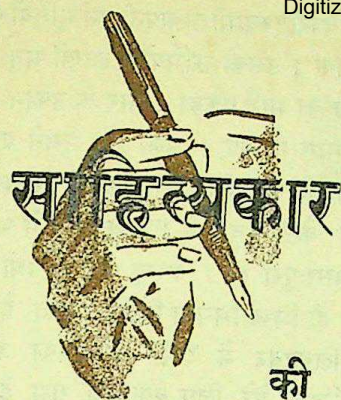
साहित्यकार की संगिनी

श्री शंकरदेव विद्यालंकार

"यदि वह मेरी अपेक्षा किसी अन्य प्रभाव वाले मनुष्य को ब्याही होती तो वह सहस्र गुनी अधिक सुखी हुई होती !"

इन शब्दों को लिखने वाले ने लाखों शब्द लिखे हैं। इन लक्ष-लक्ष शब्दों में सब से अधिक सच्चे ऊपर अंकित शब्द ही हैं।

ये शब्द एक अमर अंग्रेज-साहित्यकार ने लिखे हैं। अपने गृह-जीवन का कुलयोग इनमें निकाला गया है। बाईस वर्ष के दांपत्य जीवन के पश्चात, ग्यारह संतान हो चुकने पर, इस दंपती को विवाह-विच्छेद (तलाक) करना पड़ा था।

ऐसी निष्फलता क्यों ? पति पवित्र था, स्नेही था, कर्त्तव्यनिष्ठ था, और पत्नी तो पति की पुजारिणी थी। तथापि बाईस वर्ष का और ग्यारह बच्चों की समृद्धि दिखाने वाला यह गृह-जीवन किस चट्टान पर टकरा कर विनष्ट हो गया ?

इसके दो रहस्य मालूम पड़ते हैं। ये दो रहस्य कदाचित् अनेक साहित्यकारों के निष्फल दांपत्य-जीवन की समस्या को समझाने वाले सिद्ध होंगे।

प्रथमः इसकी पत्नी ने एक अति प्रतिभावान् से, "जीनियस्" से—एक विभूति से—विवाह करने की गम्भीर भूल की थी।

दूसराः साहित्यकार ने अपनी कृतियों में ही प्रेम की अद्भुत जीवन-मस्ती इतनी अधिक उलीच दी कि अपनी पत्नी पर ढालने के लिए उसके हृदय में तरंगें ही नहीं रहीं। तरंगें होंगी भी तो उनके लिए शब्द ही शेष नहीं रहे होंगे।

इस साहित्य-स्रष्टा के एक सौ चालीस प्रेम-पत्र प्रकट हुए हैं। पत्नी ने पति-प्रेम के प्रमाण के रूप में

इन समस्त पत्रों का एक पुलिन्दा ब्रिटिश म्यूजियम को सौंप दिया था और वचन ले लिया था कि ये पत्र तभी प्रकट किए जायं जब मेरे वंश का सब से अन्तिम उत्तराधिकारी मर चुके।

वंश का अन्तिम दीपक सन् १६३३ में बुझ गया था। अतः इस महान् साहित्य-स्रष्टा के ये प्रेम-पत्र अब प्रकट किए गए हैं। समस्त पत्रों में एक ही काली डोरी अनुस्यूत हुई है। यह श्याम डोरी दांपत्य-जीवन के गुप्त झगड़ों की है।

उफनते हुए प्रेम का परिमल इन पत्रों में नहीं है। मस्ती, मुग्धता, मूर्खता, पागलपन या अन्य किसी प्रकार की आवेश-चेष्टाओं से ये पत्र वंचित हैं। इतना ही नहीं, एक प्रथम श्रेणी के ललित साहित्य-विधायक के लिए अति स्वाभाविक और सहज प्रतीत होने वाला लालित्य भी इन पत्रों में सर्वथा नहीं है।

पहला ही — विवाह से पूर्व का — पत्र इस प्रकार है — 'मेरी प्यारी, आज शयन के लिए जाने से पूर्व मुझे तेरे प्रति निष्ठुर और उपालंभपूर्ण प्रतीत होने वाला एकाध शब्द लिखने के लिए बैठना पड़ता है। उससे मुझे अतिशय दुःख होता है।" इत्यादि।

प्रथम पत्र में ही उपालंभ और निष्ठुरता! उपालंभ किस बात का? "कल रात तू मेरे प्रति उपेक्षित क्यों थी? क्या पिछले तीन महीनों के मेरे सहवास ने तुझ को उकता दिया है?"

इतना संकेत पर्याप्त होना चाहिए था, स्त्री को इस विवाह का अमंगल भविष्य में समझ लेना चाहिए था। परन्तु वह विवाह कर बैठी — एक प्रतिभा-सम्पन्न पुरुष के साथ। बाद को तो यह प्रतिभा ही स्त्री की सौत बन गई! पति और अपने बीच में उसने सदा ही इस "प्रतिभा" को लेटा हुआ निहारा! इस प्रतिभा ने स्वामी को ऊंचा-ऊंचा उड़ने की पांखें प्रदान कीं। पत्नी को पति अपने से दूर दूर उड़ता हुआ प्रतीत हुआ, अथवा उसकी धारणा ही ऐसी हो गई। इस धारणा ने स्त्री-हृदय को ईर्ष्या की अग्नि में जलाना शुरू कर दिया।

परन्तु इसके विपरीत स्वामी तो अपनी मनोमूर्तियों की नई दुनिया रचता गया। उसकी ऊर्मियों ने लाखों मनुष्यों के रसधाम उपजाने का मार्ग पकड़ा! प्यार के उफान उसके लेखन में ही समाप्त हो गए। पत्नी को उसने एक भी पत्र में यह नहीं लिखा कि "तू कितनी सुन्दर है, कितनी मधुर है कैसी मृदुल है!" वास्तव में पत्नी में यह सब कुछ भरा-पूरा था। परन्तु पति के पत्रों में तो केवल बुद्धि का ही मिथ्याभिमान चित्रित हुआ है।

पत्रों की लिखावट में "मैं" शब्द का अहंकार गूंजता है। "तूने मेरे लिए क्या-क्या सहा है" — ऐसा एक भी शब्द नहीं है।

अपनी महत्ता का ज्ञाता साहित्यकार, अपनी ऊर्मियों को अपने अन्तर-जगत् में ही समा देने वाला कलाकार, कीर्ति-पथ का महापथिक, स्त्री के नन्हे और नादान भावों की भूमिका पर नहीं उतर सका! उसके मन में तो कदाचित् दुनियावी प्रेम का अर्थ यह होगा — एक अनुकूल जीवन-साथी की प्राप्ति। बस, इससे अधिक कुछ नहीं!

बाईस वर्षों तक वह पत्नी के साथ मिला रहा — केवल कर्त्तव्य-बुद्धि के बन्धनों द्वारा ही!

यह करुण-कथा प्रसिद्ध अंग्रेज-साहित्यकार चार्ल्स डिकन्स के दाम्पत्य जीवन की है!

कैसे ?

श्री सुधीन्द्र

जीत लूँ कैसे भला इन लघु कणों को ?

भूल सकता हूं युगों के
विरह के दुख की कथा मैं,
घोल सकता हूँ मधुर
मुसकान में गहरी व्यथा मैं,
भूल जाऊं पर भला कैसे मिलन के मधु क्षणों को ?
जीत लूं कैसे भला इन लघु कणों को ?

मसल दूंगा मैं करों के
स्पर्श से यह शृङ्खला भी,
कुचल दूंगा वज्र-पद से
आग की भीषण शिखा भी,
मसल दूं कैसे भला मन के मृदुलतम बन्धनों को ?
जीत लूं कैसे भला इन लघु कणों को ?

रोक लूंगा वक्ष से मैं
अटल भूधर की भुजायें,
टोक लूंगा क्रोड़ में मैं
प्रबल आंधी की दिशायें,
रोक लूं कैसे नयन के इन सरस आकर्षणों को ?
जीत लूं कैसे भला इन लघु कणों को ?

बांध लूंगा बाहुओं में
मैं जलधियों की परिधि को,
साध लूंगा करतलों में
मैं अमाप कुबेर-निधि को,
बांध लूं पर प्राण में कैसे मधुर सम्बोधनों को ?
जीत लूं कैसे भला इन लघु कणों को ?

व्यंग्य-चित्र

अनधिकृत अधिकार

श्री 'रावी'

दो आदमियों ने एक बार आत्म-हत्या का इरादा किया।

आत्म-हत्या के लिए तारीख और स्थान भी उन्होंने तय कर लिया; लेकिन उस दिन के एक दिन पहले ही सरकार की पुलिस उनके घर पहुँची और उन्हें गिरफ्तार करके ले गई।

आत्म-हत्या करना आजकल के जमाने और अधिकांश सभ्य राज्यों की तरह उस राज्य में भी सरकारी अपराध माना जाता था। सरकार को किसी तरह, शायद इन मित्रों के किसी सम्बन्धी द्वारा, इनके इरादे की खबर हो गई थी।

इन मित्रों पर सरकार की तरफ से मुकदमा चला। नगर के अच्छे से अच्छे वकील इन्होंने अपने पक्ष की रक्षा के लिए नियुक्त किये; लेकिन अदालत का फैसला इनके विरुद्ध ही रहा।

दोनों मित्रों ने उस अदालत के फैसले के विरुद्ध राज्य की ऊंची अदालत में अपील की। उनका कहना था—"हमने दुनिया बहुत देख ली है, अब हम स्वर्ग की कुछ सैर करना चाहते हैं। इस दुनिया में हमारा जी नहीं लगता। इसके अलावा, हम जो नया आविष्कार और दण्ड-व्यवस्था-सम्बन्धी विशेष अध्ययन कर रहे हैं, उसका ठीक उपयोग स्वर्ग में ही हो सकेगा। और उसका पूरा पुरस्कार भी हमें स्वर्ग की सरकार ही दे सकेगी। रियासत की सरकार का कोई अधिकार नहीं कि वह बाहर जाने की इच्छा रखने वाले किसी नागरिक पर रोक लगाये। यह नागरिक के अधिकारों पर बहुत अन्यायपूर्ण प्रतिबन्ध है।"

हाईकोर्ट की दृष्टि में यह बड़ा ही विचित्र मुकदमा था। दोनों अभियुक्त राज्य के प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित नागरिक थे। एक की गिनती राज्य के प्रमुख चिकित्सा-विज्ञान-विशारद डाक्टरों में थी और दूसरे की राज्य के प्रमुख वकीलों में। उनके हृदय और मस्तिष्क पूर्णतया स्वस्थ और प्रसन्न थे। अदालत ने उन्हें सलाह दी कि यदि वे आत्म-हत्या करना ही चाहते हैं, तो अन्न-त्याग कर अनशन द्वारा कर सकते हैं; कानून और किसी तरह आत्म-हत्या की अनुमति उन्हें नहीं दे सकता।

अभियुक्तों की तरफ से भी राज्य के बड़े-बड़े वकील नियुक्त थे। वे आत्म-हत्या सम्बन्धी कानून को इस अर्थ में प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहे थे कि दुःखी और हताश होकर किसी नागरिक का आत्म-हत्या करना गैर-कानूनी है, लेकिन प्रसन्नता-पूर्वक किसी खोज या लाभ के उद्देश्य से आत्म-हत्या करने में कानून को कोई आपत्ति नहीं है।

अभियुक्तों ने भूख द्वारा धीरे-धीरे कष्टपूर्वक जान देना स्वीकार नहीं किया। मामला बहुत लम्बा चला और अन्त में निचली अदालत का फैसला ही स्थायी रहा। अभियुक्तों को निराश होकर अपना इरादा छोड़ना पड़ा और अदालत के सामने शपथ-पूर्वक आत्म-हत्या न करने का वचन देना पड़ा। मामला खारिज हो गया।

अगले सात वर्षों में डाक्टर ने अपना आविष्कार और वकील ने दण्ड-व्यवस्था संबंधी अपना अध्ययन पूरा कर लिया। उसके तीन साल के भीतर उनकी नियुक्ति क्रमशः राजमहल के डाक्टर और हाईकोर्ट के जज के पदों पर हो गई। उसी समय राजकुमार सख्त बीमार पड़ा।

सभी सभ्य राज्यों में आत्म-हत्या करना अपराध माना जाता है, क्या यह नागरिक के अधिकारों पर कुठाराघात नहीं है ?
राज्य से बाहर जाने की इच्छा रखने वाले नागरिक को सरकार भला क्यों रोके ?
बहुत पहले एक देश के लोगों ने मृत्यु-सम्बन्धी कानून के सुधार के लिये आन्दोलन किया था, लेकिन............

बहुत दवा-इलाज करने पर भी उसकी हालत गिरती ही गई। राजा ने स्वयं अपने महलों के डाक्टर को बुला कर उससे प्रार्थना की कि किसी तरह वह राजकुमार के प्राण बचाये।

डाक्टर ने सूक्ष्म चुम्बक-शक्ति द्वारा एक ऐसी औषधि का आविष्कार कर लिया था जिसके द्वारा प्राण-शक्ति को, जिस लोक और शरीर में वह रह रही हो, उसी में कैद रखा जा सकता था। उस औषधि के द्वारा मनुष्य जब तक चाहे जीवित रह सकता था।

राजा ने कहा कि वह औषधि कितनी भी कीमती क्यों न हो, राजकुमार को दी जाय और डाक्टर को उसका पूरा पुरस्कार दिया जायगा।

डाक्टर ने कहा—"मैं इस संसार में उस औषधि के प्रयोग को हानिकर और इस लिए गैर-कानूनी समझता हूं। इस औषधि का प्रयोग करने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ।"

राजा ने उसे आश्वासन दिया कि उस औषधि का प्रयोग गैर-कानूनी हर्गिज नहीं होगा, और अगर वर्तमान कानून के अनुसार वह किसी तरह गैर-कानूनी भी होगा तो वह अपने विशेष अधिकार द्वारा उस कानून में ऐसी औषधि के लिए पूरी गुंजाइश करा देगा।

ठीक ऐसे क्षण पर जब कि राजकुमार के प्राण निकल ही रहे थे, उसे वह औषधि दे दी गई।

राजकुमार की बेहोशी जाती रही, उसके प्राण शरीर में रुक गये; लेकिन शरीर की पीड़ा बेहद बढ़ गई।

बड़े-बड़े इलाज किये गये, लेकिन शरीर की वह असह्य पीड़ा किसी तरह न घटी; अलबत्ता राजकुमार को कोई बेहोशी न आई और मृत्यु के कोई आसार न दीखे।

असह्य पीड़ा में छटपटाता हुआ राजकुमार चिल्लाने लगा, "मुझे मरने दो—मर जाने दो—इस पीड़ा की अपेक्षा मौत सौ दर्जे अच्छी है!"

देश-विदेश के बड़े-बड़े डाक्टरों का इलाज चलता रहा, परंतु राजकुमार की पीड़ा नहीं घटी और उसकी वही पुकार जारी रही। पहले तो उसकी इस प्रार्थना पर किसी ने ध्यान नहीं दिया, लेकिन अन्त में जब उसका कष्ट नहीं देखा गया और उस कष्ट के दूर होने की कोई आशा नहीं रही और बड़े-बड़े जहरीले प्राण-घातक इंजेक्शनों से भी उसके प्राण नहीं निकले, तब राजा ने हताश होकर महल के डाक्टर से कहा कि वह अपनी दवा का प्रभाव दूर कर सकता हो तो वैसा करके राजकुमार के प्राणों को छुटकारा दे और उसे कष्ट से मुक्त करे।

डाक्टर ने वैसा करने से इन्कार कर दिया। उसने कहा, "मैं अपनी दवा का प्रभाव दूर करने की विधि जानता अवश्य हूँ, लेकिन वैसा करना एक जीवित व्यक्ति की हत्या करने के बराबर होगा, क्योंकि इस समय राजकुमार के मरने का कोई डर नहीं है।"

राज-परिवार की ओर से डाक्टर पर अभियोग चलाया गया। उस राज्य का विधान इतना उदार और नागरिक के स्वत्वों का इतना पोषक था कि राजा को भी कानूनी कार्यवाही के बिना किसी को दण्ड देने का अधिकार नहीं था।

मामला हाईकोर्ट में डाक्टर के मित्र जज की अदालत में पेश हुआ।

राज-परिवार के वकीलों ने कहा—"राजकुमार बहुत कष्ट में है, वह मरना चाहता है और मरने में ही उसका कष्ट से छुटकारा है। जब कि अभियुक्त के पास

ऐसा करने का उपाय है तो कानून को चाहिए कि अभियुक्त को वैसा करने के लिए बाध्य करे। नागरिक के कष्टों को दूर करना कानून का उद्देश्य है।"

अभियुक्त के वकीलों ने कहा—"राजकुमार के शारीरिक कष्ट को दूर करने का उपाय राज्य के चिकित्सा-विभाग को करना चाहिए। राजकुमार मृत्यु के खतरे से बाहर है; ऐसी दशा में उसे प्राणघातक औषधि देने के लिए किसी को बाध्य करना, कानून की दृष्टि में, हत्या करने के लिए बाध्य करने के बराबर हैं; अतः दंडनीय अपराध है। कानून को अपनी मर्यादा का निर्वाह करना चाहिए।"

जज ने फैसला दिया—"कानून के अनुसार आत्म-हत्या करना जब तक एक अपराध है, तब तक दूसरे की हत्या करना और भी बड़ा अपराध है। मैं अभियुक्त के वकीलों से पूर्णतया सहमत हूं और फैसला देता हूँ कि कानून डाक्टर को प्राणघातक औषधि देने के लिए मजबूर नहीं कर सकता।"

इस फैसले के बाद इसी मामले को लेकर राज्य में बड़ी हलचल मची। जज को उसके पद से अलग कर दिया गया और हत्या, आत्म-हत्या और इसके सम्बन्ध में नागरिक के अधिकार और मृत्यु-दण्ड के कानूनों की छान-बीन और उनमें सुधार का आन्दोलन चल पड़ा।

इस घटना को दो हजार वर्ष बीत चुके हैं। राजा और प्रजा की बीसियों पीढ़ियां उस राज्य में बदल चुकी हैं; लेकिन सुना है कि राजकुमार अभी तक उस पीड़ा की दशा में वैसे ही छटपटा रहा है और डाक्टर और उसके मित्र जज को भी कानून-सुधार के समय तक जीवित रखने के लिए उसी औषधि का सेवन करा दिया गया है। वह आन्दोलन और उसकी छान-बीन चल रही है और उसका कोई अन्तिम निर्णय अभी तक नहीं हो पाया है।

शायद इसी लिए जीवन-मरण सम्बन्धी नागरिक के अधिकारों और मृत्यु दण्ड सम्बन्धी शासन के अधिकारों में किसी परिवर्तन की ओर वर्तमान सभ्य साम्राज्यों का ध्यान अभी तक नहीं गया है।

★

गीत

श्री शालिग्राम मिश्र

थक कर सोया चांद गगन में।

रुक-सी गई समय की गति भी,
ठगी खड़ी थी मौन नियति भी,
लेकर शीत उसांस पवन भी
सोया हिमगिरि के कानन में।
थक कर सोया चांद गगन में।

थक कर दीप-शिखा कुम्हलाई,
अलस रूप ने ली अँगड़ाई,
युग युग के सन्ताप सो गये
आत्म-विस्मरण के लघु क्षण में।
थक कर सोया चांद गगन में।

सोये चेतन और अचेतन,
बेसुध हो लहराया जीवन,
उठा गगन की ओर विकल स्वर
गीत जगे तब कवि के मन में।
थक कर सोया चांद गगन में।

आधुनिक लड़की—

प्रत्येक बौद्धिक तथा शारीरिक प्रतियोगिता में भाग लेती है, पुरुषों के भाग्य से खिलवाड़ करती है, पुरुषोचित वेश-भूषा पहनना पसन्द करती है, झूठ मूठ दूकान सजाकर पुरुष की बनिया-वृत्ति का मजाक उड़ाती है और समय आने पर डिक्टेटर की तरह अकड़ कर शासन भी करती है।
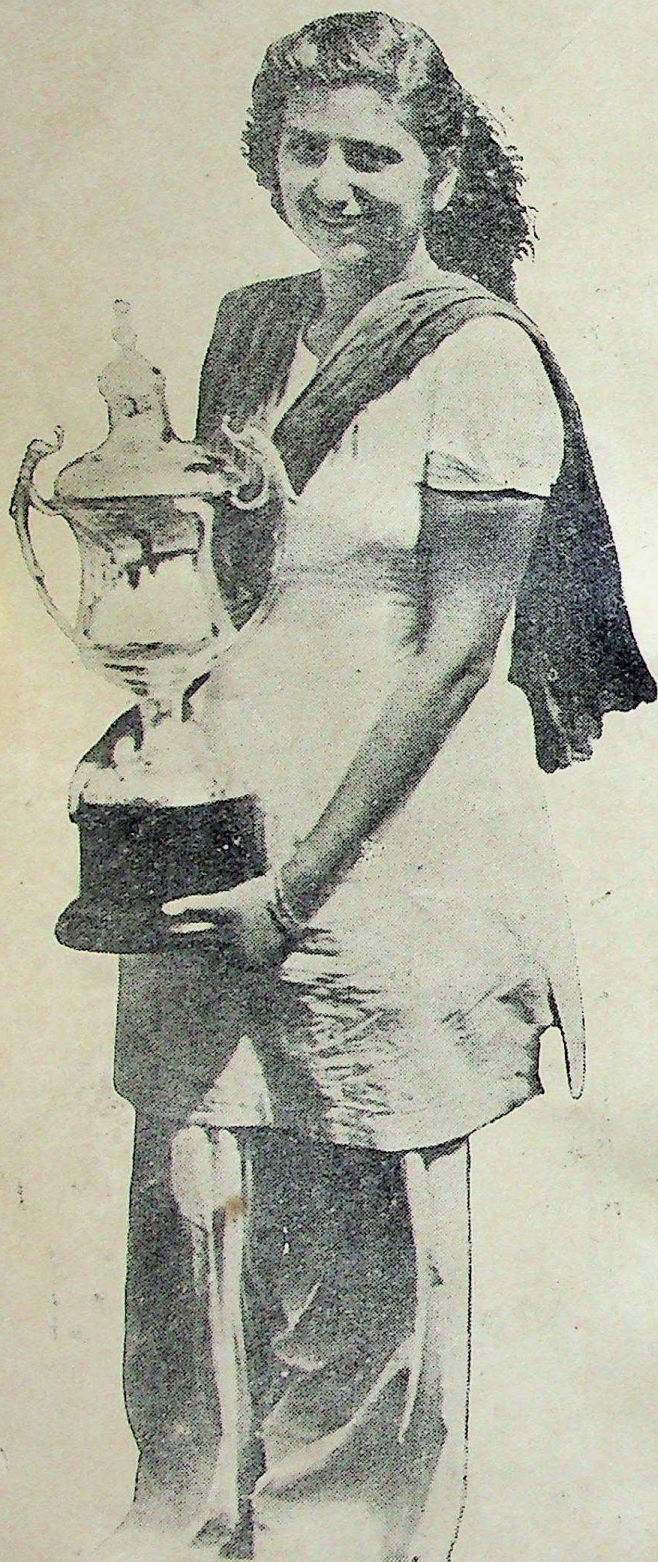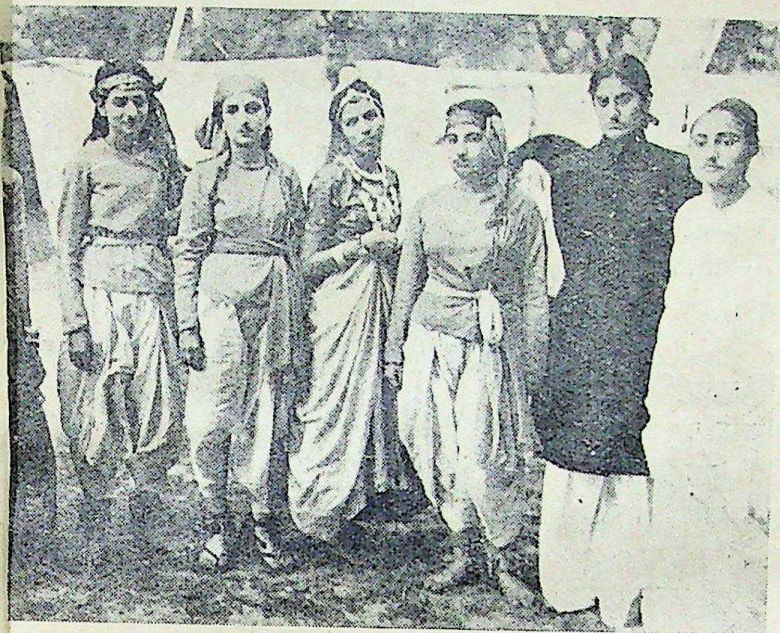
मनोरंजक चित्रावलि
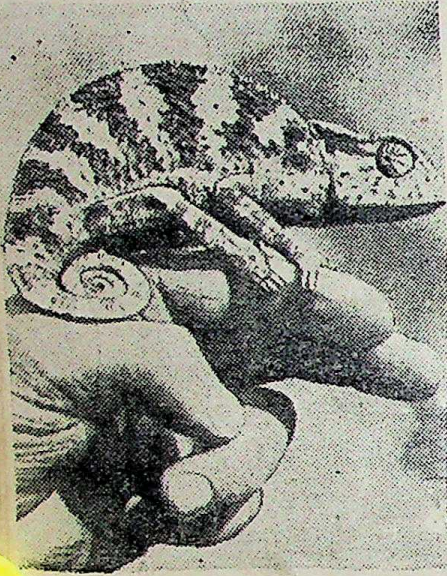
(बांय) यह है वह गिरगिट जो दिन में कई रंग बदलता है—अवसरवादियों की तरह।

(दायं) खाल में भूसा भरने वालों की कारीगरी देखिये कि मृत वनमानुस बिलकुल जीवित-सा जान पड़ता है।

मूसलाधार वर्षा से बचने के लिये केले के पत्तों से 'बरसाती' का काम लिया जा रहा है।

यह नये ढंग का बिजली का चूल्हा एक-दो मिनटों में ही खाना तैयार कर देता है।

इच्छा और मानसिक शक्ति

श्रीमती मनसा पण्डित एम० ए०

मानसिक शक्ति का हमारे जीवन की गतिविधि में प्रमुख स्थान है। इसके सदुपयोग अथवा दुरुपयोग से ही जीवन बनता बिगड़ता है। पश्चिम के फ्रायड जैसा मनोविज्ञान-शास्त्रियों ने इस दिशा में मौलिक खोजें करके विचार-जगत् में एक ऐसी क्रांति ला दी है जिसका प्रभाव आधुनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ा है। प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखिका ने इस उपयोगी विषय का बड़े सरल ढंग से विवेचन किया है।

प्रमाणों द्वारा पता चला है कि मानसिक-शक्ति और भौतिक-शक्ति में काफी समानता है। यह शक्ति क्या है? भौतिक या प्राकृतिक शक्ति कई प्रकार की नहीं होती। उसके जो नाना रूप दृष्टिगोचर होते हैं, वे एक ही मूल-शक्ति के विभिन्न रूपान्तर मात्र हैं। न केवल इतना ही, वरन् मूल-शक्ति मात्रा में भी घटती या बढ़ती नहीं; केवल उसके रूपान्तार में उसकी मात्रा कम या अधिक हो सकती है। उदाहरण के लिये १०० मन कोयला लीजिये। १०० मन कोयले में जितनी भी शक्ति है, उसका परिमाण निश्चित है, वह घट-बढ़ नहीं सकती। अब यदि हम इस कोयले को भट्टी में डाल दें तो यह कोयला गर्मी या ताप के रूप में अपनी शक्ति का प्रदर्शन करेगा। इस गर्मी की शक्ति को इंजन की सहायता से हम आसानी से 'गति' का रूप दे सकते हैं। या फिर डाइनेमो की सहायता से हम इसे बिजली में बदल सकते हैं। बिजली से हम प्रकाश उत्पन्न कर सकते हैं या फिर बिजली द्वारा हम गति या गर्मी पैदा कर सकते हैं। शक्ति केवल एक है जो इस उदाहरण के अनुसार १०० मन कोयले में निहित है। परन्तु नाना प्रकार की प्रणालियों द्वारा हम उसका भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रयोग कर सकते हैं और उसका प्रदर्शन अपनी इच्छा या आवश्यकतानुसार जिस रूप में चाहें कर सकते हैं। परन्तु यदि हमारे ब्वायलर में ही कुछ दोष हो, तो हम उस शक्ति को दूसरा रूप देने में चाहे समर्थ हो जायें, परन्तु उस शक्ति का पूर्ण मात्रा में प्रयोग होना असम्भव होगा। ताप को बिजली का रूप देने में कुछ न कुछ गर्मी अवश्य ही व्यर्थ जाती है। परन्तु हमेशा याद रखने की बात यह है कि वह शक्ति केवल व्यर्थ जाती है, नष्ट नहीं होती। वह कुछ समय तक हवा में रहती है, फिर धीरे-धीरे आसपास की वस्तुएं उस गर्मी को आत्मसात कर लेती हैं।

उपर्युक्त उदाहरण से इच्छा या मानसिक शक्ति की प्रक्रिया को समझा जा सकता है। मनुष्य के जीवन का काफी बड़ा भाग इच्छा करने और उसकी पूर्ति के प्रयत्न में ही व्यय हो जाता है। कोई न कोई इच्छा जीवन में सदा ही उपस्थित रहती है और मनुष्य उसकी पूर्ति के उद्योग में व्यस्त रहता है। शराबी सदा शराब की इच्छा करता रहता है, तो वैज्ञानिक चौबीस घन्टे किसी आविष्कार की ही धुन में लगा रहता है। स्त्रियों को ही लीजिये — कोई सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों पर दीवानी है तो कोई हर समय शीशे के आगे बैठ अपने शारीरिक श‍ृङ्गार में ही व्यस्त है, और कोई तीसरी अपने घर को सजाने में ही लगी रहती है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति को शान्ति की इच्छा है तो दूसरा उत्तेजक दृश्यों अथवा उपादानों की तलाश में है; वह मेले-तमाशे आदि की ही कामना करता रहता है, जैसे शान्ति उसे काटने दौड़ती हो। विश्लेषणों और परीक्षणों से पता चला है कि इन विभिन्न इच्छाओं के पीछे मनुष्य की दो मुख्य आदिम-वृत्तियां कार्य-रत

रहती हैं। एक तो है आत्म-रक्षा की वृत्ति और दूसरी है जाति-रक्षा की वृत्ति।

ये दोनों वृत्तियां भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हुए भी वास्तव में एक मुख्य स्वयंभू वृत्ति के ही दो रूप हैं। और वह मुख्य वृत्ति है अपने विशेष जीव-वर्ग की रक्षा की वृत्ति। एक उदाहरण द्वारा ऊपर कही सभी बातें आसानी से समझी जा सकती हैं। एक व्यक्ति क्रिकेट प्रेमी है। वह अपनी शारीरिक शक्ति का बहुत बड़ा भाग खेल में ही व्यय करता है। यदि वह केवल इच्छा ही करे और उस इच्छा को पूरा करने के लिये उसमें कोई शक्ति न हो तो वह इच्छा भी व्यर्थ ही जायेगी; क्योंकि तीसरे पहर की सुस्ती पैदा करने वाली गर्मी में बल्ला लेकर रन बनाने के लिये तो शक्ति की ही आवश्यकता है। प्रायः लोग कहते सुने जाते हैं— "मुझे व्यायाम की आवश्यकता है।" प्रश्न यह है कि यह परेशानी क्यों? उट्ठक बैठक, भाग दौड़ की क्या आवश्यकता? बात असल में यह है कि शरीर को स्वस्थ रखने के लिये व्यायाम परमावश्यक है और लम्बी आयु पाने के लिये स्वास्थ्य का अच्छा होना जरूरी है। अतएव स्पष्ट है कि किसी न किसी सीमा तक क्रिकेट खेलने या व्यायाम करने की इच्छा के पीछे 'स्वरक्षा' की भावना भी काम करती रहती है।

परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। अचेतन में एक और भी अभिप्राय रहता है। काम-सम्बन्धी इच्छा के दमन करने की शिक्षा हमें बाल्यकाल से ही मिलनी प्रारम्भ हो जाती है और प्रायः हम इस इच्छा से सम्बन्धित मानसिक संघर्षों को अपने अचेतन अथवा उपचेतन मन में ले जाकर दमन करने में भी सफल हो जाते हैं। परन्तु इस इच्छा विशेष के पीछे लगी शक्ति तो उपस्थित रहती ही है, जो उस दमित-शमित इच्छा के निकलने का मार्ग ढूंढती रहती है। क्रिकेट के खेल से मानसिक और शारीरिक उत्तेजना भी प्राप्त होती है और उसकी गति में लय भी है। अतएव इन दो गुणों के कारण इस शक्ति के निकास के लिये क्रिकेट या इसी प्रकार के अन्य खेल भी अच्छे मार्ग हैं। अभिप्राय यह है कि काम सम्बन्धी इच्छा को दमन करने पर उस इच्छा की प्रेरक शक्ति किसी दूसरे प्रकार की उत्तेजना की खोज करती है जहां कामेच्छा व्यय हो सके।

मानसिक शक्ति का किसी वांछनीय कार्य में उपयोग होना मनोवैज्ञानिक भाषा में 'सबलिमेशन' (उदात्तीकरण) कहलाता है। इसका यह अर्थ नहीं की खेल ही में इस शक्ति का उपयोग होना उदात्तीकरण है। धर्मरत होना, कला-प्रेमी होना, गान-विद्या का ज्ञान प्राप्त करना, विज्ञान में रत होना आदि सभी उदात्तीकरण के भिन्न-भिन्न रूप हैं। इस शक्ति का अवांछनीय कार्यों में भी व्यय हो सकता है; जैसे शराब और अन्य नशीली वस्तुओं का सेवन करना। हिस्टीरिया या वात नाड़ी विकार की उत्पत्ति द्वारा भी इस दमित इच्छा की शक्ति खर्च हो जाती है। परन्तु इस प्रकार अवांछनीय कार्यों में व्यय होना इस शक्ति के निकास का घटिया मार्ग है — यद्यपि यह किसी सीमा तक अनधड़ काम वृत्ति और उससे उत्पन्न होने वाले मानसिक संघर्षों को चेतन मन में सवेग आने से रोकने में काफी सहायक होता है। लेकिन यह सब इतना सहज नहीं है जितना पढ़ने से मालूम होता है। यहां तो हम सब कुछ बहुत ही संक्षेप में बता रहे हैं। वास्तव में इच्छा शक्ति के परिवर्तन के पीछे जो कारीगरी छिपी है, वह बहुत ही पेचीदा है।

कई बार ऐसा देखा गया है कि खेलने के पीछे लगी शक्ति आसानी से मस्तिष्क सम्बन्धी व्यायाम की इच्छा के पीछे लग जाती है – अर्थात् शतरंज, गणित या विज्ञान इत्यादि। उदाहरण के लिये एक मनुष्य को लीजिये। छुट्टी का दिन है, प्रातःकाल वह अपने किसी मित्र से कहता है — "आज तीसरे पहर जरा कस के टेनिस की रहेगी।" परन्तु दोपहर से बारिश शुरू हो जाती है और वह अपने मित्र के साथ शतरंज लगाकर बैठ जाता है। यह शतरंज बिछाना साधारण बात नही है। शतरंज की बाजी इसलिये बिछ जाती है कि वर्षा के कारण शारीरिक व्यायाम की सुविधा नहीं मिली। फलतः मस्तिष्क के व्यायाम की ओर उसकी रुचि हुई। इस प्रकार टेनिस खेलने की

इच्छा के पीछे लगी उसकी मानसिक शक्ति हट कर पूरी उत्तेजना और इच्छा तृप्ति की भावना के साथ दूसरी दिशा को बह गई। इसमें भी उसे वही इच्छित थकावट और सन्तुष्टि मिलेगी जो टेनिस के खेल के बाद मिलती।

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि भौतिक शक्ति की तरह मानसिक शक्ति भी पूरी की पूरी एक दिशा से दूसरी दिशा को नहीं बह जाती। अधिकांशतः तो वह अपने स्वाभाविक रूप में मनुष्य में सदा ही उपस्थित रहती है। यह मात्रा प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव व चरित्र के अनुसार ही कम या अधिक हो सकती है। और जिस प्रकार भौतिक शक्ति के रूपान्तर में मशीन या इंजन की सामर्थ्य और योग्यता बहुत कुछ काम करती है, ठीक उसी प्रकार मानसिक शक्ति का स्थानान्तरन्यास भी मनुष्य विशेष की योग्यता व सामर्थ्य पर ही निर्भर करता है।

वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति को भिन्न मात्रा में वह मानसिक शक्ति प्राप्त होती है, जो सदा इच्छापूर्ति के द्वारा ही अपने विकास का उपयुक्त मार्ग ढूंढ लेती है।

यहां यह बताना उपयुक्त होगा कि इच्छा के पीछे काम करने वाली मानसिक शक्ति को निम्नकोटि के लक्ष्यों से हटा कर उच्चतम लक्ष्य की ओर प्रेरित करने का सामर्थ्य मनुष्य में किस प्रकार और कहां से आता है। जैसा पहले भी बताया गया है, यह सामर्थ्य प्रत्येक व्यक्ति में एक ही मात्रा में नहीं होता। कुछ लोगों का विश्वास है कि यह सामर्थ्य मनुष्य में वंशानुक्रम परम्परागत या शारीरिक प्रकृति-गत होता है। इसमें अधिक आश्चर्यजनक प्रभाव डालने वाली दो और बातें हैं। पहली तो मनुष्य की अपनी परिस्थिति और दूसरी जीवन के प्रथम तीन चार वर्षों में माता-पिता के आचरण का मन पर प्रभाव।

अक्सर देखा गया है कि योग्य माता-पिता की सन्तानें बुरी हो जाती हैं। इसका कारण क्या है? मनोविश्लेषण से पता चलता है कि जो माता-पिता अपने बच्चों पर बहुत कठोर नियंत्रण रखते हैं, उनकी सन्तान के चरित्र में एक प्रकार की न्यूनता रह जाती है, और जो माता-पिता बहुत अधिक लाड़ प्यार करते हैं, उनकी सन्तान के चरित्र में एक दूसरे प्रकार का दोष आ जाता है। बालक पर उसकी आया, उसके अपने कमरे, उसके जीवन के प्रथम कुछ वर्षों में देखे गये दृश्यों और अनुभवों का भी काफी प्रभाव पड़ता है। बुरे माता-पिता की सन्तान किसी आकस्मिक घटना या उपेक्षा के कारण योग्य और उत्तम हो सकती है, और एक सुयोग्य माता पिता सब प्रकार के मनसूबे बांधकर भी प्रायः बुरी सन्तान पैदा करते हैं। अतः किन्हीं दो मनुष्यों की तुलना, उनके गुण-अवगुणों की मीमांसा तभी ठीक से की जा सकती है, जब उनके गत जीवन से भी भली प्रकार परिचय प्राप्त कर लिया जाय। सम्भव है कि जीवन में असफल एक मनुष्य इसलिये असफल न हुआ हो कि उसमें अपनी इच्छा के पीछे लगी शक्ति का परिपाक करने की सामर्थ्य न थी, वरन् इसलिये असफल हुआ हो कि उसे अपनी सारी शक्ति अपनी कुप्रवृत्तियों को रोकने में ही लगा देनी पड़ी।

कहानी

मां की ममता

श्री नारायण श्यामराव चिताम्बरे

रात के नौ बजे थे। ठण्ड कड़ाके की पड़ रही थी। मैं, श्रीमती जी, और बच्चे—सभी बीच के कमरे में लिहाफ में दबे दबाये बैठे थे। इसी समय द्वार खुला और मेरे शिकारी मित्र बलधारीसिंह ने कमरे में प्रवेश किया। उन्हें देखते ही सभी बच्चे तालियां पीटने लगे और चिल्लाने लगे, "बलधारी काका आये, अब कहानी सुनेंगे!"

बलधारी मेरे पास आकर बैठ गये। अपने लिहाफ का कुछ हिस्सा मैंने उनके पैरों पर डाल दिया। सब से बड़े लड़के रवि ने कहा, "काका, कहानी सुनाओ!"

सभी बच्चों ने रवि का साथ दिया, "हां, काका कहानी सुनाओ!"

बलधारी ने हंसकर कहा, "अच्छा, रवि, आज तुम किस की कहानी सुनोगे?"

रवि ने जोर से कहा, "सिंह की।"

"नहीं काका, हम तो रीछ की कहानी सुनेंगे।" छोटे चन्द्र ने प्रतिवाद करते हुए कहा।

बलधारी ने हंसकर कहा, "आज तो जो तारा बीबी कहेगी, वही कहानी सुनाई जायगी। बताओ तारा बीबी, आज तुम किस की कहानी सुनोगी?"

शुभ्र दन्त-पंक्तियों का प्रकाश फैलाते हुए तारा ने कहा, "बाघ की।"

"शाबाश," बलधारी ने कहा, "आज हम बाघ की ही कहानी सुनाना चाहते थे। तारा बीबी बड़ी चतुर है, उसने हमारे मन की ही बात कही है।"

अपनी स्तुति से तारा का मुख खिल उठा, आंखें चमक उठीं। बलधारी ने कहा, "आज की कहानी-सभा का सभापति कौन होगा? तुम बताओ, चन्द्र?"

चन्द्रप्रकाश आठ वर्ष का था। मुझ से उसका अधिक लगाव था, अतएव उसने मेरा नाम प्रस्तुत किया।

बलधारी ने मुस्कराकर कहा "अच्छा, तुम बताओ रवि।"

रवि कुछ असमंजस में पड़ गया वह दस वर्ष का था। समझ नहीं पा रहा था कि जब बलधारी ने पिता जी का नाम अस्वीकृत कर दिया है, तब उस कमरे में माता जी के सिवाय और कोई नहीं है; उनका नाम लिया जावे या नहीं!

बलधारी ने कहा, "जल्द बताओ रवि, समय बीत रहा है और रात बढ़ रही है।"

रवि ने कहा, 'काका, आज की कहानी-सभा के सभापति तुम्हीं बनो।"

"नहीं, नहीं, हमीं कहानी सुनायें और हमीं सभापति बनें, यह तुम्हारी बात हमें तो ठीक नहीं जंची, रवि।"

तारा पालथी मारकर बैठी थी। दोनों कोहनियों को दोनों जांघों पर टिका, दोनों हाथों पर दोनों गाल रख, एकटक वह बलधारी की ओर देख रही थी। वह गम्भीरतापूर्वक ऐसे ही बोली जैसे बड़ी भारी समस्या

का हल निकाल रही हो, कह उठी, "क्यों काका, एक बात कैसी रहे?"

बलधारी ने कहा, "कहो बिटिया।"

"आज की कथा-सभा का सभापति माता जी को ही क्यों न बनाया जाय?"

बलधारी ने जैसे उछलकर कहा, "भई वाह, तारा आज तो तुम कमाल कर रही हो। बस तय हुआ कि आज की सभा का सभापति भाभी को ही बनाया जाय। आज की कहानी भी मां की ममता पर आधारित है।"

मैंने हंसकर कहा, "मां की ममता का दिग्दर्शन तो अभी एक घण्टे पूर्व हमारे ही घर में हो चुका है, बलधारी। तारा का गाल लाल किया जा चुका है, रवि को फटकार मिल चुकी है, चन्द्र की पीठ को धनुषाकार होने का मौका मिल चुका है और..."

'और —" श्रीमती जी ने बीच में ही बोलना आरम्भ कर दिया, "बलधारी भैया, अभी दो घण्टे पूर्व मां की ममता ने रवि को एक ऊनी स्वेटर बुनकर दिया है, चन्द्र को रसगुल्ले खिलाये हैं, तारा को जरी-किनार की साड़ी खरीद दी है।" अपूर्व मधुरिमा आंखों में बसाये श्रीमती जी ने मेरी ओर देखा। लाल ओठों पर मधुर मुस्कराहट नाच रही थी।

बलधारी ने कहा, "वाह, भाभी वाह! जवाब बिलकुल माकूल रहा। बच्चो, पिता जी ने और माता जी ने अभी जो दो रूप तुम्हारे सामने प्रस्तुत किये हैं, और जिनका आस्वाद तुम स्वयम् ले चुके हो, वे मां की ममता के ही दो रूप हैं। इसे न भूलो। अच्छा, अब हम अपनी कहानी को आरम्भ करते हैं। पिछली गर्मी के दिनों की बात है। हम शिकार का परवाना लेकर विंध्याचल के घने जंगल की ओर चल पड़े। वहां बाघ ने बड़ा उपद्रव मचा रखा था। सरकार की ओर से उसे ही मारने का परवाना हमें मिला था। आसपास के गांवों में उसका बड़ा आतंक था। मैं और मेरा सहायक साथी विंध्याचल की तलहटी में एक गांव में ठहरे। गांव वालों ने जब यह सुना कि हम शिकारी हैं और बाघ मारने आये हैं, तो उन्होंने हमारा बहुत सम्मान किया और आवभगत भी की। आसपास के गांवों में बाघ का बड़ा आतंक था। कितने ही मनुष्य और पशु वह उदरस्थ कर चुका था। हमें यह भी मालूम हुआ कि बाघ अकेला नहीं है, उसके साथ बाघिन भी है। बातें करते-करते रात के आठ बज गये। इसी समय एक मनुष्य ने आकर कहा, 'मेरी गाय आज जंगल से लौटी ही नहीं है, गाभन थी। मालूम होता है बच्चा जन दिया है उसने जंगल में। सवेरे तक तो बाघ उसे अवश्य ही चट कर जायगा।'

"मैंने बंदूक उठाई और कहा, 'नहीं नहीं, सवेरे तक राह देखना ठीक नहीं है। हम अभी उसकी तलाश में जाते हैं। हां, तुम में से एक निडर आदमी हमारे साथ चले, जिससे रास्ता भूलकर हम इधर-उधर न भटक जायें, क्योंकि हम यहां के जंगली रास्तों से परिचित नहीं हैं।' एक तगड़ा नौजवान हमारे साथ चलने को तैयार हो गया। मैं, मेरा साथी और वह युवक—हम तीनों जंगल की ओर चल पड़े।"

रवि ने पूछा, "काका, रात अंधियारी थी या उजियाली थी, यह आपने नहीं बताया?"

बलधारी ने कहा, 'रात उजियाली थी, बेटा। पूर्णिमा थी उस दिन। चांद उदयाचल से कुछ ऊपर चढ़ आया था। उसके प्रकाश में ही हम चले जा रहे थे। बिखरा हुआ जंगल पार कर हमने घने जंगल में प्रवेश किया। गाय की तलाश में इधर-उधर देखते हम चल रहे थे। दूध-सी चांदनी चारों ओर फैली थी। दूर तक वृक्षों के सिर हिलते हम देख रहे थे—मानो चांद से बरसने वाला अमृत पीकर वे अघाते ही नहीं थे, सिर हिलाहिला कर और मांग रहे थे। हमारे साथ के युवक ने कहा, 'अब जरा संभल कर चलने की आवश्यकता है। यहां से थोड़ी दूर पर एक भयानक खोह है, उसी में से होकर हमें जाना होगा। अक्सर बाघ उसी खोह में रहता है।' लेकिन मैंने कहा — 'हम शिकारियों का अनुभव है कि बाघ गरमी के दिनों में खोह में नहीं रहता। गरमी से वह घबराता है। इन दिनों खोह बहुत गरम होती है, इसलिये बाघ आजकल रात के समय खुले मैदान

"उसके कपाल को लक्ष्य कर
मैंने गोली चला दी।"

में ही रहता है। खोह की अपेक्षा हमें खुले मैदान में ही अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है।'

'फिर कोई किसी से नहीं बोला। जंगल नितान्त निस्तब्ध था। चांद आकाश के मध्य में अभी नहीं आया था। उसकी तिरछी किरणें वृक्षों पर गिरने से उनकी लम्बी-लम्बी परछाइयां दूर तक फैली हुई थीं। इधर-उधर बड़े-बड़े काले पत्थर पड़े थे। जहां चांद की अमृत-भरी चांदनी वन को सुन्दरता प्रदान कर रही थी, वहां वृक्षों की वे लम्बी-लम्बी परछाइयां और वे काले-काले पत्थर वन की उदास निस्तब्धता में भय भी उत्पन्न कर रहे थे। सुन्दरता और भयानकता का वह अपूर्व सम्मीलन देखते ही बनता था। इसी समय वृक्ष पर बैठा एक पक्षी फड़फड़ाया। हम उधर देखने लगे। वह पक्षी फड़फड़ाकर उड़ा और चांदनी के सफेद समुद्र में पंख पसारे उड़ता ही चला गया, जैसे नीले समुद्र में कोई छोटा-सा जहाज क्षितिज की ओर तैरता ही चला जाता है और किनारे पर खड़े-खड़े हम केवल उसकी ओर देखते ही रह जाते हैं।

"खोह सामने थी और अब हम उसी में उतरने वाले थे। मैंने झांककर नीचे देखा, बड़ी गहरी खोह थी। हम संभलकर उतर रहे थे। थोड़ी देर बाद ही हम खोह की तली में पहुँच गये।"

चन्द्र ने पूछा, "काका, खोह बड़ी भयानक होगी ?"

बलधारी ने कहा, "कुछ न पूछो चन्द्र, बहुत भयानक खोह थी। चारों ओर घुप्प अंधेरा था। वह तो जानो कि रात चांदनी थी, इसलिये वृक्षों में से छन छन आने वाली चांदनी के प्रकाश का सहारा पाकर हम चल रहे थे। खोह चारों ओर ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों से घिरी थी। गरमी के दिन थे, हवा बन्द थी, तिस पर कगार-टूटे ये पहाड़ हवा की एक हल्की लहर भी नहीं आने देते थे। गरम भाप-सी निकल रही थी खोह से और हमारा जी घबरा रहा था।"

तारा ने पूछा, "तुम्हें डर नहीं लगा, काका ?"

बलधारी ने कहा, "जब तक तुम्हारे काका के हाथों में बन्दूक है और गले में कारतूसों की माला पड़ी है, तब तक उसे कहीं भी डर नहीं लगता, बिटिया। हां, तो जब हम खोह के ऊपर चले आये, तब शीतल मन्द-मन्द पुरवैया बह उठी थी, जिसका मधुर स्पर्श पाकर हमारा रोम रोम पुलकित हो उठा। सारी थकान और मन की उदासी दूर हो गई। चांद अब आकाश के मध्य में आ गया था। सामने एक छोटा-सा गोल मैदान था। मैदान को गोल बनाने में मानव की कारीगरी नहीं थी, प्रकृति ने ही उसे वैसा बना दिया था। मैदान के मध्य में एक बड़ का बड़ा भारी पेड़ था, जो हम से पचास गज की दूरी पर था। मैं रुका तो मेरे साथी भी रुक गये। मुझे शंका हो गई थी कि बड़ के नीचे कोई जीवित वस्तु है। मैंने आंखें सिकोड़ कर देखा, गाय थी। यह अपने नवजात शिशु को चाट रही थी, बीच-बीच में जोर-जोर से हुंकार भर रही थी और सांस छोड़ रही थी। साथ के नवयुवक ने कहा, 'गाय तो वह है, ब्या गई है जान पड़ता है' मैंने उस युवक के मुख पर एक दम अपना हाथ रख दिया और अत्यन्त मन्द स्वर में कहा, 'चुप रहो, वह देखो क्या है।' बाघ था वह।"

सभी बच्चों ने एक साथ कहा, "बाघ, बाघ था! गाय के पास?"

बलधारी ने कहना आरम्भ किया, "हां—"

तारा ने पूछा, "गाय डरी नहीं, काका?"

बलधारी ने कहा, "यही तो मैं आज कहने वाला हूँ, बिटिया, कि अपनी संतान के लिये मां कितनी खूंखार हो जाती है। तब गाय गाय नहीं रहती, सिंहनी बन जाती है। मां की ममता से उसके हृदय में अजेय शक्ति जाग्रत हो उठती है और वह अत्याचारी का कड़ा मुकाबला करती है। इसीलिये उसे गो-माता कहते हैं। हां, तो हम सब एक पेड़ की आड़ में छिप गये। हम से बाघ कोई पचीस तीस गज की दूरी पर ही था। चांदनी के उज्वल प्रकाश में मैंने देखा, बाघ बिल्कुल नया पट्ठा था। काले और पीले पट्टे चांदनी में चमक रहे थे। वह छलांग भरने की तैयारी में खड़ा था। दूसरे ही क्षण मैंने देखा, उसके पंजे सिकुड़े, मूंछ के बाल कांपे, आंखों से आग बरसी, कान सतर हो गये, जबड़ा खुला, कमर लचकी, पूंछ हवा में बल खाने लगी, और ···और उधर गाय अपने चारों पैर जमीन में गाड़े, पैंतरे में अविचल खड़ी थी। उसका मुख कुछ तिरछा जमीन की ओर झुका हुआ था और सींगों का रुख बाघ की ओर था। वह जरा भी भयभीत नहीं हुई थी। नथुने फुलाकर बार बार हुंकार भर रही थी —मानो बाघ को ललकार कर कह रही हो कि मां की ममता के सम्मुख तुझे झुकना होगा, मां के जीवित रहते तू उसके पुत्र को न पा सकेगा, न पा सकेगा।

"गाय ने देखा कि बाघ ने उसकी ओर छलांग भरी है। उसके नथुने फूल गये, पूंछ सतर खड़ी हो गई। वह आवेश से तड़प कर उछली और उस भयानक बाघ को उसने अधर ही सींगों पर झेल लिया और दूसरे ही क्षण दूर फेंक दिया। वह एकदम फिर मुड़ी और अपने बछड़े के पास आकर उसे सूंघने और चाटने लगी। मातृ-प्रेम के आवेग में वह इतनी सराबोर हो गई कि उसके थन दूध से भर गये। पूंछ सतर हो गई और खाली भूखा पेट थर-थर कांपने लगा। मैं बन्दूक साधे टकटकी लगाये उधर देख रहा था कि मौका मिले और बन्दूक दाग दूं। इसी समय मेरे साथी ने मेरे कान में कहा, 'भैया, गाय थक गई है। बाघ इस समय मार में है। गोली दाग दो।' मैंने कहा, 'तुम भूल गये, किन्तु मैं नहीं भूला। गांव वालों ने कहा था कि बाघ के बाघनी भी है। वह यहीं कहीं आसपास होगी, हमारे पीछे भी हो सकती है वह, इस कारण अभी गोली दागना उचित नहीं है। पर विश्वास रखो गाय को मरने नहीं दूंगा।' मैंने फिर सामने देखा, बाघ उठकर खड़ा हो गया था। उसका दांव ही खाली नहीं गया था, एक तरह से उसकी हार ही हो गई थी। वह बहुत क्रोधित हो गया था। आंखों से चिनगारियां बरस रही थीं और अपनी पतली जीभ से अपना मुंह चाट रहा था। मूंछ के बाल खड़े हो गये थे। उसने जोर की हुंकार भरी और दुबारा दुगने जोश से उसने गाय पर हमला बोल दिया।

मालिनी — मुझे तो कुछ भी सुझाई नहीं दे रहा। मेरी आंखें ही नहीं खुलतीं। न जाने कितने लोगों ने मुट्ठियां भर-भर कर मेरी ओर गुलाल फेंका है। यह लो, फिर किसी ने गुलाल फेंका —

सुनंद — मालिनी, यह तुम्हारे रूप की पूजा हो रही है। अबीर-गुलाल से रंगी हुई तुम कितनी सुन्दर लगती हो!

मालिनी — तुम्हें हंसी सूझ रही है और इधर गुलाल से भरी मेरी आंखें दुख रही हैं। (रंग की पिचकारियां छूटने का स्वर) अरे, ये पानी के छींटे कैसे?

सुनन्द — पानी के छींटे नहीं, ये केशर-जल है। अबीर-गुलाल उड़ाने के बाद लोग अब पिचकारियों में रंग भर-भर कर छोड़ रहे हैं। पहिले अबीर-गुलाल के बादल घिरे थे, अब रंग की वर्षा होने लगी। आंखें खोलकर ज़रा देखो तो सही!

मालिनी — इनमें गुलाल इतना भर गया है कि ये खुलती ही नहीं।

सुनंद — मालिनी, गुलाल की बात तो झूठ है; जान पड़ता है कि किसी बांके-छैला की मूर्ति आंखों में समा गयी है!

मालिनी — यह तुम्हारा भ्रम है, सुनन्द! इन आंखों में तुम्हारी मूर्ति के सिवा और कोई मूर्ति नहीं समा सकती। लो देखो। (आंखें खोलती है। दोनों हंसते हैं) अरे, केशर के रंग से तो सारा उद्यान पीला हुआ जा रहा है!

सुनंद — और केशर-जल से धुलकर तुम्हारा रूप और भी चमक उठा है!

मालिनी — मेरे रूप की प्रशंसा फिर करना, पहले उन लोगों से बचने का उपाय सोचो जो पिचकारियां लिये हमारी ओर बढ़े आ रहे हैं। ये आज हमें पूरी तरह से भिगो कर छोड़ेंगे।

सुनंद — अरे! ये तो महाराज आ रहे हैं। (पांव की चाप) प्रणाम महाराज!

महाराज — तुम दोनों कौन हो?

सुनंद — हम — हम पास के एक छोटे से गांव के रहने वाले हैं, महाराज! यहां उत्सव देखने आये हैं।

महाराज — ओह! मैं समझा भगवान् कामदेव रति के साथ यहां पधारे हैं। ऐसी सुन्दर जोड़ी मैंने आज तक नहीं देखी। तुम यहां अकेले क्यों खड़े हो? आओ, तुम भी उत्सव में भाग लो!

गौतम — महाराज, अब मधु-पान होना चाहिए।

महाराज — हां, सब लोग सामने वाले कुंजों में बैठ जायें। दासों से कहो कि सब जगह मधु-कलश और प्याले धर दें।

गौतम — जो आज्ञा। (जाता है)

महाराज — (सुनन्द से) आओ युवक, हमारे साथ चलो। तुम्हारा क्या नाम है?

सुनन्द — सुनन्द, महाराज!

महाराज — (मालिनी से) और तुम्हारा?

मालिनी — (लजाकर) मालिनी।

महाराज — मालिनी। जैसा रूप वैसा नाम भी सुन्दर! आज हम तुम्हें इस मदनोत्सव की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी घोषित करते हैं। (परिचारक से) मिलिन्द!

मिलिन्द — महाराज!

महाराज — जाओ, पुष्प-मालायें लाओ और नागरिकों को इस सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी के स्वागत के लिये तैयार करो। आज की मधु-गोष्ठी में इसी सुन्दरी द्वारा मधु बांटा जायेगा। आओ, मालिनी!

(पांव की चाप। तत्पश्चात् एकाएक घुंघरुओं की छम-छम के साथ नृत्य-संगीत उभरता है।)

* * *

सूत्रधार — मदमाते गीतों से मुखरित, अबीर-गुलाल से रंगीन अतीत के इस धुंधलके से निकल कर हम वर्तमान में पहुंचते हैं — जहां मनुष्य का जीवन पहले से कहीं अधिक जटिल और व्यस्त है। मशीन और शहराती सभ्यता ने उसके और प्रकृति के बीच एक ऊंची दीवार खड़ी कर दी है। तो भी दोनों का चिरंतन सम्बन्ध नहीं टूटा। प्रति वर्ष वसन्त की मदमाती ऋतु आते ही मानव-हृदय की मस्ती होली के उत्सव के रूप में फूट पड़ती है —

[ढोल और झांझ-मंजीरों के साथ बहुत-से लोग 'होली' गाते, नाचते, ऊधम मचाते सुनाई देते हैं]

(आल इण्डिया रेडियो, दिल्ली के सौजन्य से)

कहानी

कल्पना

श्रीमती कमला त्रिवेणीशंकर

कल्पना सामने की खुली खिड़की से नव-दम्पती की ओर देखती रहती और सोचती—ऐश्वर्य का कोई साधन न रहते हुए भी दोनों पति-पत्नी कितने प्रसन्न व सुखी रहते हैं, और इधर सब कुछ घर में रहते हुए भी वह......

बचपन से ही भावुक, चंचल, हँसमुख कल्पना अपने जीवन का सोलहवां वसन्त पार करते ही शेखर की पत्नी बन कर पति के सूने घर में गृहिणी का उत्तरदायित्व सम्भालने के लिये आ गई।

अपने शून्य प्रकोष्ठ में इस नन्ही-सी पत्नी को प्रथम दृष्टि-विनिमय में देख कर शेखर मन ही मन मुस्कराया — कुछ विधि के विधान पर और कुछ अपने एकाकीपन पर। लम्बे आठ वर्ष से वह इस घर में अकेला रह रहा है। मां जब जीवित थी, तभी वह विवाह-योग्य हो चुका था; लेकिन मां की इच्छा पूरी नहीं हो पाई और एक दिन केवल विवाह का वचन लेकर मां ने सदा के लिये आंखें मूंद लीं।

और आज आठ वर्ष बाद—कई विषयों में डाक्टरेट कर एक प्रोफेसर की हैसियत से वह मां की ही प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिये नन्ही-सी कल्पना को ब्याह लाया है।

शबनम की बूंद-सी सुकुमार फूल-सी कल्पना और ३२ साल का शेखर। वह कभी अपने को देखता, कभी कल्पना को। उसकी दुबली-पतली छोटी-सी देह-यष्टि, सुकुमार छोटे-छोटे हाथ-पांव — अपनी उम्र से कुछ कम ही लगती वह देखने में।

दिन भर कल्पना पति की अस्त-व्यस्त गृहस्थी सुधारती रही। पुराने जूते चप्पलों का अम्बार रसोईघर की अलमारी में, और जैम, चटनी, अचार के खाली डब्बे लायब्रेरी में देख कर वह मन ही मन हँसी। किसी के अव्यवस्थित जीवन का अध्ययन करने का यह उसके लिये पहला मौका था।

लेकिन मां ने घर में सदा उठते बैठते, विदा के समय विशेषकर, जो सीख उसे दी थी, वह उसे याद थी—सुव्यवस्थित और संवारी हुई गृहस्थी में सुघड़ गृहलक्ष्मी का प्रतिबिम्ब झांकता है।

और दो ही चार दिन में उसने घर को खूब परिष्कृत और सुसज्जित कर लिया।

शेखर ने चकित दृष्टि से देखा। जिसे वह नन्ही सी बालिका समझ रहा था, उसमें शायद चतुर गृहिणी निवास कर रही है, जिसके स्पर्श से घर का कोना-कोना जगमगा उठा है।

जलपान लिये कल्पना शेखर के सामने खड़ी थी। जूते का फीता खोलते-खोलते शेखर ने देखा, कल्पना का सुन्दर मुख कुम्हलाया हुआ है, उसकी
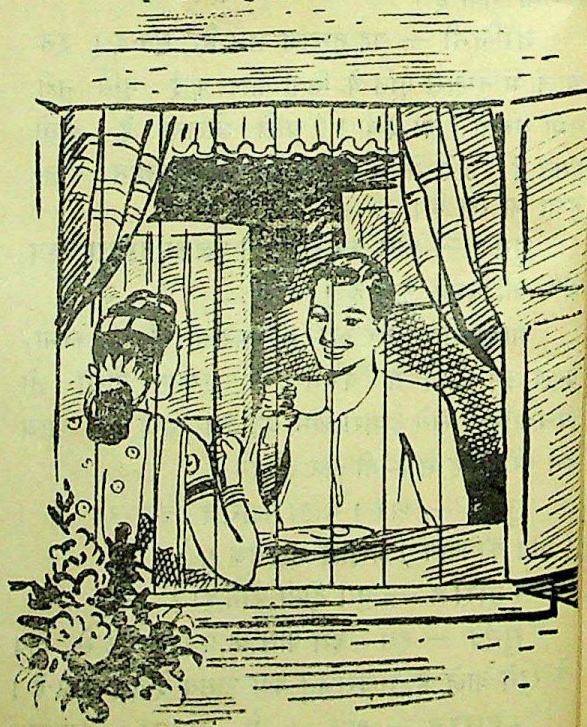
आंखें कुछ भीगी-भीगी-सी हैं। पूछा — "तुम उदास बहुत हो; दिन भर अकेली रहती हो, शायद इसी से ?"

क्षणेक सोच कर कल्पना बोली — "नहीं तो। आपके साथ रहते हुए मैं कैसे कहूँ कि अकेली रहती हूँ। आज आपको आने में बहुत देर हो गई।"

"हां, कालेज में एक छोटी-सी पार्टी थी; उसके बाद वहीं से सीधे क्लब चला गया।"

कल्पना ने जलपान की तश्तरी मेज पर रख दी। जलपान उसने बड़े परिश्रम से बनाया था। शेखर ने खाते-खाते कहा—"अच्छा बना है! कहां सीखा था? क्या स्कूल में?"

"जी नहीं, मां से।"

"अच्छा, तुमने जलपान किया?"

"जी अभी तो नहीं।"

"कर लो; मैं थोड़ी देर के लिये बाहर जा रहा हूं, भोजन लौट कर करूंगा।"

इस घर में आये सप्ताह भर से अधिक हो चुका था कल्पना को; किन्तु अभी तक वह पति के सामने न खुल कर हँस सकी थी, न अधिक बोल पाती थी। शेखर की दृष्टि में नन्ही-मुन्नी होते हुए भी वह काफी समझदार थी। दिन भर अकेली रहने की वजह से वह कभी-कभी सोचती, आज शाम को उन्हें बाहर न जाने दूंगी। और भी न जाने कितनी बातें वह सोचकर मन ही मन संजोकर रखती; लेकिन शेखर के सामने उसकी वाणी मूक हो जाती, दिन भर की संजोई बातें मानो टूट कर रह जातीं।

शायद यही कुछ शेखर भी सोचता। वह एक विद्वान् प्रौढ़ प्रोफेसर इस नन्ही सी बालिका पत्नी के निकट किस विषय को लेकर चर्चा करे। जब वह रात को लौटता, तब प्रायः कल्पना सो गई होती। कभी यदि जगाने पर उठी भी तो दूध या भोजन के लिये पूछ कर फिर सो जाती।

सप्ताह महीनों के रूप में बदलते जा रहे थे। पड़ोस में एक नया जोड़ा आकर बस गया था। कल्पना की यद्यपि जान पहचान अभी तक न हुई

थी, फिर भी इस नव-दम्पति के आने से उसका एकाकीपन बहुत कुछ दूर हो गया था।

पति शायद किसी आफिस में क्लर्क था। पत्नी साधारण पढ़ी-लिखी, कुछ श्याम वर्ण की सुगठित, स्वस्थ युवती थी। उसके ओठों पर सदा मुस्कान थिरकती रहती। सुबह दोनों साथ बैठ कर चाय बनाते, फिर हास-विलास के साथ चाय समाप्त कर दोनों अपने काम में लग जाते—पति शायद कहीं ट्यूशन को चला जाता, पत्नी भोजन बनाने में जुट जाती। ठीक ९ बजे जब कल्पना शेखर को भोजन के लिये बुलाने ऊपर आती तो सामने की खुली खिड़की से सबसे पहले उसकी दृष्टि पड़ोस में पड़ती -- दोनों पति-पत्नी साथ-साथ भोजन करते दीखते। कभी पत्नी पति के हाथों ग्रास लेती, कभी पति पत्नी के हाथों; चटुल हास्य से रसोई का वह छोटा-सा बरामदा मानो गूंज उठता!

दिन में भी पड़ोसिन का पति प्रायः जल्दी ही घर लौट आता। इस बीच कल्पना अपना काम समाप्त कर कमरे में लेटी रहती। उसकी आंखें और कान पड़ोस के घर की ओर लगे रहते। युवती दिन भर कुछ गुनगुनाया करती। बार बार दरवाजे पर, खिड़कियों पर जा-जा कर लौटती और पति के आते ही रूठे स्वर में बोलती — "देखो जी, तुमने मुझे कैदी बना कर रख छोड़ा है। दिन भर आखिर अकेली बैठी बैठी मैं करूं क्या?"

पति मुस्कराता, मनाता, कहता—"रानी, कैदी तो मैं हूं तुम्हारा! आफिस में आज तबियत ही नहीं लगी, शायद दिन भर तुम मुझे ही याद करती रहीं!"

रूठी हुई पत्नी मुस्कुराती और इसके बाद हास्य-विनोद के साथ दोनों जलपान कर साथ-साथ भोजन की व्यवस्था में जुट जाते। एक दूसरे के हाथों काम छीने जाते, मधुर मुस्कानों और कहकहों के बीच एक दूसरे को मूर्ख साबित करने की कोशिश करते हुए दोनों शाम का प्रोग्राम बना डालते। पति स्वयं कंघी लेकर पत्नी के बाल संवारने लगता, पत्नी पति के बटन लगाने लगती।

कल्पना धीरे धीरे पांव रखती हुई नीचे उतर आती और शेखर के लिये भोजन बनाने बैठती। हाथ क्रियाशील रहते, पर आंखों के सामने पड़ोस। वह श्यामाङ्गी युवती मानो थिरकती रहती। ऐश्वर्य का कोई साधन न रहते हुए भी दोनों पति पत्नी कितने प्रसन्न व सुखी रहते हैं और इधर सब कु घर में रहते हुए भी वह स्वयं कितनी अशान्त, कित एकाकी है! शेखर उसके निकट रह कर भी उस कितनी दूर है! विवाह के बाद से वह एक बार मां के पास, एक ही शहर में रहते हुए भी, अब त नहीं जा सकी — कुछ पति की असुविधा का खया और कुछ संकोच। उसने कभी खुलकर अपनी को छोटी-सी भी इच्छा नहीं प्रकट की। कभी शेखर ने शायद उसकी मनस्थिति के निकट आने की चेष्टा न की।

दोपहर को भोजनोपरान्त कल्पना अपने ऊपर के कमरे में अनमनी-सी बैठी कोई पत्रिक लेकर उलट रही थी। आज वह और भी अधि एकाकीपन का अनुभव कर रही थी। पड़ोस की युवत सुबह-सुबह ही पति के साथ कहीं 'पिकनिक' मनाने के लिये चली गई थी—आज शायद पति के आफिस छुट्टी थी। कल्पना कुछ देर छत पर टहलती रही, फि कमरे में आकर लेट रही। तभी नीचे दरवाज़ा खट खटाने की आवाज़ हुई। वह चौंककर दौड़ती हुई सी नीचे उतरी। मन में एक उल्लास-सा अपने आप उमड़ने लगा। आज शायद उन्हें भी छुट्टी हो शायद कहीं जाने का प्रोग्राम हो! कल पूछ रहे थे — तुमने 'हमराही' तो न देखा होगा। यह फिल्म अभी पहली ही बार शहर में आई है। बड़ी सुन्दर है। मैं फिल्म कम देखता हूं, पर इसे तीन बार देख चुक हूँ... यों सोचते, धड़कते हुए हृदय से नीचे जाक कल्पना ने दरवाज़ा खोला। उसका भाई प्रदीप आया था। कल्पना का मुंह कुम्हला गया। प्रदीप मुस्कराते हुए कहा — "दीदी, जल्दी कपड़े पहन क तैय्यार हो लो, तांगा खड़ा है, आज छोटे भैय्या क तिलक है।"

(शेष पृष्ठ ४२ पर)

हास परिहास
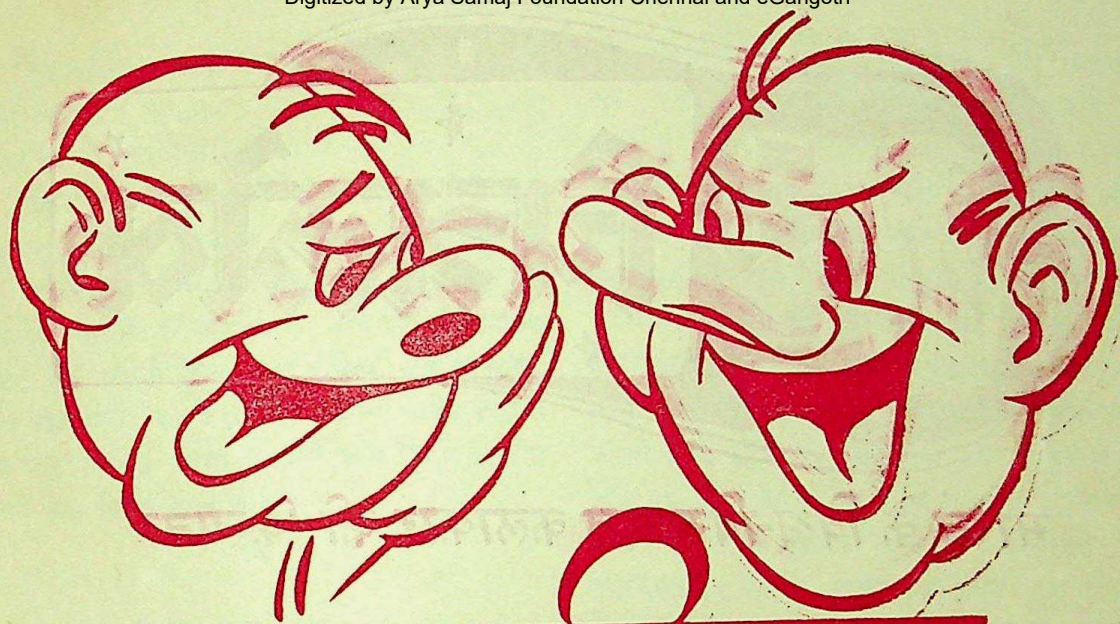
गांधी जी की सुप्रसिद्ध अंगरेज़ शिष्या मिस स्लेड (कुमारी मीरा बहिन) वर्षों तक गांधी जी के साथ रही हैं। वे बिल्कुल सन्यासिनी बन गई हैं और उन्होंने अपना सर तक मुंडवा लिया है।

एक बार मिस स्लेड जनाने डिब्बे में कहीं जा रही थीं। अधिक गर्मी होने के कारण उन्होंने अपना सर खोल रक्खा था। इसका परिणाम यह हुआ कि एक टिकिट-चैकर भ्रम में पड़ गया और उसने मिस स्लेड के पास आकर कहा, "महाशय! शायद आपने देखा नहीं कि यह जनाना डिब्बा है।"

मिस स्लेड ने यह सुनते ही अपनी ओढ़नी सिर पर खींच ली। फिर तो टिकिट चैकर झेंप कर ऐसा भागा कि रास्ते भर में वह उनके डिब्बे के पास तक नहीं फटका।

* * *

लगभग आधी रात का समय था कि प्रोफेसर साहब ने चारपाई पर लेटे-लेटे बड़ी अफरात-फरी की हालत में पत्नी को जगाया — "जरा जल्दी से मुझे मेरी ऐनक तो देना।"

"इस समय ऐनक की क्या जरूरत पड़ गई?"

"मैं एक अत्यन्त सुहावना स्वप्न देख रहा हूँ। ऐनक के बिना दो-तीन चीजें अच्छी तरह सुझाई नहीं पड़ रहीं।"

* * *

डाक्टर — देखिये, उस दिन आप जो चैक दे गये थे, वह बैंक से लौट आया है।

रोगी — यह भी अजीब इत्तिफ़ाक है, डाक्टर साहब! मैंने आप से जिस रोग का इलाज करवाया था, वह भी लौट आया है!

* * *

शाम को पार्क से सैर करके दोनों पति-पत्नी बच्चा-गाड़ी के साथ वापस लौट रहे थे। अचानक श्रीमती जी चिल्ला उठीं — अरे, यह हमारा मुन्ना नहीं! यह बच्चा-गाड़ी तो किसी और की है!

पति — शोर क्यों मचा रही हो। यह गाड़ी हमारी गाड़ी से बढ़िया है!

* * *

भारत के विश्व-विख्यात कलाकार की 'कल्पना'

(श्री कलाधर)

कभी कभी कोई एक ऐसी कलाकृति सामने आती है जिसे देखकर आश्चर्य व आनन्दातिरेक से भरकर आदमी सराहना करते नहीं अघाता। भारत के विश्व-विख्यात नृत्यकार श्री उदयशंकर द्वारा निर्मित 'कल्पना' नामक नृत्य-चित्र वस्तुतः ऐसी ही कलाकृति है प्रायः कहा जाता है कि कलाकार युग का निर्माता होता है। इस उक्ति की सार्थकता प्रकट करने के लिये इस चित्र से अच्छा उदाहरण नहीं मिल सकता। 'कल्पना' में राष्ट्र के नव-निर्माण की भावना से प्रेरित, सामाजिक-चेतना से अनुप्राणित एक सच्चे कलाकार की उदात्त कल्पना साकार हुई है। यह कल्पना शून्य में अथवा तथा-कथित असीम में नहीं विचरती। उसके पांव हमारी रोग-शोकमयी धरती पर हैं। उसमें हमारे गौरवांवित अतीत व उज्ज्वल भविष्य के साथ साथ हमारे जटिल वर्तमान ने भी मूर्त्त-रूप ग्रहण किया है।
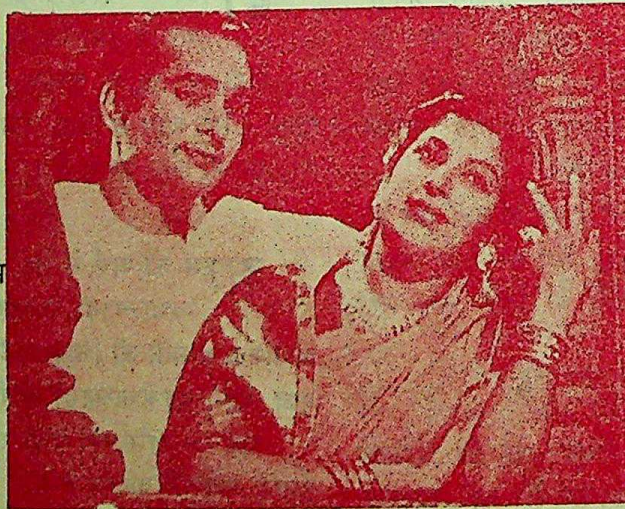
टैकनिकल भाषा में 'कल्पना' एक नृत्य-चित्र है जिसमें श्री उदयशङ्कर की उत्कृष्टतम नृत्यकला प्रदर्शित हुई है। शास्त्रीय नृत्यों के साथ-साथ इसमें भारत के लोक नृत्यों का भी समावेश हुआ है। इन नृत्यों को छोटी सी कलात्मक कहानी द्वारा शृङ्खलाबद्ध कर दिया गया है। चित्र के पूर्वार्द्ध में 'उदयन' नामक एक कलाकार के उत्थान का चित्रण है और उत्तरार्द्ध में उसी कलाकार द्वारा स्थापित कलाकेन्द्र की उन हलचलों का दिग्दर्शन है जो वसन्तोत्सव के रूप में चरम-बिन्दु पर पहुँचती हैं।

इस चित्र में उदय शङ्कर ने हमारे आज के जीवन की कई एक असंगतियों, कृत्रिमताओं और विषमताओं पर पैने व्यंग्य भी कसे हैं और दम्भों व पाखण्डों की पोल भी खोली है।

उदयशंकर और अमला

उदयशंकर के साथ श्रीमती अमला देवी ने सुन्दर काम किया है। अभिनय की दृष्टि से तो वह उदयशंकर को भी मात देती जान पड़ती हैं।

टैकनीक व सिने-कला की दृष्टि से 'कल्पना' एक ऐसा प्रगति स्तम्भ है जो भारतीय फ़िल्मोद्योग को एक दम दस वर्ष आगे ले गया है। 'कल्पना' का निर्माण भारतीय फ़िल्मोद्योग के लिये एक ऐतिहासिक घटना है। क्या निर्देशन, क्या संगीत, क्या अभिनय, क्या फोटोग्राफी, क्या दृश्य-संविधान -- प्रत्येक दृष्टि से यह अभूतपूर्व है। आशा है हमारे अन्य फ़िल्म-निर्माता इससे कुछ शिक्षा-ग्रहण करेंगे।

गांधी जी की फिल्म

आजकल गांधी जी की फिल्म बनने की काफी चर्चा है। भारतवासी अपने दिवंगत राष्ट्रपिता— जिसे वे अपनी ही भूल से खो चुके हैं — के लोकोत्तर-जीवन व व्यक्तित्व की फिर से एक झलक पाने के लिये भारतीय फिल्मोद्योग की ओर आशा-भरी नजरों से देख रहे हैं। इस राष्ट्रव्यापी भावना के ही कारण कुछेक फिल्म-निर्माताओं ने गांधी जी की जीवनी को रजत-पट पर चित्रित करने की लम्बी-चौड़ी घोषणायें कर दी हैं। सम्भवतः अधिकांश निर्माताओं ने आर्थिक लाभ को दृष्टि में रख कर ही ये घोषणायें की हैं, क्योंकि यह तो एक निश्चित बात है कि गांधी जी के जीवन को लेकर बनाई गई फिल्म आय की दृष्टि से आज तक के सभी रिकार्ड तोड़ देगी।

परन्तु, प्रश्न यह है कि क्या इस समय गांधी जी की फ़िल्म बनाना विशुद्ध कला की दृष्टि से सम्भव भी है? इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक ही हो सकता है। गांधी जी का जीवन अभी कल की घटना है और इस जीवन से हम इस तरह जुड़े हुए हैं कि उसका निरपेक्ष जायजा लेना बहुत कठिन है। नाटकीय-संविधान और निर्माण — दोनों ही दृष्टियों से गांधी जी की फिल्म बनाने का काम बहुत बड़ा काम है। उनके लम्बे जीवन की असंख्य घटनाओं को दो-तीन घंटे की फिल्म के लिये चुनना और नाटकीय रूप देना सरल नहीं है। उनके जीवनकाल में ही उनके जो बहुत से समाचार-चित्र बने थे, मात्र उन्हें जोड़ कर फिल्म बना देने से काम नहीं चलेगा। अमरीका के फ़िल्म-निर्माताओं ने स्व० प्रेजीडेन्ट रूजवेल्ट की फिल्म इसी तरह पुराने समाचार-चित्रों को जोड़ कर बनाई थी और वह फिल्मकला की दृष्टि से अत्यन्त हीन कोटि की रही। हमारे यहां भी कुछ समय हुआ नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की ऐसी ही फिल्म बनी थी और सभी जानते हैं कि वह फिल्म किसी भी दृष्टि से संतोषप्रद सिद्ध नहीं हुई। सारांश यह है कि गांधी जी के जीवन-काल में उनके विविध कार्यों से सम्बन्धित जो समाचार-चित्र बने थे, मात्र उन्हें जोड़ कर फ़िल्म तैयार करना जनता को ठगने के ही बराबर होगा। उधर जब हम स्टुडियो में अभिनेताओं द्वारा फिल्म तैयार करने की बात सोचते हैं तो यह काम और भी कठिन जान पड़ता है। इस समय जितने भी भारतीय अभिनेता हमारे सामने हैं, उनमें से एक भी गांधी जी की भूमिका में काम करने के योग्य नहीं और न ही कोई ऐसा भारतीय निर्देशक है जो अकेला ही इस काम को सम्पन्न कर सके। इस महान् कार्य के लिये अपरिमित कलात्मक व टैकनिकल साधनों की आवश्यकता है और यह एक व्यक्ति अथवा एक कम्पनी के बस की बात नहीं।

अतः, बजाये इसके कि कोई एक निर्माता अपने आर्थिक लाभ के लिये गांधी जी की अधकचरी, कला की दृष्टि से हीन कोटि की फिल्म बनाकर भारतीय जनता को ठगे, इस महान् कार्य का बीड़ा स्वयं भारतीय सरकार को उठाना चाहिए। वह अपनी देख-रेख में भारत के प्रमुख निर्देशकों, लेखकों व कलाकारों का एक दल नियुक्त करे। यह दल पहले तो सामूहिक रूप से तीन-चार वर्ष तक अनुसंधान-कार्य करे और फिर फिल्म के निर्माण में दो-तीन वर्ष लगाये। चूंकि भारतीय फिल्मोद्योग के साधन अभी अपर्याप्त हैं, अतः इस कार्य के लिये कुछेक विदेशी -- विशेषकर अमरीकन सिने-कलाविदों का सहयोग भी प्राप्त करना होगा।

७५०० रु० नकद इनाम

आप २४ घण्टों में फिर युवक बन सकते हैं

औटोजम (विटामिन टानक) के खाने से प्रत्येक पुरुष व स्त्री अपनी आयु से १५-२० वर्ष कम आयु के दिखाई देते हैं। यह निर्बल स्वास्थ्य, खून की खराबी, दिमागी तथा शारीरिकश्रम में लाभदायक है। इसके खाने से भूख खूब लगती है। एक सप्ताह में पांच से दस पौंड तक तोल बढ़ जाता है। मुंह पर लाली आ जाती है। चेहरे का रंग गोरा हो जाता है। तथा चेहरे पर यौवनावस्था की भांति की चमक आ जाती है। जैसे कि आपका चेहरा यौवन अवस्था में था। इसके प्रयोग से नजर तेज होती है। यह गालों को आकर्षित बना देता है, होटों पर लाली आ जाती है, सफेद पके हुए बालों को सदा के लिए काला कर देता है, दांतों को अनारों की भांति दृढ़ कर देता है। स्विट-जरलैण्ड के एक शत वर्षीय वृद्ध पुरुष ने इसका प्रयोग किया। जिससे वह तीस वर्ष के युवक की भांति हो गया। यही नहीं, पर उसने एक युवती से व्याह भी कर लिया।

औटोजम के वरतने से ८० तथा ६० की आयु में भी हालीवुड के एक्टर तथा एक्टरसें हृष्ट, युवक तथा सुन्दर प्रतीत होने लगती हैं। और परदा पर अति फुर्ती से काम करने लगती है। स्त्रियां यदि इनका प्रयोग करें तो अपनी आयु के पिछले समय तक मुख की सुन्दरता तथा चमक को बनाये रख सकती हैं। पुरुष इसके प्रयोग से समय के पूर्व वृद्ध नहीं हो पाते। बाल काले तथा आकर्षित रहते हैं। मुख की आकर्षिकता सदा बनी रहती है। स्वास्थ्य आयु भर खराब नहीं होता।

Otogem औटोजम Otogem

को एक शीशे के बर्तन में बहुत काल तक रखा गया, तब वह शीशे का बर्तन इतना पक्का हो गया कि कई चोटें मारने पर भी न टूट सका। इसको इंग्लैण्ड में सहस्त्रों पुरुषों ने देखकर प्रमाणित किया। औटोजम का तुरन्त प्रयोग आरम्भ कर दें। इसका फल अपना उत्तर आप होगा। प्रयोग आरम्भ करने से पूर्व अपना तोल करलें तथा अपना मुख शीशा में देखलें। एक सप्ताह पश्चात् फिर शीशा देख फिर नोट करें कि आप क्या अनुभव करते हैं। आप इसके जादू की भांति प्रभाव की प्रशंसा करेंगे। औटोजम को प्रत्येक व्यक्ति तक ले जाने के लिये इसका मूल्य केवल अल्प समय के लिए ५) रुपया रखा गया है। कुछ समय के उपरांत इसका असली मूल्य ३०) रुपया कर दिया जायगा। आज ही इसे मंगवाने के लिये आर्डर भेज दें। क्योंकि इसकी सम्भावना है कि आपके देर करने से माल समाप्त हो जाए और आपको पछताना पड़े।

मिलने का पता—

दी मैकसो लैबोरेटरीज लिमिटेड,

पोस्ट बक्स नं० ४५ (M.M.D.) देहली।

कहां से कहां

(पृष्ठ १३ का शेष)

मारना भी किस काम का पुलिस आ के पकड़ ले ! नहीं बेटा, मैं हाथ जोड़ती हूं, दरवाजा बन्द कर मत पीटना ।

केसरी—मां, अब मैं तुम्हारी एक भी बात नहीं सुनूंगा । रोज-रोज का यह झगड़ा मैं बन्द करना चाहता हूँ । आखिर मैं भी आदमी हूँ, जिन्दगी में आराम चाहता हूँ । यह क्या कि हर रोज घर आऊं तो रोना-धोना मचा रहे ! जाओ तुम यहां से ।

भवानी—बेटा, गुस्सा जरा सम्हाल कर रखो । हाय, मैंने कहां से कहां बात कही । बेटा, एक बार फिर बात मान लो कि दरवाजा बन्द मत करना । तेरे पिता जी भी मुझे पीटते थे, लेकिन दरवाजा कभी बन्द नहीं करते थे ।

केसरी—लेकिन यह चुड़ैल है, निकल के भाग जायगी !

भवानी—नहीं भागेगी बेटा ! मैं दरवाजे पर खड़ी रहूँगी ।

केसरी—तो वहां भी झाड़ू की मार खाओगी तुम ! अब जाओ, ज्यादा बहस मत करो । मुझे गुस्सा आ रहा है । जाकर उस कमनसीब को भेजो इसी वक्त मेरे पास ।

भवानी—हाय, बेटा, तुम्हारे गुस्से को देखकर तो मुझे घबराहट हो रही है । बात समझा देना, ज्यादा गुस्सा अच्छा नहीं होता ।

केसरी—अब मुझे तुम्हारा सिखापन नहीं सुनना है, मां ! जाकर फौरन उसे भेजो । आज आखिरी बार उससे निबटूंगा । भेजो उसे जल्दी । (दांत पीसता है ।)

भवानी—अब कौन समझाये तुझ को ! (आगे बढ़ती है ।) चला भी तो नहीं जाता । उसने मार सही दिया, लेकिन मेरे पैरों में पहले से भी तो दर्द था ।

(भवानी लंगड़ाते हुए जाती है । केसरी कमरे में बेचैनी से टहलता है ।)

केसरी—(एक क्षण बाद पुकार कर तीव्र स्वर में) पद्मा !

(पद्मा एक तश्तरी में दूध का ग्लास ले कर आती है और कोने में चुपचाप खड़ी हो जाती है । फिर दूध का ग्लास तिपाई पर रख देती है । उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह रही है । उसके आने पर केसरी एक क्षण उसे घूरता है, फिर दरवाजा बन्द करने के लिए आगे बढ़ता है ।)

केसरी—(आगे बढ़ते हुए) आओ तुम ! देखूं तुम्हें । (दरवाजा बन्द करता है । लौटते हुए गहरी नजर से देख कर) रो रही हैं रानी जी ? इससे मैं पिघलने वाला नहीं हूँ ! बूढ़ी मां पर हाथ उठाते समय रोना नहीं आया ? बोलिये न ? (अपने हाथों में डण्डा तोलता है ।) यह भले आदमियों का घर है या मछली बाजार, जहां रात दिन लड़ाई-झगड़ा मचा रहता है । सारी इज्जत धूल में मिला दी । आज मैं हमेशा के लिए यह झंझट दूर करूंगा । कहिए, बिल्ली को दूध क्यों पीने दिया ? (पद्मा चुप है ।) बोलिए, श्रीमती जी ! अपनी सास से भी पूजनीय बिल्ली को दूध क्यों पीने दिया ?

पद्मा—(तिपाई की ओर संकेत करते हुए) दूध तो यह रखा हुआ है !

केसरी—(देख कर) यह दूध है ? चाक मिट्टी घोल कर रख दी है और कह दिया कि यह दूध है । झूठी, मक्कार औरत ! और मां का ब्लाउज क्यों जला दिया ? उस रेशमी ब्लाउज से इतनी जलन क्यों हुई ? क्या बूढ़ी मां को रेशमी कपड़े पहने नहीं देख सकती ? और जलना था तो खुद ही जलतीं, उस ब्लाउज को आग में क्यों झोंक दिया ?

पद्मा—(अपने अंचल से ब्लाउज निकाल कर) यह ब्लाउज है !

केसरी—(चिढ़ कर) तो इसके मानी ये हुए कि तुम उस बेचारी बूढ़ी मां को खा-मख्वा चिढ़ाती हो और उसे झाड़ू से भी पीटती हो । मैं आज तुम्हारे हाथ-पैर तोड़ दूंगा, तुम उठ भी न सकोगी । बूढ़ी

मां का अपमान करना इतना आसान नहीं है जितना तुम समझ रही हो। जिस डाल पर बैठी हो उसी को काटना चाहती हो? (कर्कश स्वर में) इधर आओ, (जोर से) इधर आओ !

भवानी—(नेपथ्य से विह्वल स्वर में) बेटा, रहम करो ! मेरी बहू ने मुझे ज्यादा नहीं मारा। तुम रहम करो, रहम करो, बेटा !

केसरी—मैं रहम करूं ? एक शैतान पर रहम ? इस दुष्टा पर रहम ? तुम को मारते वक्त इसने रहम नहीं किया; आज मैं इसे मार कर दम लूंगा। मत रोको मुझे। (चिल्ला कर) क्यों री पद्मा ! तू पद्मा है ? तू पद्मा नहीं, मेरी जिन्दगी का सब से बड़ा सदमा है। आज उसे हमेशा के लिए मिटा दूंगा। वहां कहां खड़ी है ? चल इधर।

भवानी–(नेपथ्य से दरवाजा पीट कर) बेटा, कहीं उसे ज्यादा न मार बैठना। उसने मुझे मारा कहां है, यों ही कड़ी बात कही थी।

केसरी—कड़ी बात कही थी तो मेरी कड़ी मार भी सहे ! बूढ़ी मां का अपमान करना इतना आसान नहीं है जितना यह समझ रही है। क्यों री वेश्या ? जिस शीशे में अपना मुंह देखती है उसी को चूर-चूर करना चाहती है ? इधर आ। (जोर से) इधर आ।

भवानी–(नेपथ्य से दरवाजा फिर पीट कर) बेटा, तुम उसे मत मारना। उसने कड़ी बात भी कहां कही है ! उसने तो सिर्फ अपनी सफाई दी थी।

केसरी—(चिढ़ कर) सफाई दी थी, गोया कहीं की वकील है ! घर ही में वकालत ! हम लोग तो जैसे बेवकूफ हैं, कोई बात ही नहीं समझते ! यह सफाई देकर समझाती है। समझती है कि हम लोग इसकी चालाकी नहीं समझ पाते। बूढ़ी मां का अपमान करना इतना आसान नहीं है। इधर आ। (जोर से) इधर आ।

भवानी–(नेपथ्य से फिर दरवाजा पीट कर) बेटा, हाथ मत उठाना। इसने सफाई भी नहीं दी। यह तो बिल्कुल चुप खड़ी रही।

केसरी—चुप खड़ी रही ? इसकी इतनी मजाल कि कोई इससे बात करे और यह चुप खड़ी रहे, जैसे लाट साहब है ! बात करते हम लोगों का मुंह सूख जाय और इसके मुंह से जवाब भी न निकले ! चुप खड़ी रहे ! जिस घर में रहती है उसी में आग लगाती है। इधर आ। (जोर से) इधर आ।

भवानी–(नेपथ्य में बदहवासी से दरवाजा पीटते हुए) बेटा, यह बेकसूर है।

केसरी—तब तो इसका यही कुसूर है कि यह बेकसूर है। क्यों री शैतान औरत ! अब अपनी मौत के लिए तैयार हो जा। यह मेरा डंडा तेरे सिर पर गिरा। आखिरी वक्त कुछ बोलना चाहती है ? (शीघ्रता से समीप जाकर पद्मा के कान में कुछ कहता है। फिर अलग हट कर) क्यों, बोलती क्यों नहीं ? और मां का अपमान करेगी ?

(केसरी दीवाल पर जोर से लाठी मारता है। पद्मा चीख उठती है।)

पद्मा — (तड़पते हुए स्वर में) हाय, मुझे मार डाला। (जोर से सिसकने लगती है।)

भवानी—(नेपथ्य से दरवाजा पीटते हुए क्रुद्ध स्वर में) यह क्या कर रहा है तू ! बेचारी बेकसूर को पीट रहा है। दरवाजा खोल।

केसरी—(क्रोध से) मैं दरवाजा हरगिज नहीं खोलूंगा। आज दिखला दूंगा कि मेरी मां का अपमान करना आसान बात नहीं है। सिर पर चढ़ गई है ! (पद्मा से) क्यों, मां से और झगड़ा करेगी ? (दूसरी लाठी जमीन पर पीटता है। पद्मा फिर चीख उठती है।)

पद्मा—नहीं, नहीं, मैं झगड़ा नहीं करूंगी।

केसरी—नहीं, अभी और झगड़ा कर। (तीसरी लाठी जमीन पर मारता है। प्रत्येक बार जमीन या दीवाल पर लाठी पड़ने पर पद्मा और जोर से कराहती हुई तड़प कर कहती है—"मुझे माफ करो। हाय, मुझे मार डाला ! मैं अब कुछ न कहूंगी ! अब कुछ न कहूंगी ! मां.. मां..मुझे बचाओ... ! हाय, मुझे मार डाला !")

केसरी—(जोर से सांस लेता हुआ) कम्बख्त कहीं की ! अभी क्या हुआ है ?

भवानी—(नेपथ्य से जोर से दरवाजा पीटते हुए) चल रे केसरिया, खोल ! बेचारी बहू के प्राण ले लेगा क्या ?

केसरी—(फिर जोर से सांस लेता हुआ) आज मैं प्राण लेकर ही दम लूंगा। यह झगड़ा मैं आयंदा कभी नहीं देखना चाहता। क्यों री, यह झगड़ा फिर मुझे दिखलायगी ? रोना ही जानती है कि कुछ बोलना भी जानती है ? मां के सामने नहीं रोई ? शैतान कहीं की ! ले और रो ! (फिर जमीन पर लकड़ी पीटता है।)

पद्मा—(चीखकर) हाय, मैं मरी ! (उसका गला रुंध जाता है।)

भवानी—(व्याकुल होकर नेपथ्य से) दरवाजा खोल रे, केसरिया !

केसरी—बस, अब दम तोड़ देने में सिर्फ एक ही डंडे की कसर है। ले यह आखिरी डंडा। मेरा घर हमेशा के लिए खाली कर। (चिल्ला कर) मां, मैंने तुम्हारे अपमान का बदला ...... !

भवानी—(नेपथ्य से दरवाजा पीटती हुई) अगर अब तूने हाथ उठाया तो तुझे तेरे पिता की सौगन्ध ! बड़ा अपमान का बदला लेने आया ! पिता की सौगन्ध भी नहीं मानेगा ?

केसरी—इधर शिकायत करती है, उधर सौगन्ध भी पढ़ाती है। आज मैं इसे जिन्दा नहीं छोड़ना चाहता। (पद्मा कराहती है।)

भवानी—(पूर्ववत् नेपथ्य से) मैं सच कहती हूँ, सारा कसूर मेरा था। मैंने झूठी शिकायत की थी। पद्मा रानी को हाथ मत लगा। तुझे मेरी कसम। दरवाजा खोल दे।

केसरी—(पद्मा को लेट जाने का इशारा करता है।) अच्छा मां, तुम्हारे कहने से इसे इस बार माफ़ करता हूँ। (पद्मा कराहते हुए लेट जाती है।) आयंदा जिन्दा न छोड़ूंगा। (दरवाजा खोलता है।) अब तुम जानो और तुम्हारी बहू जाने।

(दरवाजा खुलते ही भवानी दौड़ कर पद्मा का सिर अपनी गोद में रखती है और शरीर सहलाती हुई केसरी को घूर कर देखती है।)

भवानी—निर्दयी कहीं का ! मेरी फूल-सी बहू को पीस डाला ! हाय, हाय, कितनी चोट लग गई ! (पद्मा कराहती है।) बहू, तू मुझे माफ़ कर। सारा कसूर मेरा ही था। (केसरी से) अब तूने कभी मेरी बहू को हाथ लगाया तो घर से निकल जाऊंगी। खूंख्वार कहीं का ! ऐसा पीटा जाता है ? दुनियां के लोग अपनी-अपनी औरतों को पीटते हैं, मगर तेरे जैसा कोई नहीं पीटता। पद्मा का फूल-सा बदन कुम्हला गया ! अब कसम खा कि आयंदा बहू को कभी नहीं पीटेगा। मेरी बेचारी बहू ! हाय, मेरी बेचारी बहू !

केसरी—और तुम भी कसम खाओ मां, कि आज से मुझसे किसी तरह की शिकायत नहीं करोगी।

भवानी—आज से कान पकड़ती हूँ, बेटा, जो कभी शिकायत करूं, चाहे मुझे बहू सचमुच ही झाड़ू से मारे। मेरी बहू को इस कदर मारा है कि बेचारी कराह तक नहीं सकती। मैं अभी दवा लाती हूँ बहू ! सारी देह में मलहम लगाती हूं ! हाय, हाय, मेरे मुंह को आग लगे। कहां मैंने मामूली-सी शिकायत की थी और कहां धुन दिया निर्दयी ने इस बेचारी को। सम्हाल इसको। (दवा लेने के लिए बड़बड़ाती हुई जाती है।) कहां से कहां मैंने बात कही ... ... (प्रस्थान)

केसरी—(पद्मा का हाथ पकड़ कर उठाते हुए मुस्कुरा कर) कहां ... से ... कहां ...

[दोनों मुस्कुराते हैं।]

परदा गिरता है

विजय-पुस्तक भण्डार की सामयिक पुस्तकें

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित

स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा

इस पुस्तक में लेखक ने भारत एक और अखण्ड रहेगा, भारतीय विधान का आधार भारतीय संस्कृति पर होगा, इत्यादि विषयों का प्रतिपादन किया है। मूल्य १||) रुपया।

जीवन में विजय प्राप्त करने के लिये
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित

'जीवन संग्राम'

का

संशोधित दूसरा संस्करण पढ़िये। इस पुस्तक में जीवन का सन्देश और विजय ललकार एक ही साथ हैं पुस्तक हिन्दी भाषियों के लिये मनन और संग्रह के योग्य है। मूल्य १) डाक व्यय ।-)

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति की

'जीवन की झांकियां'

प्रथम खण्ड—दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन, मूल्य ||)

द्वितीय खण्ड—मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला ? मूल्य ||)

दोनों खण्ड एक साथ लेने पर मूल्य |||)

सामाजिक उपन्यास

सरला की भाभी

[ले०—श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति]

इस उपन्यास की अधिकाधिक मांग होने के कारण पुस्तक प्रायः समाप्त होने को है। आप अपनी कापियें अभी से मंगा लें, अन्यथा इसके पुनः मुद्रण तक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।

मूल्य २)

हिन्दू संगठन हौआ नहीं है

अपितु

जनता के उद्बोधन का मार्ग है।

इसलिये

हिन्दू-संगठन

[लेखक—स्वामी श्रद्धानन्द संन्यासी]

पुस्तक अवश्य पढ़ें। आज भी हिन्दुओं को मोहनिद्रा से जगाने की आवश्यकता बनी हुई है, भारत में बसने वाली प्रमुख जाति का शक्ति सम्पन्न होना राष्ट्र की शक्ति को बढ़ाने के लिये नितान्त आवश्यक है। इसी उद्देश्य से पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। मूल्य २)।

पं० मदनमोहन मालवीय

[श्री रामगोविन्द मिश्र]

महामना मालवीय जी का क्रमबद्ध जीवन-वृत्तान्त। उनके मन का और विचारों का सजीव चित्रण। मूल्य १||) डाक व्यय ।=)

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस

नेता जी जन्मकाल से सन् १९४५ तक, आजाद हिन्द सरकार की स्थापना, आजाद हिन्द फौज का संचालन आदि समस्त कार्यों का विवरण। मूल्य १) डाक व्यय ।=)

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

[श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति]

जवाहरलाल क्या हैं ? वे कैसे बने ? वे क्या चाहते हैं और क्या करते हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर इस पुस्तक में आपको मिलेगा।

मूल्य १।) डाक व्यय ।=)

प्राप्ति स्थान—विजय पुस्तक भण्डार, श्रद्धानंद बाजार, दिल्ली

"चूड़ी ले लो, चूड़ी"

श्रीमती सावित्री निगम

चूड़ी वाले का स्वर ज्यों ही गलियों से उठकर अट्टालिकाओं और मकानों से टकराता है, नारी-वर्ग में एक नई जागृति, नई चेतना की लहर दौड़ जाती है—बन्द खिड़कियां और दरवाजे खटाखट खुलने लगते हैं।

'चूड़ी' सचमुच ही समस्त भारतीय नारी वर्ग की उपास्य वस्तु है। सौंदर्य-प्रिया को शृंगार-विभूति ही नहीं मिल जाती, बल्कि सुहागिन सुहाग के अमरत्व का प्रतीक देख कर पवित्र भावनाओं से भर उठती है।

युगों पहिले किसी पावन घड़ी में इस सर्व-सुलभ चिरवंदित चूड़ी ने किसी शृंगार-प्रिया के हृदय में योजना के रूप में जन्म पाया होगा। सम्भव है चूड़ी का आदिम रूप किसी पशु की हड्डी के गोले अथवा लकड़ी में गुंथे हुए फूलों के गोले का ही रहा हो; किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक युग की नारी ने, अपनी सामर्थ्यानुसार इसे अपनाया और इसलिये इसके आकार-प्रकार में परिवर्तन, परिवर्धन और संशोधन होते रहे।

चूड़ियों के आकार-प्रकार, रूप-रंग का क्षेत्र तो इतना विस्तृत है कि उसका वर्णन संक्षेप में करना असम्भव है। पतली, मोटी, शंखाकार और चपटी — ऐसी अनेक डिजाइन, अनेक ढंग की चूड़ियां विभिन्न सामाजिक रीतियों के अनुसार पृथक्-पृथक् परिस्थितियों में पहिरी जाती हैं।

लाख, हड्डी हाथी दांत, सोने, चांदी, तथा पीतल और कांच—सभी उपयोगी वस्तुओं से चूड़ियां बनाई जाती हैं।

रेशम के लच्छों के सदृश चमकदार सुन्दर चूड़ियों से सजी अपनी कलाई देख कर नवोढ़ा मुस्कराकर झूम उठती है और अपने प्रियतम को आकर्षित करने के विश्वास से वह उमंगित हो उठती है।

शृंगार-प्रसाधनों में चूड़ी का स्थान बहुत ऊंचा है। प्रत्येक प्रान्त में वेश-भूषा के समान ही चूड़ियों में भी काफी अन्तर होता है। बंगाल प्रांत की रमणियां शंख की चूड़ी के साथ सुन्दर बारीक सोने की आठ-दस जगमगाती चूड़ियां पहिर कर ही सन्तुष्ट हो जाती हैं। पश्चिमी पंजाब में भी अधिकतर सोने की चूड़ियां, वेल चूड़ी या कड़े ही पहिने जाते हैं; किन्तु पूर्वी पंजाब से कांच, लाख और नगों की चूड़ियों का तथा विवाह

आदि अवसरों पर हाथी दांत की चूड़ी का प्रचलन प्रारम्भ हो जाता है। किन्तु दिल्ली के बाद तो कांच की चूड़ी ही सर्वप्रिय तथा सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। यू० पी०, बिहार, उड़ीसा और मध्यप्रान्त की हिन्दू-मुसलमान महिलायें, चाहे धनी हों अथवा निधन, कांच की चूड़ी को शुभ और सौभाग्य-चिन्ह मान अवश्य ही धारण करती हैं। मारवाड़ और राजपूताना में बहुत बड़े बड़े ठोस सोने के और हाथी दांत के चोड़े, सोने के जाल से ढके, चूड़े (या चूड़े) पहिरे जाते हैं। सौम्य सौन्दर्य की पुजारिन गुजराती और महाराष्ट्रीय नारी एक दो चमकदार पतली सोने की चूड़ियां और एक कांच की चूड़ी धारण करने को ही सौन्दर्य का द्योतक मानती है।

सुविधा के लिये चूड़ियों के नामकरण भी कर दिये गये हैं बांके मुरी, दूधी, अल-बेली, रेशम, धार, कांप, कड़े, परी-पटरी, नगदार, पहलदार, कड़ा, कुमकुमा, कामदार, और छबीली—ये सभी चूड़ी के प्रिय और प्रचलित नाम हैं।

वैसे ता चूड़ी को वृद्धा, प्रौढ़ा, युवती, बालिका, सांवली, गोरी मोटी, दुबली, सभी रमणियां बड़े उत्साह से पहिनती हैं; किन्तु सौन्दर्य-ज्ञान के अभाव के कारण कभी-कभी उनकी पसंन्द इतनी भद्दी हो जाती है कि सौंदर्य-वृद्धि की बजाय उनकी कुरूपता में ही वृद्धि हो जाती है।

चूड़ी पहिनते समय तीन बातों का ध्यान रखकर हम सहज ही कुरूपता के इस खतरे से बच सकती हैं। अपने वर्ण और शारीरिक गठन, चूड़ी के आकार-प्रकार और प्रचलन तथा फैशन के आग्रह और वस्त्रों और साड़ियों के रंगों का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है।

"गोरे गोरे हाथों में काली काली चूड़ियां", इस उक्ति से सौन्दर्य प्रसशंक का यह तात्पर्य है कि गोरी रमणी के हाथों में गाढ़े रंगों की चूड़ियां और सांवली महिलाओं के हाथों में हल्के रंगों की चूड़ियां ही सुन्दर प्रतीत होती हैं। स्थूलकाय महिलाओं को कुछ ढीली और कृशकाय महिलाओं को कुछ कसी चूड़ियां पहननी चाहियें। दुबली पतली स्त्री ढीली चूड़ियां पहिन कर अपनी दुर्बलता का प्रदर्शन-सा करने लगती है और मोटी भीमकाय स्त्री जब कसी चूड़ियां पहिर लेती है तो लोग कहने लगते हैं—"इतनी मोटी है कि चूड़ियां भी नहीं मिलतीं, फंस कर रह गई हैं!"

विद्यार्थी-वर्ग तथा शिक्षित कर्मठ-वर्ग को साड़ी के किनारे या साड़ी के रंग की एक एक चौड़ी कामदार सुन्दर चूड़ी शोभा देती है। एक हाथ में बहुत बारीक मेल खाती हुई आठ दस सादी कांपें भी शोभा देती हैं। दूसरे हाथ में उससे कुछ कम उसके विपरीत रंग की चूड़ियां हों। युवतियों और नवोढ़ा वधुओं को चूड़ियों का एक छोटा पिटारा बना कर उसमें हर विशेष रंग की ८, ८ चूड़ियां रख लेनी चाहियें और वस्त्रों के साथ और अवसर के अनुसार रंग बदल लेना सर्वश्रेष्ठ उपाय है किन्तु यदि ऐसा सम्भव नहीं हो तो दोनों हाथों में उन्हीं दो रंगों की चूड़ियां धारण करनी चाहियें जिन रंगों के उनके पास वस्त्र अधिक हों।

आभूषणों के साथ सुनहरी, रुपहली, कामदार चूड़ियां एक नवीन आभूषण का काम देती हैं। गृह-कार्यों में संलग्न रहने वाली स्त्री को चौड़ी, किन्तु सादी एक एक चूड़ी कर में पहिरनी चाहिये। उत्सवों और विशेष अवसरों पर नगीनेदार या लाख के सुन्दर कड़ों के साथ बारीक कांपें खूब शोभा देती हैं। नव-वधू के हाथों में बराबर की बारीक सुनहली कामदार चूड़ी के बीच नये आभूषणों से हाथों का सौन्दर्य कई गुना बढ़ जाता है।

सोने की चूड़ियों के बीच दो-तीन कांच की चूड़ियां प्रौढ़ा के हाथों में काफी सुन्दर लगती हैं।

फैशन और नवीन डिजाइनों का ध्यान रख कर यदि चूड़ी धारण की जाय तो वह निःसन्देह भारत का सर्वश्रेष्ठ सर्वसुलभ आभूषण है।

लाख, हांथी दांत और सच्चे मोती की चूड़ियां अनेक रोगों से रक्षा करती हैं।

कला-प्रेम और लोक-सेवा की प्रतिमायें
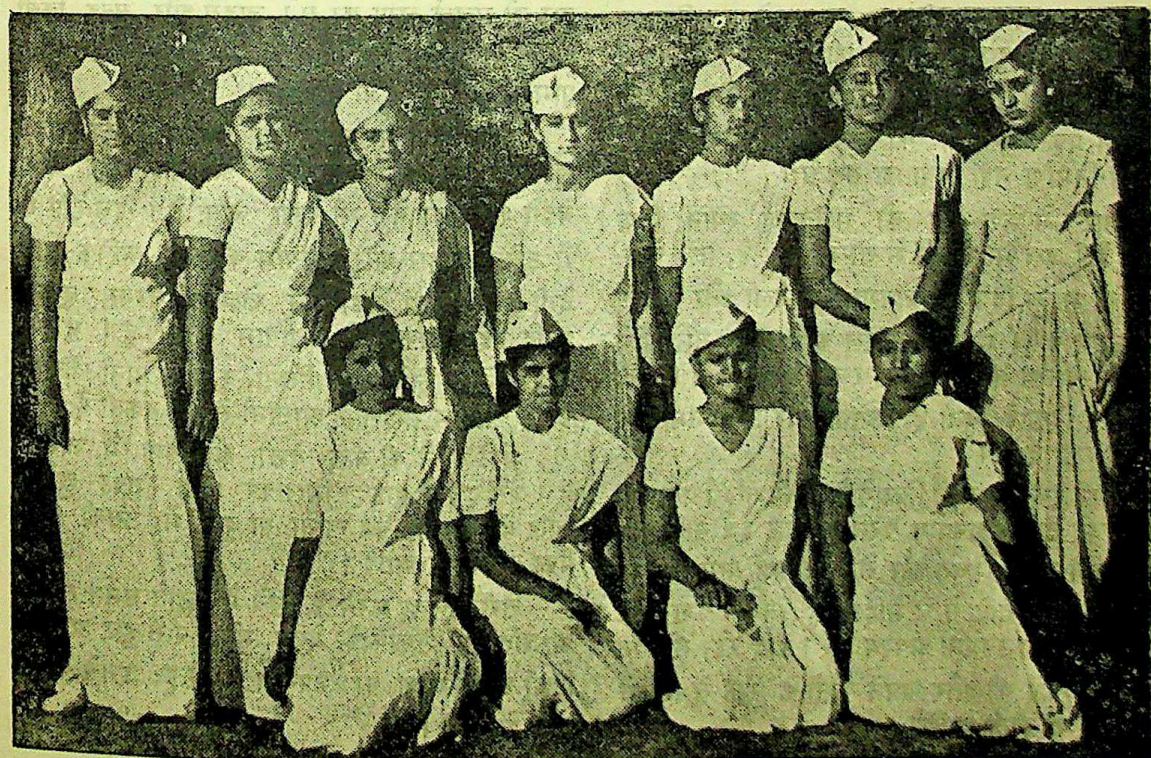
सौन्दर्य-साधना

श्रीमती तारामती राव, एम्. ए.; एलूएल्. बी.

मेरी यह राय है कि यदि महिलाएं सौन्दर्य-प्रसाधनों का उपयोग कलात्मक दृष्टि से करें तो उन्हें अपनी सौन्दर्य-वृद्धि में काफी मदद मिल सकती है। हां, यह आवश्यक होगा कि आजकल मिलने वाली बाजारू प्रसाधन-सामग्री का उपयोग विज्ञापन पढ़कर न करते हुए, विशेषज्ञों की सलाह से ही किया जाय। साथ ही यह भी याद रखा जावे कि सौन्दर्य-प्रसाधन प्रकृत सुन्दरता को बढ़ाते हैं; उनके द्वारा सौन्दर्य-निर्माण नहीं किया जा सकता।

भारत में केश-भूषा को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। जहां महिलाओं में सौन्दर्य दृष्टि है, वहां केश-भूषा को महत्व दिया ही जायगा। बंगाली और दक्षिण हिन्दुस्तान के (मद्रास, तामिल आदि) स्त्री समाजों में केश के स्वास्थ्य की तथा केश-रचना की दृष्टि से जितनी विविधता दिखाई देती है, उतनी और किसी समाज में दिखाई नहीं देती।

शारीरिक विकार को छिपाने के लिये सौंदर्य प्रसाधनों का उचित ढंग से उपयोग करने में कोई हर्ज नहीं है। ऐसा करने पर निश्चित रूप से सफलता प्राप्त की जा सकती है। इस दृष्टि से वे महिलाएं, जिनके केश छोटे हैं, गंगावन का उपयोग अवश्य करें। याद रहे, गंगावन मामूली लम्बाई की और अपने केशों के रंगों से मिलते जुलते रंग की होनी चाहिये।

यह कहना गलत न होगा कि सौंदर्य प्रसाधनों की सहायता से ५० % तक सौंदर्य वृद्धि की जा सकती है।

चेहरे की हिफाजत के लिये आगे दिये गये घरेलू इलाज से काम लीजिये। ये उपाय अनुभव-सिद्ध और उत्तम हैं—

गाय या भैंस के दूध में नीबू का थोड़ा-सा रस डालिये और स्नान करने के पूर्व यह मिश्रण चेहरे तथा हाथ-पैर पर लगा लीजिये। इस मिश्रण से चेहरे की फुन्सियां नष्ट हो जाती हैं और चेहरा सतेज दिखाई देने लगता है। इसी तरह यदि धूप से चेहरे का रंग काला-सा हो गया हो तो वह भी सुधर जाता है। उबाले हुए टमाटरों का गूदा लगाने से भी चमड़ी मुलायम और अच्छी हो जाती है। अपने यहां पुराने जमाने से महिलाएं छोटे-छोटे बच्चों को दूध-हल्दी से नहलती हैं — यह याद रखने योग्य है। चेहरा चिकना और मुलायम रखने की दृष्टि से उक्त उपायों पर अपनी सुविधानुसार अमल किया जाये। इसके अलावा यदि चमड़ी शुष्क या सूखी जान पड़े तो रात के समय सोने के पूर्व चेहरे पर उत्तम क्रीम या सिर्फ दूध की मलाई लगा कर सो जाइये और सुबह किसी अच्छे साबुन से (उदाहरणार्थ — लक्स, ग्लैसरीन या पामओलिव) मुंह धो लीजिये।

शरीर-सौष्ठव पर आधा या सम्पूर्ण सौन्दर्य अवलम्बित रहता है। कभी कभी आकर्षक चेहरे और बेढंगे शरीर का मेल भी देखा जाता है। इस दृष्टि से मैं उचित आहार और व्यायाम की ओर अधिक ध्यान देती हूँ। मैं स्वयं बेडमिंटन खेलना, तैरना, घूमना आदि इस प्रकार के व्यायाम करती हूं। मुटापा कम करने के लिये चक्की पीसना, कुंए से पानी खींचना आदि व्यायाम महिलाएं आसानी से कर सकती हैं।

मोटे बनने की कुछ देशी औषधियां मैं जानती हूँ। जैसे दूध में शहद मिलाकर पीना, सुबह छुहारे और बादाम पीस कर खाना या दूध में उसकी खीर पका कर खाना आदि।

शरीर स्वच्छ करने के लिये मैं नहाते समय साबुन के अतिरिक्त शिकाकाई, बेसन, नीबू, पीसे हुए आंवले, तिल्ली आदि चीजों का उपयोग करती हूं; इनसे काफी लाभ होता है।

—'उद्यम' से

डी० सी० एम० केमिकल वर्क्स गन्धक के तेजाब को (१.८४०) या ९५%, (१.७५०) या ८२% और ओलियम २०% के तरीकों से बनाते हैं। आवश्यकतानुसार यह खरीदा जा सकता है। भेजने से पूर्व इसकी अच्छी तरह जांच कर ली जाती है। ९५% तेजाब, विशेष रूप से निर्मित पीपों में भेजा जाता है।

अपनी जरूरतों के लिये लिखिये :—

निम्न वस्तुओं के भी निर्माता :—
शोरे का तेज़ाब, नमक का तेज़ाब, हरिन गंधिताम्ल, अलम्युनियम फेरिक, फिटकरी सफेद व लाल, साबुन व क्रिमानाशक, टर्की रेड आयल, हड्डी का खाद व मिश्रित खाद, सरेस,

ऊँचे पैमाने के पूर्वपरीक्षित रसायन - निर्माता

ADARTS (DELHI) LTD.

DCM D.7. Hindi

अब के होली के अवसर पर 'मनोरंजन' की ओर से अपने राजनीतिक व साहित्यिक नेताओं (?) को विशेष पद व उपाधियां प्रदान करने का विचार था; परन्तु खेद है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के निधन के शोक में अब के होली न मनाये जाने के कारण यह उपाधि-वितरण-समारोह स्थगित करना पड़ा। लेकिन, इसका यह अर्थ नहीं कि 'मनोरंजन' उन महानुभावों की सेवाओं को भुला देगा। यदि हो सका तो अगले वर्ष होली के अवसर पर इस वर्ष की कसर पूरी कर दी जायगी!

* * *

अब की बार भारत में होली का हास-हुलास भरा त्यौहार नहीं मनाया गया, सो अच्छा ही हुआ। वर्ष भर रक्त से होली खेलने के बाद रंग से होली खेलने का लोगों में विशेष उत्साह भी नहीं था!

* * *

होली के न मनाये जाने का किन्हीं लोगों को खेद भी है। वर्ष भर में यही तो एक ऐसा अवसर आता है जब वे सार्वजनिक रूप से सम्मानित व गौरवान्वित हो पाते हैं। सच तो यह है कि पूज्य बापूजी ने होली से दो मास पहिले स्वर्ग सिधार कर और हमारे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने होली न मनाने की आज्ञा देकर इन लोगों के मूर्खता व बौड़मपन के जन्मसिद्ध-अधिकार की सरासर अवहेलना की है। कुछ दिनों के लिये किसी से बुद्धि उधार लेकर यदि ये आन्दोलन शुरू कर दें तो फिर किसी को भी इनके इस जन्मसिद्ध-अधिकार पर कुठाराघात करने का साहस न होगा। सुना है कि कांग्रेस के कुछ "छुटभैया एमैलों" ने बुद्धि उधार देने तथा नौकरियां दिलाने का व्यवसाय चला रखा है!

* * *

अब के अबीर-गुलाल उड़ाने की मनाही तो हुई, परन्तु होली जलाने की मनाही नहीं होनी चाहिये थी। जगह-जगह होली जलती तो शायद उसमें कूड़े-करकट के साथ-साथ हृदयों का वह मैल भी जल जाता जो साम्प्रदायिकता, जातीयता, प्रान्तीयता और भ्रष्टाचार के रूप में देश की आत्मा को दूषित व कलंकित कर रहा है।

* * *

हमारे समाजवादी बन्धुओं का प्रत्येक काम प्रायः दिलचस्प (?) होता है। राष्ट्रपिता का अभी अन्त्येष्टि संस्कार भी न हो पाया था कि इन्होंने घर के बिगड़ैल लड़कों की तरह केन्द्रीय शासन रूपी विरासत के बंटवारे के लिये शोर मचा दिया। अब होली का प्रेम व मेल-मिलाप का त्यौहार आया तो ये अपने बड़े भाइयों से अलग हो गये हैं। कोई नया कदम उठाने से पहले आदमी को मौका-बेमौका तो देख लेना चाहिये!

* * *

भारत में डेढ़ प्रतिशत पाये जाने वाले बुद्धिमानों का यह मत है कि प्रत्येक बुराई में कोई न कोई अच्छाई छिपी रहती है। सत्ता से मदांध कांग्रेसी गजराजों को वश में रखने के लिये जिस अंकुश की आवश्यकता थी, आशा है, समाजवादी दल अब विरोधी दल के रूप में उसी अंकुशका काम देगा।

लोकतंत्र नामक गजतंत्र अंकुश के बिना या तो बिगड़ कर उत्पात मचाता है और या आलस्य व प्रमाद की दलदल में फंस कर आगे बढ़ने से इन्कार कर देता है!

* * *

कांग्रेस से समाजवादी दल अलग हुआ तो अकाली दल आ मिला। लीजिये, हिसाब बराबर हो गया! परन्तु प्रश्न यह है कि वृद्धावस्था के कारण अपच-रोग-ग्रस्त हमारी यह कांग्रेस क्या इस गरिष्ठ पदार्थ को पचा सकेगी? डर है कि कहीं यह सिर दर्द से छुटकारा पाकर अब उदर-शूल से पीड़ित न हो उठे!

* * *

'बच्चन' जी ने अपनी कविता में दिल्ली से सम्बंधित जहां और सभी अच्छी बुरी बातों का उल्लेख किया है, वहां वे दिल्ली के कई एक ऐसे वयोवृद्ध, तथा 'ज्ञानवृद्ध' साहित्यिकों को भूल गये हैं जिनका महत्व आज पुराने से पुराने ऐतिहासिक स्मारक से किसी प्रकार भी कम नहीं है। बाहर से जो लोग दिल्ली की सैर करने आते हैं, वे इन स्मारक-स्वरूप साहित्यिकों के भी अवश्य दर्शन करते हैं!

* * *

'बच्चन' जी की जानकारी के लिये यहां के उन साहित्यिक अखाड़ों का उल्लेख कर देना भी अप्रासंगिक न होगा जो यहां गत चार-पांच महीनों से जमने लगे हैं। इन अखाड़ों को बनारसी व इलाहाबादी रूप देने के लिये बाहर से कुछ अनुभवी "खलीफे" विशेष रूप से बुलाये गये हैं।

सार्वजनिक प्रदर्शन के लिये कुश्तियों की तिथि अभी निश्चित नहीं हुई!

* * *

श्री शंकरदेव विद्यालंकार जी का लेख ('साहित्यिकार की संगिनी') उन भारतीय महिलाओं के लिये विचारणीय है जो निकट भविष्य में किसी कवि अथवा लेखक से विवाह करने की बात सोच रही हों। अपनी भूल को सुधारने के लिये चार्ल्स डिकन्स की पत्नी ने तो तलाक ले लिया था, परन्तु यहां भारत में अपनी भूल को सुधारने की ऐसी कोई व्यवस्था नहीं।

अच्छा होता यदि विद्वान लेखक उन पुरुषों की स्थिति पर भी प्रकाश डालते जिन्होंने कवयित्रियों अथवा लेखिकाओं से विवाह कर रखा है!

मनोरंजन-पत्र-प्रतियोगिता

'मनोरंजन' के मई १९४८ के अंक से हम संपादक के नाम पाठकों द्वारा लिखे गये पत्रों की प्रतियोगिता प्रारम्भ कर रहे हैं। पत्र सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक इत्यादि किसी भी विषय को लेकर लिखे जा सकते हैं। प्राप्त पत्रों में से जो चार-पांच पत्र विषय व विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से उत्कृष्ट होंगे, उन्हें 'मनोरंजन' में प्रकाशित किया जायेगा और इन चार-पांच पत्रों में से जो पत्र सर्वोत्कृष्ट होगा, उस पर लेखक को पुरस्कार स्वरूप पांच रुपये भेंट किये जायेंगे।

पत्र संक्षिप्त, स्पष्ट और 'मनोरंजन' के एक कालम से बड़ा नहीं होना चाहिये, और उसके साथ निम्नांकित कूपन काटकर भेजा जाना चाहिये।

मनोरंजन-पत्र-प्रतियोगिता
नं० १

रम्मू की सैर

सुश्री सिद्धि तिवारी

स्कूल से छुट्टी जो हुई तो रम्मू को सैर की सूझी। उसने देखा कि गली में एक बन्दर उछलता जा रहा है। वह भी अपना बस्ता झुलाता उसके पीछे हो लिया। बन्दर चलता चलता नगर से बाहिर एक अमरूद के बगीचे में पहुँचा। बड़े बड़े पके अमरूद देखकर रम्मू के मुंह में पानी भर आया। उसने सोचा, इन अमरूदों को जरूर खाना चाहिये। उसने अपना बस्ता नीचे रख दिया। पेड़ पर चढ़ना ही चाहता था कि एक धमाके की आवाज़ हुई। उसने देखा कि पेड़ पर से कूद कर एक लम्बा-तड़ंगा आदमी उसकी ओर चला आ रहा है। उसके चार बड़े बड़े दांत मुंह से बाहिर निकले हैं। रम्मू दबक कर एक पेड़ के नीचे खड़ा हो गया और उस लम्बे-तड़ंगे आदमी से पूछा—"तुम कौन हो? क्या चाहते हो?"

वह बोला—"मैं इस बाग़ का मालिक दानव हूँ। तुम खूब आये। मुझे भूख लगी है। मैं अभी तुम्हें चट करता हूं।"

रम्मू उसकी बात सुन कर हंस पड़ा, बोला —"चट करने की तो खूब कही। मैंने भी सुबह से कुछ नहीं खाया है। भूख तो मुझे भी लगी है।"

तब दानव मुंह फाड़कर रम्मू के ऊपर झपटा। रम्मू पैंतरा बदल कर बगल में हो गया। और फिर उसने उछल कर दानव के मुंह में हाथ डाल उसकी जीभ पकड़ ली और लटक गया। दानव का मुंह फटे का फटा रह गया। उसकी आंखों में आंसू भर आये। वह दुःख के मारे जमीन पर लेट गया। उसने रम्मू को हाथों से मारना चाहा तो उसने जीभ और भी ज़ोर से खींची। दानव बेहाल हो गया। हाथ जोड़ने लगा। बोला — "हे आदमी के बच्चे, मैं तेरे सामने नाक रगड़ता हूँ, तुम बहुत अच्छे हो! मुझे छोड़ दो।"

जब वह बहुत गिड़गिड़ाया तो रम्मू को दया आ गई। उसने जीभ छोड़ दी। जीभ छूटते ही दानव उठ बैठा। उसने रम्मू को पैर पकड़ कर अपने कंधे पर बैठा लिया। खेतों और जंगलों में भागते हुए वह अपनी पहाड़ी गुफ़ा के सामने पहुंचा।

रम्मू पहिले तो घबराया, पर फिर मौके की ताक में सधकर बैठ गया। दानव ने गुफा का द्वार खोलने के लिये जैसे ही उसके पैर छोड़े, वैसे ही रम्मू ने अपने ऊपर के पेड़ की डाली पकड़ ली और सटक कर उसके ऊपर चढ़ गया। उसने देखा कि उस पेड़ पर अनेकों रंग-बिरंगी तितलियां बैठी हुई हैं। उन्हें देखकर वह इतना प्रसन्न हुआ कि दानव को बिल्कुल भूल गया। उसने उन में से एक को पकड़ने के लिये हाथ बढ़ाया। तितली उसके डर से उड़ी नहीं, वैसी उदास बैठी रही। रम्मू ने

तितली को छू दिया, तो वह फौरन एक पांच बरस की लड़की बन गई। पेड़ पर अचानक लड़की उगती देखकर रम्मू घबराया। सोचने लगा, यह नई बला क्या आई?

तभी लड़की बोल उठी — "भैया, तुम कौन हो? मेरी आंखों को छू दो।"

रम्मू ने कहा — "मैं रम्मू हूँ। मैं तुम्हारी आंखों को क्यों छुऊं?"

लड़की बोली — "रम्मू भैया, मेरा नाम मुन्नी है। यह दानव बच्चे पकड़ पकड़ कर लाता है। उन्हें तितलियां बना, आंखें फोड़ इस पेड़ पर बैठा देता है। तुम मेरी आंखें छू दोगे तो मुझे फिर दीखने लगेगा।"

रम्मू के छूते ही मुन्नी की आंखें खुल गईं। मुन्नी ने बताया — "रम्मू भैया, इस पेड़ पर जितनी तितलियां हैं वे सब बालक हैं। दानव ने कहा है कि मनुष्य का हाथ लगते ही वे सब मनुष्य हो जायेंगे।"

रम्मू ने हुलस कर डाली डाली पर जा उन तितलियों को बालक बना दिया और उनकी आंखें भी खोल दीं। पेड़ पर बच्चों का मेला लग गया। पेड़ की डालियां उनके बोझ से चरमराने लगीं। वे डरने लगे कि अब नीचे गिरे और मरे। फिर एकाएक उन्हें अपने घरों की याद आई और वे रोने लगे।

रम्मू ने कहा — "हमने दानव का जादू तोड़ दिया है। आओ सब मिलकर गाना गायें।"

मुन्नी ने कहा— "दानव आ गया तो?"

रम्मू ने समझाया — "तुम घबराओ नहीं, हम सब मिलकर उसे बस में कर लेंगे। लो गाओ —

हम सब बालक सैलानी,
करते फिरते मनमानी।
दो दो लातें मारेंगे,
उसके दांत उखाड़ेंगे।
अपनी फौज बनायेंगे,
दानव पकड़ नचायेंगे।
हम सब बच्चे सैलानी,
दानव की मर गई नानी।
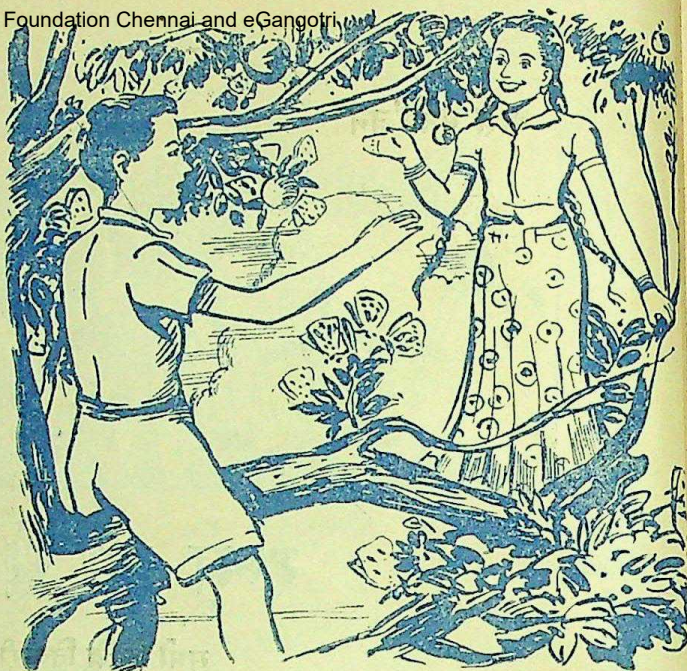
दानव गुफा के भीतर धड़धड़ाता चला गया। जब रसोई में पहुँचा तो पाया कि कंधे पर रम्मू नहीं है। वह क्रोध से पागल हो गया, अपने पैर पटकने लगा, सिर के बाल नोचने लगा। रम्मू को पकड़कर खा जाने के लिये वह गुफा से बाहिर दौड़ा। पेड़ पर बालकों का गाना सुना तो आपे से बाहर हो गया। चीख कर बोला — "ठहरो बदमाशो, मैं अभी एक एक को खाता हूं। और रम्मू के बच्चे, तुझे तो सबसे पहिले"

बच्चे सहम गये। रम्मू ने कहा — "डरो मत, गाये जाओ।"

बालक गाते रहे, दानव दहाड़ता रहा। उसने अपना हाथ रम्मू के पकड़ने को बढ़ा दिया। रम्मू ने बचने का बड़ा जतन किया, पर बच न पाया। दानव ने उसकी कमर को मुट्ठी में पकड़ नीचे घसीट लिया। बच्चे चिल्ला पड़े। रम्मू छटपटाता रहा।

जब दानव ने रम्मू को मुंह में रखा तो पेड़ पर के बालक रोने लगे, समझे कि दानव उन्हें फिर

तितलियां बना देगा।

तभी उन्होंने देखा कि दानव चीख कर धरती पर गिर पड़ा है और खून से सना रम्मू उसके मुंह में से बाहिर निकल आया है। हुआ यह कि रम्मू ने चाकू निकाल कर दानव के मुंह में धंसा दिया था। उसे जीवित देख बालक प्रसन्नता से नाच नाच कर पेड़ से नीचे कूदने लगे।

रम्मू ने कहा—"तुम सब इस दुष्ट दानव के दांत उखाड़ लो। डरो मत। यह हिला भी तो इसे मैं जान से मार डालूंगा।"
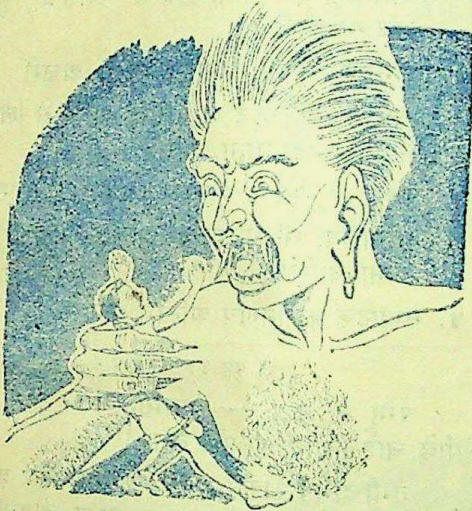
दानव चुपचाप पड़ा रहा। बच्चों ने उसके चारों भयानक दांत उखाड़ दिये।

रम्मू ने पूछा — "क्यों बे दानव के बच्चे, मारूं या छोड़ूं?"

दानव ने कहा — "छोड़ दो, अब मैं किसी को न सताऊंगा।"

"अमरूद खिलायेगा?" रम्मू ने पूछा।

"हां, खिलाऊंगा।" दानव ने कहा।

"अच्छा, हमें घर पहुँचाओ।"

दानव एक बहुत बड़ी मोटर ले आया। सब बच्चों को उसमें बैठा कर बगीचे में पहुँचा। वहां उन्होंने खूब अमरूद खाये और मोटर में भरे।

बच्चों को घर घर पहुँचाते और अमरूद बांटते जब रम्मू रात को अपने घर पहुँचा तो उसकी मां बेंत लिये तैयार बैठी थी। उसने रम्मू के कान पकड़कर कहा—"बता, कहां था अब तक? तेरा बस्ता कहां है? मैं तुझे मार मार कर..."

(शेष अगले पृष्ठ पर)

बिना शुल्क

बाल-पहेली नं० ६

२० अप्रैल १९४८ तक सही उत्तर आने पर पांच रुपये नकद पुरस्कार

बायें से दायें

१. पहेली सही भरने के लिये यह आवश्यक है। ३. बच्चे इसे बड़े चाव से खाते हैं। ६. इसमें छेद होता है। ८. उलटो तो गधा बन जायें। ९. इच्छा। ११. यह हो तो गली-मोहल्ले में अच्छा रंग जमता है। १४. यह खाई भी जाती है।

ऊपर से नीचे

१. इसे सभी लोग बुरा समझते हैं। २. वीणा का मधुर स्वर। ४. इसके लगने से कपड़े गंदे हो जाते हैं। ५. मिठाइयों का मूल आधार। ७. यह अच्छी होनी चाहिये, बुरी नहीं। १०. इसके फूल नहीं मुरझाते। १२. बिना इसके कोई भी आन्दोलन नहीं चल सकता। १३. यह न हो तो फूल भी न हों।

उत्तर के साथ चार आने के टिकट भेजने की आवश्यकता नहीं।

बाल-पहेली नं० ५ का पुरस्कार

मार्च १६४८ के 'मनोरंजन' में प्रकाशित 'बाल-पहेली नं० ५' की जितनी भी पूर्तियां प्राप्त हुईं, उनमें से कोई भी सर्वशुद्ध नहीं निकली। **बरेली के विजयप्रताप बक्शी (आयु १२ वर्ष) और दिल्ली को कुमारी पुष्पलता चोपड़ा** (आयु ६ वर्ष) की पूर्तियों में एक एक अशुद्धि थी, अतः दोनों को छः-छः महीने के लिये 'मनोरंजन' मुफ्त मिलता रहेगा। सही उत्तर निम्नलिखित है—

दायें से बायें — १. गांधी, ३. निकास, ५. वररोस, ६. दिवाना, ६. नली, १०. नहरू, १२. बाकी, १३. मेल।

ऊपर से नीचे — १. गांव, २. धीरज, ३. निसदिन, ४. सढ़ना, ७. वालीवाल, ८. झनक, ११. हद।

बाल-पहेली नं० ४ के पुरस्कार-विजेता का फोटो

खेद है कि बाल-पहेली नं० ४ के पुरस्कार-विजेता श्री प्रेमवल्लभ सुन्दरियाल ने 'मनोरंजन' में छपने के लिये अपना जो फोटो भेजा था, वह इतना अस्पष्ट था कि उसका ब्लॉक नहीं बन सका। इसलिये उनका फोटो इस अंक में नहीं छप सका। भविष्य में जो बच्चे बाल-पहेली का पुरस्कार जीतें, उनसे प्रार्थना है कि वे हमें अपना बढ़िया फोटो भेजें।

श्री प्रेमवल्लभ सुन्दरियाल का परिचय यह है—

ये कर्णप्रयाग (गढ़वाल) के हाई स्कूल में आठवीं श्रेणी में पढ़ते हैं और इनकी गणना योग्य विद्यार्थियों में होती है। इनके पिता पं० जीवानन्द जी सुन्दरियाल कर्णप्रयाग के अस्पताल में कम्पाउण्डर हैं।

★

पहेली के नियम

१. केवल १४ वर्ष की आयु तक के लड़के-लड़कि[यां] ही इस प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं। आयु [के] सम्बन्ध में माता-पिता अथवा स्कूल के अध्या[पक] का प्रमाण-पत्र भी उत्तर के साथ आना चाहिये।

२. उत्तर 'मनोरंजन' में छपे खाके को काट कर [उसे] भर कर भेजना चाहिए। किसी और कागज [पर] अलग से भेजे गये उत्तर पर विचार नहीं कि[या] जायेगा। एक व्यक्ति एक से अधिक पूर्तियां भेज सकता है।

३. खानों को स्याही से सुस्पष्ट लिखे अक्षरों से भर[ना] चाहिये। कटे-छंटे या पेंसिल आदि से लिखे अक्ष[रों] को सही नहीं माना जायेगा।

४. उत्तर २० अप्रैल १६४८ को शाम तक 'मनोरंज[न'] कार्यालय, श्री श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली में पहु[ंच] जाना चाहिये।

५. सम्पादक का निर्णय अन्तिम होगा।

(पृष्ठ ६३ का शेष)

रम्मू ने कहा — "अम्मां, जरा ठहर जाओ, पीछे चाहे कितना ही पीट लेना।"

तभी दानव टोकरियां भर कर उनके आंगन [में] अमरूदों का ढेर लगाने लगा। उसका लोहू-लुहान मु[ंह] देखकर मां ने रम्मू से पूछा—"यह कौन है?"

"बागवाला दानव है। देखती नहीं, अमरूद कित[ने] बड़े बड़े हैं।"

मां डर कर कोठरी में भागी और रम्मू को भी खींचने लगी।

रम्मू अम्मां को डरते देखकर हंस पड़ा। बोला "मां डरो मत। वह अब किसी को कुछ नहीं कहत[ा]। मैंने उसके दांत तोड़ दिए हैं।"

मां को विश्वास नहीं हुआ। तब दानव ने मां [को] हाथ जोड़कर प्रणाम किया। बोला — "मां, तु[म्हारे] रम्मू ने मुझे आदमी बना दिया है। इसे पी[टो] मत। इसका बस्ता मेरे पास है। सुबह दे जाऊं[गा।] लो अमरूद खाओ।"

मां ने सब सुना। रम्मू को प्यार किया और उसकी वीरता की कथा पड़ोसियों को सुनाने के [लिए] घर से बाहर चल दी।

★

प्रिंटर पब्लिशर श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा द्वारा, अर्जुन प्रेस देहली से छप कर प्रकाशित।
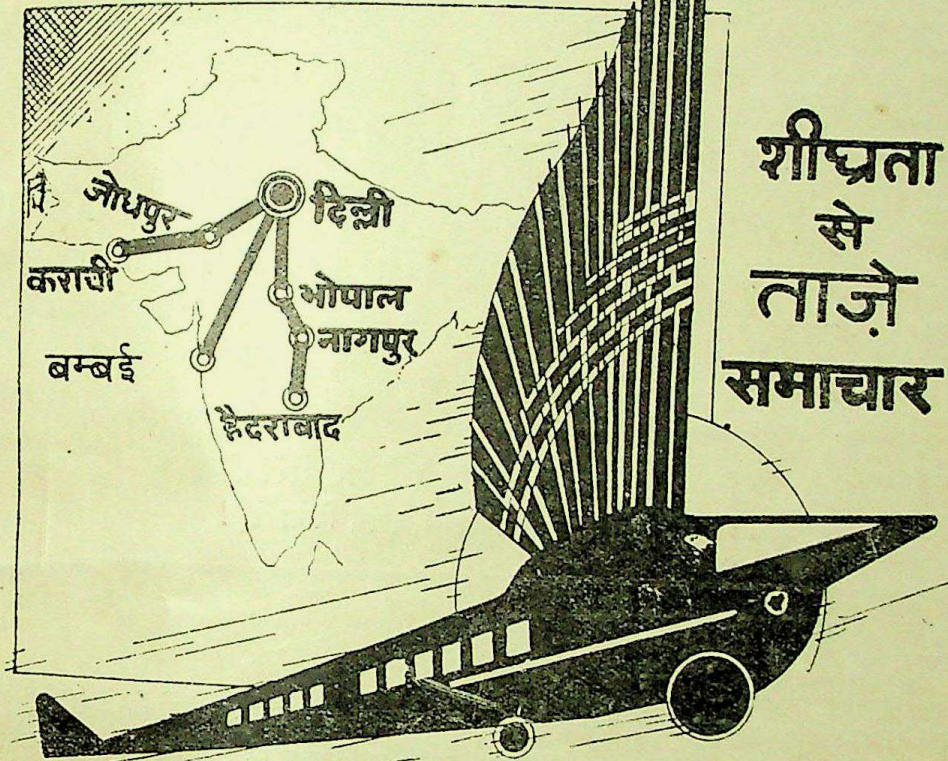
वीर अर्जुन

दैनिक व साप्ताहिक

वीर अर्जुन

देश के कोने-कोने में वायुयानों द्वारा पहुंचता है। आप अपने लिए स्थानीय एजेन्ट से पूछताछ कीजिये।

मैनेजर वीर अर्जुन, दिल्ली।

उत्तरीय भारत का सर्वोत्तम दैनिक व सचित्र साप्ताहिक।

श्री श्रद्धानन्द पब्लिकेशन्स लिमिटेड

आज इस प्रकाशन संस्था के तत्वावधान में

★ दैनिक वीर अर्जुन
★ मनोरंजन मासिक
★ सचित्र वीर अर्जुन साप्ताहिक
★ विजय पुस्तक भण्डार
★ अर्जुन प्रेस

संचालित हो रहे हैं। यह प्रकाशन संस्था सुदृढ़ आर्थिक स्थिति की है।

अधिकृत पूंजी ५,००,००० **प्रस्तुत पूंजी २,००,०००**

गत वर्षों में इस संस्था की ओर से अपने भागीदारों को अब तक इस प्रकार लाभ बांटा जा चुका है

सन् १९४४	१० प्रतिशत
सन् १९४५	१० प्रतिशत
सन् १९४६	१५ प्रतिशत

१९४७ में कम्पनी ने अपने भागीदारों को १० प्रतिशत लाभ देने का निश्चय किया है!

आप जानते हैं?

* इस कम्पनी के सभी भागीदार मध्यम वर्ग के हैं और इसका संचालन उन्हीं लोगों द्वारा होता है।
* 'वीर अर्जुन' वर्ग के पत्रों की सम्पूर्ण शक्तियां अब तक राष्ट्र की आवाज को सफल बनाने में लगी रही हैं।

आपभी इस संस्था के भागीदार बन सकते हैं।

और

* इस प्रकाशन संस्था के संचालक वर्ग में सम्मिलित हो सकते हैं।
* राष्ट्र की आवाज को सबल बनाने के लिए इन पत्रों को और अधिक मजबूत बना सकते हैं।
* अपने धन को सुरक्षित स्थान में लगा कर निश्चित हो सकते हैं।
* आप स्थिर आय प्राप्त कर सकते हैं।

इस संस्था का प्रत्येक शेयर दस रुपये का है। आप भागीदार बनने के लिये आज ही आवेदन-पत्र की मांग कीजिये।

श्री श्रद्धानन्द पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली।

वर्ष १ संख्या ८

मनोरंजन

मई १९४८

दिल्ली

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

सम्पादक
श्री चिरंजीत

इस अंक में

कविता

कहानी

लेख

विशेष स्तम्भ

मूल्य आठ आने

वार्षिक मूल्य ५॥)

गीत

श्री उदयशंकर भट्ट

मुझे तुम्हारा बन्धन भी प्रिय।
छवि से प्राण जुड़ा पाऊं तो मुझे नरक का क्रन्दन भी प्रिय।

चुंबित-चरण चेतना पीकर मेरे सब विश्वास खो गये,
पतझड़ की पीड़ा के धूमिल क्षण मादक मधुमास हो गये।
ले छवि-बिन्दु क्षार सागर की सीपी ने मोती उगले हैं,
जीवन-यति ने स्मय-सुख पीकर पीड़ा के पावक निगले हैं।
मुझे अमृत मिस विष उड़ेलते इन नयनों का वन्दन भी प्रिय।
मुझे तुम्हारा बन्धन भी प्रिय।

नाप-नाप पद-तल से जीवन घूम रही पृथिवी बन्धन में,
ज्योति-पुंज प्राणों के धन से घूम रहे नक्षत्र गगन में।
संध्या, उषा, निशा, रवि, शशि औ' ऋतु-पति बन्धन में चलते हैं,
कुसुमाकर की सांस-सांस में यौवन के निर्झर पलते हैं।
स्मय की किरण-धार बरसो तो मुझे गरलमय चन्दन भी प्रिय।
मुझे तुम्हारा बन्धन भी प्रिय।

कौन काल-दामिनि के पट पर चरणांकन कर गया चितेरा?
इन्द्र-धनुष के बहुरंगे चित्रों से हृदय भर गया मेरा?
कौन कुसुम की यौवन-स्मिति पर मन्द चरण धर नाच रहा है?
कौन लहर की स्फटिक-बिन्दु में क्षर-क्षर अक्षर बांच रहा है?
रस-कादम्ब-बिन्दु भी दो तो मुझे मरण निःस्पन्दन भी प्रिय।
मुझे तुम्हारा बन्धन भी प्रिय।

वीतरागी

लेखक
श्री उपेन्द्रनाथ
'अश्क'

चेतन के बड़े भाई रामानन्द को मां ने यों ही 'बुढ़ऊ' * की उपाधि न दे रखी थी। चेतन के बाबा उनके विषय में कहा करते थे — "इसके सामने घी का घड़ा भी लुढ़क रहा हो तो यह कान तक न फड़के!" घर के सुख-दुख तो दूर रहे, अपनी परेशानियां भी उन्हें छू न पाती थीं। पिता की डांट-डपट और मार-पीट, मां के गिले-शिकवे और कोसने-उलाहने, पत्नी के ताने मेहने और रोना-रूठना — कोई वस्तु कभी उनकी उदासीनता को भंग न कर पाती। एक विचित्र ढंग की, शुष्कता की सीमा को पहुँची हुई, वीतरागता उनकी आकृति से सदैव टपका करती।

यह वीतरागता उस ढीठपने ही का दूसरा रूप थी जो प्रायः रोज-रोज की डांट-डपट या मार-पीट के कारण बच्चों में पैदा हो जाया करती है। चेतन के ये बड़े भाई न केवल बचपन में ही अधिक पिटे थे, वरन् युवावस्था में भी उनकी खूब 'आव-भगत' हुई थी। बचपन में पिता की निर्दयता के भय से मां ने उन्हें अपने पीहर भेज दिया था। वहां मार-पीट से तो मुक्ति मिल गई, किन्तु नानी सौतेली थीं, इसलिए डांट-डपट, ताने-मेहने आठों पहर उनके गले का हार रहे। चेतन के पिता रेलवे में थे। जब वे 'रिलीविंग' में हुए, मां ने सब बच्चों को जालन्धर दाखिल करा दिया और नानी इस 'डहूस' × से तंग आ गई तो मां ने भाई साहब को भी जालन्धर बुलवा लिया। यहां नानी के सौतेले व्यवहार और नाना की रूखी-फीकी डांट-डपट से पिंड छूटा तो पिता के तूफानी दौरे और तूफानी मार-पीट

* बुढ़ऊ–बड़ा, जो मात्र नाम का ही बड़ा हो और वैसे बड़प्पन का कोई गुण उसमें न हो।
× डहूस–बैल जैसा मनुष्य, कम-अक्ल।

से पाला पड़ने लगा। चेतन के पिता पं० शादीराम किसी दूरस्थ स्टेशन से किसी दूरस्थ स्टेशन को (छुट्टी पर जाने वाले किसी स्टेशन मास्टर का स्थान लेने को) जाते हुए जालन्धर से गुजरते और अपने इस आगमन की स्मृति के रूप में अपने इस बड़े लड़के को सौ-पचास थप्पड़ और दस-बीस पटखनियां दे जाते।

चेतन या उसके छोटे भाइयों की अपेक्षा उसके बड़े भाई ही क्यों अधिक पिटते? इसका कारण सम्भवतः उन दो उपाधियों में निहित है जो मां और नानी ने उन्हें दे रखी थीं—'बुद्धू' और 'डहूस!'

वे बड़े थे, इसलिए शायद पंडित जी की दृष्टि सबसे पहले उन्हीं पर पड़ती और प्रायः उन्हें ही पंडित जी अपनी 'कृपाओं' का पात्र बनाते।

या फिर नानी की उपाधि के अनुसार उन्होंने ऐसा मन-मस्तिष्क और शरीर पाया था कि न उन पर उस मार-पीट का प्रभाव पड़ता और न वे इससे बचने का उपाय ही सोच पाते। पंडित शादीराम भी, जिन्हें मार-पीट की कला में अपूर्व दक्षता प्राप्त थी, कई बार अपने बड़े बेटे की सहनशीलता से हार कर कह उठते—"पीटते-पीटते मेरे हाथ दुखने लगते हैं, लेकिन इस डहूस के कान पर जूं भी नहीं रेंगता।"

पंडित जी साधारणतया पढ़ाई के सिलसिले ही में पीटते। यदि वे अपने किसी बेटे के हाथ में पुस्तक देख लेते तो पहले मामूली तौर पर, बड़े स्नेह से, हंसते-हंसते पुस्तक लेकर उसके दो-चार पृष्ठ उलटते। फिर सहसा उसकी परीक्षा लेने के लिए (जैसी भी पुस्तक हो, उसके अनुसार) कोई अंग्रेजी, गणित, भूगोल या इतिहास का प्रश्न पूछ बैठते। यदि उत्तर ठीक होता तो लड़के की पीठ ठोंकते, उसे उठा कर चूम लेते और प्रसन्नता से उसके भविष्य के सम्बन्ध में कई उत्साह-भरी भविष्यवाणियां करते हुए अपने उस जोश में और भी कठिन प्रश्न पूछते। परिणाम सदैव ठुकाई होता।

चेतन भी बचपन में दो-तीन बार पिटा था, इस बुरी तरह कि वह बहुत देर तक बीमार रहा था; किन्तु बचपन में पिटा सो पिटा, उसके पश्चात् यथाशक्ति उसने ऐसा अवसर न आने दिया। वह सदा उनकी मार-पीट से बचने, उनके सामने न पड़ने, जिस समय वे घर में हों, उस समय घर से बाहर गायब हो जाने के बीसों बहाने सोच लेता।

किन्तु चेतन के ये बड़े भाई (यों चाहे सारा दिन उपन्यास पढ़ते या आवारा-गर्दी करते) जब पंडित जी घर आते तो तुरन्त पुस्तकें ले बैठते। न केवल वे घर से गुम रहने या पंडित जी के समक्ष जाने से बचने के उपाय न सोचते, वरन् जब पंडित जी घर आते तो वे सदैव घर ही में बने रहते—सम्भवतः अपनी आवारा-गर्दी छिपाने और पढ़ने में अपनी निष्ठा उन्हें बताने के लिए। फिर चेतन और उसके छोटे भाई की-सी सतर्कता और चाबुकदस्ती भी उनके यहां न थी। वे न हाजिर-

जवाब थे, न जल्दी बहाने सोच सकते थे। पिटने पर भी वे सदा अपने पिता के साथ चिपके रहते और इसी लिए प्रायः घर तो घर, बाजार में भी वे पिटते।

पंडित जी पुस्तक देख कर ही प्रश्न पूछते हों, यह बात न थी। कई बार सहसा वे ऐसे समय और ऐसा प्रश्न पूछते जिसकी रत्ती भर भी सम्भावना न होती।

एक बार वे एक दावत के सिलसिले में थानेदार के यहां जा रहे थे। पूर्ववत् भाई साहब साथ थे। सहसा एक सिगनल की ओर संकेत करके उन्हों ने पूछा—"इसे अंग्रेजी में क्या कहते हैं?"

भाई साहब ने तुरन्त उत्तर दिया—"सिंगल।"

और तड़ से एक थप्पड़ उनके मुंह पर पड़ा—"साले, यह पंजाबी भाषा का नहीं, अंग्रेजी का शब्द है। स्टेशन मास्टर का लड़का होकर गंवारों की भांति 'सिंगल सिंगल' बके जा रहा है।"

दो और थप्पड़ जड़ते हुए उन्होंने ऐसे ही और शब्द पूछे। थानेदार बेचारे बढ़िया पुरानी देशी शराब रखे उनकी प्रतीक्षा करते रहे, किन्तु पंडित जी भाई साहब की मरम्मत करते हुए रास्ते से ही लौट आये।

चीचोकी मलियां स्टेशन के सामने एक मिल्ट्री का डिपो था। चेतन के बड़े भाई उस समय आठवीं श्रेणी में पढ़ते थे और चेतन छटी में। वह पहली बार अपने बड़े भाई के साथ चीचोकी मलियां आया था। एक दोपहर जब अपने पिता के साथ वे दोनों डिपो के सामने से जा रहे थे, चेतन ने सहसा प्रश्न किया—"यह बैरक-सा क्या है, भरा जी?"

भाई साहब ने बोर्ड पढ़ते हुए बताया—"चीचोकी मलियां, मिल्ट्री डिपोट···"

अभी उन्होंने वाक्य पूरा भी न किया था कि पूरे जन्नाटे के साथ थप्पड़ उनकी कनपटी पर पड़ा और उनकी आंखों के आगे तारे नाचने लगे—"आठवीं श्रेणी में पढ़ता है और यह भी मालूम नहीं कि शब्द 'डिपो' है 'डिपोट' नहीं।"

और पंडित जी ने कांटे वाले से वहीं कुर्सी मंगवाई और भाई साहब से पुस्तक लाने को कहा। चेतन पानी पीने के बहाने खिसक गया। पीछे भाई साहब की [illegible] दशा हुई उसका अनुमान लगाया जा सकता है।

मैट्रिक तक मार-पीट के बल पर किसी न कि[illegible] भांति पढ़ कर भाई साहब कालेज में दाखिल [illegible] होगए; किंतु परीक्षा में सफल होना उन्होंने उतना आ[illegible]श्यक नहीं समझा। वे अंग्रेजी में भी कमजोर थे; कि[illegible] संस्कृत से तो जैसे उनके प्राण जाते थे। यह बात [illegible] कभी न समझ पाते थे कि यह क्लिष्ट भाषा, जो [illegible] किसी सरकारी नौकरी में काम आती है, न व्यापारि[illegible] दफ्तर में, जो आर्यों के समय में भी जनसाधारण [illegible] भाषा न थी, आजकल क्यों पढ़ाई जाती है? क[illegible] जरूरत है कि संस्कृत या अरबी-फारसी में से ए[illegible] विषय अवश्य लिया जाए? इसके स्थान पर को[illegible] ललित-कला या शिल्प की शिक्षा क्यों नहीं दी जाती[illegible] और एक दिन गर्मी की छुट्टियों से पहले तीन महीने [illegible] फीस लेकर वे दिल्ली भाग गए थे। दुर्भाग्य से पंडि[illegible] शादीराम के एक पुराने मित्र ने उन्हें देख लिया औ[illegible] इस प्रकार भाई साहब को न केवल विवश होकर लौ[illegible] आना पड़ा, बल्कि उसी कालेज में फिर से शिक्षा पा[illegible] के लिए बाध्य होना पड़ा।

पिता की कठोरता से भाई साहब घबराए नहीं। म[illegible] के भय से कालेज में वे प्रविष्ट तो हो गए, किन्तु क्ला[illegible] में बैठ कर प्रोफेसरों के शुष्क लैक्चर सुनने की अपे[illegible] कालेज के सुहाने उपवन में किसी घने वृक्ष की छा[illegible] में बैठ कर नित्य नये मनोरंजक उपन्यास पढ़ने लगे[illegible] ये सब उपन्यास भाई साहब 'महन्तराम बुक सैलर' [illegible] दुकान से दो पैसे प्रतिदिन के हिसाब से किराये पर [illegible] आते। महन्तराम की दुकान भैरों बाजार में थी औ[illegible] उसमें फजल बुक डिपो लाहौर से लेकर नवलकिश[illegible] प्रेस लखनऊ तक सभी प्रकार की संस्थाओं से छपी [illegible] पुस्तकों के ढेर लगे रहते थे। भाई साहब ये राशि-रा[illegible] पुस्तकें दीमक की भांति चाट गए थे और साहित्य के [illegible] महान् कोष को चाट जाने पर भी वे दीमक की भां[illegible] कोरे के कोरे थे।

उपन्यास वे केवल मन-बहलाव या समय का[illegible] के लिए पढ़ते थे, **मनन-चिन्तन के लिए नहीं।** इ[illegible]

लिए जिस उल्लास और उत्सुकता से वे 'बेगुनाह कैदी,' 'नीली छतरी,' 'बहराम डाकू,' 'चन्द्र कान्ता संतति,' 'भोलानाथ' और तीरथराम फिरोजपुरी के अनुवाद आदि पढ़ गए थे, उतने ही आनन्द से वे बंकिम चन्द्र, टैगोर, शरत् और प्रेमचन्द के उपन्यास भी निगल गए थे।

परिणाम वही हुआ जिसकी उन्हें आशा थी। उनके लैक्चर कम हो गए और यद्यपि पंडित शादीराम ने प्रोफेसरों को रिश्वत देने का प्रयास किया और दूसरे विषयों में किसी न किसी प्रकार भाई साहब के लैक्चर पूरे भी हो गए; किन्तु संस्कृत के प्रोफेसर को वे किसी भांति राम न कर पाए। भाई साहब परीक्षा में न बैठ सके और जब एक बार नहीं बैठे तो फिर नहीं बैठे।

कालेज से पिंड छूटा तो भाई साहब ने जीविकोपार्जन की चिन्ता करने की अपेक्षा ताश और शतरंज को अपना साथी बनाया। इसमें कुछ उनका दोष था, कुछ उनके पिता का। जब भाई साहब दिल्ली से आ गए तो मां के परामर्श से पंडित जी ने इस चंचल 'बोते' (ऊंट) को बांधने के विचार से उसकी नाक में नुकेल डालना आवश्यक समझा। अपने एक स्टेशन मास्टर मित्र की लड़की से उनकी सगाई कर दी। जब भाई साहब परीक्षा में बैठने के स्थान घर बैठ गए तो उन्हें किसी काम पर लगाने या कोई कला-कौशल सिखाने के बदले पंडित जी ने उनकी शादी कर दी।

इसके पश्चात्, यद्यपि दूसरे वर्ष भाई साहब ने कालेज जाने से साफ इनकार कर दिया, तो भी पंडित जी को उन्हें नौकर कराने की चिन्ता नहीं हुई। एक बार मां के अनुरोध से तंग आकर वे उन्हें आडिट आफिस में अपने एक मित्र के पास अवश्य ले गए, किन्तु जब उसने उन्हें केवल पैंतीस रुपये मासिक पर 'आफिस ब्वाए' रखने से अधिक कुछ करना स्वीकार न किया तो पंडित जी ने अपने इस मित्र को बीसियों गालियां दीं और कहा—"पैंतीस रुपये तो मैं रोज शराब पर खर्च कर देता हूँ।"

और अपने इस थर्ड डिविजन मैट्रिक-पास सुपुत्र को लेकर चले आएँ।

फिर यद्यपि पंडित जी ने उनकी नौकरी लगाने के हेतु फिरोजपुर, लाहौर और दिल्ली जाने के लिए चेतन की मां से कई बार रुपये लिए; किन्तु वे बाजार शेखां के शराब के ठेकेदार की दुकान तक होकर ही लौट आए।

रहे भाई साहब। तो उन्होंने अपने लिए एक माटो बना रखा था—'सोचो मत।' इसी माटो पर अक्षरशः चलने का ही परिणाम था कि इस बेकारी और बेरोजगारी के बावजूद उनके एक लड़का और दो लड़कियां हो गई थीं। एक मर चुकी थी और दूसरी को उनकी पत्नी कूल्हे से लगाए फिरती थी और वे स्वयं अपने इन बीवी-बच्चों को पालने के लिए कहीं नौकरी ढूंढने की बात एक दम भुलाए गुलछर्रे उड़ा रहे थे। जब कभी मां या पत्नी घर में उनका दम नाक में कर देतीं और ऐसे तीखे व्यंग्य-बाण छोड़तीं कि भाई साहब सोचने को विवश हो जाते तो वे आंगन में किसी औंधी बाल्टी पर या दरवाजे की किसी चौखट में कुछ क्षणों के लिए घुटनों पर कुहानियां टिकाए, हथेलियों पर ठोड़ी रखे अतीव एकाग्रता से सोचने की मुद्रा बना कर बैठ जाते। सम्भवतः वे सोचना भी चाहते, किन्तु इस क्षेत्र में वे अपने आप को सदैव उस खिलाड़ी-सा पाते जिसे खेल का आरम्भिक ज्ञान भी न हो। कुछ क्षण इसी मुद्रा में बैठे रहने के पश्चात् सहसा सिर को झटक कर उठते और सरदार नन्दासिंह सोडावाटर वाले की दुकान या पं० बनवारीलाल सूत वाले की दुकान पर जाकर किसी ताश या शतरंज की टोली में सम्मिलित हो जाते। धीरे-धीरे वे इस मैदान में अपना स्थान बना लेते। ताश और शतरंज में उनकी अपूर्व प्रतिभा के सम्मान में कोई न कोई उनको अपना स्थान दे देता और फिर एक बार जूते एड़ियों से ठकोर कर झाड़ने के पश्चात् वे जम कर जो बैठते तो दूसरों को अपनी योग्यता का लोहा मनवाये बिना न उठते।

किन्तु चेतन की मां अपने इस बेटे की बेकारी और अकर्मण्यता और उसकी बहू के कर्कश झगड़ालू स्वभाव से अत्यन्त दुखी थी। जब अपने सुपुत्र को काम में लगा देखने के लिए पिता की समस्त चेष्टाएं शराब-

खाने तक जाकर ही समाप्त हो गईं तो मां ने कहीं से ऋण लेकर उसे एक लांडरी खोल दी।

बात वास्तव में यों हुई कि भाई साहब के प्रिय मित्र सरदार नंदासिंह सोडावाटर वाले की दुकान पर, जहां शीतकाल में सोडे का बाजार ठण्डा और शतरंज की महफिल गर्म रहती थी, फिरोजपुर से एक व्यक्ति आया जो शतरंज का जबरदस्त खिलाड़ी था। उसने पहली ही बैठक में भाई साहब को, जो उस इलाके में शतरंज के चैम्पियन माने जाते थे, निरन्तर कई बार मात दे दी।

जब बिसात उठी तो एक सच्चे खिलाड़ी की भांति भाई साहब ने उसके खेल की भूरि-भूरि प्रशंसा की और लेमोनेड की एक बोतल खोलते हुए उसे दूसरे दिन के लिए आमंत्रित किया। तब उसने बताया कि वह तो काम की खोज में जालन्धर आया है। उधर से निकला था, शतरंज बिछी देख कर बैठ गया; वर्ना उसे तो काम-धन्धा ढूंढना है। भाई साहब का कौतूहल बढ़ा और वे उसे उसके अड्डे—स्टेशन की सराय तक छोड़ने गए। बातों-बातों में उन्हें यह भी ज्ञात हो गया कि उसका नाम राजाराम है। वह लांडरी के काम में निपुण है। धोने और रंगने में दाग्राबा भर में उसका कोई सानी नहीं। किसी समय फिरोजपुर ही में उसकी लांडरी थी, किन्तु १९२१ के असहयोग आंदोलन में वह जेल चला गया और उसकी लांडरी चौपट हो गई। जेल में उसने दो चीजें सीखीं—एक शतरंज, दूसरे राष्ट्रीय कविता। भाई साहब को उसने अपनी कई कवितायें सुनाईं और यह भी बताया कि वह प्रसिद्ध रंगने वाला और ड्राई-क्लीनर होने के साथ-साथ ही ख्यातिप्राप्त राष्ट्रीय कवि भी है। एक बार लांडरी के टूटने पर उसने कई बार पुनः लांडरी स्थापित करने की चेष्टा की, पर उसे सफलता नहीं मिली। अब फिरोजपुर छोड़कर वह जालन्धर आया है कि यदि कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए जो थोड़ी बहुत पूंजी लगाने को तैयार हो तो साझे में लांडरी खोले।

शतरंज के इस कुशल खिलाड़ी और राष्ट्रीय कवि के दुर्भाग्य से भाई साहब को बड़ी सहानुभूति हुई; किन्तु शतरंज और ताश की चैम्पियनाशिप के अतिरिक्त उनके पास कुछ न था। फिर भी उन्होंने उसे दूसरे दिन आने के लिए कहा और सान्त्वना दी कि वे उसके लिए कुछ न कुछ प्रबन्ध अवश्य करेंगे।

उस दिन दिये जले जब चेतन घर आया तो उसने देखा कि मां बर्तन मल रही है और उनके पास ही एक औंधी बाल्टी पर बैठे हुए भाई साहब लांडरी के काम की प्रशंसा के पुल बांध रहे हैं—"हींग लगे न फटकरी, रंग चोखा आये। कपड़े लोगों के और धोने वाले धोबी; लांडरी वाले को तो मुफ्त में लाभ हो जाता है। कोई ही ऐसा बिजनेस होगा जो इतनी कम पूंजी से आरम्भ किया जा सके।"

चेतन उस समय जल्दी में था, इसलिए उसने भाई साहब की पूरी बात नहीं सुनी; किन्तु उस दिन के पश्चात् उसने देखा कि लांडरी के काम में भाई साहब का उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। दिन का पर्याप्त समय वे घर में ही रहने लगे हैं। जितना समय वे घर पर रहते हैं, मां को लांडरी के काम के लाभ समझाते रहते हैं......

एक दिन भाई साहब कह रहे थे — "यदि मैं ताश और शतरंज में व्यर्थ समय नष्ट करता रहा तो इसमें मेरा क्या दोष है? मुझे किसी ने कोई कला-कौशल सिखाया ही नहीं। मैं दिल्ली भाग गया था; यदि मुझे वहां से वापस न बुलाते तो मैं अब तक बड़ा प्रसिद्ध पेंटर हो गया होता। अब भी यदि मैं लांडरी का काम सीख जाऊं तो न केवल अपना, बल्कि सारे परिवार का बोझ अपने कन्धों पर उठा लूं।"

मां बहुत प्रसन्न हुई कि अन्त में सुबह का भूला शाम को घर आ गया है। उसी दिन से वह इस बात की चेष्टा करने लगी कि अपने इस बेटे को किसी न किसी प्रकार लांडरी के लिए रुपये इकट्ठे कर दे। सुयोग भी आ उपस्थित हुआ। पंडित शादीराम को उन दिनों सट्टे की नई-नई लत लगी थी। दुनिया भर के साधु-सन्तों, पीरों-फकीरों की सेवा-शुश्रूषा के पश्चात् वे इसी व्यसन के कारण खासे ऋणी भी होगए थे। तभी उन्हें जालन्धर छावनी के एक पहुंचे हुए ज्योतिषी

का पता चला । बस वे पन्द्रह दिन की छुट्टी लेकर जालन्धर आ पहुँचे । जालन्धर से छावनी और छावनी से जालन्धर बीसियों चक्कर काटने और उन ज्योतिषी जी की चौखट पर माथा रगड़ने के पश्चात् उन महाराज के दर से उन्हें 'दड़े' का एक नम्बर मिला और इसे भाई साहब का भाग्य कहिए या उनके फिरोजपुरी मित्र का कि वह नम्बर आ गया और पंडित जी को साढ़े तीन हजार रुपये मिल गए।

शतरंज का चैम्पियन

यद्यपि उस समय पंडित जी के सिर पर लगभग इतना ही ऋण था और मां की इच्छा थी कि परमात्मा ने जब उनको सुअवसर दिया है तो उन्हें इससे पूरा लाभ उठा कर सट्टे को सदैव के लिए नमस्कार कर देना चाहिए; किन्तु पंडित जी अपने भगवान को इतना कृपण न समझते थे। पत्नी के उपदेश भरे परामर्श के उत्तर में — 'भगवान तेरी लीला अपरम्पार है' का नारा बुलन्द करते हुए उन्होंने कहा — "जिस भगवान ने एक बार दिया है वह फिर क्यों न देगा ?" और केवल डेढ़ हजार का ऋण उतारा। फल, मिठाई, कपड़ों और रुपयों का एक थाल ज्योतिषी जी के घर पहुँचाया और शेष रुपया अस्सी-नव्वे प्रति दिन के हिसाब से सट्टे पर लगाते रहे। यों सारा रुपया फिर ठिकाने लगा कर, डेढ़ हजार का फिर साढ़े तीन हजार ऋण बना कर वे फिर अपने स्टेशन पर चले गए।

मां ने भाई साहब की प्रेरणा और सहायता से जैसे-तैसे उस रुपये में से तीन-चार सौ बचा लिया था। दो-तीन सौ कहीं से उधार लिया और लांडरी खोलने की व्यवस्था कर दी।

उन दिनों भाई साहब का उत्साह अपने शिखर पर था। उनके पांव धरती पर न पड़ते थे। तमतराक से उन्होंने अड्डा होश्यारपुर पर एक तबेला किराये पर लिया। कपड़े धोने के लिए घाट बनवाए और बड़े-बड़े विज्ञापनों के साथ, जिनमें उनके मित्र फिरोजपुरी राष्ट्रीय कवि ने कविताओं में लांडरी के गुणों का बखान करने में बड़ी उदारता से काम लिया था, 'भारत लांडरी वर्क्स' की घोषणा कर दी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस लांडरी में राष्ट्रीय

कवि बराबर के साझीदार थे।

लांडरी खोलने में भाई साहब ने इतनी निष्ठा और लग्न का परिचय दिया कि चेतन को आप से आप उनकी सहायता के लिए तैयार होना पड़ा। अपने कालेज के होस्टल, स्कूल के होस्टल, — अपने कालेज और स्कूल ही के नहीं, वरन् अपने मित्रों की सहायता से दूसरे स्कूलों के होस्टलों से भी उसने 'भारत-लांडरी' के लिए कपड़े लाने का प्रबन्ध कर दिया।

पीतल की बड़ी-बड़ी इस्त्रियां खरीदी गईं, तांबे के बड़े-बड़े तबलबाज लाए गए, शो-केस बनवाए गए और बड़े धड़ल्ले से लांडरी का काम चलने लगा। भाई साहब ने रंगाई और धुलाई का काम सीखने में रत्ती भर भी आलस्य नहीं दिखाया। चेतन ने यह भी देखा कि जब धोबी न होते या दूसरा काम कर रहे होते तो भाई साहब स्वयं ही इस्त्री लेकर कपड़ों के ढेर के ढेर प्रेस कर देते।

भाई साहब की इस काया-पलट पर चेतन मन ही मन चकित हुआ करता और उसे किसी प्रसिद्ध दार्शनिक का यह कथन स्मरण हो आता—'मनुष्य का मन एक अथाह समुद्र है। इसके गर्भ में क्या है, यह सतह को देख कर नहीं जाना जा सकता।' और मां नित्य पूजा के समय भगवान से कहती — "हे भगवान, जैसे तूने मेरी सुनी, वैसे ही सब की सुन!"

कुछ महीनों तक मजे से काम चलता रहा। फिर क्या हुआ, कैसे हुआ, चेतन को कुछ भी ज्ञात नहीं; किन्तु जहां-जहां से उसने कपड़े लाकर दिए थे, वहां-वहां से उसके पास निरन्तर शिकायतें पहुंचने लगीं। उसके एक मित्र ने उलाहना दिया कि तीन सप्ताह तक उसे कपड़े नहीं मिले और जब वह लांडरी में गया तो धोबियों ने उसके कपड़े पहन रखे थे। एक दूसरे ने शिकायत की कि उसने अपनी बहिन की जो साड़ी रंगने के लिए दी थी, जब वह लेने गया तो उसे कोई दूसरी साड़ी मिली। उसने अपनी साड़ी के लिए तगादा किया तो भाई साहब और उनके मित्र उससे लड़ने पर उतारू हो गए कि रंगने के पश्चात साड़ी वैसी ही कैसे रह सकती है। चेतन का मित्र पूछ रहा था —"रंगने के पश्चात साड़ी का रंग तो बदल सकता है, किन्तु साड़ी किस रासायनिक-क्रिया से बदल गई?"

उन दिनों चेतन परीक्षा की तैयारी कर रहा था। जब इन शिकायतों, उलाहनों और अभियोगों में प्रति दिन वृद्धि होने लगी और सब ओर त्राहि-त्राहि मच गई तो एक दिन अपनी पुस्तकों को पटक कर वह लांडरी पहुंचा। तब उसने देखा कि कपड़ों और उनके झमेलों से मुक्त होकर तबेले के घने पीपल की छाया के नीचे भाई साहब अपने उस फिरोजपुरी मित्र के साथ बिसात बिछाए बैठे हैं और उसे मात पर मात दे रहे हैं—नन्दासिंह की दुकान पर उसने जो शिकस्त दी थी उसका भरपूर बदला चुका रहे हैं......

चेतन बोला, बका। भाई साहब ने लांडरी का काम देखने का वचन भी दिया; किन्तु दशा सुधरने के बदले प्रति दिन बिगड़ती ही गई। अन्त में एक दिन उसने सुना कि भाई साहब लांडरी को उसके भाग्य पर छोड़ कर कांग्रेस के डिक्टेटर हो गए हैं।

भाई साहब ने अपने उस फिरोजपुरी मित्र से जहां लांडरी के लाभ सुन रखे थे, वहां कारावास के राजनीतिक-जीवन के विषय में भी बहुत-सा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। बड़े-बड़े नेता पकड़े जा चुके थे। इसलिए जो भी नेता बनने और जेल जाने को तैयार होता, डिक्टेटर बन सकता था। घर में मां और पत्नी के कोसने, लांडरी में धोबियों और ग्राहकों के तगादों और दूसरे व्यावसायिक झगड़ों से भाई साहब का जीवन इतना कटु हो गया था कि उन्हें जेल की कोठड़ी कहीं अधिक लुभावनी लगती थी। शतरंज के उस फिरोजपुरी चैम्पियन की चालें देखने और उसे मात देने के लिए जिस उत्कंठा ने भाई साहब को अचेतन मन में इतना बड़ा उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने और नीच जात का काम करने के लिए उकसाया था, वह यह जान कर शान्त हो गई थी कि आखिर उसकी गढ़-रचना कोई ऐसी दुर्जय नहीं और वे अनायास ही उसकी ईंट से ईंट बजा सकते हैं। जब उन्होंने फिरोजपुर

(शेष पृष्ठ ५८ पर)

क्या तीसरा महायुद्ध निकट भविष्य में सम्भव है ?

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

एक ही प्रश्न, एक ही बात सब की जबान पर है—क्या तीसरा विश्व-व्यापी महायुद्ध निकट भविष्य में छिड़ने वाला है? बड़ी मूछों वाला रूस का लोह-पुरुष क्या विश्व को पुनः युद्ध की लपटों में झोंकने वाला है? क्या पूंजीवादी जनतन्त्र और कम्युनिज्म के बीच टक्कर अनिवार्य है? क्या ये दोनों प्रणालियां दुनिया में एक साथ नहीं रह सकतीं? ट्रूमैन और स्टालिन क्या दुनिया की सुख-शान्ति का अन्त करके ही दम लेंगे?—ये प्रश्न हैं जो आज प्रत्येक मन में उठते हैं और इनका उत्तर भी प्रत्येक व्यक्ति अपने दृष्टिकोण, अपनी पूर्व-धारणाओं और अपने हितों के अनुसार देता है। पर ठीक ठीक और सही सही उत्तर देना कठिन है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भविष्य-वाणी करना खतरे से खाली नहीं है।

लड़ाई बन्द नहीं हुई

हिटलर का अन्त हो गया, मुसोलिनी अस्त हो गया, जापान ने घुटने टेक दिये; पर लड़ाई अभी बन्द नहीं हुई। विराम-सन्धि पर दस्तखत हुए तीन साल होने वाले हैं, पर अभी तक जर्मनी और जापान के साथ शान्ति की सन्धि नहीं हुई है और न विजेता राष्ट्र अभी तक इनके भावी भाग्य का निश्चय ही कर सके हैं। जर्मनी और जापान के भाग्य का इतने मास तक अनिश्चित और अनिर्णीत रहना ही विजेता राष्ट्रों के आपस में लड़ने का एक बड़ा हेतु बन रहा है। इसके अतिरिक्त, फिलस्तीन में अरबों और यहूदियों के बीच चल रही लड़ाई, चीन के अन्दर कम्युनिस्टों और कयुमिगटांग पार्टियों के बीच चल रहा संग्राम, हिन्द-चीन में फ्रेंचों और वीटनाम के बीच चल रहा संघर्ष और हिन्देशिया में डचों और जोगजकार्ता की रिपब्लिक के बीच चल रही नोक-झोंक, भारत के अन्दर काश्मीर का युद्ध, और भारत और पाकिस्तान के बीच एंग्लो-अमरीका की कृपा पाने की होड़—ये सब ऐसी चिन-गारियां हैं, जो कभी भी प्रज्वलित होकर सारे विश्व को अपनी प्रचण्ड ज्वालाओं में लपेट सकती हैं। इसलिए इन खतरे के स्थानों को देखते हुए यह कैसे कोई कह सकता है कि विश्व-शांति खतरे में नहीं है?

विश्वास शिथिल हो गया है

अमरीका के युद्धकालिक परराष्ट्रमन्त्री काडैल हल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि १७७६ में अमरीका ने एक नवीन शासन-प्रणाली को जन्म दिया और जनतन्त्र तथा रिपब्लिक की स्थापना की। दुनिया के अन्य देशों को यह नवीन शासन-तन्त्र पसन्द आया। अमरीकी राज्य-क्रांति के पचास साल बाद यूरोप से राजमुकुटों का अन्त होने लगा। आज १७२ साल बाद हम क्या देखते हैं? दुनिया के प्रायः सभी देशों से, एक दो को छोड़कर, राजतन्त्र का अन्त हो

रूस के अधिनायक मार्शल स्टालिन

उसके चार्टर पर जब विजयी राष्ट्रों ने दस्तखत किए, तब विश्व में नूतन आशा का संचार हुआ, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में विश्वास बढ़ा। अन्तर्राष्ट्रीय हवाई कान्फ्रेंस में रूस सम्मिलित हुआ। पर इसके बाद से रूस पुनः किसी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक और सामाजिक परिषद, सम्मेलन और कान्फ्रेंस में सम्मिलित नहीं हुआ। रूस ने आर्थिक दृष्टि से अपने को सब से अलग रखना पसन्द किया। यह इस बात का चिह्न है कि सोवियत रूस को अपनी शासन-प्रणाली की अन्तर्निहित व आंतरिक शक्ति पर विश्वास नहीं है। संयुक्त-राष्ट्र-संघ के सेक्रेटरी-जनरल ट्रीगवेली का कहना है कि इस सत्य को नहीं छिपाया जा सकता कि संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रतिष्ठा बहुत कुछ नष्ट हो गई है। इस प्रतिष्ठा के नष्ट हो जाने का बड़ा कारण बड़े पांच राष्ट्रों का दोष है। विश्व-शांति का आधार संयुक्त राष्ट्र-संघ है। इसकी सफलता का आधार पांच बड़े राष्ट्रों की सहमति और उनका परस्पर सहयोग से काम करना। पर आज इन पांच राष्ट्रों में ही सहयोग नहीं है। ये बड़े राष्ट्र ही दो ब्लाकों, दो गुटों और दो दलों में बंटे हुए हैं। फलतः दुनिया भी

गया है और जनतन्त्र की स्थापना हो गई है। अमरीका ने इसके लिये किसी को सक्रिय सहायता नहीं दी। इसी प्रकार यदि सोवियत रूस के कम्युनिस्ट शासन-प्रणाली के अन्दर आन्तरिक शक्ति होती, तो मास्को के प्रचार के बगैर ही दुनिया उसको अपना लेती; रूस को उसकी स्थापना के लिये शस्त्र लेने की आवश्यकता न होती। हां, यदि सोवियत रूस का ही अपनी शासन-प्रणाली की अच्छाई और कार्यक्षमता में विश्वास शिथिल हो गया, तो रूस शान्ति का पथ छोड़ देगा और अपने सिद्धान्तों और अपनी शासन-प्रणाली का विस्तार और प्रसार विमानों और मशीनगनों की सहायता से करेगा। संयुक्त-राष्ट्र-संघ की स्थापना और

दो ब्लाकों में और दो दलों में बंट गई है। मार्शल योजना ने राजनीतिक दृष्टि से विभक्त यूरोप को आर्थिक दृष्टि से भी दो भागों में विभक्त कर दिया है। फलतः विश्व-शांति में मानव-समाज का विश्वास शिथिल हो गया है।

बादल गर्ज रहे हैं !

युद्ध निकट है, इस विश्वास को पुष्ट करने में अनेक देशों के उच्च-अधिकारियों के बयानों ने भी सहायता की है। अमरीका के नौ-मंत्री मि० जान एल. सुलीवन ने कहा है कि अमरीकन तट पर पनडुब्बियां देखी गई हैं। ये 'लोह-दीवार' के पश्चिम के राष्ट्रों की नहीं थीं। एक नौ-अफसर ने

बताया कि सनफ्रांसिस्को से २०० मील दूर एक पनडुब्बी दिखाई दी। वह रात में दिखाई दी, अतः यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि वह रूसी थी। एक दूसरी पनडुब्बी एल्यूशियन द्वीप-समूह के पास देखी गई। यह स्थान अलास्का के भी समीप है और साईबेरिया के भी समीप है। पर साईबेरिया सोवियत रूस का प्रदेश है। तीसरी पनडुब्बी हवाई द्वीप से ८०० मील दूर, अर्थात् अमरीकी तट से २००० मील दूर देखी गई। इससे उत्पन्न आतंक, भय और चिन्ता का अभी अन्त नहीं हुआ था कि अमरीका के हवाई मन्त्री मि० स्टुअर्ट सीमिंगटन ने सीनेट आर्म्स सर्विसेस कमेटी के सामने वक्तव्य दिया कि अमरीका अलास्का और लैब्रेडर से 'उन्नत बी—२६ स' द्वारा रूस के किसी भी भाग पर बम-वर्षा कर सकता है। इसकी व्याख्या करते हुए मि० ग्लेन मार्टिन—बम-वर्षक विमानों के प्रसिद्ध विर्माता—ने उन शस्त्रास्त्रों पर प्रकाश डाला जो आज लड़ाई छिड़ने पर काम में आ सकते हैं। इन विनाशक शस्त्रों की सूची में दुश्मन के जहाजों की फैक्टरियों को खोज कर नष्ट करने वाल 'गाइडेड मिसल्स' है, अधिक शक्तिशाली अणु-बम है, कृमि-शस्त्र है, रेडियो सक्रिय घन (वरुणास्त्र) है। पर मि० मार्टिन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि अगला महायुद्ध ६५ दिन में
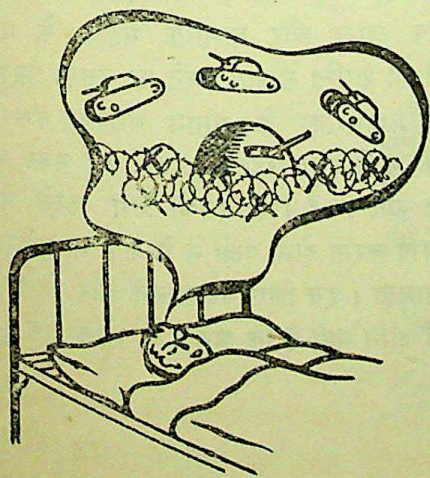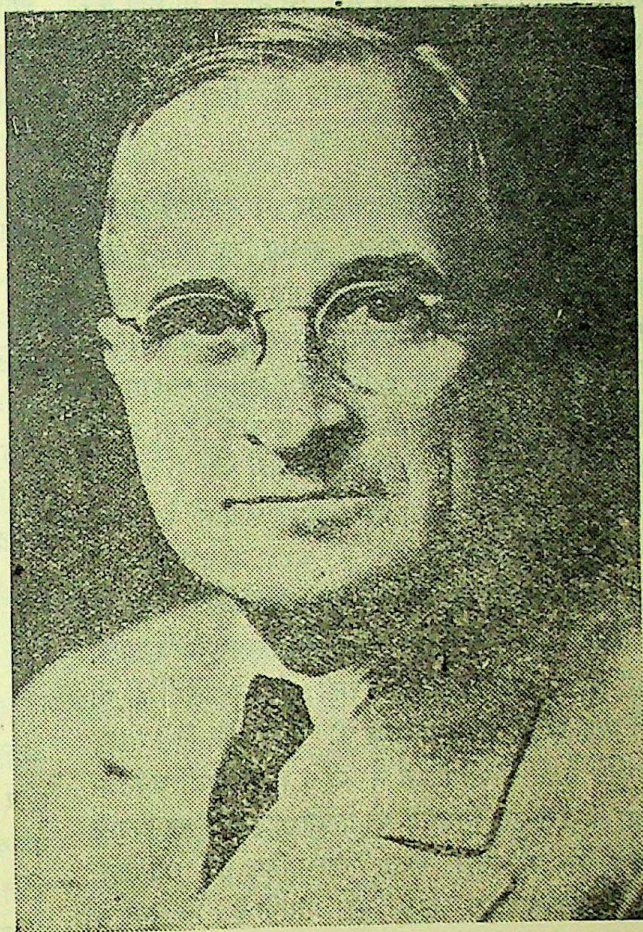
अमेरिका के प्रेजीडेन्ट ट्रूमैन

समाप्त हो जायगा। इस प्रकार अमरीका में युद्ध का वातावरण तैयार किया जा रहा है। अमरीकी जनता की मनोभूमि को लड़ाई के लिए तैयार किया जा रहा है।

जनसाधारण

क्या भय का कारण वास्तविक है ?

क्या वस्तुतः युद्ध निकट है ? यदि तटस्थ दृष्टि से सारी स्थिति पर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि अगले दो दशकों तक लड़ाई होने का कोई कारण नहीं है। भारत के प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू का यह कथन है कि—"मैं यह नहीं समझता कि निकट भविष्य में युद्ध छिड़ने वाला है और मैं युद्ध की भावना और आतंक नहीं पैदा

करना चाहता; पर हम इस तथ्य की उपेक्षा भी नहीं कर सकते कि वर्तमान समय में विश्व खतरनाक मार्ग पर से गुजर रहा है और उससे, सम्भव है, विकट परिस्थिति उत्पन्न हो जाय।"

अगले दो दशकों तक युद्ध न होने के अनेक कारण हैं। पहला और मुख्य कारण यह है कि रूस और अमरीका दोनों ही इस समय युद्ध नहीं चाहते। रूस का युद्ध-पूर्व के समान अपना सैनिक बजट पास करना ही इस बात का प्रमाण है कि रूस शान्ति चाहता है, लड़ाई के कारण विनष्ट और उध्वस्त रूसी प्रदेश का पुनर्निर्माण करना चाहता है। दूसरी ओर प्रेजीडेण्ट ट्रूमैन ने मार्शल-योजना द्वारा और कांग्रेस से हवाई शक्ति बढ़ाने के लिए और २, अरब डालरों की मांग कर बता दिया है कि पश्चिमी जनतन्त्र के देश रूस का और आगे बढ़ना रोकेंगे। मि० डफ कूपर ने इटालियन चुनाव होने से पहले इटली को चेतावनी दी थी कि यदि इटली ने कम्युनिज्म की ओर वोट दिये तो वे लड़ाई करने से भी विरत न रहेंगे। पश्चिमी जनतंत्र-राष्ट्रों के इस दृढ़ निश्चय को देखते हुए रूस का अपनी नीति में परिवर्तन करना स्वाभाविक है। सोवियत-फिनिश-सन्धि इस बात का प्रमाण है कि रूस ने समझ लिया है कि यदि वह आत्म-विस्तार की नीति जारी रखेगा तो पश्चिमी जनतंत्र-राष्ट्र उसको सहन नहीं करेंगे। फलतः फिनलैण्ड के साथ सोवियत-रूस ने रूमानिया, हंगरी आदि देशों के साथ की गई सन्धि के समान सन्धि नहीं की है। रूस ने फिनलैण्ड को पूर्णतः अपने बाड़े या घेरे के अन्दर नहीं ले लिया है, बल्कि उसको उससे मुक्त रखा है। यह इस बात का प्रमाण है कि रूस शान्ति चाहता है, युद्ध नहीं चाहता। 'युद्ध देहि' उसकी नीति नहीं है।

रूस और अमरीका आज तक कभी नहीं लड़े। यदि यह मान भी लें कि इस पुरानी परम्परा का दोनों देशों की जनता के लिए अब कोई महत्व नहीं है, तब भी यह मानना होगा कि रूस के लिए यह अधिक लाभजनक है कि वह बिना लड़ाई के अपना प्रभाव-क्षेत्र यथासम्भव बढ़ावे। सोवियत रूस इस समय यही कर रहा है। दबाव, प्रचार और अन्य साधनों द्वारा वह आर्थिक लाभ और सामरिक महत्व के स्थानों को प्राप्त करने का बराबर प्रयत्न कर रहा है। पर जहां देखता है कि लड़ाई छिड़ जाने का भय है, वह वहां से झटपट हट जाता है। उत्तरीय ईरान के अजरबेजन से उसने अपनी सेना इसीलिए हटा ली। तुर्की पर उसने डार्डनल्स के लिए इस सीमा तक दबाव नहीं डाला कि पश्चिमी जनतन्त्र-राष्ट्रों को लड़ाई का अवसर मिले। ग्रीस में भी वह उस सीमा तक हस्तक्षेप नहीं कर रहा है कि इंग्लैंड और अमरीका को क्रीट और ग्रीस को अपना समुद्री और हवाई अड्डा बनाने का बहाना मिल जाय। इस लिए विश्वास से कहा जा सकता है कि तब तक रूस तलवार उठाना जरूरी नहीं समझेगा, जब तक युद्ध का कोई भय नहीं है।

सोवियत रूस यह भी जानता है कि पश्चिमी पूंजीवाद और कम्युनिज्म—इन दो आदर्शों, सिद्धान्तों और विचार-धाराओं के बीच टक्कर होना अनिवार्य है। वह यह भी देख रहा है कि पूंजीवाद समाजवाद का चोला पहन रहा है और सम्भव है कि समाजवादी जनतन्त्रों की स्थापना होने पर सोवियत रूस के साथ पश्चिमी यूरोप और पूर्वीय यूरोप के बीच मेल हो सके। इटालियन चुनाव में बाम पक्षियों का अन्त हो जाना और मध्य-मार्ग के अनुयायियों की विजय भी रूस को यह प्रेरणा करने के लिए पर्याप्त है कि भविष्य के लिए आर्थिक लाभ और सामरिक महत्व के महत्वपूर्ण स्थानों को शान्ति से प्राप्त करने का उसको प्रयत्न करना चाहिए। अमरीका के समान सोवियत रूस को भी तेल की कमी सता रही है। दोनों की नजर मध्य-पूर्व के तेल-कूपों पर है। पर इनको प्राप्त करने के लिए ही लड़ाई करना दोनों पक्षों में से कोई भी बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं मानता। इस लिए यह मानने और विश्वास करने में कोई हानि नहीं है कि अगले दो दशकों तक युद्ध नहीं होगा।

तुम मेरे साथ चली आओ !

'अंचल'

पथ की बाधाओं से न डरो, सहमो न तनिक तुम घबराओ !
तुम मेरे साथ चली आओ !

महलों के वैभव में अब तक तुम छवि की छाया-सी भूलीं,
रागों में स्वर बन लहराईं, निशि में शेफाली-सी फूलीं,
कितनी अतृप्त परवशता थी तुम चीर जिसे बाहर धाईं,
कितनी ऊंची दीवारें थीं तुम छोड़ जिन्हें पीछे आईं !

तूफान यहां चलते जिनमें यौवन की नीवें हिल जातीं,
सब की समता के सपने के पीछे कितनी जानें जातीं,
है स्वप्न अभी सब जिसके पीछे यह बलिदानों की धारा,
जाने कैसा होगा अंतिम संघर्ष—हितों का निपटारा !

अवकाश कहां हम सोच सकें यह सब, हमको आगे बढ़ना,
अज्ञात लक्ष्य की दूरी है, हमको नूतन जीवन गढ़ना,
मेरे प्रेरक आह्वानों की तुम ज्योति-शिखा बन लहराओ !
अब तक विराम की मंजिल थीं, अब गति की ज्वाला बन आओ !

आओ ! युग की प्रतिहिंसा बनकर मेरे साथ चली आओ !
तुम मेरे साथ चली आओ !

साहित्यकार—
क्या अच्छा पति नहीं होता!

श्री० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

डिजरायली इंग्लैण्ड का प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ व मन्त्री हो चुका है। ३३ वर्ष की आयु में उसने ४५ वर्ष की एक साधारण सी विधवा से विवाह किया था। अपनी पत्नी को वह इतना चाहता था कि एक मिनट का वियोग भी उसे सह्य नहीं था। जब कभी किसी कारण वह अपनी पत्नी से दूर होता तो चिट्ठियों का तांता बांध देता। यदि दोनों बीमार हों तो वे एक कमरे से दूसरे कमरे में चिट्ठी लिखा करते थे। बीमारी के समय के एक पत्र का नमूना देखिये —

"पीठ के बल लेटा हूँ, इसलिए पेंसिल से लिखने के लिए क्षमा कीजिए। आपने मुझे बड़ा ही मनोरंजक और चित्ताकर्षक पत्र भेजा है। ग्रीसवीनर गेह एक अस्पताल बन गया है; परन्तु आपके साथ अस्पताल किसी दूसरे के साथ राजभवन से भी अच्छा है।

तुम्हारा अपना
डिजरायली।"

कहां डिजरायली जैसा प्रकाण्ड राजनीति-सम्राट और कहां ४५ वर्ष की आयु वाली तुच्छ विधवा! बात यह थी कि डिजरायली ३३ वर्ष तक अपने जैसे विचारों वाली पत्नी की खोज में था। अन्त में उसने इस स्त्री से विवाह किया। उनका वैवाहिक सम्बन्ध पूजा का स्वर्ग और पवित्रता का प्रतीक था। यह सत्य है कि ऐनी निरक्षर थी, परन्तु इससे क्या? उसमें कलाकार के स्वाभाविक गुण थे। और सबसे अधिक उसमें थी कृतज्ञता, दया, और प्रेम।

साहित्यकार भावों का देवता है; कल्पना और भावुकता उसके चरित्र के विशिष्ट गुण हैं। वह संसार की प्रत्येक वस्तु के लिए सोचता, समझता और अनुभव करता है। उसका अन्तस्थल बड़ा कोमल और संवेदनशील होता है। प्रायः उच्चतम गुण उसमें साकार हो उठते हैं। साधारण काम धाम में लगे हुए व्यस्त व्यापारी-पति की निस्बत वह दूर की सोचता है, अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व को समझता है। उसमें रसिकता, भावुकता, कल्पना, सौन्दर्यप्रियता अधिक मात्रा में होती है; अतः वह एक अच्छा पति भी हो सकता है।

कवि सबसे अच्छा पति हो सकता है। कवि अत्यन्त भावुक और रसिक जीव होता है। उसके प्रेम में एक मस्ती, एक पागलपन, एक प्रेरणा होती है। वह भौंरे की भांति मत्त हो उठता है और पत्नी के प्रेम में सब कुछ विस्मृत कर बैठता है। बहुत से महाकवि ऐसे हो गये हैं जिनको कष्ट और क्लेश के समय में प्रिय पत्नियों की सङ्गति से बड़ी भारी

अप्रैल के 'मनोरंजन' में श्री शंकरदेव विद्यालङ्कार का एक लेख 'साहित्यकार की संगिनी' प्रकाशित हुआ था, जिसमें उन्होंने प्रसिद्ध अंग्रेज-कथाकार चार्ल्स डिकन्स का उदाहरण दे कर साहित्यकारों के असफल दाम्पत्य जीवन की ओर संकेत किया था। प्रस्तुत लेख उसी लेख के उत्तर में है। विद्वान् लेखक ने सिद्ध किया है कि साहित्यकार भी अच्छा पति हो सकता है।

सहायता और सुख प्राप्त हुआ है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि वर्ड्सवर्थ ने अपनी प्रिय पत्नी की प्रशंसा में एक अत्यन्त भावपूर्ण कविता लिखी थी, जिसका नाम है — 'She was a phantam of delight।' इसमें उसने अपनी पत्नी को तीनों रूपों — प्रेमिका, पत्नी, और देवी के रूप में देखा है। साहित्यकार अपनी पत्नी को कितना प्यार करता है, यह इस सुन्दर तथा भावपूर्ण कविता से स्पष्ट हो जाता है। जीवन के संध्या-काल तक वर्ड्सवर्थ दाम्पत्य-सुख लूटता रहा।

रोजटी जैसे कवि और मिल (John Stuart Mill) जैसे दार्शनिक अपनी जीवन-संगिनियों की मृत्यु से शोक-सागर में डूब गये थे। पत्नी की मृत्यु ने उनकी कला और साहित्य-साधना को बड़ा आघात पहुँचाया था। जब तक पत्नी का प्रेम उन्हें प्राप्त रहा, वे साहित्य-सृजन करते रहे, उन्हें प्रेरणा मिलती रही; पर मृत्यु से उनका गृहस्थ-सुख नष्ट हुआ और कला को धक्का पहुंचा।

इटली का भाग्य विधाता गेरीबाल्डी अपने संस्मरणों में अपने विवाह का रहस्य बताते हुए लिखता है —

"मुझे स्वप्न में भी कभी विवाह का विचार नहीं आया था; परन्तु अपने दूसरे साथियों की मृत्यु के बाद मैं अपने को संसार में अकेला अनुभव करने लगा। मुझे एक ऐसी आत्मा की आवश्यकता का अनुभव होने लगा जो मुझे प्रेम करती हो। मुझे किसी ऐसे व्यक्ति की जरूरत थी और तुरन्त जरूरत थी, जो मुझे प्रेम करे। मित्रता तो समय का फल होता है। एकदम कोई किसी का मित्र नहीं बन जाया करता। परन्तु इसके विपरीत, प्रेम खुद बिजली है और कभी-कभी इसका जन्म तूफान में होता है... एक लड़की ने मेरा ध्यान सबसे अधिक आकर्षित किया था... जहाज से उतर कर मैं फौरन् उसके घर की ओर चल दिया। मेरा हृदय व्याकुलता से धड़क रहा था, परन्तु सारी व्यग्रता के रहते भी, मुझे अपना निश्चय पक्का मालूम होता था। एक पुरुष ने मुझे भीतर निमंत्रित किया। मैंने युवती को देखा और उससे कहा — "कुमारी जी, आपको मेरी बनना होगा।" मैंने ये शब्द साहसपूर्ण इटैलियन भाषा में कहे। मैं एक अत्यन्त मूल्यवान् खजाने पर पहुँच गया था। वह खजाना मेरी प्रिय पत्नी अनिटा थी, जो मेरे बच्चों की मां थी, जिसने सुख-दुःख में सदा सर्वदा मेरा साथ दिया — वह मेरी पत्नी थी, जिससे मिलने वाले उत्साह की स्मृति मुझे पुनः पुनः सताया करती है।"

साहित्यकार समूचे विश्व से सहानुभूति रखता है। सुखमय वैवाहिक जीवन का मूलमन्त्र भी यही है कि पति-पत्नी एक दूसरे के साथ पूर्ण सहानुभूति रक्खें, एक दूसरे की इच्छाओं, कामनाओं की पूर्ति के लिये अथक प्रयत्न करें, एक दूसरे की गलतियों को क्षमा कर दिया करें। साहित्यकार का प्रेम उत्तरदायित्व और कर्तव्य का सम्मिश्रण होता है। वैवाहिक जीवन के लिये स्वस्थ मस्तिष्क, स्वस्थ शरीर और एक दूसरे के लिये जिस त्याग की आवश्यकता पड़ती है, वह

साहित्यकार में बड़ी मात्रा मे होते हैं।

सुदर्शन जी की आत्म-कथा ('हं॰" में प्रकाशित) में उनका प्रारंभिक दारिद्रयपूर्ण जीवन, लेखकों की कठिनाइयां, किन्तु उन सब पर विजय प्राप्त करने वाला उनका दाम्पत्य जीवन, विशेषतः वह प्रसंग जहां वे अपनी पत्नी के लिए दो लड्डू चुरा कर लाते हैं, और उसके साथ खाते हैं, कभी न भूलने वाला चित्र है। उसमें हमें एक सुखी दम्पति के दर्शन होते हैं।

'संगम' साप्ताहिक में श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की धर्म-पत्नी श्रीमती कौशल्यादेवी ने अपने वैवाहिक जीवन पर प्रकाश डाला है। मूल रूप में यह लेख 'अश्क' जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालता है, किन्तु साथ ही यह सुखी दम्पति के घरेलू जीवन पर यथेष्ट प्रकाश डालता है। एक संक्षिप्त उद्धरण लीजिये--

"दिल्ली की ही बात है। मैंने इन्द्रप्रस्थ गलर्स हाई स्कूल में नौकरी करली थी। परीक्षाएं हो चुकी थीं और पेपरों का ढेर अभी पड़ा था। उन्हीं दिनों नौकर भाग गया। किसी प्रकार रात का खाना पका, बर्तन कपड़े आदि उसी तरफ छोड़ मैं पेपर देखने लगी और रात को दो बजे तक देखती रही। यों भी मैं सुबह देर से उठती हूँ। उस दिन कुछ देर हो गई। उठते ही पहली दृष्टि जिस चीज पर पड़ी वह रस्सी पर सूखने के लिए डाले हुए धुले-धुलाये कपड़े थे। चकित हुई कि ये सब किसने धोये। समझी, शायद प्रातः ही कोई नौकर आ गया है। खुशी से भागी-भागी अन्दर गई तो देखा--रसोई घर में बाप-बेटा बैठे बर्तन मल रहे हैं, 'अश्क' जी अपने लड़के को बर्तन मलने की कला में निपुण बना रहे हैं।

अवाक् मर्माहत चौखट पर खड़ी मैं सब देखती रही। फिर बढ़ कर मैंने कहा--'हटिए, यह क्या कर रहे हैं? क्या मैं मर गई हूँ जो बर्तन मलने आ बैठे हैं?' कहने लगे—'मरने का नाम न लो, चौथी बीबी मुझे कहां से मिलेगी?' मैंने कहा--'हटाइये, यह मजाक मुझे पसन्द नहीं।' लेकिन इन्होंने मुझे बर्तनों को हाथ नहीं लगाने दिया। कहने लगे—'मेरे हाथ सने हुए हैं, तुम व्यर्थ में क्यों हाथ खराब करो। तुमसे बुरे नहीं मलूंगा, इतना निश्चय रक्खो।'

मैं विवश हो चली गई।"

श्री प्रेमचन्द जी ने अपने साधना-मय जीवन में अपनी जीवन-संगिनी द्वारा सुख, शांति और प्रेरणा प्राप्त की थी। उनकी जीवन सहचरी ने जो पुस्तक लिखी है ('प्रेमचन्द घर में') उससे स्पष्ट होता है कि कर्तव्यों व कष्टों से भरे रहने पर भी वे सुखी रहे।

जो थोड़े से उदाहरण हम दे सके हैं, उनके बल पर यह कहा जा सकता है कि साहित्यकार सफल पति हो सकता है। अभाग्यवश साहित्यकार अपने निजी जीवन के विषय में लिखते हुए झिझकते हैं। यदि सचाई से उनसे पूछा जाय, तो विदित होगा कि वे अत्यन्त सुखी हैं। चार्ल्स डिकिन्स या टाल्सटाय के उदाहरण अपवाद मात्र हैं। उनके बल पर साहित्यकारों पर कोई आक्षेप करना उचित नहीं।

चांदनी

श्री निरंकारदेव सेवक एम. ए.

व्योम-पथ से अप्सरा-सी आ रही है चांदनी !
मुस्कराते चांद को शरमा रही है चांदनी !

रूप का श्रृंगार करती आ रही है चांदनी,
भावना में रंग भरती आ रही है चांदनी,
आज आंखों पर नशा-सी छा रही है चांदनी !
व्योम-पथ से अप्सरा-सी आ रही है चांदनी !

कल्पना उड़कर गगन में मुक्त मंडराने लगी,
रूप की रानी मिली, अनुभूति अन्तर की जगी,
मौन मन की बीन पर कुछ गा रही है चांदनी !
व्योम-पथ से अप्सरा-सी आ रही है चांदनी !

दृष्टि जाती है जहां तक चांदनी का राज है,
चांदनी के हाथ में ही आज मन की लाज है,
याद के उन्माद को उकसा रही है चांदनी !
व्योम-पथ से अप्सरा-सी आ रही है चांदनी !

चांदनी में चित्र बन बन कर बिखरते जा रहे,
चांदनी में स्वप्न धुल-धुलकर निखरते जा रहे,
प्यार का आधार बनती जा रही है चांदनी !
व्योम-पथ से अप्सरा-सी आ रही है चांदनी !

रात ही भर में मगर किरनावली मुरझा चली,
चांद के मुख पर न जाने क्यों उदासी छा चली,
पेड़ के नीचे पड़ी पछता रही है चांदनी !
व्योम-पथ से अप्सरा-सी जा रही है चांदनी !

गतिहीन

श्री रांगेय राघव

हे ग्राम देवता !
युग युग से तुमने
रक्षा की थी, किन्तु आज
खण्डहर हो तुम !

क्या यह नीरवता कभी रही
सचमुच वैसा ही भव्य ज्ञान
निधियों की वह सुषमा अपार ?
या वे कवि केवल एकांगी
अपनी आंखों को किये बन्द
युग-युग तक देखा किये बद्ध
केवल नारी या शून्य राग !
मैं रहा देख
पनहारिन का वह चलना
दूभर, मत्त लास,
क्या यहीं ग्राम का विशद क्षेत्र
है अपने में सीमित विलीन ?

देवता बोल पाषाण
कि मन में यह भारावसाद
है सघन हो रहा जैसे यह
अरहर का फैला हरा खेत ।

यह कच्चे तन
यह नंगे तन
बालक हैं अब भी रहे खेल,
गीली मिट्टी न ढली बिल्कुल
औ' एक खिलौना भी न बना;
केवल है उनके लिये खेद ।

चरमर-चरमर धीरे-धीरे
है नहीं काल की गति व्यापी
यह बैलगाड़ियां चरर-चरर —
भारत के विस्तृत मैदानों
पर छाई एक उदासी-सी;
है नहीं काल का ध्येय,
चिरन्तन शाश्वत जड़ता की प्रतीक !

मैं क्या बोलूं ?
अपने स्वार्थों में बद्ध यहां
मानव का पूत न जाने किस
अज्ञात मूलधन का केवल
है बना सूद —
अपना जीवन है चुका रहा !
उस ओर फैलते दीख रहे

पटवारी, पुलिस, अनेक दुष्ट,
ज्यों घर की खेती बीच उगे
यह कठिन पटेरे, जिनको ले
कुलबोरन अपनी जड़ें काट
अपने को ही कर रहे नष्ट ।

वह दूर रेल जब जाती है
लगता है युग है भाग रहा,
यह कोटि-कोटि जीवन पीछे
छूटे किसका ले रहे नाम ?
बन्धन हैं कड़े भयानक हैं !
सारी निस्तब्धता किसी एक
बम सी केन्द्रित हो रही सतत,
जैसे वह दिन भी नहीं दूर
जब फट जायेगी कर विनाश ।
पीढ़ी की पीढ़ी हुई नष्ट
बरबाद हो रही है नितान्त ।

लो धूआं है उठता घर-घर,
रोटी के हित दिन भर लड़ कर
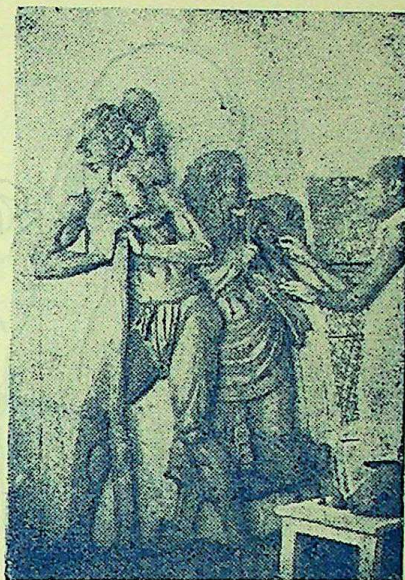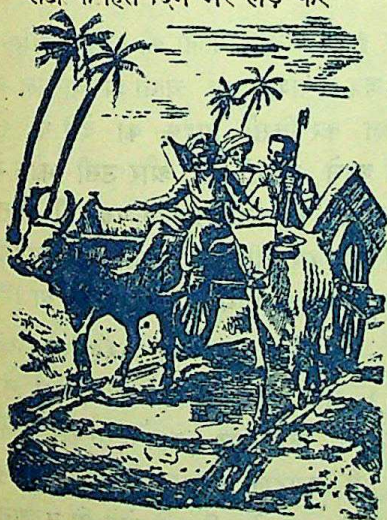
आया है श्रम का फल जुड़ कर,
घर घर में जलती कठिन आग
जो ईंट पत्थरों से ज्यादा
मानव-तन को दे रही दाह।
वह बारह मासों का अतृप्त
करता रहता है आर्त्तनाद
जिसका कोलाहल दूर कहीं
बनता मुट्ठी भर का वैभव ।

केवल झिलमिल ही नहीं
सत्य का मुझे दान दो।
एक मात्र आधार एक
मैं कहां धरूं आलोक-दीप ?
झंझा है छाई कठिन शीत...
यह ऊजड़ धूलि भरी दुनिया
ऋषियों मुनियों के सत्यों की
छाया ज्वलन्त,
जीने की यह मजबूरी-सी !

श्रीमती होमवती
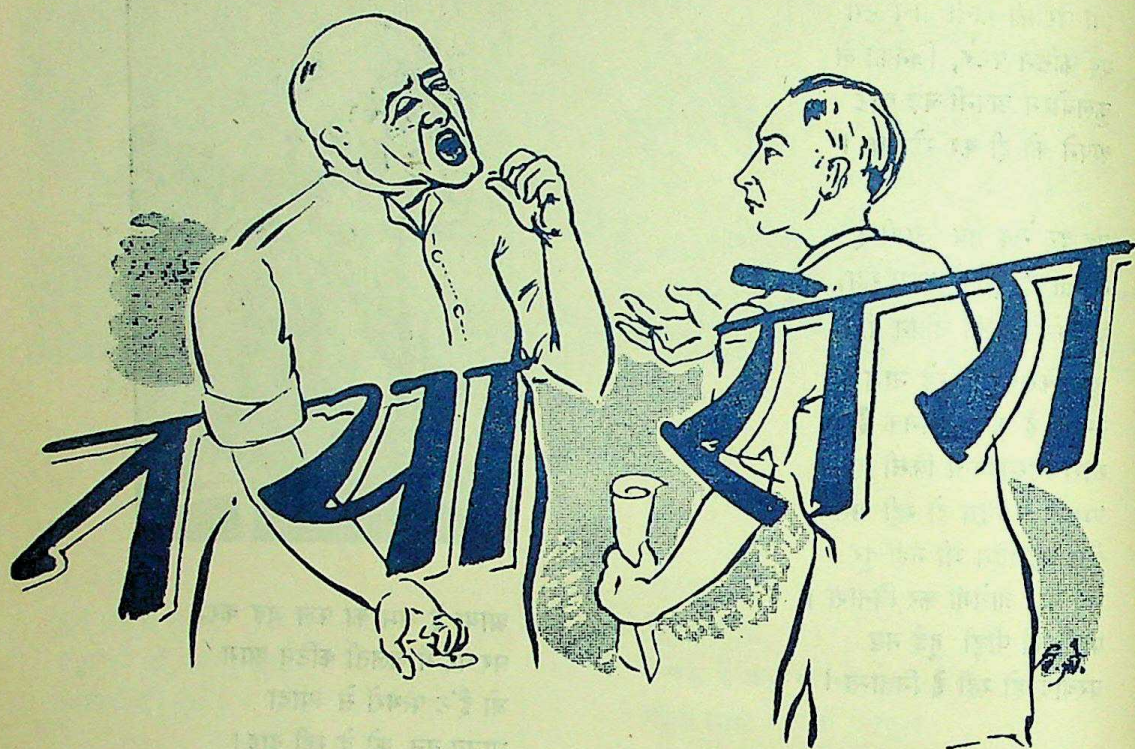
मीना ने फिर मुंह फाड़ते हुए कहा—"आज तो बड़ी जम्भाइयां आ रही हैं, जीजी !"

और उसकी बात पूरी होने के पहिले ही मृणाल ने जम्भाई लेते हुए कहा—"न जाने क्यों, इस जमाने में सभी को जम्भाइयां कुछ अधिक आने लगी हैं, मानो हमारी सारी चुस्ती और फुर्ती अंग्रेज समुद्र के उस पार साथ लेते गए हैं ! एक हम तुम ही क्या, घर-घर और जन-जन में जम्भाइयों का नया रोग फैल रहा है। जब लड़के वाला किसी की कन्या से सम्बन्ध तय करता है, तब वह वर के गुणों का वर्णन करते-करते दहेज ठहराते समय अचानक ज़म्भाइयां लेने लगता है, और तभी बिचारा लड़की वाला अपने को इस मांग में असमर्थ पाकर जम्भाई लेता हुआ वहां से एक-दो-तीन हो जाता है।"

"हां, और इन ऐजेन्सी वालों की बात नहीं सुनी तुमने, जीजी ? जब ये राशन या चीनी अथवा तेल या कपड़ा नाप-तोल कर किसी ग्राहक को देते थे, तो उन्हें जम्भाइयां आने लगती थीं; और उसी झोंक में छटांक-आध पाव का फर्क तो अवश्य पड़ ही जाता था। कभी-कभी पाव भर भी कम उतरता था। भइया के पजामों का लट्ठा पूरा चार गिरह कम निकला था।"

"पर अब तो कण्ट्रोल नहीं है। भला हो बिचारे महात्मा जी का उन्होंने जो इस कांग्रेस-सरकार के विरोध करने पर भी कण्ट्रोल उठवा ही दिया। हम सब का दुर्भाग्य ! जो आज के दिन वे होते तो न जाने क्या-क्या करते ! अब तक न जाने कितना सस्ता करा देते। सामान लाने-ले जाने के लिए रेलें खुलवा देते। तब न ईंधन की कमी होती, न खाने-कपड़े की। चारा भी सस्ता हो जाता और चरागाह भी बन जाते।

फिर एक-एक बूंद दूध के लिए बच्चों के कंकाल न तड़पते। घर-घर गोशालाएं होतीं, दूध भी मिलता और असली घी भी। कोटोजम खा-खा कर दिमाग खुश्क हो गया है।"

"किन्तु अब तो अपनी सरकार है, जीजी! फिर भी अभी कुछ नहीं हो रहा। दिन पर दिन बीतते जा रहे हैं, इन्तजार करते-करते थक गए; पर मंहगी तो बढ़ती ही जा रही है। ऐसे कितने दिन कटेंगे?"

"तू बड़ी बावली है, मीना! अपनी सरकार में कितने जन ऐसे हैं, जिन्हें जनता का ध्यान हो? बिचारे जवाहरलाल नेहरू या पटेल इत्यादि जो दो-चार व्यक्ति हैं भी जनता का ध्यान करने वाले, तो उन्हें दूसरे काम बहुत हैं। हमारी बात तो सोचने की फुरसत तब हो उन्हें, जब रात-दिन की लड़ाइयों और झगड़ों से छुट्टी मिले। हां, महात्मा जी होते तो कुछ करते। वे तो सबसे पहिले जनता के थे; उसी का ध्यान रखते थे पहिले। वे क्या कोई सरकारी आदमी थोड़े ही थे।"

"हां जीजी! हमारी करनी का फल है यह सब, जो इस विपत्ति के समय वे हमें अनाथ कर गए। पर सुना है, जीजी, कि जब उन पर बम फटा और गोली चली, तब ये पुलिस वाले भी जम्भाइयां ले रहे थे।"

"हो सकता है। इस कम्बख्त जमाने में सभी को जम्भाई बहुत आने लगी है। उस दिन कांग्रेस के जल्से में नहीं देखा? श्रोता-वक्ता जिसे देखो, अंट-शंट कह रहा है और जम्भाई ले रहा है। कई एक स्त्रियां तो सुनते-सुनते इतनी ऊब गईं कि अपने बच्चों को चुप कराते-कराते स्वयं ऊंघने लगीं..."

"ऊंघती नहीं तो क्या करतीं? सुना नहीं, किस तरह डांट रहा था बच्चों को वह! भला कोई पूछे कि क्या करके भूल गए हैं ये जो इनकी गालियां और डांट-फटकार सुनने के लिए जायं हम वहां? कितनी तो उठ कर चल दीं तभी। और जो बैठी रहीं, वे बराबर जम्भाइयां लेती रहीं।"

"अरी मीना, जम्भाइयों की कुछ न पूछ। शरद कहता था कि एक दिन वह अपने किसी मित्र के साथ कौंसिल देखने चला गया। वहां जो धारा-सभा के सदस्य थे, उनमें से कितने ही स्त्री-पुरुष जम्भाइयां ले रहे थे, और जम्भाइयां ही नहीं, कोई-कोई तो वहीं कौचों पर लेट कर सो भी गए और इतने जोर से खर्राटे लेने लगे कि जगने वालों के मस्तिष्क की शांति भंग होने लगी। तभी शरद कहता था कि उन्हें देखकर उसे भी जम्भाई आने लगी। इसीलिए वह उठकर चला आया कि कहीं सो न जाए और हंसी हो।"

"तो इन जम्भाइयों का कोई इलाज नहीं निकला अभी तक, जीजी? इतने डाक्टर हकीम हैं, इस बीमारी का इलाज किसी ने नहीं सोचा?"

"सोचेंगे धीरे-धीरे। इलाज सब बीमारियों का है, पर यह नया रोग है न। धीरे-धीरे दवाई भी निकलेगी। इस रोग का ताल्लुक सुस्ती से है न, इसके लिए कोई तेज दवा चाहिए, जैसे सुस्त घोड़े के लिए चाबुक। जिसे देखो सुस्ती और जम्भाई—सास को जम्भाई, बहू को जम्भाई, मां को जम्भाई, बेटी-बेटों को भी जम्भाई—यहां तक कि देश के शासकों को भी इस रोग ने घेर रक्खा है। उन्हीं में जो डाक्टर या अच्छे हकीम होंगे वही दवा खोजेंगे; नहीं तो जनता और सरकार दोनों का अकल्याण होने का डर है। अच्छा, जा तू कोशिश करके वह धोती पूरी कर डाल अब।"

"पर मुझे तो बड़ी सुस्ती आ रही है, जीजी," मीना ने फिर जम्भाई लेते हुए कहा। और उसकी जीजी मृणाल भी जम्भाई लेती हुई पलंग पर जा पड़ी। इस बार मीना अपनी हंसी न रोक सकी, बोली—"जब भाग्य-विधाताओं को ही जम्भाई आती रहेगी तो जनता का क्या हाल होगा, जीजी?"

पर मृणाल तब तक जोर-जोर से खर्राटे भी लेने लगी थी।
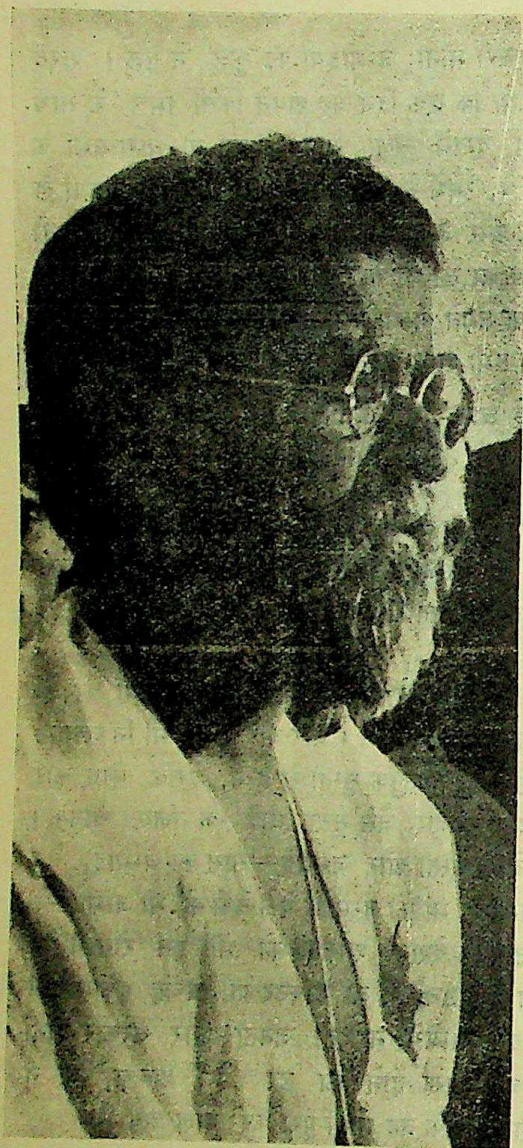
आचार्य विनोबा :

महात्मा गांधी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी

श्री उमाशङ्कर शुक्ल

एक महान व्यक्तित्व

आचार्य विनोबा को जिन्होंने निकट से देखा है, वे अच्छी तरह से जानते हैं कि विनोबा जी क्या हैं। विनोबा जी गांधीवाद के महान् पण्डित तथा विद्वान दार्शनिक हैं। पं० जवाहरलाल नेहरू यदि महात्मा गांधी के राजनैतिक उत्तराधिकारी हैं, तो आचार्य विनोबा आध्यात्मिक उत्तराधिकारी हैं।

महात्मा जी ने उनके बारे में एक बार 'हरिजन सेवक' में एक लेख लिखा था। उसमें उन्होंने विनोबा जी के बारे में बहुत-सी बातों पर प्रकाश डाला था और तभी हिन्दुस्तान के लोगों को ज्ञात हुआ था कि विनोबा जी को ही क्यों गांधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह का प्रथम सत्याग्रही चुना। गांधी जी ने लिखा था कि "विनोबा जी आश्रम के सबसे पहले सदस्यों में से एक हैं। उनके हृदय में छुआछूत की गंध तक नहीं है। साम्प्रदायिक एकता में उनका उतना ही विश्वास है जितना कि मेरा। इस्लाम धर्म की खूबियां को समझने के लिए उन्होंने एक वर्ष तक कुरान का मूल अरबी में अध्ययन किया। इसके लिए उन्होंने अरबी भी पढ़ी।"

विनोबा जी एक महान दार्शनिक पुरुष हैं। गांधी जी के प्रमुख शिष्यों में से आप ही एक ऐसे हैं जिनकी विद्वत्ता की कद्र स्वयं गांधी जी तक करते थे। विनोबा जी को लोगों ने नहीं जाना, क्योंकि विनोबाजी मूक सेवक होकर कार्य करना ज्यादा पसन्द करते हैं। वे उन लोगों में से नहीं हैं जो कहते बहुत ज्यादा हैं, पर करते कुछ नहीं है। विनोबा जी ने जो निश्चय किया, उसे पूरा किया। महादेव भाई ने एक बार इन के सम्बन्ध में कहा था कि विनोबा का प्रभाव आज नहीं, वर्षों के बाद लोग जानेंगे। उनकी कुछेक विशेषताओं का निर्देश करना मैं आवश्यक समझता हूँ। वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। शायद वैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी और भी होंगे। वे प्रखर विद्वान हैं। वैसे प्रखर विद्वान और भी हैं। उन्होंने सादगी को वरण किया है। उनसे भी अधिक सादगी से रहने वाले गांधी जी के अनुयायियों में कई हैं। वे रचनात्मक कार्य के महान पुरस्कर्त्ता और दिन-रात उसी में लगे रहने वाले व्यक्ति हैं। ऐसे और भी कुछ गांधी-मार्गानुगामी

हैं। उनकी जैसी तेजस्वी बुद्धि-शक्ति वाले भी कई हैं। परन्तु उनमें कुछ और भी चीजें हैं जो और किसी में नहीं हैं। यदि एक निश्चय किया, एक तत्त्व ग्रहण किया तो उस पर उसी क्षण से अमल करना उनका प्रथम पंक्ति का गुण है। उनका दूसरा गुण है निरन्तर विकास-शीलता।

विनोबा जी इतिहास के निष्णात विद्वान हैं। उनका विश्वास है कि गांव वालों को रचनात्मक कार्यक्रम के बगैर सच्ची आजादी नहीं मिल सकती। और रचनात्मक कार्यक्रम का केन्द्र है खादी।

विनोबा जी राजनीति के मंच पर कभी लोगों के सामने नहीं आये और इसलिए उनका नाम अधिक प्रसिद्ध नहीं हुआ। विनोबा जी को प्रसिद्धि की उतनी परवाह नहीं है जितनी कि कार्य करने की। आप चुपचाप काम करते रहेंगे और सेवकों का ऐसा दल तैयार करेंगे जो निःस्वार्थ भाव से जनता-जनार्दन की सेवा करे।

गांधी जी के प्राइवेट सेक्रेटरी स्व० महादेव देसाई ने विनोबा के सम्बन्ध में एक बार लिखा था कि बापू के कई बड़े अनुयायी ऐसे हैं जिनका प्रभाव जनता पर बहुत पड़ता है, पर बापू के शायद ही किसी अनुयायी ने सत्य-अहिंसा के पुजारी और कार्यरत सच्चे सेवक उतने पैदा किये हों जितने विनोबा ने पैदा किए हैं। "योगः कर्मसुकौशलम्" के अर्थ में विनोबा सच्चे योगी हैं। उनके विचार,

विनोबा जी का 'परमधाम' आश्रम

विनोबा जी कभी-कभी सिर, दाढ़ी व मूंछ के बाल एकदम साफ करा देते हैं।
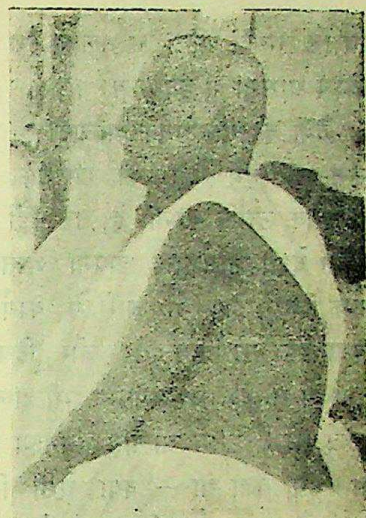
वाणी और आचार में जैसा एक राग है, वैसा एक राग बहुत कम लोगों में होगा; इसलिए उनका जीवन मधुर संगीतमय है। "संचार करो सकल कर्मे शान्त तोमार छन्द" — कविवर टैगोर की यह प्रार्थना शायद विनोबा पूर्वजन्म से करके आये हैं।

विनोबा जी की मितभाषिता, उनके विचार और वाणी का संयम और उनकी तत्त्वनिष्ठा देखकर उनके प्रति लोगों में अपार श्रद्धा हो जाती है।

विनोबा जी के विचार

विनोबा जी के विचारों को सुन लेने के बाद यही खयाल होता है कि कहीं गांधी जी के विचारों को तो वे नहीं दुहरा रहे। प्रार्थना के सम्बन्ध में गत मास उन्होंने राजघाट (दिल्ली) में कहा था—"प्रार्थना में हम सब लोग भगवान के सामने नम्र होते हैं। नतीजा यह होता है कि हम अपने भेद-भावों को छोड़ देते हैं। जब मनुष्य के अन्दर अहंकार उपस्थित होता है, तब अच्छे आदमी की अच्छी चीज को भी वह बिगाड़ देता है। हमारे व्यवहार में जो छोटे बड़े भेद हैं, वे प्रार्थना में खत्म होजाने चाहिएं। भगवान के सामने गरीब क्या और अमीर क्या, शक्तिशाली क्या और दुर्बल क्या, सभी एक सरीखे ही रहते हैं। इसलिए यह खयाल रखा
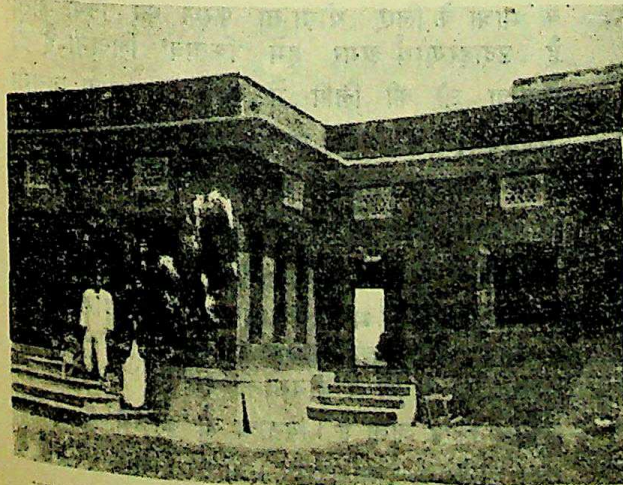
जाय कि तमाम चीजों को भूलकर हम हफ्ते में एक दिन अवश्य प्रार्थना में आया करें।"

देश को राजनैतिक आजादी तो प्राप्त हो गई है, परन्तु अभी हमें देश की आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक उन्नति करना है; तब कहीं हमारा देश अन्य उन्नत देशों के सम्मुख अपना मस्तक उठा सकेगा। इसके लिए देश में जोरों से कार्य हो रहा है और रचनात्मक कार्यक्रम पर जोर दिया जा रहा है। 'सर्वोदय समाज' की स्थापना भी हाल ही में सेवाग्राम में हुई थी। उसमें आचार्य विनोबा ने अपने विचार रखते हुए कहा था—"क्या ऐसी स्थिति सोची जा सकती है जब सैद्धान्तिक मतभेद नहीं होंगे और जब एक ही सिद्धान्त का बोलबाला होगा? दूसरा प्रश्न यह है कि क्या साम्प्रदायिकता को बिल्कुल दूर किया जा सकता है, जिसने दूसरे रास्ते—जैसे प्रांतीयता, जात-पांत का भेद और वर्ग-संघर्ष का रूप धारण कर लिया है? तीसरा प्रश्न यह है कि क्या सैद्धान्तिक मतभेद के होते हुए भी सब इस बात के लिए तैयार हो सकते हैं कि एक महान आदर्श को प्राप्त करने के लिए अच्छे साधनों का प्रयोग किया जाय और हिंसा का प्रयोग बिल्कुल त्याग दिया जाय? मुझे पूर्ण विश्वास है कि चाहे आदर्श कितना भी ऊंचा हो, उसके प्राप्त करने के लिए हिंसा का प्रयोग हानिकारक होगा। गांधी जी के सिद्धान्तों में विश्वास करने वालों को अपने संगठनों को ठीक करना चाहिए और उन्हें दूसरों से अच्छा परिणाम प्राप्त करके दिखाना चाहिए।"

विनोबा जी को जब भी कुछ कहना होता है, उस पर वे बहुत विचार करते हैं और फिर कहते हैं। राज्य किस तरह टिके, इस सम्बन्ध में उनकी अपनी कल्पना है, अपनी उनकी सूझ है। उनका कहना है कि हरेक इन्सान में समानता हो, सब को एक-सा न्याय मिले, कोई ऊंच-नीच न माना जाय। इस विचार से जो राज्य चलेगा वही टिकेगा अगर राज्य को टिकाना है तो धर्म के साथ उसे नहीं जोड़ना चाहिए। अगर धर्म को बढ़ाना है तो राज्य के साथ उसे नहीं जोड़ना चाहिए। दोनों अपनी-अपनी मर्यादा में काम करते रहेंगे तो दोनों कामयाब होंगे।

विनोबा जी ने एक सूत्र बना लिया है—"सेवा व्यक्ति की, भक्ति समाज की।" व्यक्ति की भक्ति में आसक्ति बढ़ती है. इसलिए भक्ति समाज की करनी चाहिए। सेवा समाज की करना चाहें तो कुछ भी नहीं कर सकते। समाज तो एक कल्पना मात्र है। विनोबा जी का कहना है कि हम कल्पना की सेवा नहीं कर सकते। माता की सेवा करने वाला लड़का दुनिया भर की सेवा करता है, यह मेरी धारणा है। सेवा प्रत्यक्ष वस्तु की ही हो सकती है, अप्रत्यक्ष वस्तु की नहीं। समाज अप्रत्यक्ष, अव्यक्त तथा निर्गुण वस्तु है। सेवा तो वह है जो परमात्मा तक पहुँचे। आजकल सेवा की कुछ अनोखी-सी पद्धति देखने में आती है। सेवा के लिए हम विशाल क्षेत्र चाहते हैं। पर अगर असली सेवा करनी है, सेवामय बन जाना है, अपने को सेवा में खपा देना है, तो किसी देहात में चले जाइये। देहात में हम लम्बा चौड़ा नहीं, पर ऊंचा सफर करते हैं। वहां ऊंचे से ऊंचे चढ़ने का अवसर है। ऊंची या गहरी सेवा वहां खूब हो सकती है।

हिंदी की नई लिपि के आविष्कर्त्ता

आचार्य विनोबा ने एक नई लिपि शुरू की है जो मासिक 'सेवक' तथा 'खादी जगत' में प्रकाशित उनके लेखों में प्रयुक्त होती है। उस लिपि में अक्षर की बाईं ओर 'इ' की मात्रा नहीं लगाई जाती, किन्तु दीर्घ 'ई' के समान मात्रा लगाई जाती है और दीर्घ 'ई' की मात्रा के लिए थोड़ा-सा फरक कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ अगर हमें 'किताब' लिखना है तो विनोबा जी की लिपि में वह शब्द लिखा जायगा 'कीताब'। दीर्घ 'ई' की मात्रा लगाई तो जाती है, किन्तु उसमें ह्रस्व तथा दीर्घ का भेद जानने के लिए थोड़ा सा परिवर्तन किया जाता है। हम अगर विनोबा जी की लिपि में 'पानी' लिखना चाहते हैं तो उस समय 'न' में जो 'ई' की मात्रा लगेगी वह इस तरह होगी 'नीं'। संयुक्ताक्षर तो उनकी लिपि में है ही नहीं। कल्पना अगर लिखना है तो लिखा जायगा—'कल्पना'! हलंत का उपयोग किया जाता है। विनोबा जी 'आश्रम' शब्द इस तरह लिखेंगे—"आश्रम"। यों तो लिपि देखने में

(शेष पृष्ठ ४३ पर)

एक दिन प्रिय पाहुना आया तुम्हारे द्वार !

श्री देवराज 'दिनेश'
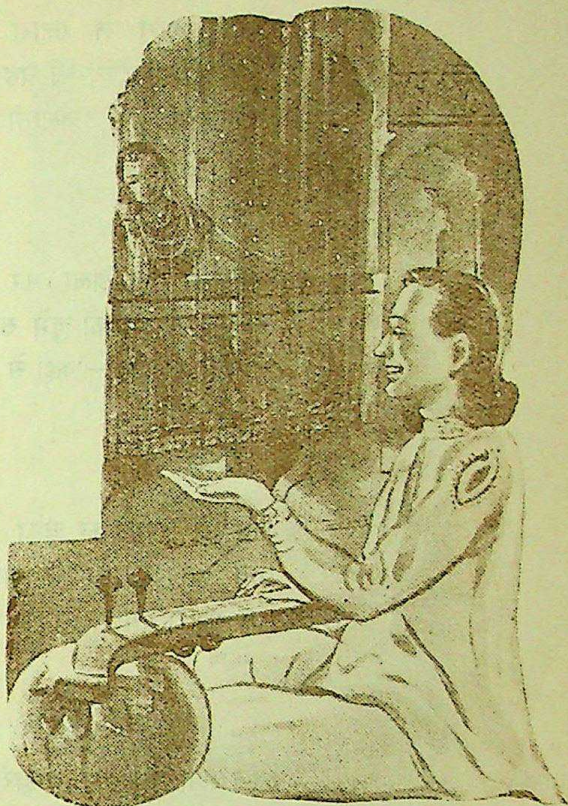
जा चुकी थी सांझ अपने देवता के देश,
दे चुकी थी प्यार का प्रिय को मधुर सन्देश,
राह रपटीली अन्धेरे से रही थी खेल,
थकित पंथी कर रहा था पगों की मनुहार !
एक दिन प्रिय पाहुना आया तुम्हारे द्वार !

तुम सलोने नीड़ में बैठी हुईं चुपचाप—
सुन रही थीं काल्पनिक प्रिय की सुखद पदचाप,
साधना में लीन, मादक भावना में मौन
आ किसी ने खटखटाया प्यार का संसार !
एक दिन प्रिय पाहुना आया तुम्हारे द्वार !

धरणि-अम्बर एक करती थी प्रबल बरसात,
कांपता था विश्व—इतनी भय भरी थी रात,
एक सुन्दर पथिक का था थरथराता गात,
खोल तुमने द्वार पाया प्यार का आधार !
एक दिन प्रिय पाहुना आया तुम्हारे द्वार !

वह तुम्हारा ले सहारा हो गया था मौन,
कह रही थी हृदय की धड़कन तुम्हें—'यह कौन ?'
सोचती-सी तुम जलाती जा रही थीं आग,
चेतना देकर हंसे जलते हुए अङ्गार !
एक दिन प्रिय पाहुना आया तुम्हारे द्वार !

सो गया राही खिला कर मृदु हंसी के फूल,
—फूल वे तुम को चुभे सखि ! बन कसैले शूल,
सोचती थीं तुम—'कहां से आ गया चितचोर ?'
तुम रहीं निशि भर हृदय की बनी पहरेदार !
एक दिन प्रिय पाहुना आया तुम्हारे द्वार !

रात भर खग कर चुका था नीड़ में विश्राम,
प्रात आई, साथ में लाई विदा का याम,
सिर झुका, पग चल दिये, कह लोचनों से बात,
वह गया, पर दे गया तुम को व्यथा का भार !
एक दिन प्रिय पाहुना आया तुम्हारे द्वार !

मिल गया तुम को तुम्हारी कल्पना का मीत,
हो गया सुरभित तुम्हारी वेदना का गीत,
जो रहे अक्षय युगों तक बन किसी की याद—
मिल गया तुम को सजीले मोतियों का हार ।
एक दिन प्रिय पाहुना आया तुम्हारे द्वार !

कहानी

कहानी का 'थीम'

श्री 'नलिन'

कलाकार नीरेन सोफा में पड़ा, बांयां कपोल हथेली पर टिकाये, कहानी का थीम सोच रहा था। कलम-कागज सामने छोटी मेज पर पड़े थे। बहुत देर तक कल्पना की नोंक से दिमाग कुरेदता रहा; पर कलम की नोंक में जरा भी उत्तेजना न हुई। सिर भी कुछ पिराने लगा। कहानी लिखनी है; थीम तो क्या, थीम की दुम भी हाथ नहीं लग रही।

सहसा स्फूर्ति-सी आई, सिर में सनसनी-सी हुई। "ओह—ब्युटिफुल!" कलम-कागज उठा, चंचल उंगलियों से लिख डाला—'वह आंसुओं और मुसकानों की फुलवारी, अनन्त आकुल चुम्बनों का आसरा, कवि कल्पना की कनी—नीरजा सुकुमार पर्यंक में पड़ी—सोहाग-निशा में भी सब ओर सूना-सूना लगा, जैसे उच्छ्वास और निश्वास की खींचतान में वह······ हां, आगे क्या? अन्धकार ही अन्धकार······! अकेली एक लहर सी इस अनन्त सागर में··रात की चांदनी-सी; पर अन्धकार ही अन्धकार दुर्निवार··अन्धकार··'

लिखकर क्षण भर प्रसन्न पुतलियों से कागज पर देखा। फिर लिखा—'हां, नीरजा-चकित मृगी-सी—बीहड़ वन··रेगिस्तान··'

कुछ बन नहीं पड़ा, और आगे क्या? फिर कुछ लिखा और काटा। फिर एक-दो शब्द लिखे, काट दिये। मन में झल्लाया—क्या हो गया? कलम चलती ही नहीं। साले निबें बनाते हैं या··अभी १५ दिन भी नहीं हुये। पार्कर साहब के यह हाल! लूट पड़ रही है। चोर कहीं के!

झल्लाकर कागज-कलम मेज पर पटक दिये। कुछ देर मन में झल्लाता रहा, भिनभिनाता रहा। फिर सोचा—क्रोध किया तो मूड बिगड़ा। थक भी तो गया, कहानी आगे कैसे चले?
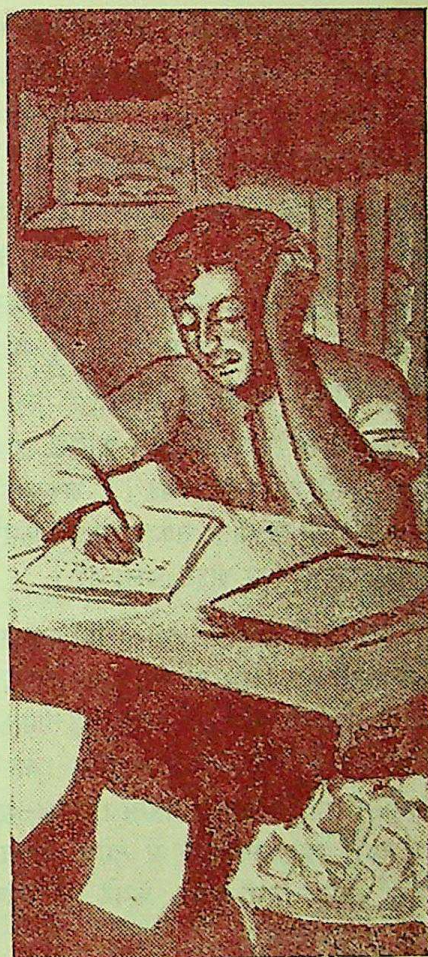
उठा। मन ठण्डा और चित्त ठिकाने करने के लिये दो सन्तरे फाड़ डाले। एक-एक खांप चूसते हुए कहानी का प्लॉट सोचने लगा। दोनों सन्तरों की हत्या सम्पूर्ण कर तबीयत ठिकाने आई। धुले हुए हाथों से कागज-कलम उठा फिर लिखने की ठानी। सम्बन्ध जोड़ने के लिये पिछला लिखा पढ़ना शुरू किया। मुंह बिगाड़ स्वयं ही आलोचना कर डाली—"वाह, क्या खूब! आंसुओं··मुसकानों की फुलवारी··वाह रे फुलवारी—कपड़ों की अलमारी! अन्धकार-अन्धकार, बस अन्धकार! वाहव्वा जी, वाहव्वा अन्धकार प्रसार। सोहाग-निशा में भी उच्छ्वास-निश्वास, और इतना ही

क्यों? वेदना का विश्वास, प्रेम का अभ्यास, कामना का कम्पास। क्या खूब! अनुप्रास ही अनुप्रास। छीः—हिश्! यह भी कोई.....।" और झल्लाकर लिखा-लिखाया काट कर फेंक दिया।

चाकलेट का टुकड़ा मुंह में डाल बिगड़ा जायका बनाने लगा। पूरा पैकेट साफ करके कहीं जायका ठीक हुआ। गुनगुनाता, पीपरमेंट की टिकिया चूसता, कहानी के मूड में 'थीम' सोच रहा था कि धीरे से किवाड़ खुले। चौंका—"कौन?"

सत्यानाश! थीम आकर गायब। देखा तो नौकरानी की लड़की घुटनियों रेंगती दरवाजे के भीतर तक आ गई। कमरे में उदासी से झांक लड़की फिर बाहर चली गई।

इस बच्ची की मां नीरेन के यहां झाड़ू बुहारी, बर्तन-भाण्डे का काम करती। काम कर, लड़की को छोड़ दूसरी जगह काम पर जाती। दो-तीन बजे तक तो लड़की कूड़े कबरे में खेलती रहती। चार बजे भूख सताती तो मां की तलाश पड़ती। सुबह-शाम मां को काम करते वह इसी कमरे में खोज लिया करती है। लड़की भूखी—कभी अपने कमरे में झांकती, कभी नीरेन के कमरे में।

नीरेन पलकें मूंदे कहानी का प्लाट तलाश कर रहा था। फिर किवाड़ जरा खटके। बच्ची ने अन्दर झांका। बिल्कुल मुरझाई, पीली-पीली, रक्तहीन चिर-रोगी जैसी। आंखों में निराशा और नमी, ओटों पर सूखी पपड़ी। नीरेन ने उसके मुंह पर सघन दृष्टि डाली। वह रुआसी-सी हो रही थी। वह घबराई और व्याकुल-सी फिर बाहर चली गई।

नीरेन चमक उठा—मिल गई, थीम मिल गई। तुरन्त कागज-कलम उठा रूप रेखा लिख डाली।

"सैर को नहीं चल रहे?" कहते हुए, मुंह चलाते रौबिन भीतर आया तो नीरेन बोला, "यार, गड़बड़ मत—इस वक्त—बस थीम!"

"अरे क्या थीम-थीम; ले खा न!" उसने पुटैटो-चिप्स का पैकेट नीरेन की तरफ किया।

"बढ़िया कहानी — शानदार! आउटलाइन तो बन गई।"

"सुना फिर।"

"एक निर्धन औरत—(मेरे यहां-वही बाई, देखा है न?) गरीबी के कारण अपनी दुधमुंही बच्ची को भूख से तिलमिलाते छोड़ काम पर—निरीह बेजबान बच्ची का दूध पीने का अधिकार भी छिन गया—दिन भर मां की याद में बच्ची की तड़प—मालिक उस दिन ओवर-वर्क लेता है — बच्ची भूख से बेताब छटपटाती मां को न पाती—बार-बार सूखी दृष्टि...। वह बच्ची तूने देखी है न? कितनी भोली मासूम..."

"लेकिन यहां तक तो कहानी शुरू भी नहीं..."

"अब विकास करना है। देख यह—वह बच्..."

लड़की फिर आई कमरे में झांका। इस बार बहुत व्याकुल और भूख से परेशान। मां को न पाकर चीख उठी। चिल्लाकर रोना शुरू किया। रौबिन ने देखा—भूख से मुरझाया मुंह, मां की याद में छटपटाती सूखी आंखें, धोंकनी-सा ऊपर नीचे होता खाली पेट।

"तो फिर आगे क्या विकास करोगे?"

"लड़की भूख से तड़पती है। मां नहीं आती। कोई उसे दूध नहीं पिलाता, और चिल्लाकर....."

"पर कोई घटना तो..."

"घटना क्या, शाम को मां आती है, अपनी प्यारी बच्ची को नहीं पाती, पागल की तरह तलाश करती—झपट कर देखती है, बच्ची भूख से सिसकती एक कोने में पड़ी है। मां दौड़कर कलेजे से लगाती है। मां की दूध पिलाने की कोशिश और लड़की का प्राणान्त। रहेगी न फाइन ट्रेजेडी? सोसायटी, गवर्नमेंट, गरीबी—सब पर तगड़ा सटायर।"

"हां अच्छी, अगर....."

दोनों कहानी के प्लाट पर बहस कर रहे थे और वह बच्ची चीख-चीख कर रो रही थी। वह इतना जोर से चीत्कार करने लगी कि बातें करना मुश्किल हो गया।

बच्ची किवाड़ के सहारे शिथिल हो गई, चीत्कार किया और बहुत ही करुणाजनक मुंह बनाया। नीरेन वेदना विह्वल-सा चिल्लाया—"मारव्हलस! ऐक्सीलेण्ट! क्या वेदनामय पोज! ओह, हमारे देश की भावी नस्ल!" शीघ्रता से उठ, कैमरा उठा, फोकस ठीक करने लगा। "सचित्र कहानी — मां की याद में कोमल शिशु की वेदना।"

नीरेन फोकस ठीक कर रहा था। बच्ची फटी-फटी वाणी में सूखे कण्ठ से हृदय-वेधक चीत्कार कर रही थी। रौबिन हाथ में पैकेट लिये मुंह चला रहा था। बच्ची बेहाल। रौबिन ने उसके सामने मुट्ठी भर चिप्स बिखेर दिये। क्षण भर को वह चुप हो गई; मुट्ठी भर-भर मुंह में ठूंसने लगी।

"कहानी का सत्यानाश!" कैमरा खटपट करते हुए नीरेन बोला।

"तो मैं चला—तुम्हें तो यही खटराग••!" कह रौबिन चला गया।

"कहानी का नाश कर गया बेवकूफ! थीम बरबाद!" झुंझलाते हुए नीरेन ने कैमरा पलंग पर फेंक मारा।

बच्ची ने क्षण-दो-क्षण चिप्स के साथ संघर्ष किया; फिर रोने लगी। नीरेन डूबा-डूबा-सा देखता रहा। बच्ची का गला बैठ चुका था, आवाज थक गई थी। थकान इतनी कि जोर से रो भी न सकती थी। नीरेन गम्भीर-सा देखता रहा। बच्ची ने फिर सिसकी ली और एक तीक्ष्ण चीत्कार!

नीरेन सोचने लगा—यह गरीबी! बच्ची तड़प-तड़प कर मरे, मां दूध न पिला सके। कुत्ते-बिल्ली से भी अभागी यह बच्ची! मां के रहते भी बे-मां-बाप—अनाथ! उधर मां के स्तनों में दूध छटपटाये, इधर बच्ची भूखी तिलमिलाये। यह भी कोई जीवन है! उफ!

नीरेन कांप उठा।

नीरेन ने सिसकती बच्ची को देखा। उसके प्राणांत का दृश्य आंखों में जम गया। उसे दीख पड़ा–बच्ची पीली-पीली मुरझा गई। हाथ-पैर ऐंठने लगे। सांस भर्रा गई। पुतलियां पथराई। दांतों की भिच्ची बंधी और समाप्त। मां घबराई आई। पछाड़ खा-खाकर गिरने लगी••

सोचते-सोचते नीरेन की आंखें भीग गईं।

बच्ची फिर फटी वाणी में रोई—एक चीत्कार और एक तरफ ढल गई। ओह! नीरेन दौड़ा, उठाकर कलेजे से लगा लिया। उसके अविवाहित हृदय में मां की ममता उमड़ आई। नयन छलक उठे। शीघ्रता से एक कटोरी में दूध उडेला।

हृदय से लगाये, हिलाते-डुलाते, दुलराते-बहलाते नीरेन उसे दूध पिलाने लगा। कुछ बिखरता, कुछ मुंह में जाता। तमाम कपड़े गन्दे हो गये। थोड़ा बहुत दूध पीकर लड़की ने और भी जोर-जोर से रोना शुरू किया। रो-रोकर बेहाल हुई जा रही थी। नीरेन भीगी आंखों से उसे चुमकारते-पुचकारते दूध पिला रहा था, वह परेशान हो गोद से निकली-निकली पड़ती।

बाई आ गई—घबराई जैसे बछड़े की याद में गाय। देखा—लड़की रो-रोकर प्राण दिये डालती है, नीरेन उसे हाथों में लिये हिलाते-डुलाते कमरे में घूम रहा है। गन्दे कपड़े, भीगी आंखें, परेशान, करुणा में डूबा।

"हाय, मालिक तुम यह क्या••" कह उमड़ते आंसुओं को रोकने की असफल चेष्टा करते हुए बाई ने बच्ची को ले लिया, और कुछ देर वहीं खड़े-खड़े आंसुओं से नीरेन के पैरों के पास की भूमि तर करती रही।

श्री राजेन्द्र यादव

मन की गहराई

★

उसे मैंने केवल एक बार स्टेशन पर देखा था। बस। टिकट-घर के पास इतनी अधिक भीड़ थी कि बाहर का आदमी टिकट ले ही नहीं सकता था। मैं खिड़की के बिल्कुल सामने जाकर फंस गया था। टिकट ले चुकने के पश्चात् निकलना बड़ी जटिल समस्या थी। भीड़ कदाचित् मुझे इस टिकट-घर की खिड़की के ही रास्ते प्लेटफार्म पर पहुँचा देना चाहती थी। पसीने की जी उबा देने वाली दुर्गन्धि, धक्के, आशिक-मिजाजों के कानों में खुंसे फाहों से निकलती हुई तेज लपटें। शरीर पिसने के साथ मेरा दम भी घुटा जा रहा था। तभी किसी ने मेरे हाथ में दस रुपये का नोट पकड़ा दिया—"साहब, जरा कानपुर तक का एक टिकट ले दीजिये!"

और मैंने देखा, भीड़ में से झांकता हुआ कातर याचना की रेखाओं से भरा हुआ एक मुख। मैंने टिकट ले दिया, और किसी प्रकार बाहर आ गया। बस यही मेरा और उसका प्रारम्भिक परिचय था। युवा आयु, गोरा मुख, सौष्ठवपूर्ण मुद्रा और बरबस अपनी ओर खींच लेने वाली रसीली आंखें। पहिले मुझे उस पर किसी कॉलेज के विद्यार्थी होने का भ्रम हुआ; पर फिर स्वयं उसने ही बताया कि वह सी० ओ० डी० में नौकर है।

केवल इतने ही परिचय का आधार लेकर आज जब आफिस में वह मेरे 'दर्शन' करने आ गया, तो मेरी आंखें आश्चर्य से खुली की खुली रह गईं। मैं सोच भी नहीं सकता था कि इतने निर्बल आधार पर भी कोई इस प्रकार आ सकता है।

मैं स्वागत में मुस्करा पड़ा। पास पड़ी कुर्सी की ओर संकेत करके कहा—"बैठिये, कहिये उस दिन कानपुर आपका काम हो गया था?"

"जी, सोचा कम से कम आपको इतने कष्ट के लिये धन्यवाद तो दे ही दूं। आपको आश्चर्य होगा इस टिकट के झंझट के कारण मैं तीन बार गाड़ी 'मिस' कर चुका हूँ। और फिर इस वेश में 'डबल्यू० टी०' जाता अच्छा भी तो नहीं लगता। मान लो मिल ही गया कभी कोई टी० टी०, तो क्या रह जायगा।" और उसने अपने उस वेश की ओर हाथों से संकेत किया।

'ब्लॉटिंग पैड' को धीरे से उठा कर वह हवा करने लगा। कमीज के बटन उसने खोल दिये और बनियान में कसा उसका प्रशस्त वक्ष झांकने लगा। मैंने उसके वेश को अब ध्यान से देखा — इकहरा शरीर, श्वेत धोबी की धुली धोती जो बड़े ढंग से बांधी गई थी। पूरी आस्तीन की सफेद कमीज, जो कलफ और इस्त्री से झक-झका रही थी। जेब में 'पैन'। बाल ढंग से संवारे हुए।

"कहिये, आप तो प्रसन्न हैं?" हंसकर उसने पूछा। उसके ओठों की हंसी और भी अधिक व्यापक हो गई।

"आज के जमाने में क्या प्रसन्नता! वे दिन तो गये।" मैंने गम्भीरतापूर्वक दार्शनिक की भांति कहा।

"इसमें क्या सन्देह है!" और वह एकदम इतना गम्भीर हो गया, जैसे कभी हंसा ही नहीं, "ठीक है,... ठीक है!" वह अपना पैर जोर से हिलाने लगा, गम्भीरता से कुछ सोचता हुआ।

मेरा आश्चर्य उस मनुष्य की प्रत्येक बात से अधिक-अधिक बढ़ता जा रहा था। कैसा विचित्र मनुष्य है यह! आज के इस व्यस्त जीवन में किसे

इतना समय है जो यों दफ्तर में धन्यवाद देने दौड़ा आए। यह मनुष्य चाहता क्या है? मुझे बड़ा अजीब-सा लग रहा था। यह इतना अधिक परिचय मुझसे क्यों बढ़ाना चाहता है? — और तब मुझे अपने अन्दर एक दुर्निवार मचलन-सी प्रतीत हुई कि मैं कैसे इस मनुष्य का सारा आशय इसके अणु-अणु को भेद कर समझ लूं। केवल दो मिनट का परिचय, और फिर यह यहां — कोई सूत्र नहीं, जरिया नहीं। कैसी अस्वाभाविक बात है। मुझे विश्वास करना कठिन लग रहा था।

"कहिये, आप तो सीधे दफ्तर से आ रहे होंगे?" उसके गम्भीर हो जाने से मौन बड़ा भारी-भारी सा लग रहा था, इसलिए मैंने यों ही पूछ लिया।

"जी नहीं," उसने स्वाभाविक, पर अनमने स्वर से कहा। "आज दफ्तर जा ही नहीं सका, सीधा घर से आ रहा हूँ।"

फिर वही गांठ। मेरे अन्दर की मचलन प्रबलतर हो गई। घर से... सीधे... केवल मुझसे मिलने... उस दिन के टिकट का धन्यवाद देने... बस! आखिर यह गड़बड़ क्या है?

थोड़ी देर और बातें हुईं — वही रोजमर्रा की बातें—मकानों की कठिनाई, चीजों की महंगाई, वर्तमान राजनीति की विकृति, गृह-युद्ध से आतंकित भविष्य इत्यादि। इस बातचीत के पश्चात् यदि हम लोग परस्पर कुछ निकट आ गये तो इसमें तनिक भी आश्चर्य नहीं है, न अस्वाभाविक। किन्तु मेरी उत्सुकता एक क्षण को भी शान्त नहीं हुई। मैं सोच रहा था, शायद वह अपना अभिप्राय अन्त में कहे। पर उस समय तो विस्मय से मैं स्तब्ध ही रह गया, जब पहिले तो हिचकते हुए उसने उठने की इच्छा प्रकट की और फिर सहसा एक झटके से उठ कर नमस्कार करके वह बाहर की ओर चल दिया।

उठकर थोड़ी दूर पहुंचाने मैं भी आया, पर मेरी आंखें जैसे उसके शरीर के प्रत्येक अवयव को भेद जाना चाहती थीं। एक बात पर मेरा ध्यान विशेष रूप से गया। चलते समय उसके मुख पर वैसी ही गम्भीरता छा गई थी जो मेरी पहिली बात सुन कर उसके मुख पर दिखाई दी थी।

शाम तक मेरे मस्तिष्क में वही बात घूमती रही। यदि वास्तव में वह मेरे 'दर्शन' ही करने आया था, तो दोपहर की कड़कड़ाती धूप में ही क्यों? वह आखिर मित्रता, परिचय या दर्शन का इतना अधिक भूखा क्यों है?

जब घर पर आया तो मस्तिष्क का प्रश्न कुछ शिथिल हो गया था, फिर भी एक भाव था कि आज एक आश्चर्यजनक घटना हुई है।

घर पर आकर हल्के नाश्ते के पश्चात् मैं ऊपर खुली जगह में आ गया। छिड़काव हो चुका था। चारपाई पर खूब आराम से फैलकर मैं लेट गया। पास ही बांस की बनी हुई कुर्सी पर रेखा — मेरी पत्नी बैठ कर स्वेटर बुनने लगी। बात करते या परिहास करते समय उसके कपोलों की अरुणिमा ओठों की मुस्कान में जाकर किस प्रकार विलीन हो जाती थी, इसे ही मैं लक्ष्य करता हुआ इलाचन्द्र जोशी का "प्रेत और छाया" उपन्यास पढ़ने का प्रयत्न कर रहा था। तभी नौकर ने आकर बताया, कोई साहब नीचे बुला रहे हैं। ऐसे समय उठना अखरा अवश्य, पर उस समय वह अखरना एक अव्यक्त हल्की-सी झुंझलाहट में परिणत हो गया जब मैंने नीचे जाकर देखा कि द्वार पर साइकिल लिये वह खड़ा है। इस बार वास्तव में मैं हक्का-बक्का रह गया। मैंने ध्यान दिया उसका शरीर पसीना-पसीना हुआ जा रहा था — शायद वह दूर से चला आ रहा था। वह गम्भीर मुद्रा में खड़ा था, मुझे देखते ही एक दम मुस्कुराने लगा। पर उसका वह मुस्कुराना उसकी गम्भीरता में मिल कर विचित्र खिसियाहट-सा बन गया।

"अब तो आप फुरसत में होंगे, सोचा थोड़ी देर मन-बहलाव ही सही।" मुझे लगा, जैसे यह कहते समय वह मेरी ओर सीधे नहीं देख पा रहा हो — प्रयत्न करने पर भी उसकी आंखें झुकी जा रही हों।

मेरे अन्दर झुंझलाहट का आवेग-सा उठने लगा। सोचा, जोर से डांट दूं — आखिर आप मुझसे चाहते

क्या हैं ? क्यों आप मेरे पीछे पड़े हैं ? स्पष्ट क्यों नहीं कहते हैं ? आपने मेरे समय को समझा क्या है ? दोपहर को एक घण्टा खराब कर गये, अब फिर छाती पर...पर उसके मुख पर अंकित दैन्य के कारण मैं अपने अन्दर ही ऐंठ-ऊंठ कर रह गया। जितनी मेरे अन्दर झुंझलाहट थी, उतनी ही उत्कण्ठा थी — न जाने कैसा रहस्य यह अपने साथ लिये फिरता है !

"आइये, ऊपर आजाइये," मुस्कुराने का प्रयत्न करते हुए मैंने कहा, और उसे ऊपर आने का संकेत करके मैं ऊपर चढ़ने लगा।

साइकिल को वहीं छोड़ कर वह मेरे पीछे-पीछे ऊपर आ गया। रेखा उसे देखते ही छत के दूसरे भाग पर अपने बुनने का सामान लेकर चली गई।

कुर्सी पर बैठते हुए उसने पुस्तक उठा ली—"कौन-सी किताब है यह ?" और वह उसके पृष्ठ पलटते हुए बोला, "मुझे इलाचन्द्र जोशी की चीजें पसन्द नहीं हैं !"

"क्यों ?" मैंने विस्मय से उसकी ओर देखा।

"क्योंकि वे निराशा-मूलक हैं, नियतिवादी हैं, केवल व्यक्ति में ही केन्द्रित रहने की प्रवृत्ति लिये हुए हैं। 'संन्यासी' उपन्यास का केवल एक ही पात्र मुझे पसन्द है 'बल्देव'। 'प्रेत और छाया' के 'पारसनाथ' का चित्रण यदि किसी दूसरी शैली में किया जाता, तो वह अद्वितीय होता।"

मेरे आश्चर्य में श्रद्धा का पुट मिलने लगा। मैं चक्कर में था कि यह मनुष्य है किस कोटि का। साहित्य में भी यह काफी धड़ल्ले के साथ बोल सकता है।

"लेकिन मुझे ·ये बहुत पसन्द हैं," मैंने कहा "मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करने वाली रचनाएँ मुझे पसन्द हैं, इसलिये इलाचन्द्र जोशी के पश्चात् 'अज्ञेय' मुझे अच्छा लगा।"

"एक समय था जब मुझे प्रसाद जी की कहानियां, वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक और प्रताप नारायण श्रीवास्तव के नवाबी उपन्यास बहुत अधिक प्रिय थे। शरच्चन्द्र का भी मैं बहुत भक्त रहा; पर आजकल तो प्रेमचन्द के अतिरिक्त बहुत कम लेखक मुझे पसन्द आते हैं।"

"क्यों ?" कह कर मैंने नौकर से एक तश्तरी में पान ले आने को कहा।

"परिस्थितियां।" और फिर धीरे से सांस खींचकर उसने कुर्सी पर पीठ टेक ली। मुझे लगा वह फिर गम्भीर हो गया है। यह कैसी गम्भीरता है इसके भीतर क्या है, यह जानने को मेरे अन्दर कुछ इतने वेग से जिज्ञासा आन्दोलित हो उठी कि मुझे लगा जैसे इस सारी शिष्टता का अन्त हो जायगा। मैं अपने मन की सारी शक्ति लगाकर उसके मुख की ओर देखने लगा।

"तो इस मकान में आप अकेले रहते हैं ?" काफी देर बाद उसने हिचकते हुए धीरे से पूछा। यह पहिला प्रश्न था जो इतने परिचय के पश्चात् व्यक्तिगत रूप से मेरे विषय में पूछा गया था।

"जी नहीं, मैं हूँ और मेरी पत्नी है—नौकर भी।" नौकर से पान की तश्तरी लेकर मैंने उसकी ओर बढ़ा दी। यों ही पूछ लिया—"आपकी तो पूरी फेमिली होगी ?"

"फेमिली ? हां...कहां फेमिली !" और अपनी समग्र चिन्तन-शक्ति को दोनों भवों के बीच में केन्द्रित करके वह निर्निमेष केवल अपने मुख की सीध में देखता रहा। उसकी वह गम्भीरता और भी गहन-प्रगाढ़ हो गई। "केवल मैं हूँ, बहिन है...और बस। मां बचपन में ही चली गई। देशभक्ति के चक्कर में पिता जी अण्डमान...और...और कौन ? कोई नहीं रहा। बस हमीं दोनों हैं। जीवन चला जा रहा है।"

और फिर वह एकदम चौंक कर सचेत हो गया, शीघ्रता से बोला—"केवल मैं और मेरी बहिन हैं, फेमिली-वेमिली कुछ नहीं।"

फिर जैसे झेंप उठा हो।

भावुकता से मुझे घृणा है। लोग लम्बी-लम्बी सांसें लेकर बड़ी निराशापूर्ण बातें करते हैं, बड़े दार्शनिक बनने का दम भरते हैं। वे दिखाना चाहते हैं, हमारा यह दर्शन गहन निराशापूर्ण अनुभूतियों पर

आश्रित हैं। कहना यह चाहते हैं कि दिल हमारा भी टूटा है और एक रहस्यमयी कहानी हम भी लिये फिरते हैं। लेकिन इस युवक ने न तो बात करते समय कोई उच्छ्वास ली, न अत्यधिक भावुक बनने का प्रयत्न ही किया। तब भी मेरे मस्तिष्क में बिजली-सी कौंधी— किसी ऐसे ही दार्शनिक से तो मेरा वास्ता नहीं पड़ रहा ? मैंने गौर से उसकी आंखों में देखा। मैंने अनुभव किया कि मेरी दृष्टि उसकी आंखों में न जाने कितनी दूर तक चली गई--जैसे कोई कुंआ हो और उसकी कोई थाह न मिल पा रही हो। उसकी अपलक खुली आंखें भी जैसे आह्वान कर रही हों--गहराई नाप सकते हो तो नापो !

सहसा मेरे मन में एक बात उठी—शायद यह कुछ कहना चाहता है, पर कह नहीं रहा। न जाने किन अज्ञात कारणों से मेरी यह धारणा पुष्टतर होती चली गई। मैं उसके दोपहर और अब के सारे व्यवहार का विश्लेषण करने लगा तो अनुभव किया कि मेरी यह धारणा नितान्त भ्रम-मूलक भी नहीं है। मैं उसकी ओर देखने लगा। मेरे अन्दर उसके प्रति सहानुभूति हुई या नहीं, कह नहीं सकता, पर एक श्रद्धा का भाव अवश्य उस स्वावलम्बी युवक के प्रति उठा जो प्रारंभ से ही मातृहीन है, और जो एक देशभक्त पिता की सन्तान है।

वह चुपचाप बैठा रहा। मैंने लक्ष्य किया, उसका हाथ कई बार अपनी कमीज की जब की ओर इस प्रकार गया जैसे फाउंटेन पेन टटोल रहे हो। पर पेन उसकी जेब में नहीं था, इसे मैंने पहिले हो देख लिया था।

काफी देर चुप रहने के पश्चात् हठात् वह फिर चौंका और इस प्रकार बनकर बैठ गया, जैसे उसने अपनी सारी विमनस्कता को दूर फेंक दिया हो। फिर हिचकते हुए वह उठने लगा--"अच्छा, अब चलूं, आपका बहुत समय नष्ट किया है आज मैंने !"

और फिर वह निर्जीवों की भांति धीरे-धीरे सीढ़ी की ओर चला। नीचे तक पहुँचाने के लिये मैं भी उसके पीछे चला।

"नहीं रहने दीजिये आप," उसने मुड़कर कहा, "चला जाऊंगा मैं।"

"कोई बात नहीं," मैं नीचे आ गया। फिर एकदम नई समस्या मेरे सामने आ गई। अभी यह इतने उत्साह से उपन्यासों के विषय में चर्चा कर रहा था और अब इतना सुस्त और शिथिल क्यों हो गया ? यह सब अभिनय तो नहीं हो रहा ?

द्वार पर आकर उसने उदास-से स्वर में कहा— "नमस्कार।" और दोनों हाथ जोड़ने का प्रयत्न किया। मुझे लगा जैसे उसके पैर वहीं रुक जाने को कह रहे हों और वह तब भी चल रहा हो।

जब वह साइकिल की ओर बढ़ा तो मेरी सारी उत्कण्ठा, सारी झुंझलाहट और वह धारणा एक साथ रुद्ध वाष्प के विक्षोभ की भांति छाती में फूट पड़ने को मचल उठी। झल्लाया-सा मैं लौटने लगा।

"रुकिये !" बड़ा निर्जीव और जड़-सा स्वर था, जैसे दम घुटता जा रहा हो। देखा, थोड़ी दूर साइकिल की ओर जाकर लड़खड़ाता वह लौट आया था। मैं उसके पास आकर खड़ा हो गया।

"देखिये, आप से एक काम है, मना मत कीजिये !" नीचे देखते हुए उसने कहा। उसके मुख पर बड़ी दारुण कातरता उभर आई थी और तब झिझकता हुआ हाथ फिर जेब की ओर बढ़ा।

उसका मुख विवर्ण-सा हो रहा था। उस पर पसीना आ गया था। मैंने देखा, उसके कांपते हुए हाथों में दो सोने के 'इयरिंग' हैं।

"इन्हें आप रख लीजिये, आठ माशे के हैं," रुंधे, आर्द्र, कम्पित कण्ठ से वह कहता रहा — "मुझे तीस रुपये की जरूरत है। भाई साहब, मना मत कीजिये — प्रार्थना करता हूँ। बहिन इंटर में बैठना चाहती है। कल आखिरी तारीख है फीस भरने की। उस बेचारी की अन्तिम आशा... फिर न जाने कैसे स्थान पर जाए ! इतने कष्टों पर भी उसने मुझसे कुछ

नहीं कहा, सब चुपचाप हो... पर... पर..."

मैं स्तब्ध था। क्षण के एक अविभाज्य खण्ड में एक दृश्य अन्तर्नेत्रों के सामने बिजली-सा चमक कर लुप्त हो गया — साधारण घर, दैन्य का साक्षात निवास, युवती बहिन, स्वप्न और आकांक्षाओं से भरा हृदय, कर्मठ, गम्भीर, जैसे युग-युग से किसी भारी उत्तरदायित्व को संभाले आ रही है, चुप-चुप अपने ही अन्दर सब सहने वाली, मातृ-प्रेम से वंचित, पिता का दुःख छाती में छिपाए, भाई के ऊपर बोझ सिद्ध हो रही है — यह सोच-सोच कर अपने में ही संकुचित। और भाई? 'इयरिंग' उतारने के लिये बहिन के कानों की ओर बढ़ते हुए कांपते हाथ, फूट पड़ने को आतुर उमड़ती हुई रुलाई — दोनों के मुख पर ....

मैं जैसे ऊपर से नीचे तक इस दृश्य से कांप उठा। मैंने उस युवक की ओर देखा — श्वेत कपड़े, मेधावी मुखाकृति और यह इतनी देर से कण्ठ में अड़ी हुई झिझक!

१६०० वर्ष पहले चोर-बाजार

भारत में आज चोर बाजारी से छोटे-बड़े सभी परेशान हैं। प्रायः यह कहा जाता है कि चोर-बाजारी द्वितीय विश्व-युद्ध की देन है, परन्तु वस्तु-स्थिति ऐसी नहीं है। आज से १६०० वर्ष पूर्व भी रोमन लोग चोर-बाजार से परिचित थे। एडवर्ड जिब्बन्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रोम साम्राज्य का क्षय और पतन' में इसका मनोरंजक वर्णन किया है। यह घटना सम्राट् जूलियन के शासन काल की है। एडवर्ड जिब्बन्स ने लिखा है —

एक बार जब मौसम की गड़बड़ी से सिरिया की फसल खराब हो गई, तो खाद्य पदार्थों की कीमत अनाज की कमी के हिसाब से बढ़ने लगी और उचित मात्रा में जो भी अनाज मिलना चाहिये था, वह भी शीघ्र ही लालची अधिकारियों द्वारा गायब कर दिया गया।

यह समझ कर कि राजा का कर्त्तव्य अपनी प्रजा के लिये खाद्यान्न का बन्दोबस्त करना भी है, जूलियन ने अपने कानूनी अधिकार से गेहूं का दाम निश्चित कर दिया। लेकिन जिस तरह आज हम देखते हैं कि जिस वस्तु पर नियन्त्रण होता है, वह तुरन्त दूकानों और बाजारों से गायब हो जाती है, उसी तरह उस जमाने में भी एक ही रात में खाने-पीने की सारी सामग्रियां बाजार से गायब हो गई। सम्राट् जूलियन अजीब उलझन में पड़ा। उसने अपने त्याग के उदाहरण से चोर-बाजारी को रोकने की बात सोची। हाइरपोलिस कलकिस और मिश्र के अपने गुदामों से गाड़ियों में अनाज भर-भर कर उसने बाजार में भिजवाया; पर भला चोर धर्म की कथा क्यों सुनने लगा! चोर-बाजारियों ने जूलियन के सब अनाज को खरीद लिया और बात की बात में गायब कर दिया। जिसके पास अनाज था, उसने नियन्त्रित दर पर बेचना ही बन्द कर दिया। फिर जैसी बुरी अवस्था आज हमारे देश में है, उसको छोड़कर रोम में और क्या हो सकती थी!

रोमनों ने चोर-बाजारी के विरुद्ध आवाज उठाई, उसे रोकने की कोशिश की; पर वे सफल न हुए।

दि कौमिल्ला बैंकिंग कारपोरेशन लि०

(स्थापित—१९१४)

रजिस्टर्ड आफिस—क्लाइव घाट स्ट्रीट कलकत्ता।

बैंक हर प्रकार का बैंक सम्बन्धी कार्य करता है

शाखायें समस्त भारत में

विदेशी एजेण्ट—

लन्दन—वेस्टमिन्स्टर बैंक लिमिटेड।
अमरीका—बैंकर्स ट्रस्ट कम्पनी आफ न्यूयार्क।
आस्ट्रेलिया—नेशनल बैंक आफ आस्ट्रेलिया लिमिटेड।
कनाडा—बैंक आफ मांट्रियल।

बी० के० दत्त
डिप्टी मैनेजिंग डायरेक्टर

एन० सी० दत्त
मैनेजिंग डायरेक्टर

मध्य-वर्ग

श्री विनायक नानेकर

सब में टिकने वाला मर्द-वर्ग यानी मध्य-वर्ग। छोटे ज्ञान के बिना बिछुड़े हुए हैं, बड़े ध्येय के बिना पिछुड़े हुए हैं; मगर बीच वाले ज्ञान और ध्येय में समतोल हैं और दोनों की खैंचातानी का लाभ उठाते हैं। बड़े और छोटे दोनों लापरवाह हैं, मगर ये सतर्क हैं। ये दोनों की नाड़ी परखे हुए हैं।

हर जगह बीच वाले की कद्र है। आयु की तीन अवस्थाओं में युवावस्था श्रेष्ठ है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनों में से बीच के विष्णु ही अधिक पूज्य हैं। दो आंखों के बीच जो ऊंची घ्राण की नाली है, वह सारे शरीर, इज्जत और सुन्दरता की नाक है। ठंड और गरमी से लोगों को नफरत है, मगर समशीतोष्ण जलवायु सबको भाती है। ज्यादा खाना या कम खाना दोनों का निषेध है, क्योंकि एक से बोझा ढोने की शक्ति नहीं रहती तो दूसरे से काम करने की शक्ति नहीं रहती; परन्तु जो 'एतदाल' रखता है वह नीरोग, चुस्त और दीर्घजीवी होता है। फजूल-खर्च तबाह हो जाता है, कंजूस बदनाम हो जाता है; मगर मितव्ययी टिका रहता है। तीव्रगामी जल्दी थक जाता है, सुस्त सड़ जाता है; मगर जो मध्यम चाल वाला है वह कछुए की तरह विजयी होता है। बदला लेने वाला नष्ट हो जाता है, चुप रहने वाला पीटा जाता है; मगर क्षमा करने वाला मान पाता है। राजा के अधिक सख्त रहने से बलवे का भय होता है, अधिक नरम रहने से कुचले जाने का भय होता है; मगर जो राजा मध्यम का मार्ग अपनाता है वह लोकप्रिय होता है। प्रकृति भी अपनी रचना में समतोल पसंद करती है; क्योंकि न्याय की तराजू के पलड़े उसने बराबर ही रखे हैं। जब कभी कमी-बेशी होती है तो वह आंधी, तूफान, रोग, लड़ाई, आग और बाढ़ से हिसाब बराबर कर देती है। पाक-शास्त्र में भी 'मध्यम' का महत्व है। ज्यादा नमक पड़ने से खाया नहीं जाता, नमक बिल्कुल न पड़ने से छुवा नहीं जाता; मगर जब बराबर नमक पड़ता है तो सब अपनाते हैं।

परन्तु, जहां सर्वत्र बीच वाली वस्तु का इतना महत्व है, हमारे समाज के मध्य-वर्ग का — बीच वालों का कोई महत्व नहीं है। कहीं तो बड़े कंगाल हो गये और सटोरिए या जुआरी कहलाये, कहीं छोटे ऊपर चढ़ गए और 'बदजात' कहलाये; परन्तु इधर बदनसीब बीच वाले जहां के तहां ही रहे और कोई उपाधि न पा सके। कहीं बड़ों ने फावड़ों से धन बटोरना शुरू किया, छोटों ने हड़तालें कीं; मगर मध्य-वर्ग वाले केवल तमाशन्बीन ही बने रहे। धनी 'पाईप' पर चढ़ गए, गरीब सगिरेट पर आगए; मगर ये बीच वाले घर में बीड़ी और बाहर सगिरेट तक ही सीमित रहे बड़े रेडियो, मोटर और राजनीति की बहस करने लगे, गरीब हड़तालों की भाषा बोलने लगे; मगर बीच वाले 'पे कमीशन की रिपोर्ट' की ओर ही आंखें गड़ाए रहते हैं। बड़े मोटर और हवाई जहाजों पर बैठते हैं, छोटे रिक्शे और टांगे पर सवार होते हैं; मगर ये बीच वाले अपनी टांगें ही तोड़ रहे हैं। बड़ों ने बही-खाते भर डाले, छोटों की आमदनी का तो कोई हिसाब ही नहीं है; मगर इन बीच वालों के जमा के 'कालम' कोरे के कोरे ही हैं – उनकी जगह कर्ज की रकम बढ़ रही है और वे कर्ज के बोझे से दबे जा रहे हैं।

बड़ों को छोटों की जरूरत है, छोटों को बड़ों की जरूरत है, इसलिए अपने बीच में लुढ़बुढ़ाने वाले

मध्यम-वर्ग से दोनों खार खाते हैं। वे कहते हैं—पहले युगों में सुर थे और असुर थे, मगर ये 'लुड़बुड़े' नहीं थे। न जाने ये 'लुड़बुड़े' कहां से टपक पड़े ? मध्य-वर्ग इसी कारण लोगों की आंखों में तिनके की तरह खटकता है। कहते हैं, मनुष्य की या तो दोनों आंखें हों या वह दोनों आंखों से अन्धा हो। एक आंख वाले को लोग 'काना' कहकर चिढ़ाते हैं।

लोगों को गरीबों पर दया आती है, परन्तु इन 'इज्जतदार खानदानी गरीबों' पर कोई तरस नहीं खाता। जिधर देखो उधर 'मजदूर, मजदूर' की ही आवाज सुनाई देती है। श्रमिकों की उन्नति व प्रगति के साधन जुटाये जा रहे हैं, मगर इन 'कुदरती गरीबों' की कोई फिक्र नहीं करता। दुनिया में उसी की सुनवाई होती है जो जोर से चिल्लाता है। जो चुप रहता है उसकी तो मौत ही है।

आज मध्य-वर्गियों का भाव गरीबों से भी नीचे गिरा हुआ है। एक रुपया रोज पर आसानी से 'बाबू' मिल सकता है; मगर डेढ़ रुपया रोज पर मजदूर मिलना दुश्वार हो गया है। मध्य-वर्ग वालों की चारों तरफ से जान आफत में है। न ये 'फाईन' पहन सकते हैं न 'कोर्स'। न ये नये कपड़े बदल सकते हैं, न ये फटे पहन सकते हैं। न ये मालपूआ उड़ा सकते हैं, न ये रास्ते पर बैठकर बाजरे की रोटी और मिर्च ही खा सकते हैं। न ये अट्टालिकाओं में रह सकते हैं, न बाहर 'फुटपाथ' पर ही सो सकते हैं। इनके नसीब में तो वही किराये के मकान हैं जिनका आजकल मिलना भी कठिन हो गया है। रईसों के दुर्गुणों से साहित्य भरा है, गरीबों की 'दिखाउ' गरीबी से साहित्य भरा पड़ा है, मगर इन 'संस्कारी गरीबों' का कोई साहित्य नहीं है; हालांकि बेकारी का प्रमाण इनमें ज्यादा है, मरने वालों की संख्या इनमें अधिक है।

कहलाते हैं 'बादशाही नौकर,' क्योंकि सरकार के सूत्र इनके हाथ में हैं; मगर इनकी अन्दरूनी हालत बड़ी खराब है। गरीबों को महंगाई 'डबल' मिलती है, इन्हें फकत आधी ही मिल रही है। छोटों का कुटुम्ब का कुटुम्ब कमाता है; मगर इन बीच वालों में कमाने वाले एक या दो, और खाने वाले होते हैं दर्जनों। गरीबी में आटा गीला, हर साल इनके घर का एक मेम्बर बढ़ जाता है। सरकार तरक्की देती है सिर्फ पांच रुपया। हालत इनकी इस कदर तंग रहती है कि महीना आधा नहीं हो पाता कि जेब खाली हो जाती है और पहली तारीख की ओर इस तरह टकटकी लग जाती है मानों बरसों बाद श्रीमती जी मैके से आ रही हों। इनकी स्त्रियों के शरीर पर 'इमीटेशन' के मोती और 'गीनीगोल्ड' के गहने दिखाई पड़ते हैं। इनका मुख्य पेय है चाय और खाद्य है चावल या रोटी। फ्लू इनका परम मित्र है। शरीर में ताप हो या बुखार, ये उसे पचा कर काम पर जाते हैं। न फुटपाथ पर मर सकते हैं, न डाक्टर को बुला सकते हैं! सारी शक्ति और बुद्धि इनकी पेट के जुगाड़ करने में ही व्यय हो जाती है। घर में पड़े-पड़े इनमें से कई एक तो मुंह से बिना 'आह' किये ही चल बसते हैं।

यह सब देखने पर कहना ही पड़ता है कि या तो इन्सान इधर हो या उधर, त्रिशंकु की भांति बीच में न लटकता रहे। दो के बीच पड़ने वालों की दशा बुरी ही होती है। कैंची के दो पांतों के बीच आने वाला कटता ही है। मंझधार में पड़ी नाव डूबती ही है। दो के झगड़े में पड़ने वाला न घर का रहता है और न घाट का।

आलू अधिक खाइये!

श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार

आलू दुनिया में सब से अधिक काम के पौदों में से है। समस्त संसार में यह बोया जा रहा है। पूर्व की अपेक्षा पश्चिमीय देशों में इसकी खेती अधिक होती है। मनुष्यों और पशुओं के लिए यह भोजन प्रदान करता है। इससे निशास्ता और एल्कोहल भी बनाई जाती है।

कहा जाता है कि ईक्वेडोर में क्विटो के पड़ोस में पहले-पहल स्पेनिआर्डस ने आलुओं का पता लगाया था। यहां पर सोलहवीं सदी से इसकी खेती की जा रही थी। पेरु और मेक्सिकों में भी यह पाया जाता था और इसे वहां 'पयस' कहते थे। पेरु को जीतने के बाद सन १५३५ में इसे अन्वेषकों ने स्पेन पहुँचा दिया। यह कहा जाता है कि कार्डन नामक भिक्षु इसे पहले पहल पेरु से स्पेन ले गया था। सन १५८६ में सर फ्रेन्सिस ड्रेक द्वारा इंग्लैंड ले जाया गया। और अब तो यह बहुत सी जातियों में भोजन का मुख्य पदार्थ बन गया है।

आधुनिक लेखकों के ऐसे वर्णनों से प्रतीत होता है कि जैसे पहले भारत में यह पैदा ही नहीं होता था। लेकिन, यह बात ठीक नहीं मालूम देती, क्योंकि चरक आदि संस्कृत के पुराने विद्वानों के ग्रन्थों में हम इसका उल्लेख तो देखते ही हैं, इस प्रकार के कुछ दूसरे भोज्य कन्दों का भी वर्णन पाते हैं जिन्हें पिण्डालुक आदि नामों से खाद्य-पदार्थों में गिनाया गया है। चरक, चाणक्य आदि ऋषियों ने आलुक नाम से जिस कन्द का वर्णन किया है उसी को आजकल के विद्वान आलू की संज्ञा देते हैं। आलुक शब्द का अर्थ यदि आलू माना जाय तो स्वीकार करना पड़ता है कि भारत में यह लगभग दो हजार साल से बोया जा रहा है और खाया जा रहा है।

आलू की उपयोगिता

तेज चाकू से एक बड़े आलू के बीच में से दो टुकड़े कर दिये जायं तो उसमें तीन तहें स्पष्ट दिखलाई देंगी। सब से पहले बाहर का पतला छिलका रहता है। छिलके के अन्दर जरा चौड़ी एक पट्टी होती है जो सम्पूर्ण आलू का लगभग दस प्रतिशत होती है। इसके अन्दर आलू का गूदा रहता है जो सारे आलू का करीब उनास्सी प्रतिशत भाग होता है।

छिलके के नीचे वाली पट्टी में गूदे की अपेक्षा खनिज लवण और प्रोटीन काफी अधिक परिमाण में होते हैं। कच्चे आलू के छिलके को चाकू से तराश कर जब फेंक दिया जाता है तो नीचे की तह का कुछ अंश भी साथ ही तराश लिया जाता है, जिसका मतलब है कि हम आलू के कुछ बहुमूल्य भाग को भी काफी हद तक नष्ट कर देते हैं। वैद्य लोग रोगियों को बिना छिलका उतारे ही आलू खाने के लिए जो कहा करते हैं, उसका अभिप्राय भी यही है कि आलू के उपयोगी अंश से हम वञ्चित न रह जायं।

आलू के गूदे में अधिकतर निशास्ता तथा नत्रजनीय पदार्थ होते हैं। इसके रस में लवण घुली हुई

अवस्था में रहते हैं। यह समझ लेना चाहिए कि आलू का सम्पूर्ण नत्रजनीय पदार्थ प्रोटीन के रूप में ही नहीं विद्यमान रहता। वास्तव में आलू में प्रोटीन का परिमाण बहुत कम होता है और नत्रजनीय पदार्थ का बहुत-सा अंश एस्परेजीन के रूप में विद्यमान रहता है जिसमें न तो तंतुओं को बनाने की क्षमता है और न ही इसमें पोषण प्रदान करने की क्षमता। इस लिए हमें आलू को तन्तुओं का निर्माण करने वाले भोजन के रूप में उपयोगी नहीं समझना चाहिए।

निशास्ते व लवणों का उत्तम स्रोत

रासायनिक विश्लेषण से आलू की मुख्य विशेषता तो हमें यह ज्ञात होती है कि इस में निशास्ता बहुत अधिक होता है जिसके कारण यह व्यापारिक निशास्ते और डेक्स्ट्रीन का मुख्य स्रोत बनता है।

आलू के निशास्ते के दाने दूसरे निशास्तों के दानों की तुलना में विशेष रूप से बड़े आकार के होते हैं। पकाया न जाय तो यह सुगमता से पचता नहीं। इसका आचूर्ण ठीक तरह नहीं होता और यह अफारा पैदा कर देता है। जल्दी सड़ांद पैदा करने के गुण के कारण अजीर्ण वाले के लिए यह अच्छा भोजन नहीं साबित होता।

आलू में मुख्य खनिज पदार्थ पोटाश, कैल्शियम तथा प्रस्फुरक होते हैं। इन लवणों की प्राप्ति हमें मुख्यतया आलू से होती है। खाद्योज (विटामीन) 'सी' का एक बड़ा परिमाण हमें आलू प्रदान करता है। मशीन के अनाजों की तुलना में खाद्योज 'बी' और लोह लवण भी हमें इससे अधिक मिलते हैं।

छिलके समेत उबालिये

दूसरे सब कन्दों के संघटन की तरह आलुओं का संघटन भी होता है। इसलिये इनको पकाने की विभिन्न विधियों में इनकी पोषक उपयोगिता भी काफी बदल जाती है। उबालने से पहले यदि इन्हें छील कर भिगो दिया जाय तो इनके पोषक तत्वों — प्रोटीनों और खनिज लवणों — का एक बड़ा भाग नष्ट हो जाता है। इसी कारण हमेशा यह सलाह दी जाती है कि आलुओं को छिलके समेत ही उबालना या पकाना चाहिये।

भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के आलुओं के सम्बन्ध में यह मालूम किया गया है कि उनका पाचन किस तरह होता है। बिना चबाए ही मोटे-मोटे टुकड़े निगल जाने से वे देर में हजम होते हैं। बड़े, औताजेर स्वस्थ आलू, पकाने या उबालने के बाद जिनका आटे की तरह चूरा आसानी से बनाया जा सकता है, अधिक सुगमता से पच जाते हैं। वे आलू जो पिलपिले हों, हरे हों, उबालने के बाद भी कठोर रहते हों और जो बारीक आटे के रूप में न पीसे जा सकते हों, जल्दी नहीं पचते। पाश्चात्य देशों में सेवियां बनाने की मशीन की तरह एक छोटी सी मशीन होती है जिस में उबाले हुए आलू डाल कर भींचे जाते हैं। निचले छिद्रों से आलू के जो छोटे-छोटे दाने निकलते हैं वे बिल्कुल चावलों के समान दीखते हैं। चावलों के इस साम्य के कारण अंग्रेजी में इस मशीन को 'राइसर' (चावल बनाने वाली मशीन) कहते हैं।

भोजन की कमी को दूर करने का उपाय

आलू का रासायनिक संघटन हमें बताता है कि शरीर के लिये उपयोगिता की दृष्टि से इसे हम गेहूँ के बराबर रख सकते हैं। बहुत से देशों में तो यह उसी तरह मुख्य भोजन के रूप में खाया जा रहा है जिस तरह भारत में गेहूँ या चावल खाया जाता है। हमारे देश में इस समय गेहूं की बहुत अधिक कमी है। जो भूभाग आलू पैदा करने के लिये अनुकूल हैं उनमें हमारे किसान नये तरीकों से आलू की फसल खूब बढ़ा कर खाद्य पदार्थों की कमी को दूर करने में देश की बड़ी सहायता कर सकते हैं।

हास परिहास

एक बाबू जी किसी कार्य वश एक तेली के घर गये। तेली आकर उनसे बातें करने लगा, परन्तु उधर कोल्हू का बैल बराबर चलता रहा। बाबू जी ने पूछा—"क्यों चौधरी, तुम चले आये, तब भी बैल चल रहा है?"

"हां बाबू, धन्नी पर पत्थर रख दिया है तो वह समझता है कि हम बैठे हैं।"

"और अगर तुम्हारे चले आने के बाद वह चलना बन्द कर दे तो?"

"नहीं बाबू जी, उसके गले में घण्टी बन्धी है। घण्टी न बजे तो हमें मालूम हो जायगा कि वह खड़ा हो गया है।"

"छिः," बाबू जी बोले—"रहे तेली आखिर तुम! अगर बैल खड़ा रहे और सिर हिलाता रहे, तब भी तो घण्टी बजती रहेगी!"

तेली ने विनीत भाव से हाथ जोड़ कर कहा—"अरे बाबू जी की बात! ऊ आप लोगन की तरह पढ़ा लिखा थोड़े है!"

* * *

स्त्री—(दूकानदार से) क्यों जी, आप तो कहते हैं कि इन साड़ियों को छापने के पहले धोना और रंगना पड़ेगा, तो क्या इस काम के पैसे अलग देने होंगे?

दूकानदार—जी नहीं, हम तो सिर्फ रंगने और छापने के ही पैसे लेते हैं। धुलाई वगैरह का काम तो हमारे कारखाने में मुफ्त ही किया जाता है।

स्त्री—तो फिर अब की बार ये चारों साड़ियां सिर्फ धोकर ही दे दीजिये, रंगना और छापना फिर बाद में देखा जायगा!

* * *

मास्टर—लड़को, बताओ, स्त्री अधिक डरती है या पुरुष?

एक छोटा लड़का—मास्टर साहब, मेरे पिता जी मेरी मां से बहुत डरते हैं!

* * *

यात्री—(पुलिसमैन से) क्यों जनाब; क्या आप यह बता सकते हैं कि यह कौन-सा शहर है?

पुलिस—यह बम्बई है।

यात्री—तो यदि यह भी बतला दें कि मेरी बहिन का घर कहां है तो बड़ी मेहरबानी होगी!

* * *

श्रीमती जी—(फोटोग्राफर से) आपने मेरे पति का फोटो अच्छा नहीं खींचा।

फोटोग्राफर—क्यों, इसमें क्या नुक्स है?

श्रीमती जी—इस फोटो में ये घबराये हुए से दीखते हैं

फोटोग्राफर—फोटो खिंचते समय इनके सामने आप जो खड़ी थीं!

* ० *

गाय—क्यों बिलारी मौसी, बहुत दुबली हो गई हो? क्या बात है?

बिल्ली—क्या बताऊं! तुमतो दूध अच्छा देती हो; पर लोगों के घर पहुँचने तक वह पानी बन जाता है। दस घर मार खाने पर कहीं एक घर में मिलता है, घूंट भर पानी। फिर राशनिंग ने भी तो हमें तंग कर रखा है घरों में अनाज का अभाव होने से चूहे भी गायब हैं!

* * *

पुत्र—पिता जी, मैं जादू सीखने वाला हूँ।

पिता—बेटा, पहले मेहनत करके स्कूल की परीक्षा पास कर लो, फिर यह जादू-वादू के खेल सीखना।

पुत्र—परन्तु, पिता जी, परीक्षा पास करने के लिये ही तो मुझे जादू सीखना है!

* * *

मित्र—(धीरे से) क्या बात है, मोहन, आज घर में बिल्कुल शांति है? भाभी बीमार तो नहीं हैं?

मोहन—उसने अभी-अभी आइसक्रीम खाई है!

* * *

३

आर्य संस्कृति एवम् पातित धर्म की प्रबल प्रतीक भारतीय महिलाये जन्मान्तर में भी अपने वर्त्तमान पति प्राप्ति की कामना से सहस्रों की संख्या मे विशेष कर पर्व के दिन तीर्थ स्थानों में इस बीसवीं सदी में भी ग्रन्थि बंधित स्नान करती दिखाई पड़ती है । इस प्रकार का स्नान उनके वांछित फल प्राप्ति में कहां तक सहायक होता है, यह तो उनके विश्वास का विषय है, पर स्नान की महत्ता सर्वथा निर्विवाद है और विशेषकर जब स्नान "प्रिफेक्ट साबुन" से किया जाता है, जो शरीर को न केवल स्वच्छ एवम् शान्त बनाता है वरन अपनी स्निग्ध सुवास में त्वचा के प्रफुल्लित तथा स्नान के बाद भी सुवासित रखता है।

प्रिफेक्ट

टॉयलेट सोप

विशुद्ध वनस्पति तैलों से निर्मित

स्थानीय डिपो—मेसर्स मोदी इण्डस्ट्रीज डिपो, दरयागंज दिल्ली ।

आचार्य विनोबा

(पृष्ठ २४ का शेष)

अटपटी मालूम होती है, पर वह जरा-सा अभ्यास करने से सरल दिखाई देती है। इस लिपि से प्रेस वालों को बड़ी सुविधा रहेगी। स्वर में भी बदल किया गया है। 'उ' अगर विनोबा जी की लिपि में लिखना है तो 'अ' में 'उ' की मात्रा लगानी पड़ेगी—जैसे 'अु'।

विनोबा जी से एक भेंट

बापू का उपवास दिल्ली में चल रहा था। सारे देश में चिन्ता की लहर दौड़ गई थी। सब व्याकुल थे। मैं पौनार गया और विनोबा जी से मिला। घूमते समय उन्होंने मुझ से बातचीत की। वे अपने निवास-स्थान के सामने वाले मैदान में प्रायः घूमते हैं और बात करते जाते हैं। मैंने पूछा—"बापू अनशन कर रहे हैं, आप कुछ समाचार पत्रों के लिए कहेंगे ?"

उन्होंने कहा—"मैं क्या कहूँ ? बापू का अनशन ही स्वयं कह रहा है कि देश को क्या करना चाहिए।"

उन्होंने अपना बहुत समय मुझे दिया। विनोबा जी ने उस दिन बहुत अच्छी बातें कही थीं। उन्होंने कहा था कि जनता को अपनी राष्ट्रीय सरकार की मदद करना चाहिए। जनता की सरकार की अगर हम सहायता नहीं करेंगे तो वह कैसे टिक सकती है। जो स्वराज्य हमें मिला, उसकी रक्षा करना है। करीब आध घण्टे तक मेरा व उनका वार्तालाप हुआ। मैंने पूछा—"आज का वार्तालाप पत्रों में भेजने के पूर्व आपको बता दूं ? मुझे वर्धा से आना पड़ेगा।"

उन्होंने कहा—"नहीं, मैं तो छपा हुआ ही पढ़ूंगा। तुम्हारी परीक्षा होगी कि तुम कैसा लिख सकते हो।"

दूसरे दिन बापू ने अपना अनशन छोड़ दिया था। वह वार्तालाप अखबारों में भी छपा, पर उसके पांच-छः दिन बाद ही बापू की हत्या कर दी गई और फिर तो सारा वातावरण ही बदल गया। फिर विनोबा जी को मैंने उक्त वार्तालाप बताना उचित न समझा।

'परमधाम आश्रम'

विनोबा जी ने वर्धा से पांच मील की दूरी पर स्थित पौनार ग्राम में धाम नदी के तट पर अपना निवास-स्थान बनाया हुआ है जो अब 'परमधाम आश्रम' कहा जाने लगा है। पौनार जहां कि उनका यह आश्रम बना है, प्राचीन ऐतिहासिक स्थान है। वहां जमीन में प्राचीन मूर्तियां पाई जाती हैं। विनोबा जी ने अपने आश्रम के बाजू में 'राम-भरत' मूर्ति की स्थापना की है और छोटा-सा मंदिर बना दिया गया है उसे 'राम-भरत मन्दिर' कहा जाता है। अभी कुछ दिन हुए हनुमान जी की मूर्ति जमीन में पाई गई है। हनुमान जी अहिरावण का वध करके राम लक्ष्मण को दोनों कन्धों पर लेकर खड़े हैं। विनोबा जी ने बताया कि इस मूर्ति का नाम 'परमधाम रक्षक' होगा और वह सामने ही स्थापित की जायगी।

विनोबाजी सिर्फ लंगोटी लगाते हैं और ऊपर चादर ओढ़ लेते हैं। बस यही है उनकी पोशाक। बालों की उन्हें परवाह नहीं—बनवायेंगे तो सिर, दाढ़ी व मूंछ के बाल एक दम साफ करा देंगे और फिर बढ़ने देंगे तो बढ़ने ही देंगे। यही कारण है कि विनोबा जी को फोटो कहीं-कहीं लम्बी दाढ़ी की दिखाई देती है और कभी-कभी बिना दाढ़ी के—बल्कि एकदम घुटे हुए चेहरे की फोटो दिखाई देती है।

विनोबा जी गत मास से शरणार्थियों की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए उत्तरी हिन्दुस्तान का भ्रमण कर रहे हैं।

गांधी जी के बाद विनोबा जी ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो गांधी जी के सिद्धांतों के अनुसार उनके विचारों का सही और साफ अर्थों में प्रतिपादन कर सकते हैं। आज राष्ट्र की आंखें विनोबा जी पर लगी हैं कि वे देश का मार्ग-प्रदर्शन किस तरह करते हैं।

★

विजय-पुस्तक भण्डार की सामयिक पुस्तकें

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित

स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा

इस पुस्तक में लेखक ने भारत एक और अखण्ड रहेगा, भारतीय विधान का आधार भारतीय संस्कृति पर होगा, इत्यादि विषयों का प्रतिपादन किया है। मूल्य १।।) रुपया।

जीवन में विजय प्राप्त करने के लिये
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित

'जीवन संग्राम'

का

संशोधित दूसरा संस्करण पढ़िये। इस पुस्तक में जीवन का सन्देश और विजय ललकार एक ही साथ हैं पुस्तक हिन्दी भाषियों के लिये मनन और संग्रह के योग्य हैं। मूल्य १) डाक व्यय।-)

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति की

'जीवन की झांकियां'

प्रथम खण्ड—दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन, मूल्य ।।)

द्वितीय खण्ड—मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला? मूल्य ।।)

दोनों खण्ड एक साथ लेने पर मूल्य ।।।)

सामाजिक उपन्यास

सरला की भाभी

[ले०—श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति]

इस उपन्यास की अधिकाधिक मांग होने के कारण पुस्तक प्रायः समाप्त होने को है। आप अपनी कापियें अभी से मंगा लें, अन्यथा इसके पुनः मुद्रण तक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।

मूल्य २)

हिन्दू संगठन हौआ नहीं है
अपितु
जनता के उद्बोधन का मार्ग है।
इसलिये

हिन्दू-संगठन

[लेखक—स्वामी श्रद्धानन्द संन्यासी]

पुस्तक अवश्य पढ़ें। आज भी हिन्दुओं को मोहनिद्रा से जगाने की आवश्यकता बनी हुई है, भारत में बसने वाली प्रमुख जाति का शक्ति सम्पन्न होना राष्ट्र की शक्ति को बढ़ाने के लिये नितान्त आवश्यक है। इसी उद्देश्य से पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। मूल्य २)।

पं० मदनमोहन मालवीय

[श्री रामगोविन्द मिश्र]

महामना मालवीय जी का क्रमबद्ध जीवन-वृत्तान्त। उनके मन का और विचारों का सजीव चित्रण। मूल्य १।) डाक व्यय।=)

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस

नेता जी जन्मकाल से सन् १९४५ तक, आजाद हिन्द सरकार की स्थापना, आजाद हिन्द फौज का संचालन आदि समस्त कार्यों का विवरण। मूल्य १) डाक व्यय।=)

पण्डित जवाहरलाल नेहरु

[श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति]

जवाहरलाल क्या हैं? वे कैसे बने? वे क्या चाहते हैं और क्या करते हैं? इन प्रश्नों का उत्तर इस पुस्तक में आपको मिलेगा।

मूल्य १।) डाक व्यय।=)

प्राप्ति स्थान—विजय पुस्तक भण्डार, श्रद्धानंद बाजार, दिल्ली

सलोनी दुनिया

क्रीम, पाउडर और लाली

कुमारी नीलिमा एम० ए०

सौन्दर्य-साधना

भारतीय महिलाओं में मुख की सौन्दर्य-वृद्धि के लिये क्रीम, पाउडर व लाली के प्रयोग की प्रवृत्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। परन्तु देखने में आया है कि इनके प्रयोग की ठीक विधि ज्ञात न होने के कारण अधिकतर महिलायें अपने प्राकृतिक सौन्दर्य को खोकर हास्यास्पद-सी बन जाती हैं। स्मरण रहे कि पाउडर, क्रीम इत्यादि लगाना भी एक कला है जो सीखनी पड़ती है। और फिर सस्ती और घटिया किस्म की प्रसाधन-सामग्री का प्रभाव भी उल्टा ही होता है—सौन्दर्य-वृद्धि के स्थान पर प्रायः सौन्दर्य का ह्रास ही होता है। अतः यह परमावश्यक है कि बढ़िया किस्म की प्रसाधन-सामग्री का ही उपयोग किया जाये।

क्रीम, पाउडर व लाली इत्यादि के लगाने की ठीक विधि निम्नलिखित है—

बाजार में क्रीम दो तरह की मिलती है—एक तो चेहरे पर जमे मैल इत्यादि को दूर करने वाली और दूसरी पाउडर लगाने से पहिले आधार रूप में प्रयुक्त होने वाली। पहली किस्म की क्रीम से तथा साबुन से मुख को अच्छी तरह साफ करके दूसरी किस्म की क्रीम मलनी चाहिये। इस क्रीम के पश्चात ही मुख पर पाउडर लगाना चाहिये। पाउडर हाथ से नहीं, 'पफ' से लगाना चाहिये—लगाना चाहिये, थोपना नहीं चाहिये। बाजार में पाउडर त्वचा के रंग के अनुसार विभिन्न 'शेडों' में मिलता है। पाउडर के रंग का 'शेड' त्वचा के रंग के अनुसार ही होना चाहिये। 'शेड' का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है।

बाज महिलायें गालों तथा ओठों पर लाली अर्थात् 'रूज' और 'लिपस्टिक' लगाना पसन्द करती हैं। गालों पर लाली ('रूज') लगाने का एक मोटा नियम यह है कि इसे पाउडर लगाने से पहले लगाना चाहिये, अर्थात् पहले क्रीम, फिर लाली और फिर पाउडर। दूसरा नियम यह है कि लाली गाल पर लाल धब्बे के रूप में नहीं होनी चाहिये, बल्कि गाल के सब से ऊंचे भाग पर नैसर्गिक रूप से फूटी हुई लालिमा के समान त्वचा में मिली-जुली होनी चाहिये। इसके लिये विधि यह है कि गाल पर लाली की ३-४ छोटी बिंदियां सी लगाकर हाथ की उंगली से उन्हें मिलाकर फैला देना चाहिये। गालों पर लाली लगाते समय मुखाकृति का भी ध्यान रखना चाहिये। यदि चेहरा गोल व मोटा हो तो यह आंखों के नीचे से लेकर कनपटी के नीचे तक गोलाकार फैली होनी चाहिये। यदि चेहरा पतला और लम्बूतरा हो तो यह गाल की उभरी हुई हड्डी पर लगानी चाहिये। यदि चेहरा चौड़ा व चौकोर हो तो यह गाल की उभरी हुई हड्डी से लेकर निचले जबड़े तक फैली होनी चाहिये। हल्की-सी लाली यदि ठोड़ी के निचले भाग पर भी लगा दी जाये तो चौड़ा व चौकोर चेहरा और भी आकर्षक हो उठता है।
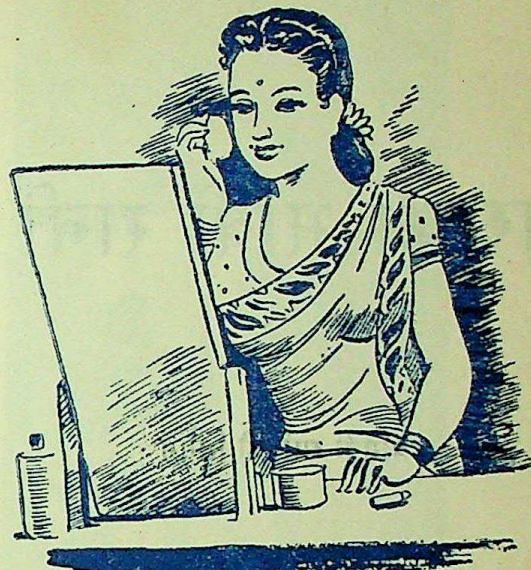
ओठों पर लाली (लिपस्टिक) लगाते समय मुखाकृति व त्वचा के रंग का ध्यान रखना चाहिये। ओठों पर लाली लगाना एक अलग कला है। बाज चेहरों पर पतले ओंठ अच्छे लगते हैं और बाज पर मोटे व गोलाकार ओंठ। 'लिपस्टिक' से आवश्यकतानुसार मोटे ओंठ पतले और पतले ओंठ मोटे दिखाये जा सकते हैं। 'लिपस्टिक', लाल रंग के कई 'शेडों' में मिलता है। इसका 'शेड' यदि वेशभूषा के रंग से मेल खाता हो तो आकर्षण द्विगुणित हो जाता है।

घर की भावी रानी

श्रीमती सावित्री निगम

निस्संदेह कन्या घर की भावी रानी होती है। उसका लालन-पालन और शिक्षण उसी प्रकार होना आवश्यक है जिस प्रकार किसी राज्य-सत्ता को भविष्य में सम्भालने वाली राजकुमारी का होता है। राज-रानी के लिये जिस प्रकार राजनीति का ज्ञान आवश्यक होता है, उसी प्रकार गृह-रानी के लिये गृह-विज्ञान का ज्ञान अनिवार्य है।

शिशु-कन्या ज्यों ही थोड़ा-सा ज्ञान अर्जित कर लेती है, त्यों ही वह हाथों को पटक कर स्वयमेव रोटी बनाने का अभिनय करने लगती है और जैसे ही कोई खिलौना उसे मिल जाता, वह उसे गोद में झुला कर, खिला कर और सुला कर यह प्रमाणित कर देती है कि वात्सल्य, प्रेम, दया, क्षमा आदि मानवीय गुण उसमें अधिक हैं — वह भावी पत्नी, माता और संरक्षिका है। ज्यों ही वह ८-१० साल की हो जाती है, उसे मां, चाची, बुआ आदि की गृहव्यवस्था में त्रुटियां दृष्टिगोचर होने लगती हैं। गृह-शासन में उसका हस्तक्षेप यह प्रमाणित कर देता है कि प्रकृति ने उसे शासन, पालन और रक्षा की शक्तियां दी हैं और यदि उचित विकास की व्यवस्था की जाय तो यही शक्तियां भविष्य में प्रस्फुटित होकर कन्या को प्रतिभाशील बना सकती हैं। किन्तु भारतीय घरों में कन्याओं के मानसिक और शारीरिक विकास की चिन्ता नहीं की जाती। माता-पिता गृह-कार्यों में निपुण बनाने की धुन में बालिका से सारे घर का इतना अधिक काम लेते हैं कि बेचारी बाल्यावस्था में ही गृहिणी-सी बन जाती है। उसमें दासत्व की भावना चिर-काल के लिये आ जाती है और मौलिकता, अपनत्व और स्वाभिमान रह ही नहीं जाता। बस अनुचरी की भांति सदैव आज्ञा पालन करना ही उसके जीवन का ध्येय बन जाता है।

कुछ माता-पिता अपनी कन्याओं को पश्चिमी ढंग

की शिक्षा दिलाते हैं। वे कन्यायें पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित हो जाती हैं। अनुकरण-प्रियता के कारण उन कन्याओं के नाम तथा माता, पिता, भाई, बहिनों के पुकारने के नाम तक ठेठ अंग्रेजी के होते हैं। साथ ही उनमें रसोई की व्यवस्था, घर के काम काज, और सेवा की भावना के प्रति एक घृणा-सी उत्पन्न हो जाती है, जिससे वे आजीवन पराश्रित ही रहती हैं, हाथ पैर होते हुए भी पंगु बनी रहती हैं।

कन्याओं का हित इसी में है कि उन्हें उचित और आदर्श शिक्षा भारतीय ढंग से भारतीय संस्कृति के आधार पर ही दी जाये। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्हें विदेशी भाषाओं के अध्ययन से सर्वथा वंचित रक्खा जाय। रुचि के अनुसार उन्हें पहिले सभी जीवनोपयोगी विषयों का ज्ञान कराना परमावश्यक है।

घर की व्यवस्था, शिशु पालन, रसोई और पाक-विद्या, प्रारम्भिक चिकित्सा और सहायता तथा घरेलू दवाओं और सौरिगृह की व्यवस्था का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना प्रत्येक भावी नारी का कर्त्तव्य है। इन उपयोगी विषयों में कुशल कन्या जिस भी घर में जाती है, वह घर स्वर्ग बन जाता है। आधुनिक शिक्षित समुदाय की कुछ ऐसी धारणा-सी बन गई है कि चूल्हा-चक्की में लगे रहना दासत्व, हीनता और गुलामी का लक्षण है। पश्चिमी उच्छृंखलता के प्रभाव से उत्पन्न ये भ्रांत धारणायें सर्वथा त्याज्य हैं। जब महान सत्ताओं की अधिकारिणी रानी जब प्रजा के अन्न-वस्त्र और स्वास्थ्य की व्यवस्था करके और भी अधिक महान व लोकप्रिय बन जाती है, तो घर की रानी परिवार के भोजन की तथा स्वास्थ्य की व्यवस्था करके कैसे गुलाम, नीच और हीन बन सकती है?

अन्धानुकरण की धुन में अपनी उस संस्कृति को ठुकराने वाली बहकी हुई थोड़ी-सी ऐसी भी महिलायें हैं जो परिश्रम से भागती हैं, और पैरों के स्थान में सिर से चलना चाहती हैं।

रसोई घर का नियन्त्रण नारी को वह गौरव, शक्ति तथा सुविधायें देता है जो पुरुष को दुर्लभ है। समस्त कुटुम्ब के शारीरिक व मानसिक निर्माण तथा स्वास्थ्य-प्रदान की शक्ति प्राप्त करके ही नारी-जीवन सफल होसकता है।

घर की भावी रानी को इतिहास, भूगोल, गणित तथा नृत्य-संगीत इत्यादि ललित कलाओं के साथ ही साथ जब गृहस्थ शास्त्र का भी ज्ञान हो जाता है तो वह अपने को और अपने स्वजनों को ही सुख नहीं पहुँचाती, वरन् भारतीय समाज में एक सुखी गृह की वृद्धि करके राष्ट्र सेवा भी सहज ही में कर लेती है। सुखी गृहों में ही राष्ट्र-सेवी, वीर, धीर और तेजस्वी सन्तान उत्पन्न होती है।

घर की भावी रानी को सृष्टि-योजना तथा मातृत्व के मंगलमय कार्य के साथ ही साथ समाज-सेवा तथा देश-चिन्तन में भी प्रमुख भाग लेना चाहिये; क्योंकि सामाजिक प्राणी होने के कारण उसे नागरिक अधिकार व कर्त्तव्य भी पुरुष-वर्ग के समान ही प्राप्त हैं।

स्त्री के नये अधिकार—

उत्तराधिकार तथा तलाक

पिछले कई सालों से हिन्दू स्त्रियों में जागृति की जो लहर चली, उसका परिणाम अब वस्तुतः दृष्टिगोचर होने लगा है। हिन्दू नारी को उत्तराधिकार और विवाह-मर्यादा के पुराने दृष्टि-कोण पर आपत्ति थी। उसे दूर करने के लिये बड़े-बड़े कानूनदां पिछले कुछ वर्षों से प्रयत्न कर रहे थे। अब स्वतन्त्र भारत की असेम्बली ने इस सम्बंध में एक बिल को 'सिलैक्ट कमेटी' के सुपुर्द कर दिया है। इस बिल की मुख्य धारायें निम्नलिखित हैं—

१—हिन्दू लड़कियों को भी अपने पिता के उत्तराधिकार में भाइयों की तरह भाग मिलेगा।

२—हिन्दू-स्त्री किन्हीं विशेष परिस्थितियों में पति को तलाक दे सकेगी।

३—कोई पुरुष एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह नहीं कर सकेगा।

४—विवाह में जात-पांत का कोई बन्धन नहीं रहेगा।

उत्तराधिकार के सम्बन्ध में यह व्यवस्था की गई है कि कन्या को पैतृक संपत्ति में भाई से आधा हिस्सा मिलेगा।

बिल में एक धारा दहेज के सम्बन्ध में भी है, जिसके अनुसार दहेज या स्त्री-धन केवल धरोहर के रूप में ससुराल वालों के पास रहेगा और जब लड़की १८ वर्ष की, अर्थात् बालिग हो जायगी तब वह उसे मिल जायेगा और उस पर उसी का अधिकार होगा। स्त्री-धन के उत्तराधिकारी क्रमशः पुत्री, पुत्र, पोता, पति, भ्राता और पिता हैं।

अभी तक के कानून के अनुसार पति की सम्पत्ति पर विधवा का कुछ एक शर्तों के साथ अधिकार होता था, लेकिन अब नया बिल उसे पूर्णाधिकार के रूप में परिवर्तित कर देता है।

बिल में यह भी व्यवस्था की गई है कि यदि कुछ अवस्थाओं में, जिन पर स्त्री का वश न हो, उसे अपने पति से अलग रहना पड़े, तो वह उतने समय के लिए पति से अपने गुजारे के लिए रकम की मांग कर सकती है।

विवाह के सम्बन्ध में बहुत-सी धाराएं बिल में रखी गई हैं। कोई भी हिन्दू स्त्री-पुरुष पति या पत्नी धर्म-विवाह में बंध सकते हैं, बशर्तेकि उनका उस समय कोई पति या पत्नी जीवित न हो, पुरुष १८ साल से और लड़की १४ साल से कम न हो, कोई पागल या विकृत-मस्तिष्क न हों इत्यादि।

सप्तपदी का अन्तिम पद पूर्ण होने पर विवाह पूर्ण-सम्पन्न समझा जायगा। सिविल विवाह के लिए वर या वधू के २१ साल से कम उम्र के होने पर अभिभावकों की सहमति आवश्यक होगी। धर्म-विवाहों का रजिस्ट्रेशन भी रजिस्ट्रार के यहां किया जा सकेगा।

यदि कोई व्यक्ति अपनी पत्नी या पति के रहते हुए भी विवाह करेगा, तो उसे भारतीय दण्ड-विधान की ४६४-४६५ दफाओं के मातहत दण्ड मिलेगा।

इस बिल का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रसंग तलाक का है। कोई भी स्त्री या पुरुष जिला-अदालत या हाई-कोर्ट में विवाह-सम्बन्ध-विच्छेद की दरखास्त निम्न कारणों से दे सकता है—

१. पति या पत्नी विवाह के समय भी किसी पत्नी या पति को रखे हुए थे। २—पति या पत्नी विवाह के समय नपुंसक हैं। ३—पति या पत्नी सपिण्ड है, जो कि शास्त्रीय नियमों व परम्पराओं के विरुद्ध है। विवाह के समय दूसरा पक्ष पागल या विकृत मस्तिष्क था या अब हो गया है। ४—यदि माता पिता की सम्मति बलात् या धोखे से ली गई हो। ५—यदि दोनों में से कोई पक्ष पीड़ित है। ६—पांच साल से एक पक्ष दूसरे को छोड़ गया है। ७—अब हिन्दू नहीं रहा। ८—पांच साल से पागल या असाध्य अथवा गुप्त रोगों से रोगी हो गया है।

बिल के अन्तिम भाग में संरक्षकों के अधिकार व कर्त्तव्य तथा गोद लेने के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण धाराएं विस्तार के साथ दी गई हैं।
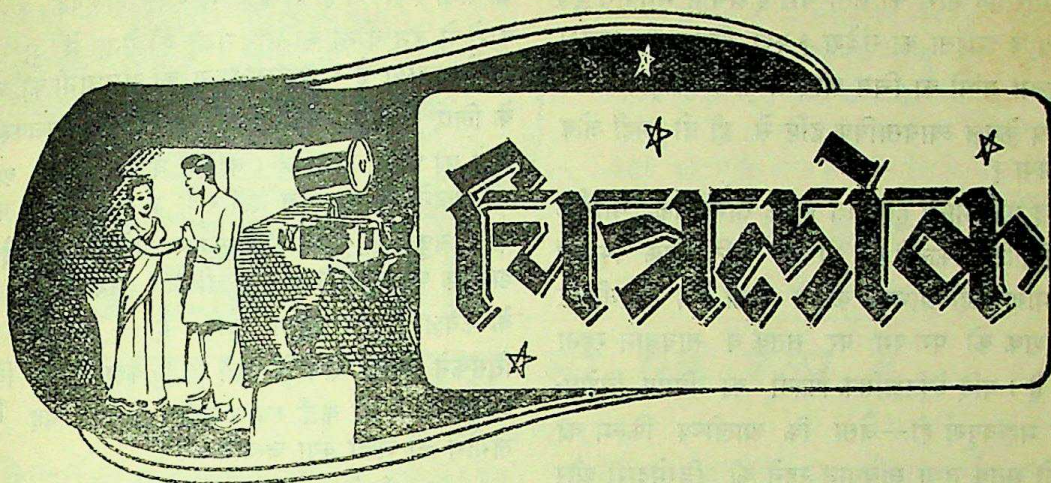
'सम्राट अशोक'

श्री चिरंजीत

'सम्राट अशोक' फिल्म 'लाल हवेली' के ख्याति-प्राप्त निर्देशक श्री के. बी. लाल की नवीनतम कृति है, जिसमें भारत के महान सम्राट अशोक के हृदय-परिवर्तन की कहानी अत्यन्त रोचक ढंग से चित्रित की गई है। फिल्म के भव्य व कलापूर्ण सैटिंग्ज, टैकनिकल विशेषतायें, नाटकीय उत्कर्ष—ये सभी निर्देशक व निर्माता के परिश्रम का परिचय देते हैं। परन्तु इस फिल्म का नाम तथा विज्ञापित विषय ऐसा है कि इस पर केवल टैकनिकल अथवा साहित्यिक दृष्टि से ही विचार करना पर्याप्त नहीं है - इसलिये भी पर्याप्त नहीं हैं कि यह फिल्म सत्य व अहिंसा के दिव्यदूत महात्मा गांधी को समर्पित की गई है और निर्माता की ओर से यह आशा प्रकट की गई है कि रजत-पट पर अंकित अशोक की यह जीवन-कथा लोगों को महात्मा गांधी के बताये हुए मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित करेगी। भगवान बुद्ध के अनुयायी तथा हिंसा के मार्ग को छोड़कर सत्य, अहिंसा व प्रेम के लोक-कल्याणकारी मार्ग को अपनाने वाले सम्राट अशोक के चरित्र से ऐसी प्रेरणा मिलना अनिवार्य ही है।

जब हम इस पहलू से इस फिल्म पर विचार करते हैं तो यह हमें पूरी तरह से संतुष्ट नहीं कर पाती। बौद्धमत के उत्कर्ष और सत्य व अहिंसा के प्रयोग की गौरवमयी गाथा न होकर यह फिल्म कुछ-कुछ प्रेम कहानी सी बन गई है। भगवान बुद्ध का लोक-कल्याणकारी संदेश गौण रह गया है और मानवीय प्रेम व सौन्दर्यासक्ति की भावना अधिक उजागर हो गई है। कलिंग के युद्ध में हुए भारी रक्त-पात तथा विनाश के लिये अशोक दुखी होता है, उसके मन में पश्चात्ताप की भावना जागती है—कब ?—स्वदेशना नामक एक बौद्ध भिक्षुणी के अद्वितीय रूप से प्रभावित होने के बाद; उसके नयनों के जादू का शिकार होने के बाद ! तो यहां प्रेरणा का स्रोत भगवान बुद्ध नहीं, रूप की रानी भिक्षुणी स्वदेशना है। वह जब अशोक के प्राण बचाने के लिए अपने प्राण त्यागती है तो नेपथ्य में यह गीत गूंजता है—

'जग की नारी से बढ़कर है भारत देश की नारी,
जिसके गले में पड़ी हुई है सती-धर्म की माला।'

इन पंक्तियों की गूंज के साथ ही फिल्म समाप्त हो जाती है। अन्त में जोड़ा गया अशोक-चक्र-युक्त राष्ट्रीय झण्डे का दृश्य और गीत भी इन पंक्तियों की गूंज व प्रभाव को कम नहीं कर पाता। इसी से मन में यह प्रश्न उठता है कि क्या इस फिल्म का मुख्य

विषय भारतीय नारी का सती धर्म है अथवा भगवान बुद्ध का सत्य व अहिंसा का संदेश ? क्या फिल्म के आरंभ में महात्मा गांधी का चित्र और अन्त में राष्ट्रीय झण्डे का चित्र केवल व्यावसायिक दृष्टि से ही तो नहीं जोड़ दिया गया ?

यह एक मानी हुई बात है कि सामाजिक, धार्मिक तथा रोमांटिक फिल्मों की अपेक्षा ऐतिहासिक फिल्मों का निर्माण कहीं अधिक कठिन होता है। कहानीकार व निर्देशक को पग-पग पर सतर्क व सावधान रहना पड़ता है। यदि ऐतिहासिक फिल्म का विषय विशेष-रूप से महत्वपूर्ण हो—जैसा कि आलोच्य फिल्म का है—तो सतर्क तथा सावधान रहने की जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है। इतिहास समूचे राष्ट्र की अमूल्य व पावन निधि होता है। अतः कोई भी व्यक्ति किसी भी कारण से उसके साथ मनमानी नहीं कर सकता। मुक्त गगन में स्वच्छन्द विचरने वाली कवि अथवा कहानीकार की कल्पना को यहां ऐतिहासिक सत्य एक उचित सीमा में बांध देता है। परन्तु फिल्म 'सम्राट अशोक' को देखने से जान पड़ता है कि ऐतिहासिक सत्य की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। यह केवल मेरा ही मत नहीं, बल्कि फिल्म के आरम्भ में स्वयं निर्माता ने भी इस तरह की स्वच्छन्दता स्वीकार की है। कहा गया है कि इतिहास से इस लिये स्वच्छन्दता बरती गई है कि कहानी के पात्रों का गौरव व महत्ता बढ़ सके। कहानी का मुख्य पात्र है अशोक। मैं समझता हूँ कि कहानीकार ने अशोक को सत्य व अहिंसा के मार्ग पर लाने के लिए उसे स्त्री के रूप से प्रभावित दिखा कर उसके चरित्र की महत्ता को बढ़ाया नहीं, घटाया ही है।

इतिहासकारों ने अशोक के हृदय-परिवर्तन तथा उसके बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के सम्बन्ध में मोग्गली पुत्र तिष्य तथा आचार्य उपगुप्त का नाम लिया है। परन्तु इस फिल्म में अशोक के गुरु के कहीं दर्शन नहीं होते। अशोक के जीवन का मुख्य कार्य था बौद्धधर्म का विश्व-व्यापी प्रचार-प्रसार। इसकी ओर फिल्म में केवल संकेत ही किया गया है।

फिल्म में कई और बातें भी खटकती हैं। अशोक की सेना में न हाथी हैं, न रथ; हालांकि इतिहासकारों ने इन दोनों का मौर्यराज्य की सेना में महत्वपूर्ण स्थान बताया है। कलिंग-राज्य की राजधानी को जलाने के लिए जो आग फेंकी जाती है उस पर आजकल के बमों का धोखा होता है। कलिंग के शिविर में अशोक को मारने का षड़यन्त्र नहीं रचा जाता, बल्कि कलिंग की राजकुमारी चुपके से बिल्कुल अकेली आती है और अशोक पर छुरी से वार करती है। अशोक की रानी के केवल दो बार दर्शन होते हैं — वह भी केवल सिसकने अथवा रोने के लिये ही। कहानी के विकास में इस रानी का कोई स्थान नहीं। तो फिर यह पैवन्द लगाने की भला क्या जरूरत थी ?

इन त्रुटियों के होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि फिल्म का कथानक काफी रोचक है। मैं समझता हूँ कि अशोक के स्थान पर यदि उस काल के किसी और छोटे-मोटे राजा को भी इसमें 'फिट' कर दिया जाये तो कथानक की रोचकता तथा 'अपील' में रत्ती भर भी फर्क नहीं पड़ेगा। हां, व्यावसायिक दृष्टि से यह विकल्प शायद लाभप्रद सिद्ध न हो।

कहानी पर कहीं-कहीं फिल्म 'पुकार' की छाप जान पड़ती है। न्याय के प्रार्थी सोने की जंजीर की जगह इसमें धौंसा बजाते हैं।

अभिनय की दृष्टि से अशोक की भूमिका में सपरू, सेनापति रूचक की भूमिका में उल्हास, स्वदेशना की भूमिका में वीणा और कलिंग की राजकुमारी की भूमिका में शमीम ने अच्छा काम किया है। वीणा में अपेक्षित सौम्यता है और शमीम में उद्धत सैनिकता। सपरू का भविष्य काफी उज्ज्वल है। उल्हास ने अपने चरित्र की जटिलता को अभिनय द्वारा सुन्दर रूप से अभिव्यक्त किया है।

संगीत बहुत उच्च कोटि का नहीं है। संवाद अच्छे हैं, परन्तु कई पात्रों का हिन्दी के शब्दों का गलत उच्चारण बुरी तरह खटकता है।

इस फिल्म पर सभी दृष्टियों से विचार करने के बाद मैं यह निःसंकोच कह सकता हूँ कि यदि उचित दृष्टिकोण लेकर यह फिल्म बनाई जाती तो अपने ढंग की निराली होती। खैर, इसके विषय की महत्ता को देखते हुए, इसके अन्य निर्देशकों द्वारा फिर से चुने जाने की काफी गुंजाइश है।

(आल इण्डिया रेडियो दिल्ली के सौजन्य से)

वर्तमान युग में सार्वजनिक मनोरंजन, शिक्षा व प्रचार के लिये रेडियो एक उतना ही शक्तिशाली तथा महत्वपूर्ण साधन है जितना कि प्रेस अथवा सिनेमा। यह हर्ष एवं सन्तोष का विषय है कि अन्य देशों की भांति भारत में भी रेडियो दिनों-दिन लोकप्रिय होता जा रहा है। रेडियो की इसी लोकप्रियता को देखते हुए 'मनोरंजन' में इस नये विशेष स्तम्भ का समावेश किया गया है।

रेडियो पर बोलना भी एक कला है

श्री कर्णधर

रेडियो का मुख्य आधार व माध्यम है ध्वनि। इस ध्वनि का प्रयोग अपने आपमें एक अलग कला है—ऐसी कला जो सीखनी पड़ती है और जिसके लिये ध्वनि सम्बन्धी ईश्वर-प्रदत्त विशेषता अपेक्षित है। जैसे प्रत्येक व्यक्ति गायक अथवा चित्रकार नहीं हो सकता, वैसे ही प्रत्येक व्यक्ति ब्राडकास्टर (रेडियो पर बोलने वाला) भी नहीं हो सकता। यदि कोई अच्छा लेखक है, तो यह जरूरी ही नहीं कि वह अच्छा ब्राडकास्टर भी हो।

सार्वजनिक भाषण और नाट्यकला में भी ध्वनि का ही प्रयोग होता है; परन्तु वे दोनों श्रव्य के साथ-साथ दृश्य भी हैं, जबकि रेडियो केवल श्रव्य है। इसका वक्ता न तो श्रोता को देख सकता है और न श्रोता वक्ता को। यही बात रेडियो पर बोलने की कला को अत्यन्त कठिन बना देती है। जब कोई वक्ता किसी सार्वजनिक सभा में या रंगमंच पर बोलता है, तो उसकी वक्तृत्व शैली के साथ-साथ उसके व्यक्तित्व, कायिक हाव-भाव तथा चेहरे की भाव-भंगी का भी (यदि नाटक हो तो अभिनेता की वेशभूषा और रंगमंच के दृश्य का भी) श्रोताओं पर प्रभाव पड़ता है। वह स्वयं भी सामने बैठे श्रोताओं की कायिक अथवा मौखिक प्रतिक्रिया से प्रभावित होता है। इसके विपरीत, रेडियो-वक्ता एक दम शून्य में बोलता है। न वह श्रोता को देख सकता है और न श्रोता उसको। वक्ता व श्रोता एक दूसरे की केवल कल्पना ही कर सकते हैं। रेडियो-सेट पर बैठा हुआ श्रोता रेडियो स्टेशन के स्टुडियो में माइक के सामने बैठे वक्ता के व्यक्तित्व, विचारों और मनोभावों को केवल उसके स्वर से ही जान पाता है। अतः जो ब्राडकास्टर अपने स्वर द्वारा अदृश्य श्रोता तक अपने विचार, मनोभाव और व्यक्तित्व ठीक २ पहुँचा सकता है, वही सफल ब्राडकास्टर है।

इसके लिये जहां स्वर सम्बन्धी ईश्वर-प्रदत्त विशेषता—स्पष्टता, मधुरता, प्रभावोत्पादकता—अपेक्षित है, वहां कुछ कलात्मक विशेषता भी अपेक्षित है। कलात्मक विशेषता से मुराद है भावानुकूल स्वर का उतार-चढ़ाव और वाक्य अथवा पैराग्राफ के अन्त में विराम इत्यादि। ब्राडकास्टिंग में वाक्यांशों, वाक्यों तथा पैराग्राफों के अन्त पर रुकने का उतना ही महत्व है, जितना किसी लिखी हुई अथवा छपी हुई रचना में विराम-चिन्हों का होता है।

वस्तुतः सफल रेडियो वक्ता न तो उपदेश देता है और न रंगमंच के अभिनेता की भांति बनावटी स्वांग ही भरता है, बल्कि वह तो अपने अदृश्य श्रोताओं के साथ स्वाभाविक व रोचक ढंग से बातचीत करता है। यहीं पर भाषा की समस्या सामने आती है। रेडियो ब्राडकास्टर के लिये बातचीत की ही सरल व सुबोध भाषा उपयुक्त है, पुस्तकों की नहीं। क्लिष्ट, दुरूह और उलझी हुई भाषा पत्रपत्रिका तथा पुस्तक में चल सकती है। पाठक को यदि कोई वाक्य अथवा पैरा समझ में न आये तो वह उसे दो बार, तीन बार पढ़कर समझ सकता है, शब्द-कोष की सहायता ले सकता है; परन्तु रेडियो सुनने वाला न तो रेडियो-वक्ता को वाक्य दोहराने की अथवा कुछ देर के लिये रुक जाने की प्रार्थना कर सकता है और न उसी समय शब्द-कोष की सहायता ही ले सकता है। अतः रेडियो पर बोलने वाले की भाषा सुस्पष्ट, सुबोध और सरल होनी चाहिये। इसी में उसकी कला की सफलता निहित है।

संपादक के नाम

इस स्तम्भ में प्रति मास सम्पादक के नाम आये पाठकों के कुछ चुने हुए पत्र प्रकाशित किये जाते हैं और सर्वोत्कृष्ट पत्र पर पांच रुपये का पुरस्कार दिया जाता है। पत्र सार्वजनिक हित व रुचि के किसी भी विषय को लेकर लिखा जा सकता है।

पत्र संक्षिप्त, स्पष्ट और सुरुचिपूर्ण होना चाहिये और उसके साथ 'मनोरंजन पत्र-प्रतियोगिता कूपन' आना चाहिये।

हिन्दी को इन 'हिन्दी वालों' से बचाइये

पुरस्कृत पत्र

यह सर्वविदित है कि हिन्दी को राष्ट्र-भाषा न बनने देने के लिये उसके विरोधी भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। उन्हीं के प्रयत्नों के कारण ही हमारी राष्ट्रीय सरकार ने अभी तक हिन्दी को राष्ट्र-भाषा घोषित नहीं किया है। खैर, अब तक तो इन हिन्दी-विरोधियों से ही हिन्दी को खतरा था, परन्तु अब तथाकथित 'हिन्दी वालों' से भी हिन्दी के लिये भयानक खतरा पैदा हो चला है। यह बात सर्वमान्य है कि नागरी लिपि ऐसी वैज्ञानिक लिपि है कि इसे सीख कर कोई भी व्यक्ति शुद्ध हिन्दी बोल सकता है और लिख सकता है, और भारत के वे लोग, जिनकी अपनी प्रांतीय भाषाओं में संस्कृत के तत्सम अथवा तद्भव शब्द प्रचुर मात्रा में है, हिन्दी को सुगमता से सीख सकते हैं और बोल सकते हैं। हिंदी को राष्ट्र-भाषा बनाने के पक्ष में हमारे पास यही सब से प्रबल युक्ति है। परन्तु इधर कुछ दिनों से यू० पी० के कुछ अदूरदर्शी साहित्यिक नेताओं व उनके अनुयायियों ने खुल्लम खुल्ला यह कहना शुरू कर दिया है कि केवल यू० पी० के लोग ही शुद्ध हिन्दी बोल सकते हैं और लिख सकते हैं और अन्य सभी प्रान्तों के लोगों का हिन्दी का उच्चारण और लेखन-शैली अशुद्ध है। खेद है कि इस प्रकार का भ्रांत तथा अदूरदर्शिता-पूर्ण प्रलाप हिन्दी के आन्दोलन की प्रगति में बहुत बड़ी बाधा उपस्थित कर रहा है। कतिपय प्रान्तों के लोग अब यह कहने लगे हैं कि यदि हिन्दी वस्तुतः ऐसी प्रांतीय भाषा है कि जिसका शुद्ध उच्चारण और प्रयोग केवल यू० पी० वाले ही कर सकते हैं, और औरों के लिये सम्भव नहीं है, तो वह राष्ट्र-भाषा कैसे बन सकती है? मैं समझता हूँ कि यदि लोगों में ऐसी विरोधी भावना कहीं बल पकड़ गई तो हिन्दी के मुकाबले में हिन्दुस्तानी का पक्ष और भी मजबूत हो जायेगा। अतः मैं आशा करता हूं कि हमारे साहित्यिक नेता हिन्दी पर केवल यू० पी० वालों का ही एकाधिकार सिद्ध करने का मोह त्याग कर उदार और स्वस्थ दृष्टिकोण अपनायेंगे। राष्ट्र भाषा हिन्दी का इसी में हित है!

कलकत्ता ★ —रूपनारायण शर्मा

गांधी जी सार्वजनिकता की मूर्ति थे

पूज्य गांधी जी 'सार्वजनिकता' की सर्वोत्कृष्ट मूर्ति थे; अतएव उनके किसी भी कार्य के बारे में सार्वजनिक उपयोगिता की खातिर 'यदि' और 'परन्तु' का प्रश्न नहीं उठ सकता। उन्होंने कुछ भी ऐसा नहीं किया जो सार्वजनिक हित से शून्य हो। मैंने उन्हें एक पत्र में लिखा था—

"आपने जन-सेवा द्वारा ही मनुष्य को मुक्ति का मार्ग बतलाया है। जो रोगी हैं, वे कैसे जन-सेवा करें? महात्मा मिल्टन के भाव इस विषय में आपसे भिन्न थे। मैं स्वयं रोगी हूँ। रोगियों के लिये मुक्ति का मार्ग बतलाइये।"

इसके उत्तर में बापू जी ने मुझे सेवाग्राम से लिखा—

"भाई ब्रह्मानन्द जी, आप जिसमें विरोध पाते हैं, सो विरोध नहीं है। रोग की बर्दाश्त तो सब को करनी है और रोग होते हुए सेवा भी करें। मिल्टन ने अन्धापन में अपनी कलम से की, ऐसे ही सूरदास ने। जो तन्दरुस्त हैं, वे शरीर से, मन से, आत्मा से करें।"

मुजफ्फरनगर कुड़ाना ★ —ब्रह्मानन्द

राष्ट्रभाषा संस्कृत हो

हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने का आन्दोलन बहुत देर से चल रहा है। 'हिन्दी-भाषी' लोग इसके पक्ष में अनेक तर्क और युक्तियां भी उपस्थित करते हैं; उदाहरणतः उनका कहना है कि हिन्दी सर्वाधिक सरल, सुबोध भाषा है और इसे बोलने वालों की संख्या सर्वाधिक है।

दूसरी ओर कुछ क्षेत्रों से अब यह आवाज उठायी गयी है कि 'संस्कृत' को राष्ट्र-भाषा बनाया जाय। यह आवाज कुछ उच्चवर्ग के लोगों द्वारा उठायी गयी है। इसके पक्ष में लोकमत कितना है, यह निर्देश कर सकना कठिन है। जहां तक भाषा की सरलता और सुबोधपने का सम्बन्ध है, वह एक सापेक्ष वस्तु है। प्रत्येक प्रान्त के व्यक्ति को अपनी मातृभाषा सब भाषाओं की अपेक्षा अधिक सरल और सुबोध प्रतीत होती है। प्रश्न तो यह है कि अन्य प्रान्तों के लोग इस सम्बन्ध में क्या विचार रखते हैं? जितनी सुबोध गुजराती के लिये हिंदी है, उतनी ही सुबोध हिंदी भाषी के लिये गुजराती है। इस लिये इस सम्बन्ध में विवाद निरर्थक है।

हिंदी बोलने वालों की संख्या का प्रश्न तो बहुत मनोरंजक है। हिंदी-भाषियों की संख्या १२ करोड़ से अधिक कूती जाती है—उर्दू वाले भी ऐसा दावा करते हैं—जो कि कुछ गलतफहमियों पर आश्रित है। इन १२ करोड़ हिंदी-भाषियों में बिहारी (भोजपुर, मगही, और मैथिली), राजस्थानी (मारवाड़ी, मेवाती आदि), पूर्वी हिंदी और पहाड़ी भाषाओं तथा कभी-कभी पंजाबी के बोलने वाले भी सम्मिलित कर लिये जाते हैं। यह भाषा-विज्ञान की दृष्टि से गलत है। भाषा शास्त्री प्रायः हिंदी शब्द का प्रयोग 'पश्चिमी हिंदी' के लिये करते हैं जो कि शौरसेनी की वंशज है और इस हिन्दी का क्षेत्र डा० श्यामसुन्दरदास के मत से, प्राचीन काल का मध्य देश या अन्तर्वेद प्रदेश है। यदि आगरा को हिन्दी का केन्द्र मान लें तो उत्तर में हिमालय की तराई तक, दक्षिण में नर्मदा की घाटी तक, पूर्व में कानपुर तक और पश्चिम में दिल्ली से कुछ आगे तक इसका क्षेत्र है। इस भाषा के बोलने वालों की संख्या लगभग चार करोड़ होती है। 'हिंदी भाषियों' द्वारा कूती गई संख्या केवल मात्र उनके उत्साहातिरेक का परिणाम है।

'हिन्दी भाषियों' का युक्तिक्रम वैज्ञानिक तो है ही नहीं, साथ ही उनकी प्रान्तीयता की मनोवृत्ति ने इस समस्या के एक दूसरे पहलू को भी जन्म दे दिया है। अहिन्दी भाषी लोग अब निर्द्वन्द्व भाव से यह आक्षेप करने लगे हैं कि हिन्दी की साहित्यक-योग्यता तो कम है ही, साथ ही अन्य प्रान्तीय भाषाओं की तुलना में इसमें साहित्य-सृजन भी थोड़ा हुआ है। बंगला, मराठी और गुजराती ऐसी भाषाएं हैं जिनके बोलने वाले यह दावा करते हैं कि साहित्य, दर्शन, राजनीति, इतिहास, विज्ञान, अर्थ-शास्त्र आदि विभिन्न अंगों में वे हिन्दी से बहुत आगे हैं। साथ ही उन लोगों का यह भी कहना है कि उनकी भाषाएं समुद्र पार भी बोली जाती हैं और संख्या की दृष्टि से वे भी हिंदी से कम नहीं हैं, इसलिये उन्हीं को 'राष्ट्रभाषा' का पद मिलना चाहिये। इस तरह हिंदी वालों के दावे की भांति ही अन्य प्रान्तीय भाषाओं के दावों को भी पूर्ण समर्थन मिलता है।

इसलिये मेरा विचार यह है राष्ट्रभाषा की समस्या को प्रान्तीय दलदल से बचाना चाहिये और 'संस्कृत' को यह पद दे देना चाहिये। देश के विभाजन से पूर्व तक पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त से लेकर रामेश्वरम् तक संस्कृत के अध्ययन के लिये हजारों पाठशालाएं विद्यमान थीं। अब विभाजन के बाद भी पूर्वी पंजाब में संस्कृत के अध्ययनार्थियों की संख्या पर्याप्त है जो कि पंजाब विश्वविद्यालय की संस्कृत परीक्षाओं से प्रकट होती है। हमारे देश के शिक्षित और अशिक्षित दोनों जन संस्कृत के बहुत निकट हैं, अंग्रेजी की अपेक्षा कहीं अधिक सुगमता से इस भाषा पर अधिकार कर सकते हैं। यह भाषा भारतीय इतिहास में एक लम्बे अरसे तक बिना प्रतिद्वंद्वता के राजभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में रही है और अभी तक भारतीयता प्रेमी इसके अध्ययन में अपना गौरव अनुभव करते हैं।

दिल्ली

—विद्यासागर विद्यालङ्कार
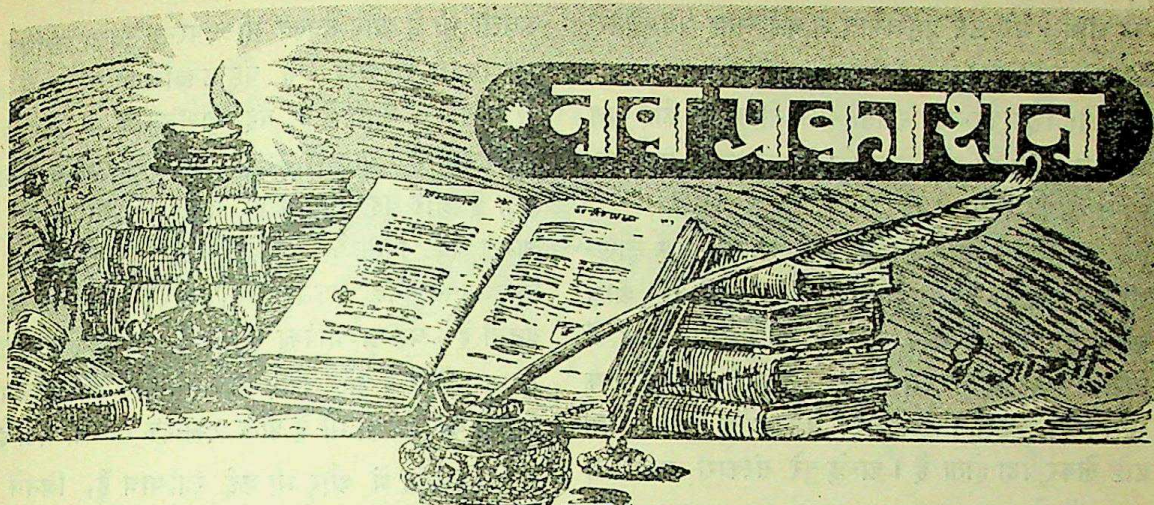
वह जो मैंने देखा *

भाग पहिला व दूसरा

श्री उदयशंकर भट्ट की गणना हिन्दी के प्रथम कोटि के साहित्यकारों में होती है। अब तक वे केवल नाटककार और कवि के रूप में ही प्रसिद्ध थे; परन्तु अब 'वह जो मैंने देखा' उपन्यास लिखकर उन्होंने उपन्यासकार के रूप में भी कम प्रसिद्धि प्राप्त नहीं की। इस उपन्यास द्वारा जहां उन्होंने एक ओर हिन्दी में जीवन-कहानी के ढंग पर लिखे गये कथा-साहित्य की पूर्ति व समृद्धि की है, वहां दूसरी ओर अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा का भी परिचय दिया है—गौरवपूर्ण परिचय दिया है। वैसे तो आज हिंदी के कई ऐसे लेखक हैं जो एक साथ कवि, कहानीकार, नाटककार, उपन्यासकार व आलोचक है; परन्तु देखने में आया है कि वे केवल एक ही रूप में अधिक सफल हो पाये हैं, शेष में असफल। परन्तु भट्ट जी के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। वे कवि, नाटककार और कथाकार—तीनों रूपों में समान रूप से सफल हुए हैं। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य के इतिहास में भट्ट जी का स्थान स्व० बाबू जयशंकर प्रसाद से किसी प्रकार भी कम नहीं आंका जा सकता। अस्तु।

> आलोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक या पत्र-पत्रिका की दो प्रतियां आनी चाहियें।
> —सम्पादक

प्रस्तुत उपन्यास जीवन-वृत्त के ढंग पर लिखा गया है और, जसा कि नाम से स्पष्ट है, इसमें भारतीय जीवन की—बीसवीं शताब्दी के ठीक आरम्भ से लेकर १९२१ के सत्याग्रह आन्दोलन तक के सांस्कृतिक जागरण की नई चेतना से स्पंदित और वैयक्तिक, सामाजिक व राजनीतिक स्वातन्त्र्य की दुर्द्धर्ष कामना से उद्वेलित भारत के शहराती तथा देहाती जीवन की सैरबीनी (Panoramic) तस्वीर उपस्थित की है। इस तस्वीर के उपस्थित करने में लेखक ने नितांत यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है। लेखक के अपने शब्दों में — "इस कहानी में जीवन को देखकर उसको पहिचानने का प्रयत्न किया गया है और जो कुछ बुरा-भला, वांछित-अवांछित अजय (उपन्यास का नायक) ने देखा, वह उसने कह दिया है। इसमें कई स्थलों पर पाठक पात्रों की कमजोरी पायेंगे, परन्तु विशेषताओं के साथ कमजोरी दिखाना वास्तविक जीवन को दिखाना है; क्योंकि जीवन जहां कमजोरी का नाम है, वहां अपनी विशेषताओं का भी नाम है। कमजोरी को छिपाकर विशेषता को दिखलाना उसकी आत्म-प्रवंचना होती, इस लिये मैं वैसा नहीं

* लेखक—श्री उदयशङ्कर भट्ट; प्रकाशक—अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ; मूल्य प्रथम भाग—३॥), दूसरा भाग—२।)

कर सका। मेरे उस प्रमुख पात्र ने कई जगह 'डिक्लेयर' किया है, वह कोई बात छिपाकर नहीं रखेगा.....।" और वह छिपाकर नहीं रखता—न तो अपनी कोई बात और न दूसरों की कोई बात। यही यथार्थता इस उपन्यास की विशेषता है।

कहानी का उद्‌गम अजय के बचपन से एक क्षीण-सी जलधारा के रूप में होता है जो द्रुतगति से आगे बढ़ती हुई, राह में अन्य धाराओं को समेटती, अन्त में विशाल नदी का रूप धारण कर लेती है। अजय एक मध्यवर्गीय कुलीन परिवार में जिज्ञासा से भरी पैनी दृष्टि लेकर पैदा होता है। अच्छे-बुरे संस्कारों, प्रभावों व अनुभवों को ग्रहण करता हुआ जब वह युवावस्था को प्राप्त होता है, तो उसके माता-पिता का देहान्त हो जाता है और वह संसार में अकेला रह जाता है। यहीं से उसके एक तरह से घुमक्कड़ व सैलानी जीवन का आरंभ होता है। उसकी कुंठाग्रस्त अशांत मानसिक अवस्था और परिस्थितियां उसे अच्छे-बुरे सभी स्थानों पर ले जाती हैं, अच्छे-बुरे सभी लोगों से मिलाती हैं और अच्छे-बुरे सभी अनुभवों से दो-चार कराती हैं। यही विभिन्न प्रकार की परिस्थितियां, संपर्क और अनुभव उसके चरित्र का निर्माण करते हैं; खट्टोखाल को उभारते-संवारते हैं। वह जीवन की गुत्थियों में उलझता-सुलझता है, कला और साहित्य से प्रभावित होता है, राष्ट्रीयता की पुकार पर वह सत्याग्रह आंदोलन में सम्मिलित होकर जेल में जाता है, समाजवाद से प्रेरित होकर वह मजदूरों, अछूतों और गरीबों की बस्तियों में रहता है, अभिजात व बुद्धि-जीवी वर्ग के संपर्क में आता है। वह माने चाहे न माने, उसके इस सारे जीवन का संचालन एक स्त्री द्वारा होता है। उस स्त्री का नाम है सुधी।

सुधी अजय की बाल-संगिनी है और उसके जीवन में वह प्रेयसी, साथी, मित्र और बहिन (?) के रूप में आती है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से वही इस उपन्यास की मुख्य पात्र है। उपन्यास का दूसरा भाग अधिकतर उसी की जीवन-कथा से सम्बंधित है। उसे लेखक की सहानुभूति भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुई है। हमारे कथा-साहित्य में सुधी का चरित्र अद्वितीय है। वह अबला भी है और सबला भी—परन्तु सबला अधिक। यहां पर वह शरच्चन्द्र के बहु-उल्लिखित स्त्री-पात्रों को भी मात दे जाती है। वह शैशवकाल से ही अजय को चाहती है। बाद में उसका एक चिर-रोगी से विवाह होता है और वह विधवा हो जाती है। सौतेली मां के कारण वह पिता के आश्रय से भी वंचित रहती है। निराश्रय-सी वह उठती-गिरती जीवन-पथ पर आगे बढ़ती है। वह अध्यापिका बनती है, सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेती है और फिर नर्स बनती है। वह अपने सतीत्व को बचाती भी है और एकाएक खो भी देती है।

उपन्यास में और भी कई स्त्री-पात्र हैं, जिनमें से ग्रामीणा कमलिनी का चरित्र अपनी एक अलग विशेषता रखता है। वह परित्यक्ता तिलतिल जलती हुई मूक भाव से अपनी कथा कहती है। उपन्यास के और पात्रों का चरित्र-चित्रण भी स्वाभाविक व सजीव हुआ है।

यह उपन्यास अभी अपूर्ण है। हम तीसरे भाग की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं। समूची कथा का सही मूल्यांकन तीसरा भाग पढ़ने के बाद ही सम्भव है।

यह उपन्यास जीवन-वृत्त के ढंग पर हिन्दी में लिखे गये दो अन्य उल्लेखनीय उपन्यासों—श्री 'अज्ञेय' के 'शेखर' और श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के 'गिरती दीवारें'—से सर्वथा भिन्न है। 'अज्ञेय' के शेखर और 'अश्क' के चेतन की तरह भट्ट जी का अजय न तो घोर अहंवादी है और न हीन-भाव-ग्रस्त तथा आत्म-रत ही है। वह अपने आपको कम और दूसरों को अधिक देखता है। उसका दृष्टिकोण अन्तर्मुखी नहीं, बल्कि बहिर्मुखी है, व्यापक है।

लेखक व प्रकाशक की थोड़ी-सी असावधानता के कारण इसमें शैली व छपाई सम्बन्धी कुछ त्रुटियां रह गई हैं। तो भी उपन्यास उच्चकोटि का है और सच्चे अर्थों में प्रगतिशील है। स्मरण रहे कि भट्ट जी की प्रगतिशीलता का अर्थ न तो अश्लीलता है और न बन्धनहीनता ही।

आशा है, हिन्दी संसार इस उपन्यास का समुचित स्वागत करेगा।

—चिरंजीत
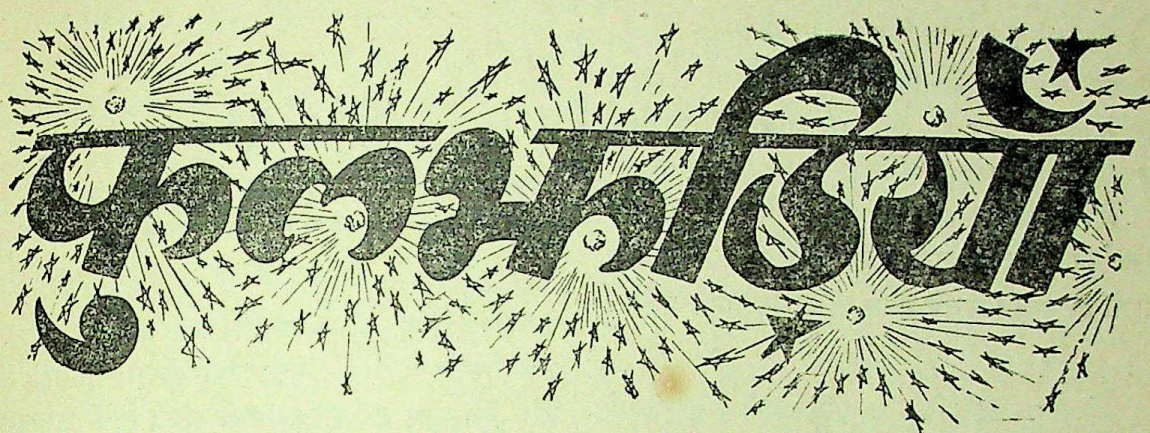
पृष्ठ ५३ पर प्रकाशित अपने पत्र में श्री रूपनारायण शर्मा ने हिन्दी के लिये पैदा हुए एक नये खतरे की ओर संकेत किया है। पता नहीं यह खतरा वास्तविक है अथवा कल्पित। हम समझते हैं कि १५ अगस्त के बाद से हिन्दी को जन्म-सिद्ध अधिकार के रूप में अपने-आप राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त हो गया है। अब न तो केन्द्रीय सरकार की उपेक्षा, न हिन्दुस्तानी के पक्ष-पातियों की कोई चाल और न किसी प्रांत विशेष के लोगों की प्रांतीयता अथवा संकीर्णता ही इसे इस पद से च्युत कर सकती है। यदि कोई कहता है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी केवल यू० पी० वालों की ही भाषा है तो यह कथन वैसा ही है जैसे कोई कह दे कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी केवल गुजरात वालों के ही हैं!

* * *

यदि किसी साहित्यिक नेता अथवा नेताओं ने सचमुच ही यह बात कही है कि शुद्ध हिंदी केवल यू. पी. वाले ही बोल सकते हैं और लिख सकते हैं, तो उस पर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिये! जान पड़ता है कि इधर आजकल सरकारी नौकरियों और पदों की रेवड़ियां बांटने का जो समारोह चल रहा है, उसी के लिये यह 'नारा' तैयार किया गया है!

कुछ भी हो, यह 'नारा' बुरा नहीं है! और नहीं तो कम से कम इसे सुनकर हंसी तो आती है। और हंसी, डाक्टरों के मतानुसार, शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिये बहुत ही लाभदायक है!

* * *

श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार के लेख में प्रकट किये गये इस विचार से कि अगले बीस वर्ष तक युद्ध नहीं होगा, हमारे बहुत से 'छुटभैया एमैलों' और उनके 'जीबार्थी' अनुयायियों की आशायें अवश्य ही धूल में मिल जायेंगी। यदि युद्ध इस वर्ष छिड़ जाता तो वे सेना में कम से कम कप्तान अथवा मेजर तो अवश्य ही बन जाते!

* * *

श्रीमती होमवती जंभाई जैसी स्वाभाविक चेष्टा को भी रोग बताती हैं, जबकि हमारा विचार है कि जंभाई आधुनिक युग के सभ्य मानव की शिष्टतम चेष्टा है। किसी के मूर्खतापूर्ण प्रलाप से, दंभोक्तियों से आप यदि ऊब गये हों तो उजड्डों की भांति बजाये यह कहने के कि 'बकवास बंद करो,' आप जंभाई लीजिये। बकने वाला व्यक्ति फौरन संकेत समझ कर आपका मगज चाटना बन्द कर देगा। संकेतात्मक भाषा का इससे अच्छा उदाहरण भला और कहां मिलेगा!

जम्भाई का एक दूसरा रूप भी है जिसकी कैफियत कोई कवियों और शायरों से पूछे! मदमाती चितवन के साथ ली गई जम्भाई को भला कौन रोग की संज्ञा देगा!

* * *

शृंगार रस की चर्चा के साथ अनायास ही हमें श्री अंचल की उस कविता का ध्यान आ गया है जिसमें उन्होंने किसी से कहा है – 'तुम मेरे साथ चली आओ!' यह कविता किसी अपहरण-काण्ड की भूमिका-सी लगती है। बजाये यों स्पष्ट बात कहने के यदि कवि जी मात्र संकेत कर देते तो कितना अच्छा होता। विवाहित कवि को तो हर हालत में संकेतों का ही आश्रय लेना चाहिये।

* * *

श्री रामचरण महेन्द्र ने साहित्यकारों को अच्छे पति सिद्ध करने का प्रयत्न तो किया है, परन्तु श्री अंचल की कविता को पढ़कर हर कोई श्री शंकरदेव विद्यालङ्कार के मत को ही ठीक कहेगा!

* * *

कुछ दिन हुए अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने भारत के प्रधान मंत्री के नाम एक खुली चिट्ठी लिखी थी, जिसमें उन्होंने कहा था—"आज देश में गरीबी, भुखमरी, बीमारी और बेरोजगारी का दौर-दौरा है, और बड़े-बड़े अफसरों में पक्षपात, भ्रष्टाचार और अक्षमता का जोर बढ़ रहा है।"

पता नहीं राहुल जी बड़े-बड़े अफसरों के साथ 'छुटभैया एमैलों' का नाम जोड़ना क्यों भूल गये!

कूपन

मनोरंजन-पत्र-प्रतियोगिता
नं० २

वीतरागी

(पृष्ठ ८ का शेष)

के उस चैम्पियन पर अपनी गढ़ रचना का सिक्का, उसे निरन्तर शिकस्तें देकर जमा लिया तो लांडरी जैसे नीच काम का जंजाल पाले रखना उन्हें एक दम निरर्थक मालूम हुआ।

चेतन को भी एक तरह से शान्ति मिली। यह सच है कि घर में कुहराम मच गया और जिन लोगों के कपड़े गुम हो गए थे, उनके उलाहने और गालियां सुनते-सुनते उसके कान पक गए थे; किन्तु उसने अपने मित्रों से कह दिया था कि भाई साहब लांडरी से अलग हो गए हैं और अब इस विषय में उनके फिरोजपुरी मित्र ही से पूछताछ की जाए।

भाई साहब ने जिस निष्ठा से लांडरी खोली थी, उससे कहीं अधिक निष्ठा से वे राष्ट्र-सेवा में निमग्न हो गए। दिन रात वे कांग्रेस के काम में व्यस्त रहते। कहीं चन्दा इकट्ठा कर रहे हैं, कहीं झण्डे को सलामी दे रहे हैं, कहीं जलूस निकाल रहे हैं और कहीं सभा की व्यवस्था कर रहे हैं। घर वालों को उनके दर्शन भी दुर्लभ हो गए। अपने लम्बे छरहरे शरीर पर खादी की शेरवानी और खादी ही का चूड़ीदार पायजामा पहने, सिर पर तिरछी गांधी टोपी रखे वे शुतर बे मुहार की भांति घूमते और घर वालों को इस प्रकार देखते मानो वे किसी नाली में कुलबुलाने वाले अत्यन्त उपेक्षणीय और हेय अन्धे बुच्चे कीड़े हों।

चेतन के मन में अपने भाई का सम्मान, घर में नित्य नई दी जाने वाली गालियों के बावजूद, बढ़ने लगा कि उसे कांग्रेस की एक सभा देखने का सुयोग मिला और उसे ज्ञात हो गया कि भाई साहब के लिए कांग्रेस की डिक्टेटरी भी लांडरी से अधिक महत्व नहीं रखती।

उस दिन भाई साहब ने उससे अनुरोध किया था कि वह आज की सभा देखने अवश्य आये और उन्होंने बताया था कि प्रेस के विषय में सरकार ने जिस कठोरता से काम लिया है उसके विरुद्ध प्रोटेस्ट के तौर पर अखबार बन्द हो गए हैं। देश में चारों ओर प्रोटेस्ट-सभाएं हो रही हैं। इसी सम्बन्ध में उन्होंने भी सभा की व्यवस्था की है जिसमें वे स्वयं एक बहुत ही जोरदार भाषण देने जा रहे हैं। इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि उन्हें सभा में गिरफ्तार कर लिया जाए। उन्होंने चेतन से अनुरोध किया कि वह उनका भाषण सुनने अवश्य आये और चलते-चलते यह भी कहा कि यदि सम्भव हो तो वह एक हार जरूर खरीद कर लेता आए।

चेतन उस दिन एक अत्यन्त मनोरंजक उपन्यास पढ़ रहा था। यद्यपि उपन्यास को बीच ही में छोड़कर जाना उसे बड़ा अप्रिय लगता था, तो भी भाई साहब का अनुरोध था और फिर इस बात की आशंका थी कि न जाने वे आज पकड़ लिए जाएं और कितने वर्षों के लिए जेल की कोठरी में ठूंस दिए जायं। इस लिये पुस्तक को हाथ ही में लिए वह चल पड़ा और भाई साहब की इच्छानुसार उसने रास्ते में फूलों का एक हार भी खरीद लिया।

जब वह चौक अमाम नासरुद्दीन में पहुँचा तो सभा प्रारम्भ हो चुकी थी। वह एक ओर खड़ा हो गया। उसने देखा कि डाइंग और ड्राइक्लीनिंग के विशेषज्ञ राष्ट्रीय कवि सभापति के आसन की शोभा बढ़ा रहे हैं और भाई साहब एक समाचार पत्र से किसी नेता का वक्तव्य पढ़ रहे हैं। इसी को शायद वे भाषण देना कहते थे। चेतन ने देखा कि उन के हाथ कांप रहे हैं, उनकी टांगें कांप रही हैं, यहां तक कि तख्त और उस पर रखी हुई मेज भी कांप रही है।

तभी एक ओर से जनता उठ खड़ी हुई और 'पोलीस-पोलीस' का शोर मच गया। इस भगदड़ में चेतन हाथ में हार लिए हुए समीप ही खड़ी एक बैलगाड़ी पर चढ़ गया। दूसरे क्षण उसे पता चला कि जिसे लोग पुलिस समझते थे, वह तो एक भयभीत सांड है। न जाने किस पाजी ने उसे सभा की ओर भगा दिया था। कभी वह डर कर एक ओर जाता, कभी दूसरी ओर, किन्तु जब सांड भय की सीमा पार कर शांत हो गया तो श्रोताओं ने, जो भाषण सुनने की अपेक्षा यह तमाशा देखने लगे थे, उसे रास्ता दे दिया। लोग फिर इकट्ठे होने लगे। चेतन भी बैलगाड़ी से उतर कर सभा के मध्य में रखे हुए तख्त की ओर बढ़ा। उस समय उसने देखा कि वहां न सभापति महाशय हैं और न वक्ता महाशय; लोग मंच पर चढ़ कर हुल्लड़ मचा रहे हैं.......।

जब चेतन घर पहुँचा तो उसे पता चला कि वक्ता महाशय तो उससे कहीं पहले घर पहुंच गए हैं और बड़े आराम से खर्राटे भी ले रहे हैं। सभापति महाराज उसके पश्चात् महीनों जालन्धर में दिखाई नहीं दिए। दोआबा के गांवों में भागते, छिपते और अपनी राष्ट्रीय कविताएं सुना कर देहातियों का आतिथ्य स्वीकार करते, यह कहते फिरे कि उनकी गिरफ्तारी के वारंट निकले हुए हैं और वे पुलिस को छकाते हुए अपने राजनीतिक कार्य को जारी रखे हुए हैं।

एक लम्बी अवधि के पश्चात् होश्यारपुर की एक नई लांडरी का विज्ञापन चेतन के हाथ लगा जिसकी प्रशंसा में वही कविताएं छपी थीं जो कभी उन राष्ट्रीय कवि ने 'भारत लांडरी वर्कस' की प्रशंसा में लिखी थीं।

दूसरे दिन जब भाई साहब उठे तो लांडरी की भांति कांग्रेस की डिक्टेटरी भी उनके मस्तिष्क से विलुप्त हो गई थी और क्योंकि ग्रीष्म ऋतु आ गई थी, इस लिए सरदार नन्दासिंह सोडावाटर वाले की दुकान के बदले उन्होंने पंडित बनवारीलाल की दुकान को अपना अड्डा बनाने का निश्चय कर लिया था। *

---

* 'वीतरागी' अश्क जी के उपन्यास 'गिरती दीवारें' का भाग नहीं, वरन् अपने ही उपन्यास के एक पात्र से प्रेरणा लेकर उन्होंने इसका मौलिक सृजन किया है।

—सम्पादक

डी० सी० एम० केमिकल वर्क्स गन्धक के तेजाब को (१.८४०) या ९५%, (१.७५०) या ८२% और ओलियम २०% के तरीकों से बनाते हैं। आवश्यकतानुसार यह खरीदा जा सकता है। भेजने से पूर्व इसकी अच्छी तरह जांच कर ली जाती है। ९५% तेजाब विशेष रूप से निर्मित पीपों में भेजा जाता है।

अपनी जरूरतों के लिये लिखिये :—

निम्न वस्तुओं के भी निर्माता :—

शोरे का तेज़ाब, नमक का तेज़ाब, हरिन गंधिताम्ल, अलम्यूनियम फेरिक, फिटकरी सफेद व लाल, साबुन व क्रिमानाशक, टर्की रेड आयल, हड्डी का खाद व मिश्रित खाद, सरेस,

ऊँचे पैमाने के पूर्वपरीक्षित रसायन - निर्माता

ADARTS (DELHI) LTD. DCM D.7. HINDI

रम्मू की सैर (२)

श्रीमती सिद्धि तिवारी

एक दिन रम्मू और उसके मित्र झील के किनारे गये। उन्होंने देखा कि एक लम्बी-लम्बी टांगों वाला पक्षी झील में कुछ खोज रहा है। एक मित्र ने कहा — "यह सारस है, मछली पकड़ता है।"

इस पर सब ने शोर मचाया—

सारस, सारस, मछली दे !
सारस, सारस, मछली दे !

तेरी गर्दन बहुत बड़ी,
तेरे मुंह में चोंच जड़ी,
लम्बी टांगें अलग खड़ी,
कछुवा ले ले, मछली दे !
सारस, सारस, मछली दे !

सारस ने जो इनका गाना सुना तो उसने अपनी चोंच पानी से निकाल कर उनकी ओर देखा।

एक ने कहा—"भाग चलो, नहीं तो सारस काट खायेगा।"

रम्मू ने सुझाया — "इस सारस को पकड़ लेना चाहिये। इस पर चढ़ी खाया करेंगे।"

बात सब की समझ में आ गई। रम्मू ने कहा—"तुम सब लोग चारों तरफ से इसे घेर लेना, मैं इसके पैरों में लिपट जाता हूँ।"

ऐसा कह कर वह झील में घुस गया। सारस चुपचाप उसे अपनी ओर आता देखता रहा। जब रम्मू उसके पास पहुँच गया और उसे पकड़ने को उसने हाथ फैलाये तो सारस ने अपने नीले पर फैला दिये। उसने पानी से ऊपर उठ कर अपनी दोनों टांगों के बीच में रम्मू को दबा लिया और झील के ऊपर उड़ चला। रम्मू ने छूटने की बहुत कोशिश की; पर नीचे देखा तो पानी ही पानी। उसका दम सूख गया। पानी में यदि वह गिरेगा तो डूब जायेगा, इस लिये वह सारस के पैरों से और भी चिपक गया। रम्मू के साथी डर गये।

वे दौड़े दौड़े उसके घर गये और उसकी मां से कह दिया कि एक बड़ा सारस रम्मू को उठा ले गया है।

रम्मू को सारस के पैरों से लटकता एक चील ने देखा उसने समझा कि सारस बड़ी मछली लिये आ रहा है। इसे उससे छीनना चाहिये। वह सारस पर झपट पड़ी। सारस ने जान बचाने के लिये रम्मू को छोड़ दिया। रम्मू का जी धक-सा रह गया। वह नीचे पानी की ओर गिरने लगा। पर वह घबराया नहीं। उसने आंखें बन्द नहीं कीं। देखा कि झील में एक मगर तैर रहा है। उसने उसी पर अपने पैर जमा दिये। मगर ने उसे निगल जाने के लिये अपना मुंह फाड़ा ही था कि वह चील झपट्टा मार कर नीचे आई और रम्मू को उठाकर ले गई। चील के पंजे नोकीले थे। वे रम्मू के शरीर में चुभने लगे। चील रम्मू को लेकर ऊंचे और फिर बहुत ऊंचे उड़ गई। उसका घोंसला पहाड़ के दूसरी ओर एक बहुत बड़े पेड़ की चोटी पर था। वह समझ रही थी कि रम्मू बहुत बड़ी मछली है और मेरे बच्चे इसे कई दिन तक खाते रहेंगे।

रम्मू के बोझ से वह थक गई। सुस्ताने के लिये वह एक जंगल में उतरी। सोचा था कि पानी से बाहिर मछली मर गई होगी। उसने रम्मू पर से अपने पंजे की पकड़ ढीली कर दी। रम्मू कुछ क्षण चुपचाप पड़ा एक झाड़ी की ओर देखता रहा। फिर लुढ़क कर झाड़ी में घुस गया। चील जो उस पर झपटी तो उसने एक लकड़ी उठाकर उस पर दे मारी। वह चीं चीं कर वहां से भाग गई।

रम्मू ने सोचा कि मां क्रुद्ध होंगी, इसलिये घर पहुँचना चाहिये। वह झाड़ी से निकल कर इधर-उधर देखने लगा। उसने देखा कि लम्बी-लम्बी घास के बीच एक मोटी पूंछ वाली लोमड़ी धीरे-धीरे पैर रखती हुई आ रही है। वह उसके पीछे छुपता-छुपता चल पड़ा। लोमड़ी चलते-चलते एक खेत में पहुँची। वहां कोमल-कोमल घास उगी थी। उसने देखा कि बहुत से खरगोश मजे के साथ उस घास को खा रहे हैं। लोमड़ी दबक कर एक खरगोश के बच्चे को पकड़ लेने की ताक लगाने लगी। रम्मू ध्यान से उसे देखता रहा। ज्यों ही वह खरगोश के बच्चे पर झपटी, रम्मू ने लेट कर उसके पैर पकड़ लिये और कहा—

"अरी लोमड़ी मोटी दुम की!
तुझको शरम न आती है?
ऐसे सुन्दर बच्चों को तू
पकड़ पकड़ कर खाती है।
तुझ को पकड़ पछाड़ूंगा मैं,
तेरे दांत उखाड़ूंगा मैं,
रम्मू हूँ, मैं रम्मू हूँ!"

लोमड़ी को देख कर खरगोश पहिले तो भागे। पर जब उन्होंने रम्मू को उसके पैर पकड़े देखा तो वे साहस करके उसके पास आ गये।

एक खरगोश के बच्चे ने कहा—"रम्मू भैया, तुम इस लोमड़ी को तालाब में फेंक दो।"

रम्मू ने लोमड़ी को पैर पकड़ कर घुमाया और तालाब में फेंक दिया। वह छुप्प-से गिरी और पानी में डूब गई।

तब एक खरगोश का बच्चा कूद कर रम्मू के कन्धे पर चढ़ गया और घास और फूलों से बनी एक टोपी उसके सिर उढ़ाकर नीचे उतर आया। वहां एक सभा हुई। बूढ़े-बूढ़े खरगोशों ने रम्मू की वीरता की बड़ी प्रशंसा की और रम्मू का नाम "खरगोश बहादुर" रख दिया। जब सभा की कार्यवाही समाप्त हो गई तो खरगोशों ने नाचने गाने का प्रोग्राम शुरू किया। ढोल, ढपड़ी, झांझ, बीन आदि बाजे बजने लगे और एक खरगोश ढाक के पत्तों के कपड़े पहिन कर हाथ में भाला लेकर खरगोशों का राज्य गीत गाने लगा।

गीत

ढपड़ी बाजी ढम ढम ढम,
खरगोशों के राजा हम।

एक हाथ से शेर पछाड़ा,
एक हाथ से चीता मारा।
गैंड़ा चींटी-सा है बल में,
हाथी भाग छिपे जंगल में।

ढपड़ी बाजी ढम ढम ढम,
खरगोशों के राजा हम।

वे गाते गये और आगे बढ़ते गये। "खरगोश बहादुर" उनके साथ था, इस लिये वे निडर हो गये थे। सोचते थे, गांव के पास जाकर हरे हरे गेहूं के खेतों में दावत खायेंगे। एक खरगोश के बच्चे ने गाया—

ढपड़ी बाजी ढम ढम ढम,
खरगोशों के बेटे हम।
गीदड़ के हम दांत उखाड़ें,
बिल्ली को हम पकड़ पछाड़ें।
देख हमारी आंखें लाल,
फिरे लोमड़ी भी बेहाल।

वे और भी आगे बढ़ गये। मस्तानी हवा चल रही थी। वे बाजे की लय पर झूमते चले जा रहे थे। एक खरगोश की लड़की ने उछल कर गाया—

है ओठ हमारा कटा हुआ,
हम गेहूं खाने वाली हैं।
खरगोशों की लड़की हैं—
हम सब से अधिक निराली हैं।
ढम ढम, ढम ढम, ढम।
हम हम, हम हम, हम।
हम खरगोशों की लड़की हैं,
सब से अधिक निराली हैं।
गेहूँ खाने वाली हैं।

रम्मू गाने में मस्त हो रहा था। एकाएक उसने देखा कि सब खरगोश अपने-अपने बाजे फेंक कर छलांगें लगाते उल्टे भागे चले जा रहे हैं।

हुआ यह कि गांव के लड़कों ने बाजे सुनकर समझा कि बरात आ रही है। उसे देखने वे वहां आये तो खरगोशों की पार्टी देखी। वे दौड़े तो खरगोश भाग गये। लड़कों ने उनके बाजे उठा लिये और रम्मू को घेर कर बाजे बजाते उसके घर की ओर चले। उसकी बहिन शीला रम्मू के सिर पर की खरगोशी-टोपी देख कर हंसने लगी।

(शेष पृष्ठ ६४ पर)

बिना शुल्क

बाल-पहेली नं० ७

२० मई १९४८ तक सही उत्तर आने पर पांच रुपये नकद पुरस्कार

दायें से बायें

१. 'रम्मू की सैर (२)' में इस पक्षी का नाम आता है। ३. एक वृक्ष जिसके पत्ते कड़ुए होते हैं। ५. वनों में ही नहीं, यह घर में भी किया जा सकता है। ६. घर में सब सोते हैं, पर यह नहीं सोता। ७. एक प्रकार का घटिया रेशम। ८. यह काम बच्चे बहुत करते हैं। १०. 'रनसारी' शब्द के उलट-पुलट अक्षर।

ऊपर से नीचे

१. एक छोटी संख्या। २. फिसलना। ३. एक रंग। ४. इन तीन अक्षरों से एक फूल का नाम बन जाता है। ६. राज्य के लिये यह आवश्यक है। ८. किसी के घर में यह न हो! ९. सेवा इससे करनी चाहिये। ११. पांव। १२. इसके बिना व्यापार नहीं चलता।

सही उत्तर और पुरस्कार-विजेता का नाम जून १९४८ के 'मनोरंजन' में प्रकाशित होगा।

बाल-पहेली नं० ६ का पुरस्कार

अप्रैल १६४८ के 'मनोरंजन' में प्रकाशित 'बाल-पहेली नं० ६' का सही उत्तर **बाबूलाल गुप्ता, कक्षा ७ ब, मिडिल स्कूल, पछार (ग्वालियर)** ने भेजा है। उसे पांच रुपये का पुरस्कार दिया गया है। सही उत्तर निम्नलिखित है—

दायें से बायें—१. सूझ, ३. मलाई, ६. मनका, ८. रख, ६. कामना, ११. होली, १४. फली।

ऊपर से नीचे—१. सूम, २. झनकार, ४. लार, ५. ईख, ७. कामना, १०. गलीचा, १२. लीडर, १३. डाली।

श्री विजयप्रताप बक्शी

इन्होंने पिछले महीने 'बाल-पहेली नं० ५' का एक अशुद्धि वाला उत्तर भेज कर पुरस्कार प्राप्त किया था। इनकी आयु १२ वर्ष की है और तिलक हाई स्कूल बरेली की नवम श्रेणी के योग्य विद्यार्थी हैं। इतनी छोटी अवस्था में इतनी बड़ी उन्नति प्रशंसनीय है। ये बरेली के डा० एस० पी० बक्शी के सुपुत्र हैं।

पहेली के नियम

१. केवल १४ वर्ष की आयु तक के लड़के-लड़कियां ही इस प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं। आयु के सम्बन्ध में माता-पिता अथवा स्कूल के अध्यापक का प्रमाण-पत्र भी उत्तर के साथ आना चाहिये।

२. उत्तर 'मनोरंजन' में छपे खाके को काट कर और भर कर भेजना चाहिए। किसी और कागज पर अलग से भेजे गये उत्तर पर विचार नहीं किया जायेगा। एक-व्यक्ति एक से अधिक पूर्तियां भी भेज सकता है।

३. खानों को स्याही से सुस्पष्ट लिखे अक्षरों से भरना चाहिये। कटे-छंटे या पैंसिल आदि से लिखे अक्षर को सही नहीं माना जायेगा।

४. उत्तर २० मई १६४८ को शाम तक 'मनोरंजन' कार्यालय, श्री श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली में पहुंच जाना चाहिये।

५. सम्पादक का निर्णय अन्तिम होगा।

(पृष्ठ ६३ का शेष)

रम्मू ने कहा—"हंस नहीं, शीला, तू जानती नहीं कि मैं अब 'खरगोश बहादुर' बन गया हूँ।"

शीला—"ओहो! क्या खरगोश बने हैं!"

अपने द्वार पर जो बाजे बजने का शब्द सुना तो रम्मू की मां दौड़ी आई। रम्मू का जंगली रूप देखकर उसे हंसी आ गई। रम्मू के लौट आने की उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। वह घर में से थाल भर कर मिठाई ले आई और सब बच्चों को बांट दी। फिर सब रम्मू की कहानी सुनने लगे। जब कहानी खत्म हो गई तो सब ने गाया—

हम सब बच्चे सैलानी,
करते फिरते मनमानी।
बाजे खूब बजाते हैं,
माल-मिठाई खाते हैं।

प्रिंटर पब्लिशर श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा द्वारा अर्जुन प्रेस देहली से छप कर प्रकाशित।

रजि० नं० ई० पी० — ४८

मनोरंजन

वर्ष १

संख्या ६

जून

१९४८

दिल्ली

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

सम्पादक
श्री चिरंजीत

इस अंक में

कविता

कहानी

लेख

विशेष स्तम्भ

मूल्य आठ आने

वार्षिक मूल्य ५॥)

किसने मेरी नींद चुरा ली ?

नगेन्द्र

दूर गगन के कोने में जो चमक रहा ध्रुव-तारा,
युग-युग से अज्ञात प्रिया का देख-देख पथ हारा ।
जब फूलों के खेल खेलते हँस-हँस चांद सितारे,
वह एकाकी बाट जोहता अपलक-दृग मन मारे ।
अरुण हुए आती जब ऊषा ले कुंकुम की थाली,
अंचल पकड़ पूछता तारा, "किसने मेरी नींद चुरा ली ?"

बही जा रही अविरल गति से यह सरिता की धारा,
पर अपने अनजान निठुर का पंथ न कभी निहारा ।
रात गये चूमे कोकी ने पिय के नयन निंदारे,
पर पल भर भी मिले नहीं सरिता के युग्म किनारे ।
जब कलियों के स्वप्न पोंछती मलय पवन मतवाली,
अंचल पकड़ पूछती सरिता, "किसने मेरी नींद चुरा ली ?"

जब मेरे वसन्त में पिक ने पहली बार पुकारा,
गमक उठा उर के सौरभ से जीवन-कानन सारा ।
मायाविनि ! तुम हुईं उदित सहसा मन के अम्बर में—
एक नयन में गरल, दूसरे में ले मधु की धारा ।
सजग चेतना पर बुन दी ऐसी स्वप्नों की जाली,
मैं अब तक भी जान न पाया, किसने मेरी नींद चुरा ली !

★

'महान अमीर'

व्यंगात्मक कहानी
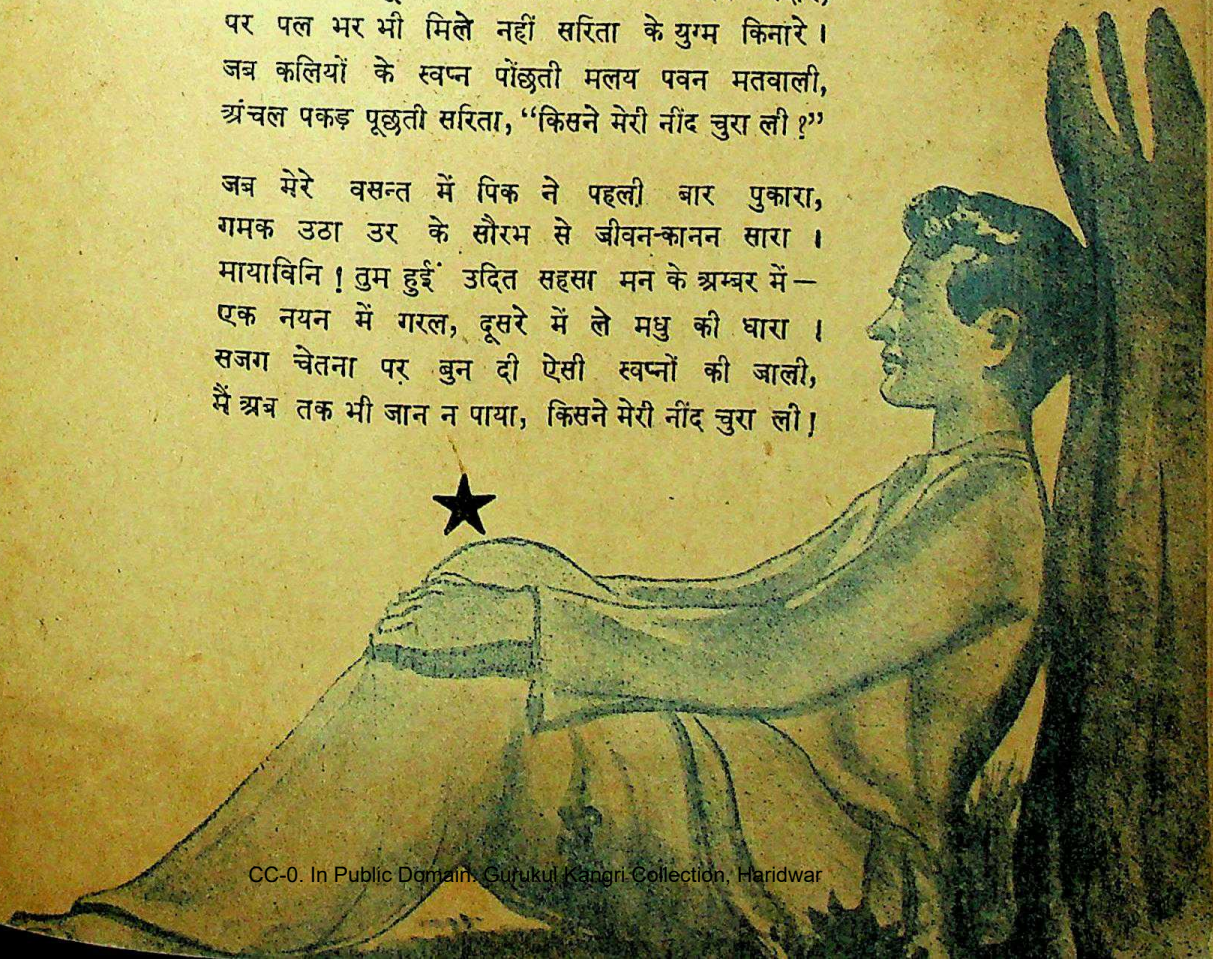
अफगानिस्तान में जिस समय पहले-पहल समाचार-पत्रों का प्रकाशन आरंभ हुआ, उस समय की यह कहानी है।

उस समय जो अमीर अफगानिस्तान के शासक थे, उन का हम नाम न लेंगे। सुविधा के लिए उनका उल्लेख केवल 'महान अमीर' कहकर करेंगे।

महान अमीर देश-विदेश की बातों से परिचित थे। वे विदेश में हो भी आए थे। उन्होंने एकाएक एक दिन सोचा कि यदि अपने देश को अन्य सभ्य देशों की पंक्ति में लाना है तो यहां भी अखबार छपने चाहिएं। फिर क्या था, हुक्म हो गया कि अब अफगानिस्तान में अखबार निकलेगा।

चारों तरफ यह खबर बिजली की तरह फैल गई। अधिकतर मुसाहिब व उमरा महान अमीर की हां में हां मिलाने वाले थे। पर महान अमीर के इस निर्णय को सुनकर वे भी चिंतित हो उठे। कुछ को यह संदेह हुआ कि न मालूम इस नई सनक से देश की भलाई होगी या देश कुफ्र के गढ़े में गिर पड़ेगा। कई तो इतने उद्विग्न हो उठे कि अब मुंह से कुछ कहते न बना तो मस्जिद में जाकर दुआ मांगने लगे—"या खुदा, जो बात वतन के लिए अच्छी हो वही हो!"

जो उमरा तथा अन्य बड़े लोग इतने राजभक्त नहीं थे, उन्होंने दरबार के बाहर कानाफूसी शुरू करदी — "बस, अब तो हुक्म हुआ कि अखबार निकालो; कल हुक्म होगा कि अपनी बीवियों को निकालो और उन्हें लाकर दरबार में नचाओ·····."

इस पर एक खान ने अपनी दाढ़ी पर गुस्से में हाथ फेरते हुए कहा – "यह तो मुझे भी शक है, पर मैं ऐसा वैसा नहीं हूँ; मेरी भी रगों में सेलजूकी खून बह रहा है। अपनी बहू-बेटियों की आबरू बचाने के लिए मैं खुद एक सौ कत्ल कर डालूंगा।"

यह चर्चा जनता में भी पहुंची। जनता में अधिकतर अनपढ़ लोग थे। शेष जो पढ़े लिखे थे, उन्होंने सारी विद्या मुल्लाओं से ही पाई थी। एक ऐसा ही पढ़ा-लिखा अफगान बोला—"वाह, अखबार कैसे निकल सकता है? जो बात हमारे पैगम्बर के जमाने में नहीं हुई, वह अब कैसे हो सकती है?"
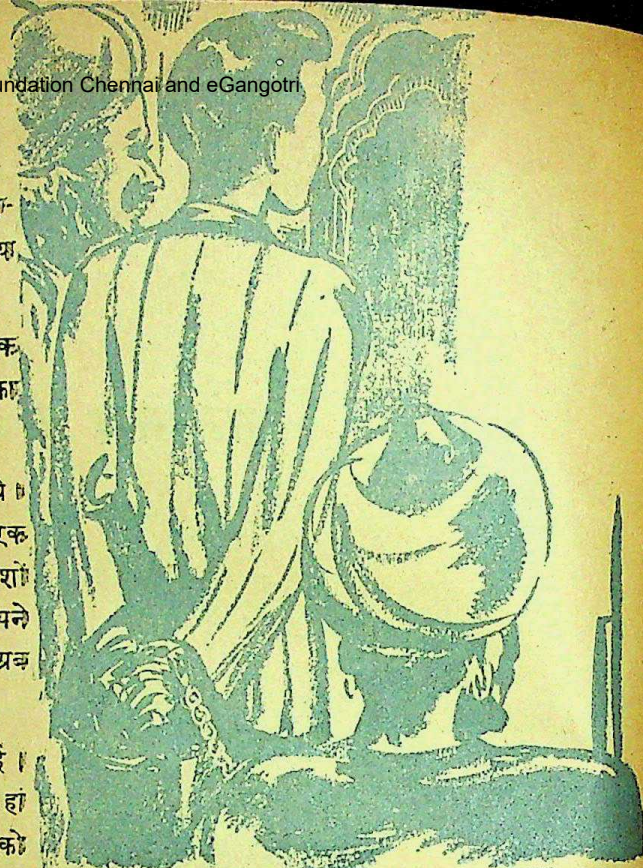
उपस्थित लोग इस तर्क से प्रभावित हुए। पर एक व्यक्ति ने दबी जबान में कहा—"भई, अखबार है क्या बला?"

जिस व्यक्ति ने विरोध किया था, उसे इस सम्बंध में ठीक-ठीक पता नहीं था; पर तो भी उसने अनुमान से कहा – "उसमें खबरें छपा करेंगी।"

दूसरे व्यक्ति ने पूछा – "खबरें कैसी?"

प्रथम व्यक्ति ने कहा—"यही कि किसकी बहू-बेटी भाग गई कौन फांसी पर चढ़ा, कौन भाग गया··"

कहने वाला कुछ और भी कहना चाहता था, पर उसे कुछ अधिक मालूम नहीं था।

ने अखबार निकाला !

श्री मन्मथनाथ गुप्त

अब तो उपस्थित लोग बहुत बिगड़े। एक व्यक्ति बोला—"तोबा तोबा, मैं तो समझता था कि कुछ खुदा-रसूल की बातें छपा करेंगी; पर यह तो बिल्कुल कुफ्र है, कुफ्र। तोबाह! तोबाह!!"

जमाव देखकर इधर-उधर से और लोग भी आ गये। इस प्रकार जब भीड़ बढ़ गई और लोग गरमा-गरम बातें करने लगे तो पुलिस आ पहुंची। थानेदार ने पूछा—"कौन लोग हो?"

इससे पहले कि प्रश्न का उत्तर मिले, पुलिस वालों ने बंदूकें उठाकर धड़ाधड़ फायर करने शुरू कर दिये। दो-तीन लाशें गिर गईं, कुछ घायल हुए और शेष जनता भाग गई।

पर फिर भी अखबार तो निकलना ही था। महान अमीर की आज्ञा टलती कैसे? छापाखाना तो पहले ही से मौजूद था; बाकी सब सामान भी मिल गया। पर दिक्कत पड़ी तो सम्पादक के सिलसिले में। अखबार का सम्पादक कौन हो? बड़ी विकट समस्या उपस्थित थी। महान अमीर इस सम्बंध में किसी भी नतीजे पर न पहुँच सके। इसी चिंता में उन्होंने खाना-पीना तक छोड़ दिया। महल में नृत्य-गीत बंद कर दिया गया। महान अमीर को इस तरह चिन्तामग्न देखकर सेनापति ने फौज को आठों पहर तैयार रहने की आज्ञा दे दी। न मालूम आलीजाह क्या सोच रहे हैं, कब क्या हुक्म दे दें?

जनता में महान अमीर के इस रुख की खबर पहुँची तो सारे काबुल की दूकानें बन्द हो गईं। लोग घरों से बाहर नहीं निकलते थे। लोगों ने दरवाजे बंद कर व उनके सामने बड़े-बड़े पत्थर रखकर घरों को किले की तरह बना लिया और बन्दूकें भरकर चौबीसों घण्टे पहरे पर रहने लगे। बच्चों ने रोना तक बन्द कर दिया।

आखिर तीन दिन के बाद महान अमीर ने पानी मांगा। इसी काम के लिये तैनात एक दरबारी ने झट से सोने के गिलास में चांदी का तबक चढ़ाकर और उसे हीरों से जड़ी तश्तरी में रखकर उन्हें पानी पेश किया। पानी पीकर महान अमीर ने हुक्म दिया—"हुसैनअली को हाजिर करो!"

तुरन्त ही खुद सेनापति फौज की एक टुकड़ी लेकर हुसैनअली के घर पर पहुंचा। हुसैनअली ने भी और

नागरिकों की तरह अपने घर की निगरानी कर रही थी। ज्यों ही फौज की टुकड़ी उसके घर के सामने आकर खड़ी हुई, उसने देख लिया। घर वालों की समझ में आ गया कि कुछ दाल में काला है। घर भर में कुहराम मच गया। साथ ही सबने बंदूकें भी तान लीं।

बाहर से सेनापति ने कड़ककर आवाज दी—"हुसैनअली हाजिर है?"

सेनापति से हुसैनअली का व्यक्तिगत परिचय था। उसने पत्थरों के पीछे से ही पूछा—"क्या है कुलीदाद खां?"

सेनापति ने इसके उत्तर में पहले तो तीन पंक्ति लम्बी महान अमीर की उपाधियां बताईं, फिर कहा—"वह तुमको याद कर रहे हैं।"

हुसैनअली ने समझा कोई गलती हो गई है, उसी का दण्ड देने के लिये ही महान अमीर ने उसे बुलवाया है। पहले तो उसने सोचा कि बंदूक उठाकर आत्म-हत्या कर लूं। फिर सोचा कि यदि ऐसा किया तो बाद में शायद घर वालों पर आफत आए; इसलिए उसने महान अमीर के सामने हाजिर होना ही ठीक समझा। उसने दरवाजे के आगे से एक एक करके पत्थर हटाये, फिर बाहर आकर शहीद जिस अदा से फांसी के तख्ते पर जाता है, उसी अदा से खड़ा हो गया।

उसका बाहर निकलना था कि सैनिकों ने लपककर उसे घोड़े पर उठा लिया और चील जिस प्रकार मांस के टुकड़े को लेकर भागती है, उसी प्रकार से उसे लेकर राजमहल की ओर भागे।

एक मिनट के अन्दर ही उसे हाथ पीछे बांधकर महान अमीर के सामने पेश कर दिया गया। उस समय महान अमीर के सामने दस्तरखान बिछा था, जिस पर तरह-तरह के खाने सजे हुए थे। उसे देखकर उन का चेहरा खिल उठा और उन्होंने आदर के साथ उसे अपने साथ खाना खाने के लिए बुलाया। इतना ही इशारा काफी था। फौरन उसके सारे बन्धन खोल दिए गये और वह महान अमीर की बगल में अदब से बैठ गया। महान अमीर ने सेनापति को सिर हिला कर जाने का संकेत किया और वह वहां से चला गया।

दोनों एक साथ खाना खाने लगे। महान अमीर ने कहा — "तुम मेरे साथ विदेशों में रहे हो, वहां तुम मेरे दुभाषिया भी थे। अब मेरी इच्छा है कि तुम एक अखबार निकालो।"

हुसैनअली की अब जान में जान आई। लेकिन सम्पादक बनना उसे जोखिम का काम लगा। उसे मालूम था कि मुल्लाओं द्वारा जनता में अखबार के सम्बन्ध में कैसी-कैसी भ्रांतियां फैलाई गई हैं। उसने झिझकते हुए कहा — "यों तो मैं हजूर का गुलाम हूं; पर मैं इस काम के लायक नहीं हूं।"

महान अमीर ने कहा — "यह काम तो तुम्हें करना ही होगा। मैं नहीं चाहता कि मेरा देश अंधकार में पड़ा रहे। अखबार निकलना ही चाहिये। हां, याद आया, विलायत में रहते समय तुमने अफगानिस्तान और इंगलैंड के आपसी सम्बन्ध को दृढ़ करने के विषय में एक लेख लिखा था, जो 'टाइम्स' में छपा था। तुम्हारा वह लेख मुझे बहुत पसन्द आया था।"

आखिर हुसैनअली को इच्छा न होते हुए भी अखबार का सम्पादक बनना स्वीकार करना पड़ा। पर उसने महान अमीर से कहा — "मेरे लिए आप दस बाडी गार्ड मुकर्रर कर दें, और मेरे घर पर फौजी पहरा बैठा दें; तभी मैं इस जोखिम को उठाऊंगा।"

बात की बात में पहरे वगैरह का सब प्रबन्ध हो गया। यों तो अखबार के सम्बन्ध में लोग तरह-तरह की भ्रांतियां फैला रहे थे, तो भी सभी बड़ी उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पहला अंक छपा तो लोग भूखों की तरह उस पर टूटे। इसके बाद जितने अंक छपे, वे सब बिक गए। यहां तक कि उनमें चोर-बाजारी चलने लगी। अखबार दुगनी, तिगुनी, चौगुनी संख्या में छपने लगा। जनता के अन्दर जो विरोधी-भावना पैदा की गई थी, थोड़े ही दिनों में वह दूर हो गई। अखबार के सम्पादक हुसेनअली को अब किसी भी खतरे का भय न रहा। उसकी रक्षा के लिये जो बाडी गार्ड और सैनिक पहरा था, वह अब उसने हटा दिया। इतने में यह घटना घटी।

एक दिन हुसैनअली संध्या समय एक निर्जन स्थान से गुजर रहा था कि एकाएक उसे यह अनुभव हुआ कि कोई ठंडी-सी कड़ी-सी चीज उसके सीने से लगी है। साथ ही किसी ने कहा — "खड़े हो जाओ!"

आज्ञा देने वाले के हाथ में बन्दूक थी जो उसने हुसैनअली के सीने पर गड़ा रखी थी। हुसैनअली भी अफ़गान था, पर उसके हाथों में बन्दूक नहीं थी; इसलिये वह कुछ डरा, बोला — "क्या है भाई?"

"भाई किसे कहते हो? मैं तो तुम्हें अपना दुश्मन समझता हूं, क्योंकि तुमने मेरा लेख नहीं छापा।" बन्दूक वाले व्यक्ति ने गर्ज कर कहा।

हुसैनअली वर्षों तक विदेशों में रहा था। उसको यह तो मालूम था कि भारत आदि देशों में लेख लौटाने पर लेखक सम्पादक के जानी दुश्मन बन जाते हैं, उस दिन से उसकी रचनाओं को या तो दो कौड़ी की बताने लगते हैं, या उन्हें विदेशी रचनाओं की चोरी बताते हैं। इत्यादि इत्यादि। पर यह तो··

हुसैनअली ने कहा — "मुझे नहीं याद आ रहा कौन-सा लेख।"

'भाई, पहले मेरी तो सुन लो!'

उस व्यक्ति ने कहा — "हां, तुम्हें क्यों याद आएगा। मेरा लेख न छाप कर तुमने मेरी बेइजती की। आज उस बेइजती का बदला चुकाता हूँ।"

यह कह कर उसने बन्दूक की नाली को और भी जोर से हुसैनअली की छाती पर गड़ा दिया और घोड़े पर हाथ रख दिया।

हुसैनअली जीवन से करीब-करीब निराश हो चुका था। पर उसने बचने की अन्तिम चेष्टा की, कहा —"भाई, पहले मेरी सुन तो लो! फिर मैं तो तुम्हारे कब्जे में ही हूँ। कौन-सा लेख था, यह तो बताओ? शायद वह मेरे असिस्टेन्ट ने मुझे दिखाए बगैर ही लौटा दिया हो।"

इस पर वह आदमी कुछ पसीज गया और उसने बन्दूक हटा कर जेब से एक पर्चा निकाल कर दिया

।

और बोला — "यह है वह लेख। जब से वापस आया है, तब से खून का घूंट पीकर तुम्हारा पीछा कर रहा हूँ कि कब मैं तुम्हें अकेला पाऊं और अपने अपमान का बदला लूं।"

हुसैनअली ने वह पर्चा लेते हुए कहा — "यह तो जरूर छपेगा। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि जरूर छपेगा। अंधेरे में यह पढ़ा नहीं जाता; इसका विषय क्या है?"

उस बन्दूकधारी लेखक ने अपनी दाढ़ी को खुजलाते हुए कहा—"विषय क्या है, स्फुट विचार हैं।"

हुसैनअली ने सोचा, क्या यह रोग यहां भी आ गया। लोग न तो कोई खबर भेजेंगे, न परिश्रम-पूर्वक लिखा हुआ कोई लेख भेजेंगे, न कहानी भेजेंगे, न कविता ही भेजेंगे; बस स्फुट विचार भेजेंगे जिनमें न तो कोई ढंग की बात होती है और न कोई क्रम।

खैर, जान बचानी थी। पर्चा ले लिया। दोनों अपने-अपने रास्ते पर चल दिये। जाते-जाते वह व्यक्ति कहता गया—"याद रखना, अपने खानदान में मैं ही एकमात्र व्यक्ति हूँ जो जीवित है। बाकी सब दो-दो चार-चार दुश्मनों को मारकर मर चुके हैं।"

अगले दिन सवेरे हुसैनअली ने महान अमीर से रात वाली घटना का जिक्र किया। सुनकर अमीर चिंतित हुए, बोले—"यहां के लोगों की न जाने यह जहालत कब दूर होगी। खैर, तुम अब इस घटना को बिल्कुल भूल जाओ।"

उसी दिन वह बन्दूक वाला व्यक्ति अज्ञात व्यक्तियों के हाथों मारा हुआ पाया गया। जब हुसैनअली ने यह समाचार पाया तो उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने तुरन्त महान अमीर से जाकर कहा — "क्या यह अच्छा हुआ?"

महान अमीर ने कहा—"मजबूरी थी। ऐसे लोग आधुनिकता में पल ही नहीं सकते। उनका मर जाना ही अच्छा है।"

हुसैनअली इस सम्बंध में तर्क क्या करता? वह चुप रहा। उस दिन से पत्रकार-कला में उसका उत्साह कुछ कम हो गया। पर जनता को अखबार पढ़ने का चस्का लग चुका था और उसकी दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की होने लगी।

जब अखबार खूब चल निकला तो महान अमीर ने उसकी सफलता के उपलक्ष्य में सारे देशों के पत्रकार बुलाकर एक बहुत बड़ा समारोह करने का निश्चय किया। तदनुसार देश-विदेश के पत्रकारों को निमंत्रण-पत्र भेज दिये गये और जोर-शोर से तैयारियां होने लगीं। हुसैनअली को इस समारोह के प्रति कोई विशेष उत्साह नहीं था, तो भी वह अपना कर्तव्य समझकर सब कुछ करता रहा।

उत्सव से ठीक एक दिन पहले की बात है। सारी तैयारियां पूरी हो चुकी थीं। दूर-दूर के देशों से पत्र-प्रतिनिधि समारोह में सम्मिलित होने के लिये राजधानी में पहुँच चुके थे। इतने में हुसैनअली बुरी तरह से घबराया हुआ महान अमीर के पास पहुँचा। महान अमीर ने उसकी घबराहट देखकर पूछा — "कहो, खैरियत तो है?"

"खैरियत क्या, मेरी स्त्री को कोई भगा कर ले गया।" उसका गला रुंधा हुआ था।

महान अमीर ने हंसकर कहा—"इसमें घबराने की क्या बात है? एक गई तो दो आ जायेंगी। अब की बार तुम्हारी शादी किसी राजघराने की लड़की से कर दी जायगी।"

पर हुसैनअली को इन बातों से कोई तसल्ली नहीं हुई। उसे अपनी स्त्री बहुत प्यारी थी। वह उत्सव की बात भूलकर अपनी स्त्री की तलाश करने लगा।

यद्यपि विदेशी पत्रकारों से यह बात छिपाई गई थी, पर वे न मालूम कैसे सारी बात का पता पा गये। चूंकि वे लोग सबके सब पत्र-प्रतिनिधि थे और यह समाचार बहुत दिलचस्प था, इस कारण उन्होंने सबसे पहला काम तो यह किया कि तार तथा अन्य साधनों द्वारा इस समाचार को अपने-अपने पत्रों में छपने के लिए भेज दिया। कुछ नमक-मिर्च भी लगा दिया। साथी पत्रकार जानकर भी कुछ रियायत नहीं की।

एक मुंहफट ने तो हुसैनअली से यह कह कर सहानुभूति प्रकट की—"खैर, हमारे देशों में यह तो नहीं होता कि लोग सम्पादक की बीवी को भगाकर ले जायें; लेकिन सम्पादक को सजा इससे भी सूक्ष्म तरीके से दी

जाती है। उसे तो बदनाम किया ही जाता है, पर साथ-साथ उसकी बीवी को भी बदनाम किया जाता है। यहां तक कि अब हमारे यहां यह एक सर्वमान्य सी बात हो गई है कि कोई भी सुन्दर स्त्री बदनामी से नहीं बच सकती। मिस्टर हुसैन, आप गम न करें।"

दूसरे दिन उत्सव आरम्भ होने से कुछ ही देर पहले महान अमीर की पुलिस ने हुसैनअली की स्त्री का पता लगा लिया। अब सभी विदेशी पत्रकार उत्सव की बात भूलकर इस बात के लिये लालायित हो उठे कि कैसे उस स्त्री के अपहरण की पूर्ण कहानी मालूम की जाय।

विदेशी पत्रकार इस जोड़-तोड़ में इतने व्यस्त रहे कि वे जिस काम के लिये आये थे, वह गौण हो गया। आखिर ये पत्रकार किसी न किसी तरह अपहरण के बारे में एक-एक कहानी गढ़ने में सफल हुए। प्रत्येक की कहानी अलग-अलग थी। जो पत्रकार जितना अधिक कल्पनाशील था, उसकी कहानी उतनी ही रोचक बनी। ये पत्रकार समझ रहे थे कि हम अपहरण सम्बन्धी जिन खबरों को भेज रहे हैं, वे बिना रोक-टोक सीधी हमारे पत्रों को जा रही हैं; परन्तु महान अमीर उनकी भेजी हुई सभी खबरों को तार-घर से मंगवा कर पढ़ रहे थे। वे इन समाचारों को पढ़ते और खूब हंसते; क्योंकि असली रहस्य का केवल उन्हीं को पता था।

जब अखबार का समारोह खत्म हो गया और बाहर से आये पत्रकार अपने-अपने देशों को चले गये, तो महान अमीर ने हुसैनअली को बुलाकर पूछा—"तुम्हें तो अपनी स्त्री के भगाये जाने का रहस्य मालूम होगा?"

"जी नहीं, मुझे कुछ नहीं मालूम।"

"तुम्हारी स्त्री ने तुम्हें कुछ नहीं बताया?"

"नहीं, कुछ नहीं बताया।"

महान अमीर की आंखें चमक उठीं। उन्होंने कहा—"तुम्हारी पत्नी को मैंने ही थोड़ी देर के लिये अपनी बहिन के यहां बुलवा लिया था।" फिर रुककर बोले—"ऐसा करने में मेरा उद्देश्य पत्रकार-कला सीखना तथा तुम्हें सिखाना था।"

यह कहकर महान अमीर ने पास ही के एक बड़े लिफाफे से उन तमाम तारों तथा पत्रों को निकाला जो विदेशी पत्रकारों ने अपने-अपने अखबारों को भेजे थे और हुसैनअली को पढ़ने के लिये दे दिये।

हुसैनअली ने एक-एक करके तार और पत्र पढ़ने शुरू किये। उसकी पत्नी के भागने के सम्बन्ध में ऐसे-ऐसे अजीब-अजीब ब्योरे दिये गये थे कि मानव-बुद्धि भी चकरा जाये। एक ने यह लिखा था—'हुसैनअली की स्त्री के भगाये जाने का यह सातवां मौका है और सात ही उसके अखबार के अङ्क निकले हैं। प्रत्येक अङ्क किसी न किसी पाठक को पसन्द नहीं आता था; बस, वह अपना रोष प्रकट करने के लिये इस तरकीब से काम लेता था।'

एक अन्य पत्रकार ने यह लिखा था—'इस काम में अमीर का भी हाथ है। यों देखने में तो अमीर बड़े लोकतंत्रवादी हैं, पर अपनी कोई आलोचना सहन नहीं कर सकते। जहां दूसरे देशों में सरकारें आर्डिनेन्स निकालकर पत्रों का दमन करती हैं; वहां अमीर ने इस पत्र के सम्पादक को राह पर लाने के लिए यह नई तरकीब ढूंढ निकाली है।'

इसी प्रकार के विवरण और पत्रकारों ने भी भेजे थे—बेहद रोचक, परन्तु एकदम झूठ।

सारे पत्रों और तारों को पढ़कर हुसैनअली ने हाथ की हथेली पर अपना सिर रखते हुए कहा—"यदि यही पत्रकार-कला है, तो इसे मेरा दूर से ही सलाम।"

महान अमीर ने सिर हिलाते हुए कहा—"नहीं, हमें पराजय नहीं स्वीकार करना है। हमें तो इस कला में और भी आगे बढ़ते जाना है और देश को आगे बढ़ाना है।"

बड़ी देर तक हुसैनअली और अमीर में इस विषय पर बहस हुई। हुसैनअली ने कहा—"यह ठीक है कि हमारे देश के लोग बात-बात पर बन्दूक तान देते हैं, पर वे न तो इतने झूठे हैं और न इतने मक्कार।"

फिर भी अमीर समझाते रहे। अंत में एक बात तय हो गई। अखबार के अगले अङ्क में यह समाचार प्रकाशित हुआ—

'विदेशों से जो पत्रकार हमारे देश का निरीक्षण करने आये थे, वे हमारे अखबार के ऊंचे स्टैंडर्ड पर इतने मुग्ध हो गये कि उनमें से कई एक ने यहां स्थायी रूप से बस कर पत्रकार-कला सीखने की इच्छा प्रकट की। पर महान अमीर की इस नीति के कारण कि देश में विदेशी अधिक समय तक न रहें, उनकी प्रार्थनायें स्वीकार नहीं की गई। इससे उन्हें भारी निराशा हुई। विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि इन पत्रकारों में से कइयों ने आत्महत्या कर डाली है।'

इस समाचार से देश में अखबार का खूब प्रचार हुआ और देश जल्दी ही आधुनिक सभ्य और उन्नत देशों की पंक्ति में आ गया।

गीत

सुमित्राकुमारी सिनहा

अर्चन के ये गीत अमल !

मलय-पवन बन तुम्हें स्पर्श कर अन्तर में भर दें सिहरन,
मेरे गीत तुम्हारे नयनों में छा जावें बन रस-घन !
प्राणों में भर प्यार-गुदगुदी सपनों की मधु कथा कहें,
मैं दूरी पर, किन्तु सदा ये गीत तुम्हारे साथ रहें !
मानस-लहरों पर थिरकें ये बन शीतल ज्योत्सना उज्ज्वल !
अर्चन के ये गीत अमल !

मन्दिर के शुभ धूप-दीप-से जल कर श्वास करें सुरभित,
विसुध नींद की पलकों पर ये स्वप्न-फूल-से हों विकसित !
जब-जब जग के आघातों के प्रश्न उठें, ये दें उत्तर,
स्वप्न-जागरण, हास-रुदन में इनका हो अस्तित्व अमर !
इन्द्र-धनुष बन कर मन-घन का रँग दें ये गीला अंचल !
अर्चन के ये गीत अमल !

एक भेंट

श्री 'अज्ञेय'

श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

> 'अज्ञेय' हिंदी के यशस्वी साहित्यकार श्री वात्स्यायन का उपनाम है। यह उपनाम शायद उनके जीवन व व्यक्तित्व की रहस्यात्मकता का ही द्योतक है। खैर, श्री 'कमलेश' जी ने अपनी भेंट के प्रस्तुत विवरण द्वारा 'अज्ञेय' को अज्ञेय नहीं रहने दिया।

'विपथगा' 'परम्परा' और 'कोठरी की बात' नामक कहानी संग्रहों से आधुनिक हिन्दी कहानी को नवीन रूप देने वाले 'शेखर : एक जीवनी' जैसे अनूठे उपन्यास व 'त्रिशंकु' जैसे आलोचना-ग्रन्थ के लेखक 'चिन्ता' और 'इत्यलम्' के प्रयोगवादी कवि तथा 'प्रतीक' द्विमासिक के सम्पादक श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन को लोग 'अज्ञेय' नाम से ही अधिक जानते हैं। अभी अभी वे वात्स्यायन को अधिक महत्व भले ही देने लगे हों, लेकिन हिन्दी में उनका उदय 'अज्ञेय' उपनाम से ही हुआ और उनका यही नाम आज भी सबकी जबान पर है। यही बात सोचकर उनसे भेंट करते समय मैंने सबसे पहले जो प्रश्न किया, वह था —"आपके 'अज्ञेय' उपनाम का रहस्य क्या है ?"

उन्होंने अपने क्रांतिकारी जीवन का संक्षिप्त-सा विवरण देते हुए कहा — "जब मैं दिल्ली जेल में था, तब कुछ कहानियां लिखकर मैंने श्री जैनेन्द्र जी के पास भेजीं। कहानियां अवैध तरीके से बाहर गई थीं और यों भी चाहता था कि स्वतन्त्र विचार हों, इसलिए लेखक का नाम नहीं दिया जा सकता था। जैनेन्द्र जी ने एक कहानी बनारस 'जागरण' में भेज दी। लेखक का नाम बताया नहीं जा सकता इस नाते वह अज्ञेय है, कुछ ऐसा सोचकर जैनेन्द्र जी ने यही नाम दे दिया। मुझे नाम नापसन्द था, लेकिन चल गया सो चल गया। आखिर नाम ही तो है।"

'अज्ञेय' जी का जीवन अंग्रेजी अथवा विदेशी लेखकों के ढंग का रहा है। उसको और स्पष्ट करूं तो यों कहा जा सकता है कि जैसे विदेशी लेखकों की प्रतिभा का विकास स्वाभाविक ढंग से होता है, वैसा ही 'अज्ञेय' जी का हुआ है। उसके मूल में सम्पन्न और शिक्षित परिवार हो या उनकी स्वयं की प्रतिभा, वे स्वतन्त्र-चेता और मौलिक विचारक रहे हैं। उनका विकास हिन्दी में सबसे निराला नहीं तो कम से कम अपने ढंग का अकेला है। इस बात को मैं अपने ५-६ वर्ष के सम्पर्क से जानता हूं। यह सम्पर्क सन् ४१ में आरम्भ हुआ था, जब वे आगरे में होने वाले युक्त-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अन्तर्गत प्रगतिशील लेखक सम्मेलन का सभापतित्व करने आए थे। उस समय उनके व्यक्तित्व को देखकर मेरे मन में जो विचार आया था, वह आज भी बदला नहीं है। वह विचार यह था कि हिन्दी के साहित्यकारों को, आकर्षक व्यक्तित्व की दृष्टि से, यदि अन्य भाषा-भाषियों के सम्मुख रखा जाय तो उनमें 'अज्ञेय' जी का नाम अवश्य होगा। तब तक मैंने हिन्दी के अन्य साहित्यकारों के दर्शन नहीं किए थे। आज तो मैं लगभग सभी प्रमुख कलाकारों के दर्शनों का लाभ ले चुका हूं। इसलिए यदि आज मुझे हिन्दी के प्रतिनिधि चुनने का अवसर मिले तो मैं सर्वश्री निराला, पन्त और राहुल के साथ अज्ञेय जी का नाम अवश्य रखूंगा। यह चुनाव व्यक्तित्व की विशालता की दृष्टि से ही होगा, किसी अन्य दृष्टि से नहीं, यह ध्यान में रखने की बात है।

आप सोच रहे होंगे कि मैं कहां से कहां पहुँच गया। लेकिन ऐसा मत सोचिए। मेरा अगला प्रश्न इस स्पष्टीकरण द्वारा और स्पष्ट हो जायगा, यह सोचकर मैंने यह लिखा है।

श्री 'अज्ञेय' जब सेना में कैप्टन थे

हां तो, जब 'अज्ञेय' नाम का रहस्य मेरी समझ में आ गया, तब मैंने उनसे कहा — "अब आप अपने बाल्य-जीवन और परिस्थितियों के सम्बन्ध में कुछ बताइए।"

अज्ञेय जी बोले — 'मैं बचपन में पिता जी के साथ अधिक रहा। वे पुरातत्व विभाग में होने के कारण अधिकतर घूमते ही रहते थे। मुझे भी वह आदत पड़ गई है। मेरा बहुत-सा समय खण्डहरों में बीता है। जन्म युक्तप्रान्त में हुआ। फिर कुछ वर्ष काश्मीर में रहा। दो-तीन साल तक हम लोग नालन्दा में भी रहे। इसके फलस्वरूप मुझे बहुत-सी ऐसी चीजों का ज्ञान हो गया, जिनका ज्ञान लोगों को आम तौर पर नहीं होता। पिता जी के पुरातत्वज्ञ होने के कारण मेरी रुचि अजीब-अजीब दिशाओं में जाग्रत हुई। बचपन में अक्सर अकेला रहता था। तीसरे-चौथे साल की बातें आज भी अच्छी तरह याद हैं। हम भाई-बहिनों में से कोई कभी स्कूल नहीं गया। मैं दो-अढ़ाई महीने कन्वेंट में गया और १ महीना काश्मीर में स्कूल में गया। बस यही स्कूली जीवन है। बड़ी बहिन से कुछ पढ़-लिख लेते थे। जब मैट्रिक की परीक्षा देने का निश्चय हुआ, तब जमकर बरस-ग्यारह महीने पढ़ाई कर ली, बस। मैंने मद्रास में सीनियर केम्ब्रिज की तैयारी की थी, पर फिर पंजाब मैट्रिक की परीक्षा दे दी। बचपन में कौतूहल सबसे बड़ी चीज थी। मिट्टी की चीजें बनाने का बेहद शौक था। शौकों की बात की जाय तो ऐसे-ऐसे शौक थे कि आप आश्चर्य करेंगे।"

मैंने कहा — "तब भी बतलाइए तो सही?"

अज्ञेय जी कुछ झिझकते-से बोले — "मुझे झींगुर पकड़ कर उसकी टांगें तोड़ने में बड़ा मजा आता था। डाक्टरी का भी शौक था, यानी घर की दवाइयां मिलाकर छोटे भाइयों को पिला दिया करता था। मेरे साथ 'A healthy child must be naughty' वाली बात थी। मुझे बच्चों की 'कम्पनी' कम मिली। उसका कारण निरन्तर प्रवास था। क्रमशः घूमना ही मुख्य हो गया। अकेलेपन में पशु-पक्षियों से दोस्ती हो जाती थी। वह आज भी उसी प्रकार हो जाती है। लययुक्त गति का आकर्षण मेरे लिए बहुत रहा। हिरन का कूदना, रेस के घोड़े की दौड़ और अच्छी तैराकी से मैं मुग्ध हो जाता हूं।"

यहीं मैंने पूछा — "क्या आपको चित्रकला और संगीत का भी शौक रहा है?"

उन्होंने बताया — "संगीत सीखने की सुविधा कभी नहीं मिली। वैसे भी पंजाब में संगीत सबसे कम जरूरी कला समझा जाता है। घर में हारमोनियम जरूर था, पर मुझे तार-वाद्य (String instrument) अच्छे लगते हैं और वायलिन विशेष प्रिय है। चित्रकारी थोड़ी बहुत की; पोस्टल-ड्राइङ्ग और मूर्तिकला की ओर प्रवृत्ति रही। उन्नति के अवसर कम मिले। हां, ८-१० साल की उम्र से फोटोग्राफी का अवश्य शौक रहा। बचपन में रिकार्ड रखने का अधिक शौक होता है, वही मैं करता था। अब पोर्ट्रेट-विशेष कर मूड्स में मुझे अधिक रुचि है; कुछ लैंड-

क्षेप में भी। केवल अनुकृति और प्रतिकृति में नहीं।"

बहुधा महापुरुषों और कलाकारों के जीवन पर माता का प्रभाव पिता की अपेक्षा अधिक पड़ता है। यही सोचकर जब मैंने 'अज्ञेय' जी से प्रश्न किया कि आपके ऊपर पिता का प्रभाव अधिक है या माता का, तो वे कहने लगे—"पिता के प्रति मेरे मन में अगाध श्रद्धा रही है, माता के प्रति नहीं। यह विचित्र-सी बात है, लेकिन इसका कारण यह भी हो सकता है कि मां की बीमारी के कारण हम अधिकतर पिताजी के साथ रहते थे। मां बीमार रहती थीं, इसलिए भी हम स्वतन्त्र रहते थे। लेकिन यह न समझिए कि पिता के गुणों का अनुकरण ही हम लोगों ने किया हो। पिताजी की कई विशेषताओं का प्रभाव नितान्त प्रतिकूल भी पड़ा। वे पुरातत्त्वज्ञ थे। अनेक विषयों पर उनके विचार कट्टर और पूर्वाग्रह-युक्त होते थे। और वहां युक्ति-संगत बात भी वे नहीं सुनना चाहते थे। उदाहरणतया आर्यों के बाहर से आये होने की कल्पना भी उन्हें असह्य थी। फलतः बहुत से ऐतिहासिक विषय हम लोगों के बीच वर्जित से हो गए थे—उनकी चर्चा सदैव कटुता उत्पन्न करती थी। हम भाइयों में कोई भी इतिहास-पुरातत्त्व की ओर नहीं झुका, इसके मूल में यह बात अवश्य रही होगी।"

"आपकी साहित्य-साधना कब और कैसे आरम्भ हुई और उसके लिए आपको प्रेरणा कहां से मिली?"
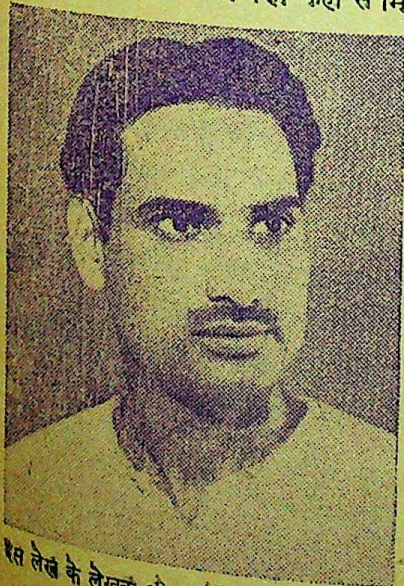
इस लेख के लेखक श्री पद्मसिंह शर्मा कमलेश

श्री जैनेन्द्र जी जिनका उल्लेख इस लेख में जगह २ हुआ है

"छः साल की उम्र से ही तुकबन्दी का शौक लग गया था। हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में लिखता था। उन तुकबन्दियों में आम तौर पर किसी न किसी व्यक्ति की आलोचना रहती थी — कभी मास्टर की, कभी माली की, कभी पिताजी के दफ्तर की और कभी किसी भाई की। सन् २० के आन्दोलन में अंग्रेजी छोड़ दी। विद्रोह शुरू हुआ। सन् २३ में 'आनन्द बंधु' नाम की हस्त-लिखित पत्रिका निकाली। उस समय मैंने 'नियाग्रा प्रपात' पर एक लम्बी कविता लिखी थी, जिस पर प्रसन्न होकर पिताजी ने ५ रु० का पुरस्कार दिया था। इस कविता में नियाग्रा के देवता को बलि दी जाने वाली लड़की की कथा को आधार बनाया था। यह कथा श्री शिवप्रसाद गुप्त की 'पृथ्वी प्रदक्षिणा' से पायी थी। उस पुस्तक के चित्रों की छाप मन पर गहरी पड़ी। जो रुपये इस कविता पर पुरस्कार स्वरूप मिले, उन्हीं से कागज खरीद कर सम्पादन-कार्य प्रारम्भ किया। अधिकांश पत्रिका मेरे ही द्वारा लिखी जाती थी। पिता जी के मित्र रायबहादुर हीरालाल और त्रिवेंद्रम के डाक्टर मौद्गल हमारे पत्र में बड़ी दिलचस्पी लेते थे। डाक्टर मौद्गल की आलोचना से तो विशेष रूप से पथ-प्रदर्शन हुआ। उनका कहना था कि

समाज की आलोचना लेखक का बड़ा भारी कर्त्तव्य है और कलम तथा कोड़े में बराबर दास्ती रही है। वे अंग्रेजी में लिखते थे। हमारी इस पत्रिका के १४-१५ ग्राहक थे। ७ दिन पहले घर में ही 'सकुलेट' करते थे और आलोचना हो जाने के बाद बाहर भेजते थे। इस पत्रिका के कुछ अंक अभी मेरे पास पड़े हैं। बी० एस-सी० के लिए जब मैं पंजाब गया तो वहां पर कालिज की पत्रिका का सम्पादक मुझे बनाया गया। उसमें कविता कहानी और लेख लिखता रहा। यों मेरे लेखन का प्रारम्भ इस लिखित मासिक पत्रिका से समझिए। प्रेरणा के लिए डाक्टर मौद्गल के नाम का उल्लेख हो सकता है।"

"वे देशी-विदेशी कलाकार कौन-से हैं, जिन्हें आप अधिक पसन्द करते हैं और जिनसे आप प्रभावित हुए हैं?"

इस प्रश्न पर कुछ देर तक वे सोचते रहे और फिर तकिए को दोनों कुहनियों के नीचे दबाकर बैठते हुए वे बोले— "मुझे ब्राउनिङ्ग, हैवलॉक एलिस और बर्ट्रेंड रसल सदा अच्छे लगते रहे हैं। अब भी उन्हें अक्सर पढ़ लेता हूं। लेकिन अब पहले की अपेक्षा आकर्षण कम हो गया है। डी० ऐच० लारेंस मैंने काफी पढ़ा है। बाइबिल भी मुझे विशेष प्रिय रही है। बाइबिल का वेग, जिसे 'गस्टो' कहते हैं, बड़ा आकर्षक है। इसके साथ ही उसका खुलापन और पैना निर्मोह, जो अपने से बड़ी चीज को पकड़ लेता है, भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। गद्य के रूप में बाइबिल की भाषा के सौन्दर्य के विषय में तो कहना ही क्या है! संस्कृत में कालिदास के सभी ग्रंथों और वाल्मीकि रामायण को मैंने पढ़ा है। लेकिन फिर भी मैं कहूँगा कि जितना पढ़ना चाहिए था, उतना संस्कृत-साहित्य मैंने नहीं पढ़ा। ३०-४० धार्मिक पुस्तकें भी पढ़ी हैं। बृहत्-कथा-मंजरी कुमार संभव और रघुवंश के कुछ भाग पिता जी से सुने हैं। यों अनुवाद काफी पढ़ा। मेजर बसु की 'सेक्रेड बुक्स आफ दि हिन्दूज' आद्यन्त पढ़ गया था।

"हिन्दी में श्री मैथिलीशरण गुप्त को अपना गुरु मानता हूँ, भले ही वे स्वयं इससे चौंकें। उनकी कविताएं 'सरस्वती' में निकलती थीं। मैं उन्हें कापी में नक़ल करके रख लेता था। सन् १९०३ से १९२१ तक नियमित रूप से सरस्वती' हमारे यहां आती थी — फाइल रखी जाती थी। १९१९ में ध्यान गया तो पहली फाइलों से गुप्त जी की कवितायें नकल करके रखीं। श्रीधर पाठक की भी कुछ कविताएं नकल कीं। 'केशों की कथा' शीर्षक कविता तो सचित्र ही काट कर रखी थी। गुप्त जी का 'जयद्रथ-वध' मेरी बड़ी बहिन को मुखाग्र था। उससे सुना भी करता था। गुप्त जी की 'साकेत' और 'यशोधरा' ये दो पुस्तकें मुझे प्रिय लगती हैं। रवीन्द्रनाथ को पहले अंग्रेजी में पढ़ा। खरीदने को दाम नहीं थे; इसलिए कहीं से लेकर उनकी कविताएं नकल कर ली थीं। मद्रास में कालिज में 'टैगोर स्टडी सर्किल' बना रखा था। वहीं उनकी अंग्रेजी से प्रभावित होकर एक गद्य काव्य लिखा, जो कहीं छपाया नहीं। तब मैं १४-१५ वर्ष का था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानियां विशेष प्रिय हैं। दुनिया के छः कहानी-लेखक चुने जायें तो मेरी राय में उनमें उनका नाम अवश्य रखा जायगा। प्रेमचन्द जी के 'प्रेमाश्रम' ने मुझे बहुत प्रभावित किया है। जेल में महादेवी, पंत और निराला को भी पढ़ा; लेकिन प्रभाव सबसे अधिक जैनेन्द्र का पड़ा। उन्हीं के प्रभाव को उल्लेखनीय समझता हूँ। इसके अतिरिक्त जिन व्यक्तियों का प्रभाव पड़ा, उनमें फॉरमेन-कालिज के भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर जेम्स मार्टिन बनेड और उनकी पत्नी मरियम बनेड का प्रभाव उल्लेखनीय है। वैज्ञानिक चिन्तन और विवेचन की शिक्षा प्रो० बनेड से मिली। उनसे घनिष्ठ सम्पर्क रहा और अनेक विषयों पर चर्चा होती रही। मिसेज बनेड की रुचि साहित्य और समाज-शास्त्र में थी। बनेड-दम्पति के घर जाकर विदा के समय नमस्कार करके घण्टों खड़े-खड़े बात करते रहना साधारण बात थी। 'त्रिशंकु' मैंने उन्हें समर्पित किया है, अंग्रेजी कविताओं का संग्रह मिसेज बनेड को।"

"किस कृति को लिख कर आपको सर्वाधिक सन्तोष हुआ है?"

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

'समर-हट' में से कुछ कोमल-सी धीमी-धीमी कानाफूसियों की आवाजें और हल्के-हल्के सुमधुर कहकहों की झनकार आ रही थी। चोरी-चोरी पंजों के बल चलकर मैंने अन्दर झांका तो......

कहानी

कम्पनी गार्डन में एक दिन

श्री बंसीलाल यादव

डाक्टरों का एक सा मत है कि मेरा दिल वह दिल है, जिसने 'क्यूपिड' के सारे तीरों को कुंठित कर दिया और वह गरीब खाली तरकश लिये मुंह लटकाये नाकाम चला गया। जब मैं अपने संपूर्ण शरीर और स्वास्थ्य पर विचार करता हूं तो मैं इन डाक्टरों की आधी भारतीय और आधी विदेशी डिग्रियों की तरफ से कुछ द्विधा में पड़ जाता हूँ। पर, जब रात को मैं सोते-सोते—नहीं, बल्कि जागते-जागते डर जाता हूं, जब पत्ते की खड़क के साथ ही दिल के तीव्र स्पन्दन का अनुभव होता है और जब अकस्मात् कोई आवाज मेरे दिल को मेरे गले तक ले जाती है तो मैं चुपचाप इन डाक्टरों के उस मत के आगे नत-मस्तक हो जाता हूं। मैं कितना कायर और डरपोक हूँ, यह किसी को मालूम नहीं; लेकिन यह कि मैं 'बुजदिल' हूँ, सब को मालूम है। इसीलिए मैंने अपने 'कैरेक्टर' के साथ इस कमजोरी को छिपाने की भी कोशिश नहीं की और सभी के सम्मुख किसी के गिरने की दुर्घटना पर या किसी के तनिक जोर से छींकने पर बुरी तरह एक चीख मार कर अपने फेफड़ों की शक्ति को प्रकट कर देता हूँ।

......उसी भांति की चीख अब भी मेरे मुंह से निकलने वाली थी; लेकिन जब मुझे तत्काल ही खयाल आया कि किसी सूने झोंपड़े अथवा घर में तो भूतों के निवास की खबर सुनी है और यहां केवल परियों के कोमल कण्ठों की आवाजें आ रही हैं, मेरी चीख एक बहुत ही सुन्दर ढंग से विलीन हो गई। प-रि-यां! एक विचित्र-सा नशा, एक रंगीन सुख मेरे प्राणों पर छा गया!

मुझे तभी मेरा अतीत सजीव होता हुआ जान पड़ा। जब मैं छोटा था तो उस समय इन्द्र-सभा के विविध किस्से मैंने सुने थे और तभी से आकर्षक बनने की एक जिज्ञासा मुझ में प्रबल हो उठी थी। और तभी से न जाने क्यों मुझे यह पूर्ण विश्वास हो गया था कि यदि मुझे कोई सब्ज परी मिल जाय तो उसे आकर्षित

करने की सभी विशेषतायें और सभी गुण मुझमें विद्यमान हैं। पर कोई सब्ज परी आज तक नहीं मिली। लाल परियां मिलीं, नीली और पीली परियां भी मिलीं—कभी सफेद बलाओं से भी सामना हुआ; किन्तु नहीं मिली तो बस सब्ज परी। इसलिये मैंने भी बदले की भावना से किसी को मुंह नहीं लगाया—न परियों को और न बलाओं को ही! लेकिन, आज जब नसीराबाद के कम्पनी गार्डन की 'समर-हट' के दरवाजों में से अन्दर झांका तो......

जयपुर से लौटते समय में एक दिन के लिये इस विचार से नसीराबाद उतर पड़ा था कि यहां का जलवायु बहुत ही अच्छा है और कार्य में सदैव व्यस्त मैं कुछ देर के लिये एकाकी रहकर शांति लाभ कर सकूंगा। लेकिन परिस्थितियों ने यहां भी मेरा पीछा न छोड़ा और एकाकी रहकर शान्ति लाभ करने के मेरे सारे स्वप्न उजड़ गये।

आंखों के विशेषज्ञ प्रायः कहा करते हैं कि जब दोनों आंखों की दृष्टि के तार किसी विशेष वस्तु पर अथवा किसी एक खास 'सैन्टर' पर 'फोकस' नहीं होते तो आदमी को एक के स्थान पर दो वस्तुएं नजर आती हैं और यही कारण है कि भेंगे आदमी को आकाश पर दो चांद नजर आते हैं। दृष्टि सम्बन्धी यह ज्ञान मुझे एक नौकर से प्राप्त हुआ था। मेरे कुछेक दोस्त पानों को चरने के आदी हैं और चौबे जी के घर में प्रायः वे थूकने में जानबूझ कर कई बार ऐसा अशिष्ट आचरण कर बैठते हैं कि बजाय पीकदान के (अगर कोई देखने वाला न हो तो) कमरों के कोनों पर मनमानी चित्रकारी कर जाते हैं। बाद में चौबे जी का नौकर चन्दू प्रायः देखा गया है कि बजाय असली दाग के उस दाग को भीगे हुए कपड़े से घण्टों रगड़ता रहता है, जो केवल उसके मस्तिष्क अथवा उसकी भेंगी दृष्टि की उपज होते हैं। अब इस उदाहरण को अपने सम्मुख रखते हुये मेरी परेशानी का अनुमान लगाया जा सकता है जब कि मुझे अपनी इन अच्छी आंखों से अपने डाक बंगले की उस खिड़की के सामने वाले पास ही के एक बंगले की बड़ी-सी खिड़की में लगातार दो चेहरे नजर आते रहे। जब भी आंख उठाई, चार आंखों को अपने पर आबद्ध पाया और शपथ लेकर कहता हूँ, मैं भेंगा नहीं था और न अब हूँ। फिर दो चेहरे कैसे? एक क्यों नहीं? खैर, छोड़िये, यह एक दूसरी दास्तान है, जिसे सुनायेंगे फिर कभी जो हृदय पर नियंत्रण रहा!

जैसा कि मैं कह चुका हूँ, डाक बंगले में उतर पड़ने से मित्रों के साथ भेंट करने का जो मेरा इरादा था, वह बस ऐसा ही कुछ पूर्ण हो सका; जैसे उड़ते हुए पक्षी मिल लिया करते हैं। फिर और भी तो कई विवशतायें मेरी जान को लगी रहती हैं। बारह बजे तक मैं अर्थ-शास्त्र का अध्ययन करता हूँ, फिर अखबार पढ़ता हूँ और फिर...। इसी प्रकार, जब उस दिन भी इन कार्यों से अवकाश मिला तो मैंने अनुभव किया कि मेरे यहां पड़ाव का असली उद्देश्य धूल हो चुका है—न एकांत था और न शान्ति ही!

तो निश्चय किया कि अब किसी दोस्त से नहीं मिला जाये, और वैसे भी दोस्तों से मिलने में सिवा इसके क्या धरा है कि थोड़ी देर के लिये तू-तू मैं मैं पैदा हो जाय? अतः मैंने दो-तीन सचित्र मासिक पत्रिकायें, जो मैं विशेषतया यात्रा के लिये लेता आया था, अपने साथ ले लीं, कुछ मिनट अपने बनने-संवरने में लगाये और तांगे वाले को बुलवाया—और फिर बात की बात में कम्पनी गार्डन में पहुँच गया।

वैसे एक बार पहले भी मैं इस बाग में आ चुका था और यह जगह मुझे बहुत ही पसन्द आई थी। सो आज भी मैंने इसी जगह को चुना और जब तांगे वाला मुझे वहां छोड़कर जाने लगा तो मैंने उसे कह दिया कि मुझे पांच बजे यहां से आकर ले जाना। तांगे वाला सलाम कर चल दिया।

बगीचे में उस समय सन्नाटा था, किन्तु फिर भी उस सन्नाटे में सौन्दर्य और काव्य प्रस्फुटित-सा हो रहा था। प्रकृति की इस छोटी-सी लीलास्थली में कितनी आभा भरी थी! पर, पता नहीं क्यों उस आभा के पार्श्व में एक गम से ओत-प्रोत संगीत सिसकता-सा मालूम होता था जो यदि तनिक जोर से ध्वनित हो जाता तो आह और दर्द में परिणत हुआ जान पड़ता।

ऐसा प्रतीत होता था मानों कोई अप्सरा हृदय में दुःख का सागर छिपाये और आंखों में आंसुओं की लड़ियां पिरोये धैर्यपूर्वक खड़ी हो, जो किसी हमदर्द हाथ का हल्का-सा कोमल-सा स्पर्श अनुभव करले तो फूट-फूट कर रो पड़े! पता नहीं, इन्हीं विचारों में मैं कितनी देर खोया रहा। जब जरा होश आया तो मैं 'समर-हट' की एक बैंच पर जा बैठा और पत्रिकाओं के पन्ने उलटने लगा। थोड़ी देर बाद मुझे प्यास लगी और मैं पत्रिकायें वहीं बैंच पर छोड़कर जरा दूर पानी पीने चला गया।

ज्यादा से ज्यादा मुझे सात-आठ मिनट लगे होंगे। मैंने पानी पिया और वापस आया। अरे यह क्या? मेरे कान खड़े हो गये। 'समर हट' में से कुछ कोमल-सी धीमी-धीमी कानाफूसियों की आवाजें और हल्के-हल्के सुमधुर कहकहों की झनकार आ रही थी। मैंने रूमाल निकालकर अपने चेहरे पर फेरा। पोशाक और फैशन के सम्बन्ध में बहुत ही छान-बीन करने वाले किसी 'अपटूडेट-जेन्टलमैन' की भांति अपने सूट के फर्जी रोल निकाले, अपनी नैकटाई की एकाध शिकनों को ठीक किया और 'हनुमान चालीसा' का पाठ करता हुआ चुपके-चुपके, दबे पांव आगे बढ़ा—और आगे—और भी नजदीक। चोरी-चोरी पंजों के बल चलकर दरवाज़ों में से अन्दर झांका।

भीतर का दृश्य देखकर मैं स्तब्ध रह गया। मेरे मुंह से चीख निकलते-निकलते रह गई। मैंने देखा—विश्वास कीजिये—मैंने देखा कि परियों की एक पांत की पांत मेरी उन पत्रिकाओं पर इस उत्सुकता के साथ झुकी हुई थी जैसे उन्हें कोई सोने का खजाना हाथ लग गया हो। यद्यपि ऐसे अवसर पर यह विचार कुछ अजीब-सा मालूम होगा, किन्तु फिर भी जो सर्वप्रथम डर मुझे लगा वह यह था कि अब तस्वीरों की खैर नहीं; वे अब पत्रिकाओं में से पृथक कर ली जायंगी और आपस में बांट ली जायंगी और फिर····

दूसरे क्षण ही परियों के भड़कीले रूप का नशा मुझ पर ऐसा छाया कि मैं तो आत्म-विस्मृत-सा हो गया। तस्वीरों को लेकर जो भी विचार मेरे मन में उठे थे, ऐसे उड़ चले जैसे तेज हवा से तिनके। इन परियों के साथ एक वृद्ध संरक्षिका भी थी, जिसकी हैसियत नहीं के बराबर और काम आड़ वाली टट्टी का था। सभी पत्रिकाओं पर झुकी हुई थीं। ये रंगीन तितलियां, ये खूबसूरत चिड़ियां या रंग-बिरंगे फूलों का एक गुलदस्ता कहिये! मस्ती की एक कँपकँपी के साथ मुझे याद आया कि मैंने पत्रिकाओं पर अपना पूरा नाम व पता साफ-साफ मोटे अक्षरों में लिख रखा है। क्या मेरा नाम इन लोगों ने नहीं पढ़ा होगा? नहीं, जरूर पढ़ा होगा, जोर-जोर से पढ़ा होगा। इन कोमल, गुलाबी होठों से मेरे नाम का उच्चारण कितना सुन्दर हुआ होगा! इस विचार से मेरे प्राण उल्लास के छींटों से भीग गये। मैं आगे बढ़ा और ठीक एक दरवाजे पर खड़ा हो गया।

मेरी परछाईं अब स्पष्ट अन्दर पड़ रही थी और मुझे पूर्ण विश्वास था कि अभी-अभी 'उई, मरदवा!' की कांपती हुई-सी एक चीख 'हट' में गूंज जायगी। किन्तु आशा के विपरीत सब ने सहसा चौंक कर मेरी ओर देखा और दूसरे ही क्षण मुस्करा कर हल्की-हल्की कानाफूसियों और पत्रिकाओं में व्यस्त हो गईं, जैसे वे पहले ही से इस घटना के लिये प्रस्तुत थीं और जबर्दस्ती पर तुली हुई थीं!

बड़ी बी ने अर्थात् वृद्ध संरक्षिका ने करुणा भरी दृष्टि से मुझे देखा और फिर उत्साह प्रदान करने वाली दृष्टि से उन अप्सराओं को और फिर उसके झुर्रियों से भरे मुर्दा चेहरे पर विनोद की एक झलक व्याप्त हो गई।

"ऐ साहबजादियो, बेचारे इत्ती देर से खड़े हैं, छोड़ो भी इनकी किताबों को!" बड़ी बी दया का प्रदर्शन कर रही थीं।

सबने घूर कर मेरी तरफ और त्योरियां चढ़ाकर बड़ी बी की तरफ देखा और फिर उनमें से एक ने अक्खड़पने से तुनककर कहा—"ऐ बी, इनसे कह दो कि अभी हम पढ़ रहे हैं!"

आह, यही तो थी वह सब्ज परी जिसकी अनादि काल से मुझे प्रतीक्षा थी! सच कहता हूँ, जो मैं अपने दिल को प्रणय के किसी भी योग्य पाता तो उसे 'पत्र'-

पुष्प' के रूप में ही अर्पित करने में कभी संकोच न करता !

बड़ी बी ने मुस्कराकर मेरी तरफ देखा, अर्थ यह था कि—'सुन लिया ?' मैं अपने पांच फीट साढ़े छः इंच लम्बे कद को एक चट्टान की भांति लिये दरवाजा रोके खड़ा रहा। उनमें से एक ने, जो दिखने में सरलता की मूर्ति थी, उस भड़कते हुए रूप से कुछ अस्फुट-से स्वर में बातचीत की और फिर चमक कर मुझसे कहा—"हमारी आपा कहती हैं, हमारी तरफ इस तरह न देखिये।"

मैं तो दंग रह गया। उसकी सरलता के प्रति मेरी वह धारणा निर्मूल सिद्ध हुई।

मैंने अपने हाथ अपनी आंखों पर रख लिये और कहा—"लीजिये, अब तो आप खुश हैं ?"

"खिल-खिल खिल-खिल !" जैसे जल-तरंग पर किसी ने हाथ आजमाया हो और नगसे फूट निकले हों ! एक ने अपने कोकिल-स्वर में कहा — 'उई बुआ, देखना, उंगलियों के बीच में से झांक रहे हैं !"

दूसरी बोली आंखें नचाकर—"ऐ हां, अल्ला जानता है, सच है। उई उई, दोनों आंखें पूरी-पूरी नजर आ रही हैं !"

हाथ मटका कर और मुंह बिचका कर एक और बोली—"अल्ला करे, दीदे ही फूटें !"

मैंने हाथ हटा लिये। "आपकी आपा का हुक्म था कि इस तरह न देखिये, उसी आज्ञा का पालन किया जा रहा था।" और मैंने देखा, मेरे ऐसा कहते ही वे दो अरुण कपोल और भी रक्त-रंजित हो उठे। तो क्या यह केवल मेरा भ्रम मात्र था ? पर मैं जो कहता हूँ, मैंने उन कपोलों पर अनार की कलियों की लाली बिखरती देखी थी, और हां, चौड़े भाल पर ओस-कणों को कांपते देखा था—हां हां, आंखों में मदिरा ढुलकते देखी थी—और······

और उसने झुक कर फिर अपनी सहेली के कान में कुछ कहा। उसी कोकिल-कण्ठ से फिर संगीत फूटा—"क्या बताइयेगा, आपका नाम क्या है ?"

मैंने सहज भाव से कहा—"जी, जार्ज पंचम !"

"खिल-खिल खिल-खिल !" जैसे वाद्य-यन्त्र फिर से खनक उठे !

एक जो सब में ज्यादा वाचाल मालूम होती थी, बोली—"जनाब जार्ज पंचम साहब, जो आपका इससे यह मतलब हो कि हम सब झुक-झुक कर आपको सलाम करने लगें तो मुंह धो रखिये; हम कच्ची गोलियां नहीं खेली हुई हैं।"

मैं मारे शर्म के गड़-सा गया और किसी प्रकार अकचका कर बोला—"जी, यह मतलब तो न था। मेरा नाम तो आप इन पत्रिकाओं पर लिखा देख चुकी होंगी !"

मुझे खेद है कि मुझ से कोई सुन्दर जवाब नहीं बन पड़ा। मैंने कुछ रुककर फिर कहा—"आपने मेरा नाम पूछा था, अब मैं भी कुछ आप से पूछ सकता हूँ ?"

"क्यों ?" तीखी होकर।

मैंने कहा—"बताइये कि आपकी आपा का नाम क्या है ?"

क्या यह फिर से मेरा भ्रम था कि वह एक विचित्र-सी लज्जा अपने में लपेटे अपनी सहेली की आड़ में हो गई ?

"इनका नाम ? इनका नाम अलगिम परी है !"

उफ !

"चलो भी, अब इनकी किताबें दे दो !" बड़ी बी को जैसे सहसा अपनी जिम्मेदारी का खयाल आ गया था।

अलगिम परी बोली—"अल्ला खैर ! अभी आये देर नहीं हुई और चलो !"

एक बोली—"भई अल्ला, हम तो नहीं जाते; जरा सी देर हुई है आये हुए।" उसके गालों में एक आकर्षक गढ़ा पड़ता था। निर्णय सुनकर मेरी जान में जान आई, वरना जाने का प्रसंग सुनकर तो मानों मेरे हृदय का स्पन्दन ही रुक गया था ! तभी बगीचे में से किसी आदमी के गजल गाने की एक बहुत ही मधुर

आवाज आई जिसने जादू का-सा असर किया। गजल में अपने प्रेमास्पद से बेरुखी की शिकायत की गई थी।

सब के कान खड़े हो गये। मैंने आंख उठाकर देखा, हाथ में पींजरा लिये कोई दो-चार लोफर चले आ रहे थे। पींजरे में तीतर फुदक-फुदक कर गाने वाले तथा उसके साथियों का सहज ही परिचय दे रहे थे। गाने वाले ने फिर से अलाप भरी। गाने का ढंग और गला—दोनों दिलकश, बाग में विचित्र-सा नशा, काली चुनरी पहने संध्या का आगमन! आत्म-विस्मृति की अवस्था में मैं खोया-सा खड़ा रहा कि तभी सुना एक लजीला कोमल कण्ठ स्वर—"मेहरबानी होगी, आप इनसे पूछ कर यह गजल हमें लिख दीजिये।"

ओह! मधुशाला की मेरी वही मधुबाला!!

सुप्तावस्था से जागता हुआ मैं तत्काल ही बोला—"पूछने की जरूरत नहीं, मुझे याद है।"

मैंने नोट बुक में गजल लिख दी। जी चाहा कुछ वाक्य अपनी ओर से भी जोड़ दूं, पर दिल को इन अठखेलियों के योग्य नहीं पाया। पता नहीं क्यों? पर गजल लिखने की फरमाइश के ही बहाने कोई प्रोत्साहन तो नहीं दिलाया गया था? कुछ भी हो, मैंने गजल का वह पर्चा फाड़ कर देने के लिए हाथ बढ़ाया। उसने कोहनी के टहोके से सखी से पर्चा ले लेने का अनुरोध किया। वह विरोध करते हुए ठुनककर बोली—"ऐ बी, मैं क्यों लूं? आप ही ने लिखवाया है, आप ही लें।"

"कोई नहीं लेता तो लाओ मैं लिये लेती हूं," बुढ़िया ने सारे रोमान्स का मजा किरकिरा कर दिया।

उधर फिर खुसर-फुसर हुई। कुछ देर बाद पहले वाली सहेली बोली—"हमारी आपा कहती हैं, आपको नागवार न हो तो हम इन मैगजीनों में से कुछ तस्वीरें निकाल लें?"

आखिर मेरा भय निराधार नहीं निकला!

वह कृत्रिम झुंझलाहट के साथ बोली—"क्यों जी, हमारा नाम नाहक क्यों लेती हो? तुम अपने नाम से क्यों नहीं कहतीं?"

मैं कुछ कहने को हुआ ही था कि सुना प्रत्युत्तर में सहेली ने मुंह-तोड़ जवाब दिया—"भई क्या करें, हममें और हमारे नाम में अन्तर नहीं!"

बाकी की सब खिलखिला पड़ीं।

मेरे हृदय की विचित्र अवस्था थी। किसी प्रकार हर्षातिरेक से लजाता-सा मैं बोला—"तस्वीरें क्या, मैगजीन ही नजर हैं!"

"ये मैगजीन आप किसको दे रहे हैं?" सहसा अलगिम परी के मुंह से निकला। मेरे प्राणों में एकबारगी स्पन्दन तीव्र हो उठा।

एकाएक बड़ी बी घबराकर बोली—"अब और लोग भी आने वाले होंगे, चलो!"

और सचमुच मैंने देखा, लोगों की आमद शुरू हो गई थी। कुछ ईसाई लड़के सफेद कमीजें और नीली निकरें पहने हमारी ही तरफ आ रहे थे।

उन सबने अपने बुर्के ठीक करते हुए कहा—"जाइये, अब आप से भी पर्दा है। हम तो यहां से उठने वाले नहीं हैं। आप दूसरी 'हद' में जाइये!"

* * *

शाम को सात बजे मैं नसीराबाद से रवाना हो गया और डाकबंगले की एक-एक ईंट गवाह है कि जब मैं यहां आकर टिका था तो मेरा मुंह सैलोलाइट के एक कुरूप, लम्बे मुंह वाले, रोते हुए खिलौने की तरह था जो किसी प्रकार भी सुन्दर नहीं कहा जा सकता; किन्तु वापसी के समय मैं इतना प्रसन्न था, जितनी नाना फरनवीस की वह तस्वीर जो दुनिया के सबसे ज्यादा बेईमान ऐतिहासिक ग्रन्थकार एसिन्थ की 'हिस्ट्री' में नजर आती है!

पशु भी परस्पर बातें करते हैं

श्री विराज

यह बात सही है कि हम पशुओं की बोली नहीं समझते; परन्तु फिर भी यह निश्चित है कि पशु न केवल आपस में बातें करते हैं, बल्कि आदमी से भी बातें करते हैं। यह सारी बात वाणी से ही नहीं होती। वाणी के अतिरिक्त और भी बहुत से तरीके वे अपनाते हैं।

आजकल गूंगे और बहरों के लिये विद्यालय खुले हुए हैं, जिनमें उन्हें अंगुलियों पर संकेत करके बातें करना सिखाया जाता है और इस विद्या में कुशल गूंगे-बहरे लड़के-लड़कियां आपस में खूब मजे से बातें करते हैं। पर यदि कोई गांव का अनपढ़ जाट शहर में आकर उन्हें इस प्रकार बातें करते देखे तो उसके लिये यह जान पाना असम्भव है कि वे परस्पर बातें कर रहे हैं। पशुओं के बारे में भी हम सबकी स्थिति लगभग अनपढ़ जाट की सी ही है।

पशु परस्पर और दूसरों से किस प्रकार वार्तालाप करते हैं, इसके सच्चे उदाहरण यहां दिये जाते हैं।

कलकत्ते के चिड़ियाघर में एक बन्दर को उसका परिचारक पिंजड़े से बाहर निकाल कर टहला रहा था। खेल-कूद के आवेश में बन्दर उस सीमा से ज्यादा दूर चला गया, जहां तक परिचारक चाहता था। इस पर परिचारक ने ऐसा प्रदर्शित किया कि वह बन्दर से रुष्ट हो गया है। बन्दर तुरन्त उसके पास दौड़ता हुआ आया, उसके गले से लिपट गया और चूम कर उसे मनाने का प्रयत्न करने लगा। ऐसा वह तब तक करता रहा, जब तक कि उसे विश्वास न हो गया कि परिचारक ने उसे क्षमा कर दिया है।

लंगूरों की धूर्तता

एक बार मैं अपने मित्र हरिवंश जी के साथ रायवाला के जंगल में भ्रमण के लिये जा रहा था। जब हम दोनों एक पेड़ के नीचे से गुजरे तो हमारे ऊपर लंगूरों ने एक प्रकार के अभोज्य कच्चे फल फेंके। पहिले तो हमने समझा कि यह अचानक हुआ है, पर जब हमने उन पर पत्थर फेंके तो उन्होंने और बहुत से फल फेंक-फेंक कर हमें मारने का प्रयत्न किया। पर शीघ्र ही वे पत्थरों से घबरा कर भाग गये।

एक जर्मन यात्री ने भी लंगूरों के बारे में अपना अनुभव लिखा है। एक बार उसने अपने शिकारी कुत्ते लंगूरों के झुण्ड पर छोड़ दिये। और सब लंगूर तो भाग गये, पर एक बच्चा रह गया। कुत्ते उस बच्चे को पकड़ने ही वाले थे कि सब लंगूरों ने एक साथ शोर मचाना प्रारम्भ कर दिया और एक बूढ़ा लंगूर बड़ी फुर्ती से आ कर उस बच्चे को उठा कर ले भागा।

दो दिन बाद जब उक्त जर्मन यात्री फिर उस जंगल में गया तो लंगूरों ने उस पर गुर्राना प्रारम्भ किया। इस पर यात्री ने उन पर गोली चलाई। मादा लंगूर और बच्चे तो भाग गये, पर नर लंगूरों ने पहाड़ी पर चढ़ कर जानबूझ कर जर्मन यात्री और उसके साथियों पर पत्थर लुढ़काने शुरू कर दिये। उक्त यात्री ने लिखा है कि एक लंगूर तो पत्थर लेकर सचमुच एक पेड़ पर चढ़ गया जहां से वह सुविधापूर्वक उसे फेंक सके।

बन्दरों का संगठन

बन्दरों के इसी प्रकार के संगठन का मेरा अपना अनुभव है। मुझे और पं० हरिवंश को बन्दर को पत्थर का निशाना बनाने का बड़ा शौक है। बन्दर आसानी से मार नहीं खाता, पर जब हाथ से फेंका हुआ पत्थर बन्दर की पीठ पर लगता है तो शेर के शिकार से कम आनन्द नहीं आता।

एक बार हरिवंश जी ने और मैंने हरिद्वार में नहर के पास बन्दरों के एक झुण्ड का पीछा किया। और सब बन्दर तो दूर-दूर भाग गये, पर एक छोटा बच्चा एक पतले से सीधे सागौन के पेड़ पर चढ़ गया। यह पेड़ भी क्या, निरा पौधा ही था। और मजा यह कि उस पौधे के आसपास कोई और पेड़ न था जिस पर वह कूद कर जा सकता। हम दोनों ने पेड़ को घेर लिया। पत्थर हमारे हाथ में थे, पर बच्चे को पत्थर का निशाना बनाना हमारी नैतिक बुद्धि के विरुद्ध था।

पौधा पतला, सीधा और काफी ऊंचा था। पं० हरिवंश जी को नीचे छोड़ मैं पौधे पर चढ़ गया और बीच तक चढ़ कर पौधे को हिलाना शुरू किया। बच्चा बिल्कुल चोटी पर बैठा हुआ था और जोर-जोर से हिलते हुए पौधे को मजबूती से पकड़े हुए था।

इस समय तक भागे हुए सब बन्दर फिर वापस लौट आये थे और हमसे कुछ दूर खड़े घुड़कियां दे रहे थे। पर क्योंकि हम दो थे और हमारी मुखाकृतियों पर भय का चिन्ह नहीं था, इससे बन्दर पास आने का साहस नहीं कर रहे थे।

'खूब झूला झूल रहा है!' हरिवंश जी ने मजा लेते हुए कहा।

तभी हिलते हुए पौधे पर से वह बच्चा गिरा। उसके गिरते ही कई बन्दर हरिवंश जी की ओर लपके। एक बहुत मोटा बन्दर तो बिल्कुल उनके पास तक आ गया। जितनी देर में वे उस पर पत्थर फेकें, उतने में एक और बंदरिया बिजली की तेजी से आई और बच्चे को छाती से चिपका कर भाग गई और साथ ही सब बन्दर भी भाग गये। पौधे से उतरने में मुझे मुश्किल से १० सैकण्ड लगे होंगे। पर जब तक मैं उतरा, तब तक मैदान साफ हो चुका था।

इस तरह के और भी इतने उदाहरण मिल चुके हैं कि भ्रांति या सन्देह की कोई गुंजाइश ही नहीं है।

आशा अन्तरीप में लंगूरों के एक दल ने ब्रिटिश सैनिकों के कपड़े चुरा लिये और जब सैनिक कपड़े छीनने आये तो लंगूर भी अपने नेता की अध्यक्षता में बाकायदा सैनिकों की भांति लड़े और यह सत्य है कि उस युद्ध में ब्रिटिश टुकड़ी को लंगूरों के हाथों बुरी तरह पराजित होकर वापस लौटना पड़ा।

सिंह आदि भयंकर जन्तुओं की बोली का अभी तक विशेष अध्ययन नहीं किया जा सका। फिर भी इतना स्पष्ट है कि जब शेर अपने शिकार को डराने के लिये गरजता है या अपने प्रतिद्वन्द्वी को चुनौती देने के लिये गरजता है, तब उसकी आवाज बहुत कठोर होती है; पर जब वह शेरनी के पास होता है, वह अत्यन्त कोमल स्वर में गरजता है।

एक विचित्र घटना.

शेर की बोली का कुछ अनुमान नीचे लिखी घटना से हो सकेगा।

एक शिकारी अपनी शिकार-यात्रा में दिन में कहीं जंगल में सो गया। जब वह उठा तो उसने देखा कि एक शेरनी उसे मुंह में दबाये लिये चली जा रही है। पीड़ा से शिकारी बेचैन था, मगर मजा यह कि सोते में शेरनी उसे बन्दूक समेत उठा लाई थी। शिकारी ने अपनी चेतना का आभास होने दिये बिना अपनी बन्दूक को दायें हाथ में संभाल लिया।

कोई एक मील चलने के बाद शेरनी ने उसे भूमि पर रख दिया और कोमल स्वर में गुर्राई। उस गुर्राहट को सुन कर शेरनी के दो बच्चे झाड़ियों में से निकल आये। पर शेरनी के पैरों के पास पड़े हुए आदमी को देख कर डर गये। इस पर शेरनी ने आदमी को ठीक इस तरह हिलाना प्रारम्भ किया, जिस तरह बिल्ली चूहे को हिलाती है। वह साथ-साथ धीमी आवाज में गुर्राती भी जाती थी। वह शायद कह रही थी—'बच्चो, यह तुम्हारा भोज्य है।' बच्चे कुछ आश्वस्त होकर आगे बढ़ आये और अपने छोटे-छोटे दांतों से उसकी टांग को काटने लगे। इस बीच में आदमी ने मौका देख कर शेरनी की छाती में गोली मार कर उसे समाप्त कर दिया और अपनी जान बचाई।

चिड़ियाघरों में भी पालतू शेर भूख और प्यास आदि होने पर विशेष प्रकार की आवाजें करते हैं और इच्छा पूरी होने पर सन्तोष प्रकट करते हैं।

योजनापूर्वक कार्य

यदि हम देखें कि किसी जगह पांच-सात लड़के पहले आपस में मिले और फिर फैल कर किसी काम में लग गये तो स्वभावतः अनुमान होता है कि वे कोई योजना बना कर काम कर रहे हैं। यही अनुमान पशुओं के बारे में भी होता है। कई बार हम देखते हैं कि किसी संकरे ढालू पथ पर विपरीत दिशाओं से आने वाली दो लोमड़ियां पहिले कुछ देर आपस में सिर मिला कर खड़ी होती हैं। फिर उनमें से एक बैठ जाती है और दूसरी धीमे से उसके ऊपर से गुजर जाती है। उसके बाद पहली भी उठ कर चल देती है। हमारा अति परिचित खच्चर भी आवश्यकता पड़ने पर ऐसा ही करता है।

लोमड़ियों की योजना का एक और उदाहरण एक पर्यवेक्षक ने लिखा है।

एक लोमड़ी पहाड़ी के ऊपर से उतरी। नीचे तलहटी में उसे दूसरी लोमड़ी मिली। दोनों कुछ देर सिर मिलाये खड़ी रहीं। फिर जैसे कुछ निश्चय कर लिया हो, इस प्रकार अलग-अलग हो गईं। पहली लोमड़ी वापस पहाड़ी पर चली गई और दूसरी एक झाड़ी में छिप कर बैठ गई। कुछ ही देर में एक खरगोश तीर की तेजी से भागता हुआ आया। पहली लोमड़ी उसका पीछा कर रही थी। झाड़ी में छिपी हुई दूसरी लोमड़ी खरगोश पर लपकी; पर चूक गई। उस की असफलता से क्रुद्ध होकर पहली लोमड़ी ने उस पर आक्रमण कर दिया।

बिल्लियों और कुत्तों के अपने स्वामियों से बातें करने के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। कई बार मकान में आग लग जाने पर बिल्लियों तथा कुत्तों ने अपने मालिकों को जगा कर उनके प्राण बचाये हैं। एक बिल्ली ने रात में अपनी स्वामिनी को जगाया। जब वह महिला उठी तो उसने देखा कि उसके पति को दौरा हो आया था और वह भूमि पर बुरी दशा में पड़ा था। बिल्ली उसी की ओर महिला का ध्यान आकृष्ट करना चाहती थी।

इस प्रकार पशुओं के भाव-प्रदर्शन और योजना-पूर्वक तथा बुद्धिपूर्वक किये गये कामों को देख कर यह परिणाम निकालना ठीक ही है कि पशु अवश्य ही परस्पर बातें करते हैं। इनमें कुछ वार्तालाप तो आवाज से, कुछ आंखों से तथा कुछ आकृति से होता है। आखिर पंचतंत्र में भी तो बातें करने के, हृदय की बात जानने के निम्न प्रकार कहे हैं—

आकारैरिंगितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च,
नेत्र वक्त्रविकारेण ज्ञायतेन्तर्गतं मनः।

आकृति से, संकेतों से, गति से, चेष्टाओं से, बोली से, आंखों और मुख की भावभंगी से हृदय की बात मालूम हो जाती है।

तो कहीं पशु इन सभी उपायों को तो नहीं बरतते !
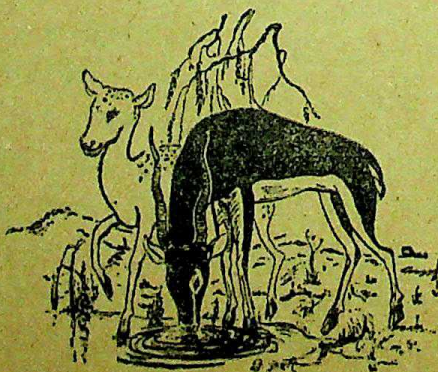
मैं

श्री सुधीन्द्र एम० ए०

यदि रहता हूं मैं प्रमुदित मन, समझो कि मिलन-संयोगी हूं !
यदि लगता हूं मैं दुर्बल-तन, समझो मैं विरह-वियोगी हूं !

*

मेरे प्रिय की मुसकान मधुर
अंगों में तरुणाई लाती,
मेरे प्रिय की अनुराग-भरी—
चितवन बन अरुणाई आती,
प्रिय-सम्मुख मैं हूं खिल जाता,
प्रिय-विमुख विकल हो मुरझाता,
प्रिय की बाहें मेरे तन-मन पर स्नेह-कुंज बन छा जातीं !
औषधि हो स्वयं चिकित्सक ही जिसको मैं ऐसा रोगी हूं !

*

यदि विषम वियोग-पलों में भी
प्रिय की मधु-स्मिति का ध्यान रहे,
तो अश्रु-सजल यह पुतली भी
हिम-सिंचित कमल समान खिले,
पर मिलन-क्षणों में भी क्षण भर
यदि प्रिय-विराग-सा हो मुझ पर,
तो मधु में डूबे सपनों की पलकों पर वज्र-शिला न झिले !
जीवन में मृत, मृत में जीवित, ऐसा मायामय योगी हूं !

*

हो मिलन, किन्तु तन में मेरे
कुछ विरह-हाव चित्रित रहता,
हो विरह, किन्तु मन में मेरे
मधु मिलन-भाव अंकित रहता,
मन कभी मिलन में भी रोता,
पुलकित वियोग में भी होता,
यों सुख-दुख के दो दोलों में मन पल पल आंदोलित रहता !
भोगी होकर भी हूं योगी; योगी होकर भी भोगी हूं !

जैसे कीचड़ से कमल और प्राची के घोर अंधकार से ऊषा का उदय होता है, उसी प्रकार म्युनिस्पैलिटी की नाली में मरे हुए कुत्ते को देखकर लाला रामकिशन के हृदय में अच्छे संस्कार जाग उठे।

उनकी आंखों के सामने जो व्यापार होता है, उसमें कितना दगा, फरेब और बनावट है। जन-प्रतिनिधित्व के बहाने लोग किस प्रकार जनता के पवित्र अधिकारों को हजम कर जाते हैं। उनकी दूकान के नीचे मरा कुत्ता कई दिन तक पड़ा सड़ता रहा, लेकिन सड़क के मामूली मेहतर ने भी उनकी बात कान देकर न सुनी। वह सुने भी क्यों। जमादार को वह माहवारी देता है और उसकी मेहतरानी भी वक्त-बेवक्त उसके किसी काम से इन्कार नहीं करती। जमादार इन्स्पेक्टर को, इन्स्पेक्टर हैल्थ आफिसर को और.........।

लाला रामकिशन भुनभुनाए, "ओफ, सारा आवा का आवा ही बिगड़ा हुआ है!" क्रोध और खीझ से लाला जी का मस्तिष्क टेलीग्राफ के खम्भे की तरह अब भी झनझना रहा था। उन्होंने देखा उनके चारों ओर बिछी गद्दी की चांदनी पर बोरियों के गमनागमन से कामिनी के मुंह पर लगे अंगराग के समान हल्दी की हल्की पर्त जम गई है। चांदनी झाड़ते उन्होंने मुनीम जी से कहा, "मुनीम जी, चैयरमैन को आज ही रिपोर्ट लिखो। इन्स्पेक्टर की यह मजाल कि गद्दी के सामने खड़ा होकर अकड़ जाए! सारे शहर के बराबर इनकम-टैक्स देते हैं हल्दी वाले। मुनीम जी, देखा आपने, नाली में मरा कुत्ता किस तरह सड़ता रहा, सारे बाजार के नाकों दम आ गया; पर इन रईसों की नाक में ऐसा इत्र-फुलेल बस गया है...मुनीम जी, अभी लिखो और हमारी सही ले लो।"

लाला रामकिशन चांदनी झाड़ते रहे, पर उनके पंजों के निशान रेत पर पड़े निशानों की तरह अलग-अलग चमक रहे थे। हल्दी से रंगे अपने गोरे मुलायम हाथों की मुट्ठी बांधकर अपना बल आंकते हुए उन्होंने मुनीम जी की ओर निश्चयात्मक दृष्टि से देखा।

मुनीम जी को शिकायत लिखने की प्रकट और मौन आज्ञा देने के उपरान्त लाला जी कुछ गम्भीर हो गये। उनकी आंखें सड़क की टूटी ईंट पर न जाने कब जा टिकीं और फिल्म के चलते रील की तरह उनका अतीत उनकी आंखों के सामने घूमने लगा। उन्होंने देखा—सड़क पर खौंचा लगाये दस वर्ष का एक बालक, परचून की एक दूकान—पहले छोटी और फिर बड़ी। बाद को हल्दी का व्यापार और आज के मोटर, बंगले, कल और कारखाने.......

यह कहानी प्रजातन्त्र पर एक करारा व्यंग्य है। तथाकथित 'बहुमत' किस प्रकार सत्य और न्याय का गला घोंट सकता है, निजी स्वार्थों के लिये किस तरह जनता के हितों की अवहेलना की जाती है—इसी कटु सत्य का चित्रण इस में हुआ है।

और आज ला० रामकिशन शहर के सब से धनाढ्य और तपस्वी लक्ष्मीपति हैं। जब वे दस वर्ष के थे और अपने बाबा के साथ चौराहे पर बैठकर मूंग की दाल का खोंचा लगाया करते थे, तब क्या कभी सोचा था कि तीस वर्ष में दुनिया इतनी बदल जायेगी। उनका सारा जीवन संयम और नियम से बीता। सन्ध्या, भजन और उपवास सभी उन्होंने किये और लक्ष्मी की कृपा बढ़ती गई। पर हृदय के इतने सरल कि आज भी चौराहे के नुक्कड़ की हल्दी की दूकान पर बैठना नहीं छोड़ा। मुनीम जी की ओर मुड़ते हुए लाला जी ने कहा, "सीमेंट और मसाले के बारे में चेयरमैन से मिले, मुनीम जी ?"

मुनीम जी ने एक झटके के साथ बही बन्द कर दी और कहा, "सौ मर्जों का एक इलाज है चेयरमैनी। इस तरह न कोई सीमेण्ट देता है और न शिकायत सुनता है। अबकी चुनाव आ रहा है। खड़े हो जाइये, सेठ जी !"

कौन जाने मुनीम जी ने ये अटपटी बातें खीझकर कहीं थीं; पर उन्होंने वर्षों से हल्दी का व्यापार करते-करते लाला जी के मन और मस्तिष्क पर जमे हल्दी के एक इंच मोटे पर्त को जरूर भंग कर दिया। उन्होंने उत्साहित होकर गद्दी पर एक अंगड़ाई ली और कहा, "क्या कहा मुनीम जी ! काम-धन्धे से फुर्सत मिलेगी हमें ?"

"काम-धन्धा तो किस्मत के प्रताप से चलता है, लाला जी, हाथ-पैरों से कभी नहीं चलता है।" मुनीम जी ने उत्तर दिया।

"हमें कौन राय देगा, मुनीम जी ! लोग समझते हैं, जिसके पास भी पैसा है, वह सब हराम का है। पर यह किसी ने नहीं सोचा कि यह तो व्यापार है, जो लगाता है, उसे ही मिलता है। धन्धा ही ऐसा है।" लाला जी ने लम्बी आह खींचते हुए कहा।

"राय कौन देगा ? वर्तमान चेयरमैन को राय किसने दी ? उसने पब्लिक की कितनी सेवा की, कितने स्कूल, मंदिर और कुंए बनवाए ? पर आदमी दानिशमंद है, दूर की सोचता है। जो पास में था, इलैक्शन पर लगा दिया और कहां दिवाला निकलने वाला था और कहां अब सारे शहर का सरताज है। जो सब को देते हैं, वही राय आपको देंगे।" मुनीम जी ने कहा।

"मुनीम जी, अपने पास तो भगवान का दिया सब कुछ है, हमें तो पब्लिक का एक अधेला भी नहीं चाहिये। आपसे कहते हैं—शहर की म्युनिसैलिटी को लाखों की आमदनी है। अगर तामीर और मरम्मत के ठेके लेकर मेम्बर लोग रकम हड़प न करें तो सारा शहर बागीचे की तरह महकने लगे। हम चाहते हैं, शहर की कुछ सेवा करें। सारा खर्चा कितना लगेगा इस इलैक्शन में, मुनीम जी ?" लाला जी ने जिज्ञासा की।

कांग्रेस पूंजीपति गठ-बन्धन

मुनीम जी अब की बार संभल कर बैठ गये थे। बोले, "खर्चे से राय नहीं मिलती लाला जी, आजकल।" मुनीम जी के मुख पर कुटिल हास्य उभर आया, "वे कहते हैं, यह डिमोक्रेसी का युग है और जनता की आवाज ही चारों ओर सुन पड़ती है। ये कांग्रेसी, सोशलिस्ट और कम्यूनिस्ट कहते हैं कि वे जनता की आवाज को बुलन्द करते हैं। हमारे खयाल से दस-दरगाहों की जयारत न करके एक पीर को पूज ले। खर्चे से राय खरीदेंगे, लाला जी! यह तो डिमोक्रेसी की हचक है।" मुनीम का चौड़ा चेहरा पुनः कुटिल हास्य से भर उठा।

मुनीम जी की यह शहरी राजनीति सुनकर लाला रामकिशन के मन और मस्तिष्क पर वर्षों से हल्दी के व्यापार से जमे एक इंच मोटे पर्त को फाड़कर उनकी सेवा-वृत्ति का प्रकाश, दूर तक चली गई बिजली की बत्तियों से जगमगाती लम्बी सुरंग के समान ही, उनके अन्तर्प्रदेश में इस प्रकार व्याप्त हो गया जैसे प्राची के घनान्धकार में ऊषा।

अब लाला रामकिशन के सभी तर्ज बदल गए थे। हल्दी की दूकान छोड़कर वे शहर में घूमने लगे थे। शहर के इस छोर से उस पार तक चक्कर लगाते और उनके मस्तिष्क में शहर की गन्दगी, कीचड़, खोंचे वालों के गन्दे पत्ते भरे रहते। वे कमर के पीछे हाथ बांधकर घण्टों उस शहर के नव-निर्माण के नक्शे बनाते रहते।

लाला जी के चेहरे पर मुस्कराहट का एक स्थाई भाव आ गया था। वे जिससे मिलते, हृदय का समस्त सौहार्द और स्नेह उस पर उड़ेल देने का प्रयत्न करते। वे बाबू, बनिए और मजदूर सभी से प्रेम से मिलते। गर्ज यह कि सारे शहर में हल्दी वाले लाला रामकिशन की चर्चा थी और उनकी सर्द मुस्कराहट सभी के दिलों पर जमी हुई थी।

लाला रामकिशन के इस हृदय-परिवर्तन का सब से पहिले पंडित किरणशंकर जी पर असर हुआ। और जैसे त्यागी का त्याग समर्थकों को अपनी ओर खींचता है, उसी प्रकार लाला रामकिशन की गद्दी शंकर जी के पैरों को अपनी ओर खींच लाई। लालाजी ने बड़ी लम्बी प्रणाम के बाद निवेदन किया कि शंकर जी के शुभागमन से उस गद्दी के पवित्र होने पर वे अपना सौभाग्य समझते हैं। और फिर इतने तपाक से शंकर जी की अभ्यर्थना हुई कि प्रशंसा से फूल कर उनकी ज्ञानेन्द्रियों का व्यापार ऐसे ठप्प हो गया जैसे कोई बड़ा सेठ सट्टे के बाजार पर कृपा कर दे।

प्रथम परिचय में ही यह वार्ता इतनी लम्बी चली कि अगले चुनाव में कांग्रेस की ओर से लाला जी को उम्मीदवारी भी मिल गई और चार आने की कांग्रेस-सदस्यता भी। लाला जी गद्गद् होकर बोले—"शङ्कर जी, आपके बड़े त्याग हैं देश के लिए!"

शङ्कर जी ने लालाजी को मौन धन्यवाद दिया और कहा — "पर लाला जी, इस शहर की कोई सेवा मैं अपने हाथों न कर सका। मैं इस नगर का सौभाग्य ही समझता हूँ, जो आपके अन्दर भगवान ने इस उदार-वृत्ति का उदय किया है। पीड़ितों, दलितों और शोषितों के लिए जिनके हृदय में एहसास है, वही

हमारी दृष्टि में महाव्रती हैं, वही सच्चे सेवक हैं। लाला जी, हमारी कांग्रेस समन्वय और सर्वोदय की हामी है। हम किसी से द्वेष नहीं करते, हमारे द्वार सभी के लिए खुले हुए हैं और हम समझते हैं। कि डिमोक्रेटिक व्यवस्था का यह सबसे बड़ा तकाजा भी है।"

शङ्कर जी के चेहरे पर हल्की-हल्की तमतमाहट आ गई थी और वे विनम्र हो मुस्कराने लगे थे। उनकी मधुर वक्तृता ने लाला जी की उदार और कोमल अन्तर्वृत्तियों को अपार सुख दिया।

पर न जाने इस षडयन्त्र की सूचना समाजवादी-नेता कामरेड तेजबहादुर सिंह को कैसे लग गई। फिर क्या था, शहर में पोस्टरबाजी शुरू हो गई। आजादी के लिए किए गए बलिदानों की विरुदावली गाई जाने लगी। चारों ओर कांग्रेस-पूंजीपति षडयन्त्र का शोर सुनाई देने लगा और हल्दी वाले लाला को मृत्यु का आलिंगन किए बिना ही विदित हो गया कि इन्सान की मिट्टी कैसे खराब होती होगी।

शङ्कर जी भी यद्यपि ऐसी स्थिति के आदी न थे, पर लाला रामकिशन तो एकदम बौखला ही गए। सेवा के अनुराग से फूल के समान खिले उनके चेहरे पर गम के हर समय बादल छाए रहते। वह राजनीति से सन्यास लेने की सोचने लगे थे।

पर सोशलिस्ट पार्टी के रजिस्टर में हल्दी वालों के बड़े लड़के ने नाम लिखा कर लाला जी की विपत्ति का पहाड़ एक फूंक से उड़ा दिया और नए अमरीकन मॉडल की कार में बैठकर कामरेड हरिकिशन पहिले दिन पार्टी-आफिस में आया, तो इन्सान के पारखी कामरेड तेजबहादुर ने अनुसन्धान किया कि वह उनसे कभी जुदा न होने वाला साथी होगा।

सच पूछा जाए तो इस नए आगमन से पार्टी की हलचलों में नए प्राण आ गए थे। एक लम्बी अवधि से उपेक्षित पड़ी रहने वाली पार्टी की योजनाएं क्रियान्वित होने लगी थीं और लाला रामकिशन को अनुभव होने लगा कि सफलता उनकी पकड़ में आ गई है।

हल्दी वालों और समाजवादियों के इस आन्दोलन से लाला जी के प्रतिद्वन्द्वी वर्तमान चेयरमैन लाला खूबदास की गद्दी डोलने लगी थी। यद्यपि लाला खूबदास का व्यक्तित्व कागजी न था, लोहे के चने चबाकर उन्होंने अपने को संभाला था; पर यकायक कांग्रेस-समाजवादी संयुक्त मोर्चे पर बैठे प्रतिद्वन्द्वी को ललकारने का उनमें साहस न रहा। लाला खूबदास ने सुना और देखा और अपने मजबूत फेफड़ों में एक लम्बी उसांस दबा कर रह गए।

लाला खूबदास स्वयं निरक्षर थे, लेकिन परामर्शदाता बड़े-बड़े वकील, अध्यापक और प्रोफेसर थे। उन्होंने इस संकट का सामना करने के लिए खूबदास जी को कहा कि वे जिला-कांग्रेस-कमेटी के सभापति को भेंट की गई नजरों और चाय-पार्टियों और सम्मान-पत्रों का लाभ उठाएं। यह युक्ति सफल रही और एक हफ्ते के अन्दर शङ्कर जी के नाम एक गुप्त पत्र आ गया।

इस शहर में एक पार्टी और थी, जिसके सदस्यों की संख्या पांच से अधिक न थी, पर जो अपने को कांग्रेस की आत्मा, मुसलमानों की लीग, मजदूरों का हथौड़ा और कारीगरों का हुनर बताती थी। लाला खूबदास ने समाजवादियों की काट करने के लिये उसी पार्टी को बुला भेजा।

लाला खूबदास ने कहा, "देखिये, आप पांच पांडवों के रहते इस नगर पर इन कौरवों का राज्य हो जाए! आप ठीक कहते हैं, समाजवादियों को पैसे से खरीदा जा सकता है।"

कम्युनिस्ट कामरेड नेता ने अपने रूखे बालों पर हाथ फेरते हुए कहा, "जी हां, आपसे पहिले हल्दी वालों ने खरीद लिया।"

लाला बिदक कर बोले, "देखिये कामरेड महाशय, आप मुझ पर अन्याय करते हैं। मैं किसी को खरीद सकूं, इतना सरमाया मेरे पास कहां से आया। अगर मैं चेयरमैन हूं तो इसलिए कि मुझे शहर की

सब कौमों का विश्वास प्राप्त है। मैं धर्म-कर्म के पचड़े में नहीं पड़ता। मेरे साथ कांग्रेस भी है, लीग भी है, और मजदूर-दल भी। सच मानिये कामरेड, मेरी कमला जब आप लोगों के त्याग और बलिदान की कहानियां सुनाती है तो मेरी आंखों में श्रद्धा के आंसू आ जाते हैं। दुनिया आपको लाख धिक्कारे, पर यदि इस देश का सच्चा उद्धार होना है तो वह आपके ही हाथों होगा।"

कम्युनिस्ट कामरेड लाला के जाल में फंसे हों अथवा नहीं, पर कुमारी कमला को पार्टी में लेने की इच्छा को उन्होंने अपने हृदय में जन्म अवश्य दे डाला था और समाजवादी पार्टी पर गुप्तचर जैसी निगाह रखने लगे थे।

लाला रामकिशन के लिए घात-प्रतिघात और मानापमान का एक और नया दौर शुरू हो गया था। अपने मुनीम जी पर उन्हें क्रोध आया जिन्होंने एक लिप्सा को उनके शान्त हृदय में पैदा किया था और उससे भी अधिक शंकर जी पर, जिन्होंने मानवता के ऊंचे सिद्धांतों की डोंडी पीट कर उनका रहा-सहा सुख-चैन भी छीन लिया। पर शंकर जी तो अब भूल कर भी गद्दी की ओर न निकलते। लाला रामकिशन जी शंकर जी से दो टूक बात करना चाहते थे और एक दिन स्वयं शंकर जी के शुभस्थान पर चले गये। लाला रामकिशन ने जलपान करते हुए उलाहना दिया कि शंकर जी उन्हें कीचड़ में ढकेल कर किनारा कर गए हैं।

शंकर जी ने पार्टी-आज्ञा का सहारा लेते हुए बहुत-से सज्जनोचित पैंतरे बदले, जिनसे लाला रामकिशन को शंकर जी की दुर्बलता पर क्रोध आ गया। उन्होंने कहा, "शंकर जी, यही है वह मानवता, जिसमें समन्वय की अपार सहिष्णुता है। हम कहते हैं, आप इस नगर की जनता के नेता हैं। यदि आप किसी एक यथार्थ को इस नगर के लिए मांगलिक समझते हैं तो जिला कांग्रेस के प्रधान टांग अड़ाने वाले कौन? मैं अधिक राजनीति नहीं जानता, पर इतना जरूर कह सकता हूँ कि आपने मेरे साथ जो व्यवहार किया है, वह बनिये की दुकान से भी परले दर्जे की जालसाजी है और वह भी प्रजातंत्र के नाम पर। हम जानते हैं, इस प्रजातंत्र के पीछे लाला खूबदास का रुपया बोल रहा है। पैसा हमारे भी पास है—हमारे क्या, बहुतों के पास है; पर क्या यह वही प्रजातन्त्र है जिसके नाम पर आप दुनिया के दिमागों को भ्रष्ट करते हैं?"

लाला रामकिशन के हाथ में पापड़ का टुकड़ा था, जो हृदय में कटुता उभर आने से मुट्ठी में जकड़ कर चूर-चूर हो गया। टूटे टुकड़ों को प्लेट में डाल कर उन्होंने रूमाल से हाथ पोंछ लिये।

इसके बाद लाला रामकिशन शंकर जी से नहीं मिले। उनका चुनाव आंदोलन आरम्भ हो गया था और वे कामरेड तेजबहादुर के कहे पर पूरा-पूरा अमल करते जा रहे थे।

इसमें संदेह नहीं कि चेयरमैन बनने के स्वप्न लाला रामकिशन को छोड़ने पड़े, पर उनके व्यक्तिगत गुणों, संगठित प्रचार और चांदी की चमक ने उनकी अपनी उम्मीदवारी को तो मजबूत कर ही दिया था।

लाला रामकिशन की बात शंकर जी के हृदय में गहरी पैठ गई थी और अब वह स्वस्थ मन से खूबदास-रामकिशन मोर्चे से हटकर स्वयं अपनी चेयरमैनी के स्वप्न लेने लगे थे। उन्होंने नगर जिला-कांग्रेस-कमेटी के प्रधान की आज्ञा की अस्पष्ट अवहेलना की थी।

लाला खूबदास को शंकर जी के बदले हुए ढंग का पता देर से चला। चुनाव में उन्हें अपने पुराने हथकण्डों से काम लेना पड़ा। कुछ रायें चांदी से, कुछ भय-आतंक तथा सुरा के सहारे। लोगों को कई दिन मकानों में बंद रखा गया, उन्हें शराब पिलाई गई और वेश्याओं के मुजरे कराए गए। तब कहीं जाकर लाला खूबदास को कामयाबी मिली।

मेम्बरी में कामयाब होकर लाला खूबदास शंकर जी के चेयरमैन बनने के मन्सूबों को विध्वस्त करने की सोचने लगे। इसमें संदेह नहीं, बोर्ड की सिंगल पार्टी मैजोरिटी का नेतृत्व शंकर जी के हाथ में था, पर मुसलमान, अछूत, शिक्षणालयों तथा महिलाओं के मत अभी बाकी थे। पर वामांगियों ने चुनाव में लाला खूबदास को इतना बदनाम कर दिया था कि वे चेयरमैनी के लिए बहुमत कभी भी प्राप्त न कर पाते। लाला रामकिशन की पार्टी पर चेयरमैनी निर्भर थी, इसलिए लाला खूबदास ने सोचा, लाला रामकिशन को चेयरमैन बनाया जाए और वे चेयरमैन चुन लिए गए। इतनी बड़ी कृपा करके भी ला० खूबदास अपने बड़प्पन का ज्ञान कराने एक दिन भी लाला रामकिशन की गद्दी पर नहीं पधारे।

लाला रामकिशन जिन परिस्थितियों में चेयरमैन हुए थे, उनमें अत्यन्त कर्मठ और सतर्क रहने की आवश्यकता थी। लाला के हृदय में नई उमंग, नया उत्साह और नए स्वप्न थे जिन्हें पूरा करने के लिए वे तत्पर हो गए।

लाला जी नित्य प्रातः उठते और देखते कि शहर की नालियां ठीक साफ हुई हैं कि नहीं, कहीं कोई कुत्ता, बिल्ली, चमगादड़ या चूहा तो नाली में पड़ा नहीं सड़ रहा है। शहर के मेहतर और जमादार तंग रहने लगे।

लाला जी यह भी देखते कि कहीं किसी ने गले-सड़े फल, घटिया मिठाइयां तो नहीं लगाई हैं, खोंचे वालों ने सड़क पर गन्दगी तो नहीं फैलाई है। लाला ने जूठन और कूड़े कर्कट के लिए चौराहों पर बड़े-बड़े काठ के ढोल रखवा दिए पर खोंचे वाले, सफाई इन्स्पेक्टर और हैल्थ आफिसर उनकी सख्ती से तंग आने लगे और अन्दर ही अन्दर खट्टी और गर्म चर्चा होने लगी।

इससे भी गर्म चर्चा तब हुई, जब शहर की एक सड़क पर सीमेण्ट कराने का ठेका चौ० करीमुल्ला खां को नहीं दिया गया और स्कूल की इमारत ठीक कराने के लिये पंडित चौथराम जी को स्मरण नहीं किया गया।

लाला रामकिशन को इस विरोध का पता था, पर क्या वह यह नहीं जानते थे कि मेम्बर लोग अपने मित्रों और रिश्तेदारों को ठेके दिलाकर क्या करते हैं? लाला रामकिशन को सब से संगठित विरोध का लोहा लेना पड़ा शंकर जी से, जो समय-असमय विरोधी पार्टी की शानदार मर्यादा को मजबूती से निभा रहे थे।

एक दिन चौ० करीमुल्ला खां आए और कहने लगे, "लाला रामकिशन, मैंने सुना है कि आप हम पर एतबार नहीं लाते। इसीलिए हमारा पुश्तैनी हक भी छीन लिया। मियां, क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, पेट सब का एक है। आधी बांटकर खाओ। लाला खूबदास को देखा है। अक्लमन्द आदमी हो, दयानत दार हो।"

पंडित चौथराम भी रेशमी अचकन और पटका, माथे पर चन्दन और ओठों पर पान की लाली सहित आये और बोले. "सुना है सेठ, बड़े धर्मात्मा हो; ब्राह्मण का हक भी खा गए!"

लाला रामकिशन इन विनम्र चुनौतियों से घबरा उठे थे। जनता के हितों पर चारों ओर से मक्कार लोग जोंक की तरह लगे हुए हैं। उन्हें लगा जैसे उनका तप भग करने के लिए शैतान ने अपनी हलचलें आरंभ कर दी हैं। छः महीने में लाला रामकिशन ने दिन-रात श्रम करके जो कुछ किया था, उसके लिए शहर में वाह-वाह थी और लोग लाला में श्रद्धा रखने लगे थे, किन्तु बोर्ड के हाल में सत्य वही था जो बहुमत कहता था, जो शंकर जी का विरोधी पक्ष और जो लाला खूबदास के गुर्गे कहते थे और जिन्होंने शंकर जी से भी अधिक सक्रिय होकर लालाजी को उखाड़ना आरम्भ कर दिया था। पर लाला रामकिशन पतन के इन दुर्दमनीय अंकुशों के सामने सिर झुकाने के लिए तैयार न थे। वे विचारते, समस्या के हर पहलू पर तर्क करते और अपने निर्णय को कायम रखते।

सेठ जी ने मुनीम जी से कहा, "तेज बहादुर और हरिकिशन से कहो कि मौजूदा हालत का पूरा खाका खींचते हुए हमारा स्तीफा सही करा कर कलेक्टर को पेश कर दें।"

मुनीम जी थोड़ी देर चुप रहकर बोले, "आप पर इज्जत-हत्तक का मुकदमा चलाएंगे दुश्मन लोग। जानते हैं, यह प्रजातन्त्र का विधान है; जो ज्यादा लोग कहते हैं, वही सच है।"

"मुनीम जी, मैं मुकदमे से नहीं डरता। बला से मुझे काला पानी हो, पर इन कुत्तों के मुंह का खून लोगों को दिखाई दे जाए तो मुझे सुख होगा।" ला० रामकिशन ने कहा।

मुनीम जी को जैसे लालाजी की भावुकता पसन्द न आई हो, बोले—"यह कोई रास्ता नहीं है। कुत्ते के आगे हड्डी का टुकड़ा फेंक आगे बढ़ जाइए, अपने बुलन्द इरादों को पूरा कीजिए।"

लाला रामकिशन की नस-नस इस असमर्थता के कारण दर्द करने लगी थी; पर मुनीम जी का सुझाव उनकी वणिक-प्रवृत्ति को फिर भी पसन्द आ गया।

पर बात चौ० करीमुल्ला खां तक ही सीमित हो, यथार्थ यह न था। लाला खूबदास ने पर्दे के पीछे बोर्ड में विरोधी मतों को संग्रहीत कर छोड़ा था, जिसके सदुपयोग का सुअवसर विधाता के कहने पर भी न छोड़ सकते थे। शंकर जी के विरोधी दल और लाला खूबदास के स्वार्थी पार्टी-सदस्यों ने लाला रामकिशन पर बहुमत से अविश्वास-प्रस्ताव स्वीकार किया और शहर के निर्वाचक—सभ्य और असभ्य नागरिक—अपने ही हाथों बनाए अपने प्रतिनिधियों के हाथों सत्य का विनाश और विध्वंस होता देखते रहे। मजबूर थे। अगला चुनाव तीन वर्ष बाद आने वाला था।

गीत

श्री कन्हैयालाल 'मत्त'

स्नेह का सम्बल तुम्हीं से मिल रहा है,
और परवाना तुम्हारा जल रहा है!

स्नेह — जिसकी प्यास ने अमरत्व पाया,
प्यास — जिसकी तृप्ति ने जग को भुलाया,
तृप्ति — जिसने प्यार की होली जलाई,
धूम्र-लौ जिसकी खमण्डल में समाई;

विश्व का इतिहास गीला जल रहा है!
स्नेह का सम्बल तुम्हीं से मिल रहा है!

जल न पाया हाय! परवाना तुम्हारा,
प्राण-धन से प्राण की बाजी न हारा,
मोह जीवन का जिलाये जा रहा है,
पी रहा जो कुछ पिलाये जा रहा है;

किन्तु, तड़पन का मजा भी मिल रहा है!
और परवाना तुम्हारा जल रहा है!

प्यार करना जानते थे !

श्रीकृष्ण 'सरल'

सत्य का सौन्दर्य तुम साकार करना जानते थे !
प्यार करना जानते थे !

विश्व के अगणित नरों के पथ-प्रदर्शक एक थे तुम,
नियति के निर्मम करों में भाग्य के अभिषेक थे तुम,
कण्टकित पथ को विहँस कर पार करना जानते थे !
प्यार करना जानते थे !

तुम सजल घन थे कि जिसका वारि था जीवन-प्रदाता,
तुम अनल-कण थे कि जिसका ताप था तम को जलाता,
प्राण को प्रण पर तुम्हीं बलिहार करना जानते थे !
प्यार करना जानते थे !

तुम विमल-मन, आत्म-बल से विश्व-पशु-बल को हराते,
तुम क्षमा के अस्त्र से अपराध के गिरि थे गिराते,
तुम हृदय से ही हृदय पर वार करना जानते थे !
प्यार करना जानते थे !

शक्ति के शिव रूप, संसृति के सुधाकर थे समुज्ज्वल,
भक्ति के वरदान, श्रद्धा-स्नेह के थे तुम अथक बल,
मनुज-मन पर तुम सुदृढ़ अधिकार करना जानते थे !
प्यार करना जानते थे !

उर-उदधि में विश्व की सारी व्यथा पीड़ा छिपाये,
तुम विषम-विषपान करके भी सदा ही मुस्कराये,
प्रीति-प्रतिमा का सुभग शृङ्गार करना जानते थे !
प्यार करना जानते थे !

एक मनोरंजक स्केच

श्री प्रेमनारायण टंडन

हमारे प्रेस में काम करने वाले महाराज का नाम कूकी है। यह विचित्र नाम उनके माता-पिता का दिया हुआ नहीं है। उन्होंने तो बड़ी श्रद्धा और भक्ति से उनका नाम रखा था भगवती प्रसाद। उनके सगे-सम्बंधी, जो व्याकरण के नियमों से सर्वथा अनभिज्ञ थे, स्त्री-लिंगवाची 'भगवती' शब्द से ही अपना काम निकालने लगे। इसमें भी कम से कम इतनी अच्छाई तो थी ही कि दिन में आठ-दस बार भगवती का शुभ नाम मुंह से निकलता था और, बहुत सम्भव है, किसी को यह आशा भी हो कि चारों ओर मंडराने वाले यमदूतों से किसी समय यदि रक्षा करने की आवश्यकता होगी तो इस नाम की अधिष्ठात्री अवश्य हमारी रक्षा करेगी—जैसे अजामिल की सहायता विष्णु के दूतों ने 'नारायण' नाम सुनते ही की थी। परन्तु अड़ोसी पड़ोसी इतने दूर के और केवल कल्पित लाभ की आशा में अपने मुख को कष्ट देना उचित न समझते थे वे सुविधा और सरलता के विचार से महाराज को 'भगौती' पुकारना ही अच्छा समझते थे।

महाराज हमारे यहां इन्हीं दो नामों को लेकर आये थे। घर की स्त्रियों को उनका 'भगवती' नाम अच्छा लगता था, परन्तु स्कूल में पढ़ने वाले लड़के, जिन्हें दूसरों का बनाने में ही स्वर्गीय आनन्द मिलता है, देहात से आये महाराज की भाषा सीखने के बहाने, उनके साथ कुछ आत्मीयता प्रकट करने के विशेष उद्देश्य से उन्हें 'भगौती' ही पुकारते थे। तीन अक्षरों के इस छोटे शब्द को हमारे चार वर्ष के भतीजे ने अपनी सुविधा की दृष्टि से और भी संक्षिप्त कर लिया था। वह महाराज को 'भूती' पुकारने लगा था। परन्तु इस नये नाम का ध्वन्यात्मक सम्बन्ध 'भूत' शब्द से होने के कारण न यह महाराज को रुचा और न घर की स्त्रियों को ही। हां, कभी-कभी उन्हें चिढ़ाने के लिए छोटे लड़के इसका प्रयोग करने लगे। इन्हीं दिनों हमारे ढाई वर्षीय चिरंजीव ने 'भगवती' के चार वर्गीय उतार-चढ़ाव के अक्षरों के व्यतिक्रम के शब्द को बदलकर महाराज का पुनः संक्षिप्त नामकरण किया—'कूकी'। और इस प्रकार शब्द-निर्माण के नियमों की खोज में व्यस्त रहने वाले भाषा-वैज्ञानिकों के सामने एक ऐसा व्यावहारिक उदाहरण रखा जो दूसरों के लिखे भारी-भरकम ग्रन्थों में खोजने पर भी उन्हें शायद न मिलेगा।

महाराज का यह नाम चल गया। इसके कई कारण थे। एक तो यह कि नाम-विशेष का संक्षिप्तीकरण जिन विशेषताओं—जैसे सुविधा, सरलता, मधुरता, स्पष्टता आदि—को ध्यान में रखकर किया जाता है, वे सब इस छोटे शब्द में पाई जाती हैं। दूसरे, हमारे जिस चिरंजीव ने यह नाम रखा था, उसने अपनी ढाई वर्ष की आयु का उत्तरार्द्ध रोगों से भयंकर युद्ध करने में बिताया था; इसलिए उसका रखा हुआ नाम, उसके मुख से निकलने वाले दो-चार शब्दों की तरह ही, घर वालों को प्रिय था। तीसरी और सब से बड़ी बात यह थी कि 'भगौती' और 'भूती' पुकारे जाने पर मन ही मन चिढ़ने वाले भगवती महाराज को भी यह संबोधन प्रिय था। जिस समय "कूकी आइगे," "कूकी आइगे" के साथ घर के लड़के लड़कियां रोगी बच्चे को हंसाने के उद्देश्य से प्रातःकाल महाराज का स्वागत करते, तब वे अपने बड़े बड़े दांत निकाल कर इस तरह हंसते कि उन्हें देखकर घर की मालकिन, जिन्होंने बहुत दिन पहले तुलसीदास की रामायण अर्थों के साथ पढ़ी थी, झुंझलाकर कहतीं—"कैसे हंसता है, जैसे मेघनाद का सिर !"

कूकी महाराज हमारे यहां लगभग डेढ़ साल से हैं; यद्यपि गांव से शहर आए उन्हें सात आठ साल हो चुके हैं। हमारे यहां आने के पहले वे चौकीदारी करते थे। रात के ग्यारह बजे से सवेरे चार बजे तक सारे मुहल्ले में चक्कर लगाते हुए, कभी दीर्घ और कभी प्लुत स्वर में 'होऽ होऽऽऽ' करते फिरना उनका काम था। इसी की उनको तनखाह मिलती थी। रात में कूकी महाराज जिनकी रखवाली करते थे, दिन में उन्हीं का सौदा-सुलुफ ला देते थे, आटा पिसा देते थे और इसी तरह के बहुत-से काम करके भी दूसरों की अपेक्षा चौथाई पैसे पाकर वे चौगुना संतुष्ट हो जाते थे। इसी से वे सब को प्रिय थे। इस नौकरी के कारण रात में जागने और दिन में सोने का एक बुरा प्रभाव उन पर यह पड़ा कि उनके सीधे-सादे देहाती दिमाग की चाल बहुत शिथिल हो गई; यहां तक कि एक साधारण बात समझने में भी वह आलस्य के साथ आनाकानी करने लगा।

कूकी महाराज का पांच सात साल का शहरी जीवन एकाकी और निर्लेप-सा रहा। शहर में वे अपने चाचा के साथ एक कोठरी में रहते थे। चाचा के अतिरिक्त किसी अड़ोसी-पड़ोसी से उनका परिचय नहीं था—न वे ऊधो के लेन में थे और न माधो के देन में। जिन दूकानदारों से सवेरे-शाम वे रोज खरीदारी करते थे, उनसे भी किसी तरह की जानकारी बढ़ाने की उन्होंने कभी कोशिश नहीं की। उन्हें बस अपने काम से काम था। धीरे धीरे उनका व्यावहारिक ज्ञान देहात से नये आये व्यक्ति से भी कम हो गया; क्योंकि जो कुछ बातें वे गांव से सीख कर आये थे काफी समय तक व्यवहार में न आने के कारण, वे भी एक-एक करके उनके दिमाग से निकल गईं। यही नहीं, उनके मस्तिष्क में नई बात अब जल्दी घुसने भी नहीं पाती थी। इस रहस्य का पता हमें उस दिन लगा जब हमारे पड़ोस की बूढ़ी बुआ ने कूकी से दमचूल्हा जलाने को कहा।

प्रेस से साथ वाले कमरे में बूढ़ी बुआ रहती हैं। काफी रद्दी कागज और मशीन के तेल से भीगे हुए काले कपड़े प्रेस से रोज निकलते रहते हैं। इनमें दियासलाई की एक तीली लगाते ह माघ पूस के जाड़े में भी आग चटपट तैयार हो जाती है और किसी तरह का झंझट भी नहीं करना पड़ता। कूकी आये-आये ही थे, तभी बुआ ने एक दिन सवेरे कोयलों की डलिया उनके हाथ में देकर कहा — "वह दमचूल्हा तो जला दो जरा।"

बड़े उल्लास से कूकी ने 'लाओ बुआ जी' कहकर डलिया हाथ में ले ली और दमचूल्हा उठाकर एक किनारे बैठ गए। दूसरी ओर कमरे में हम काम कर रहे थे। बुआ और कूकी दोनों की बातें हमने सुनीं; परन्तु वे इतनी साधारण थीं कि उधर एक बार देखने की भी हमने जरूरत नहीं समझी और हम अपने काम में लगे रहे। लगभग आध घण्टे बाद जब धुएं ने हमें बहुत परेशान कर दिया, तब चकपका कर हमने सिर उठाया और देखा—कूकी दमचूल्हे के ऊपर रखकर कागज और कपड़े जला रहे हैं और धुएं के मारे आंखें मूंदे, मुंह फेरे, हाथ सेंक रहे हैं। आग की लपट उस समय तक बुझ चुकी थी और तेल से भीगे कपड़ों का ढेर-सा धुआं निकल रहा था। यह देखकर हमने जोर से पूछा—"यह क्या कर रहे हो?"

कूकी ने बड़े इतमीनान से आंखें खोलीं, उठकर खड़े हुए और असफलता-जनित निराशा के स्वर में उत्तर दिया — "आग जलती ही नहीं इसमें।"

यह उत्तर सुनकर उधर से बुआ उठीं और इधर से हम। पास जाकर देखा, कूकी ने दमचूल्हे के नीचे वाले छेद से सब कोयले अन्दर भर दिए हैं। कोयले हैं चलनी के नीचे और आग लगाई जा रही है ऊपर। इसलिए काफी कपड़े और कागज फूंकने पर भी आग की ऊपर जाने वाली लपट नीचे रखे कोयलों को न जला सकी।

उस दिन हमें पता लगा गया कि कूकी के दिमाग में गीला गोबर तो क्या, शायद सूखा भूसा भी नहीं है। हमारे इस अनुमान की पुष्टि भी उन्होंने शीघ्र ही कर दी। हमारे प्रेस का कम्पोज किया हुआ मैटर कभी-कभी दूसरे प्रेस में छपने के लिए भेजा जाता है। बने हुए पेज वे एक बड़े झाड़ए में रख कर ले जाते और ले आते हैं। दफ्तरी के यहां जिल्द बनने के लिए कागज भेजने के काम भी झाड़ुआ आता है। इस तरह हर रोज एक दो बार कूकी महाराज को झाड़ुआ ढोना पड़ता है। इस काम में उनका मन भी खूब लगता है। एक दिन तीसरे पहर हमने उनसे कहा — "दूकान जाकर डाक ले आओ, आ गई होगी।"

आपने बड़ी मुस्तैदी से सिर पर रखने के लिए तौलिया उठाकर और झाड़ए की ओर इशारा करके पूछा — "झाड़ुआ ले आइ।"

प्रेस के सारे कर्मचारी कई दिन तक इस बात की चर्चा करके उनकी हंसी उड़ाते रहे। कूकी महाराज ने हमारे सामने तो किसी की बात का बुरा माना नहीं; परन्तु एक रोज पता चला कि हमारे पीछे कभी-कभी वे उन लोगों से कुछ अप्रसन्न अवश्य हो जाते हैं।

कूकी के धार्मिक विचारों पर ग्रामीण संस्कार और वातावरण का पूरा प्रभाव पड़ा है। वे उत्तम वर्ण में जन्मे हैं, इस बात का उन्हें सहज गर्व है। चौकीदारी उन्होंने ऐसे लोगों के यहां की थी जिन्हें लहसुन-प्याज, मांस मछली किसी से परहेज नहीं था। कूकी ने अपने पांच छः साल के शहरी जीवन में कभी उनके यहां पानी तक नहीं पिया। हमारे यहां आने पर उन्हें प्रेस के थोड़े बहुत काम के साथ-साथ रोगी बालक को खिलाने का काम भी सौंपा गया था। होता यह था कि जब प्रेस में काम छपाने वाले या मिलने जुलने वाले आ जाते तो अपनी शान बढ़ाने के लिए हम उनसे कहते— "प्रेस का आदमी आपके यहां से कागज वागज ले आयगा।" घर में पास पड़ौस की स्त्रियां आतीं तो कूकी को मालकिनों की भी हाजरी बजानी होती और अपनी अपनी मिलने वालियों से सभी कहतीं—"अपने नौकर से हम अमुक काम करवा लेंगे।" इस तरह प्रेस में पुरुष कूकी महाराज के शासक थे और घर में स्त्रियां। पर वे इस दोहरे शासन में भी सब तरह प्रसन्न थे, संतुष्ट थे।

उन्हें जब मालूम हुआ कि इस घर में प्याज-लहसुन या कलिया-मछली का प्रवेश अभी नहीं हुआ है, तब उन्होंने हमारे यहां खाना पीना शुरू कर दिया। समय कण्ट्रोल का था; इसलिए खाना खाने का कभी सवाल ही न उठता था जो उनसे 'स्वारथ' करने को कहा जाता। हां, कभी-कभी तीज-त्योहार पर उन्हें थोड़ा-बहुत खिला-पिला दिया जाता था; सो भी दोहरे उद्देश्य से। एक तो यह कि वे ब्राह्मण थे और हर तीज-त्यौहार में ब्राह्मणों का पूजा सत्कार करना घर के पढ़े लिखे लड़कों को तो नहीं, स्त्रियों को बहुत जरूरी जान पड़ता था। दूसरी बात का जन्म भी घर की बड़ी बूढ़ी औरतों के मन में हुआ था। उन्होंने बहू-बेटियों को समझाया — "तीज त्योहार पर चार तरह की चीजें बनती हैं। घर के मर्द खाएं और यह टुकुर-टुकुर देखता रहे, यह बहुत बुरी बात है। इसके हाथ पर भी कुछ न कुछ जरूर रख दिया करो।"

इस तरह कूकी का हमारे घर में खाना-पीना कभी-कभी हो जाता था। एक बार वे दस बारह दिन के लिए गांव गए। लौटकर आए तो घर में कुछ काम-काज था। सदा की भांति उनसे खाने को कहा गया।

'यह मेरा है!'

चित्रमय कहानी

दिल्ली की एक दोपहर

रिक्शा पर चढ़ने वाले धनी लोग खस की टट्टियों, बिज... पंखों और बर्फ से ठंडे मकानों में सुख-पूर्वक विश्राम कर र... सवारी न होने के कारण रिक्शा वाले को भी चिलचि... धूप में सड़क पर सुस्ताने का समय मिला है। अपना र...

दिल्ली में पानी का अकाल है। ताऊजी स्वयं घड़ा लेकर पानी की खोज में निकले हैं। पर भय है कि कहीं ये मृग-मरीचिका के ही शिकार न हो जायें।

जबकि आसमान से अंगार बरस रहे हैं, धरती तवे की... जल रही है, दायं-बायं स्थानीय स्वार्थों की अट्टा... आग उगल रही हैं, वीर शरणार्थी चांदनी चौक के ... पर अविचल भाव से मोर्चा जमाये बैठा है। ... नहीं, पुरुषार्थी !

★
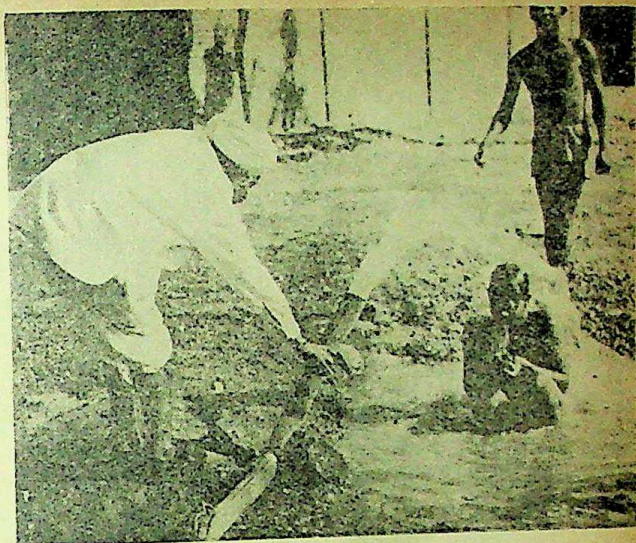
श्रौर ऐश्वर्य-भरी दिल्ली में जब पानी नहीं मिलता तो
रण जन तरबूज की फांकों से प्यास बुझाने का प्रयत्न
है। साम्यवादियों का कहना है कि तरबूज की लाल
में उन्हें हंसिया-हथौड़ा दिखाई देता है !

इन बेचारों को नहाने के लिये गर्म पानी ही मिलता है। शायद गर्मियों में गर्म चाय की भांति यह गर्म पानी भी ठंढक पहुँचाता है। खैर, मन ठंढा होना चाहिये, तन अपने आप ठंढा हो जाता है।

पहर ढलते ही ताप-शाप-मयी दिल्ली के मानों सभी निवासी यमुना मैया की सुखद-शीतल शरण में आ जाते हैं। जो किनारे पर उथले पानी में नहाते हैं, उनका केवल तन का ही ताप मिटता है और जो जरा आगे बढ़कर गहरे में पैठते हैं उनकी सभी भव-बाधायें दूर हो जाती हैं। जय यमुना मैया की !

चमगादड़-बम

गत महायुद्ध में अमरीकनों ने चमगादड़ों के साथ छोटे-छोटे अग्नि-बम बांध कर उन्हें हवाई जहाजों द्वारा जापान के नगरों पर फेंकने और इस तरह उन्हें जलाने की योजना बनाई थी।

बिजली का कौंधना

हमारी समूची धरती पर प्रतिदिन लगभग ४४००० आंधियां (तूफान) आती हैं। प्रत्येक आंधी में अनुमानतः दो सौ बार बिजली कौंधती है। इस तरह हिसाब लगाने से एक सैकण्ड में सौ बार बिजली का कौंधना कूता जा सकता है।

'किवी' पक्षी
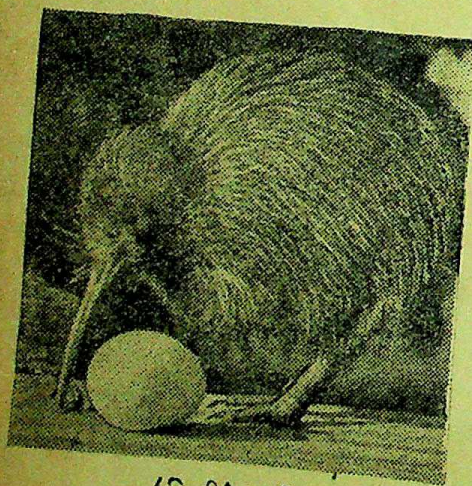
यह पक्षी केवल न्यूज़ीलैण्ड में ही पाया जाता है और मुर्गी जितना बड़ा होता है। पर छोटे-छोटे होने के कारण यह उड़ नहीं सकता। ऋतु आने पर मादा-पक्षी केवल एक ही—लेकिन काफी बड़ा—अण्डा देती है, जिसका वजन मादा-पक्षी के वजन का एक चौथाई से एक तिहाई तक होता है।
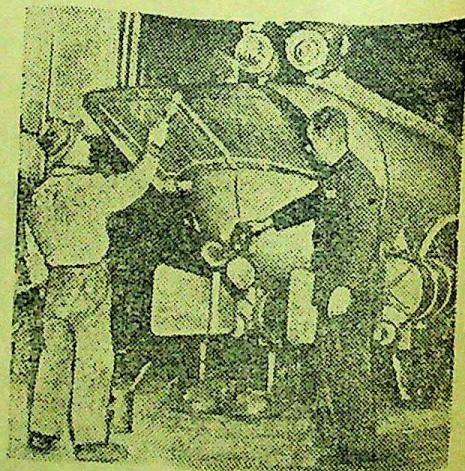
नई डुबकनी किश्ती

हाल ही में एक नये प्रकार की डुबकनी किश्ती बनाई गई है जो समुद्र के नीचे लगभग एक हजार गज की गहराई में चल सकेगी। इस चित्र में उस किश्ती का पिछला भाग दिखाया गया है।

उन्होंने आशा के विपरीत उत्तर दिया — "अब हम न खैहैं।"

कारण पूछने पर कूकी महाराज बोले — 'हम कंठी लै लीन है।"

आशय यह था कि हमने गुरु से दीक्षा ले ली है और इसलिए किसी के यहां दूसरे के हाथ का खा नहीं सकते।

हमने जिज्ञासा की — "कोई चीज भी खा सकोगे या सब बन्द ?"

कूकी महाराज का उत्तर था — "दूसर हाथ की मिठाई हम खाय सकित हैं।"

हमने फिर पूछा — "मिठाई ? पेड़ा बरफी या और कुछ ?"

महाराज— "मिठाई चही कौनौ होय।"

और सचमुच कूकी ने उस दिन से हमारे घर में रोटी-पूरी खाना बन्द कर दिया। हां, मिठाई वे खा लेते थे, चाहे अनाज की ही हो। हमें उनकी यह कठी दो-चार दिन ही खटकी; बाद को खाना खिलाने की बात हम लोग सिर्फ उन्हें चिढ़ाने और उनकी कंठी की हंसी उड़ाने के लिए ही करने लगे। एक बार दो दिन के लिए वे हमारे साथ बरात गए। तब उनकी यह कंठी हमें बहुत खली। बरातियों के लिए जो मिठाई आती थी, उसका अच्छा-खासा भाग उनके हिस्से में आता था। उस दिन सचमुच कंठी लेने का लाभ हमारी समझ में आ गया।

कंठी लेने के पहले भी कूकी महाराज को अपनी कुलीनता पर गर्व था और हमारे यहां रह कर भी वे कोई ऐसा काम नहीं करना चाहते थे जो उनकी उच्चवर्णता की मर्यादा के प्रतिकूल हो। जब वे हमारे यहां आए थे और रोगी बालक को खिलाने का भार उन्होंने लिया था, तब हमें इस बात का अनुमान नहीं था कि वे इतने कुलीनताप्रिय होंगे। इसका पता हमें बूढ़ी बुआ से लगा। बुआ का नियम है कि धोबी के घर के कपड़े वे धोकर ही काम में लाती हैं। इसके पहले उन्हें छूती भी नहीं। धोबी जब कपड़े धोकर लाता है, तब वे पानी भरी बाल्टी उसके सामने रखकर कहती हैं— "इसमें कपड़े डाल दे।" कपड़े डाल देना धोबी का काम है। इसके बाद वे पानी पर तैरा करते हैं। धोबी को उनकी बाल्टी छूने का अधिकार नहीं है और वे स्वयं उसके कपड़े नहीं छू सकतीं। इसलिए किसी छड़ी से वे कपड़े पानी में डुबा दिए जाते हैं। इसके बाद सब कपड़े बुआ पवित्र मान लेती हैं और कभी स्वयं, कभी दूसरों से निचुड़वाकर उन्हें सूखने के लिए धूप में डाल देती हैं।

यही कपड़े निचोड़ने का काम बुआ उस दिन कूकी महाराज से लेना चाहती थीं। महाराज ने दो-तीन बार तो बात सुनी-अनसुनी कर दी; जब जोर से कहा गया तो आप साफ-साफ बोले — "हम कपड़ा न धाब।"

बुआ उसका आशय नहीं समझीं। फिर पूछने पर कूकी महाराज ने कहा — "काहू के कपड़ा हम नाहीं छुइ सकित है।"

शाम को पता लगने पर अपने मालिकपन के गर्व में हमने महाराज से कड़क कर इसका कारण पूछा। उन्होंने सीधे-सादे ढंग से कहा — "हमसे पंखा चलवाय लेउ, डलिया उठवाय लेउ, मुदा कपड़े हम काहू के नाहीं छुअब।"

दो-एक दिन इस बात को लेकर घर के मालिक-मालिकिन कूकी महाराज से तने रहे; परन्तु अन्त में उनके निश्चय की दृढ़ता के सामने सबको झुकना पड़ा।

कूकी महाराज ने हमारे यहां पंखा नहीं चलाया, डलिया नहीं ढोई; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि छोटे-मोटे ही नहीं, उस कोटि के काम बड़ी मुस्तैदी से करने के लिए वे सदा तैयार रहते हैं। बाजार से दस-पांच रुपए का अनाज मंगाना हो, दो-चार रुपए की लकड़ी लानी हो, या बुरादे की बोरी ही लानी हो, कूकी को इशारा कीजिए और वे फौरन तैयार हो जाते हैं। आलस्य तो उन्हें छू तक नहीं गया है। हमारी बाबूगीरी कभी-कभी उनके देहातीपन की फुर्ती देख कर लजा जाती है। यह बात नहीं है कि वे सिर्फ मालिक-मालि-

किन का ही हुकुम मानते हों; नहीं, घर का बड़ा-बूढ़ा, बच्चा-कच्चा, लड़का-लड़की—कोई भी किसी काम के लिए कह भर दे, कूकी उसे पूरा करने के लिए दौड़ पड़ते हैं। उनकी इस सिधाई और मुस्तैदी से घर वाले ही नहीं, पास-पड़ोस वाले भी खुश हैं; क्योंकि उनके छोटे-मोटे काम भी कूकी कर लाते हैं और किसी को कानों-कान खबर तक नहीं होती।

महाराज की अवस्था पैंतीस के करीब है। उन्होंने अभी तक विवाह नहीं किया, या यों कहिये कि उनका अभी तक विवाह नहीं हो सका है। और लक्षणों से जान पड़ता है कि आगे भी नहीं होगा। एक दिन हमने इसका कारण पूछा तो वे बोले — "गांव वाले हमरे बैर परे हैं। जब कौनौ लड़कीवाला आवत है, सब झूठ-सच लगाय के लौटाय देत हैं।"

हमने पूछा — "विवाह करने की तुम्हारी इच्छा होती है?"

कूकी महाराज मुस्कराए। उनका रूखा देहाती चेहरा कुछ स्निग्ध हो गया। पर वे बोले — "अरे, का रखा है बिहाओ मां! तमाम झंझट हैं, परेसानी हैं।"

उनके इस उत्तर से हमें संतोष न हुआ; पर इससे आगे वे न बढ़े और कोई निश्चित उत्तर भी उन्होंने नहीं दिया। परन्तु उनकी आकृति से प्रकट था कि विवाह की स्वाभाविक चाह उन्हें है अवश्य, यद्यपि दुराशा की भयंकरता उनको इस सुखद कल्पना का आनन्द भी नहीं उठाने देना चाहती।

कूकी महाराज कोई ऐसा काम नहीं कर सकते जिसके लिए अक्ल की जरूरत हो; परन्तु अपने मतलब के मामले में वे बहुत होशियार हैं। घर के एक लड़के का विवाह हुआ। खाना मिठाई, रुपए, कपड़े — जो कुछ मिलना था, वह सब ले लेने के बाद आप इस बात पर अड़ गए कि "हमका कुछ 'चीन्ह' मिले का नही।"

पूछा गया — "घर से कोई थाली-लोटा दे दिया जाय?"

आप हंसकर बोले — "थाली हमका न चही। चचा के साथ रहित है; दुई मनई के खाए लायक खिचड़ी हुइ जाय जौमा, अत्ती बड़ी बटुइ देउ हमका।"

एक बार वे बीमार पड़े। बारह-चौदह दिन उन्हें ठीक होने में लग गए। महीने के अन्त में जब तनखाह दी जाने लगी तब उनसे गम्भीर होकर हमने पूछा — "तुम्हारी नागा काट ली जाय?"

कूकी ने बड़े ढंग से उत्तर दिया — "आप तमामन रुपैया तो खरचत हैं रोज। हमरी तनखाह काटि कै आपका तो कुछ मालूम न होइ, पर हमार जान निकल जइए।"

उनका यह उत्तर सुनकर हमें पूरी तनखाह देनी पड़ी और मन में स्वीकार करना पड़ा कि देहाती अपने मामले में खूब चौकस होता है।

कूकी महाराज में दो गुण और भी हैं। एक वे आज के जमाने में भी सच्चे हैं, ईमानदार हैं। दूसरे वे सीधे सादे हैं, घर की बहू-बेटियों में रहने लायक हैं। उनमें अक्ल कम, काम करते समय अपनी तरफ से वे कुछ सोच नहीं सकते, महीन काम उनसे हो नहीं सकता। परन्तु ऊपर की दो विशेषताओं के आगे उनकी सब कमजोरियां दब जाती हैं और यह आशा होती है कि वे शीघ्र ही परिवार के प्राणियों से घुल-मिल जायंगे।

श्री 'रावी'

पहला कहानीकार

★

एक समय था जब दुनिया के लोग बहुत सीधे-सादे और सत्यवादी होते थे। वे जो कुछ देखते थे, वही कहते थे और जो कुछ कहते थे, वही करते थे।

एक बार एक आदमी ने एक आदमी से एक गांव के एक आदमी के बारे में एक बात कही। यह बात कानों-कान कई आदमियों तक पहुँच गई।

इस समाचार के कुछ और आगे बढ़ने पर लोगों को पता लगा कि उस नाम का वहां न कोई गांव था, न उस नाम का कोई आदमी था और न किसी आदमी ने वैसा कोई काम ही किया था, जैसा कि उस समाचार में बताया गया था।

जिस आदमी ने यह झूठा समाचार सबसे पहले फैलाया था, उसे खोज निकालने में कोई कठिनाई न हुई। लोग उसे पकड़ कर उस देश के राजा के पास ले गये।

"इस आदमी ने एक गांव के एक आदमी के बारे में एक बात कही है; लेकिन न तो उस नाम का कोई गांव ही है, न आदमी और न किसी ने वैसा काम ही किया है, जैसा कि इसने अपनी खबर में बताया है। अनहोनी बात कह कर इसने लोगों को भुलावे में डाला है। इसे उचित दण्ड मिलना चाहिए"—लोगों ने राजा के सामने उस पर यह आरोप लगाया।

"क्या तुम जानते थे कि इस नाम का कोई गांव मौजूद है?" महाराज ने अपने न्यायासन से अपराधी से प्रश्न किया।

"नहीं महाराज!"

"क्या तुम जानते थे कि इस नाम का कोई आदमी मौजूद है?" दूसरा प्रश्न हुआ।

"नहीं महाराज!"

"क्या तुमने किसी आदमी को वैसा काम करते देखा था, जैसा कि तुमने अपने समाचार में बताया था?" तीसरा प्रश्न हुआ।

"नहीं महाराज!"

"तो फिर तुमने ऐसी अनहोनी खबर क्यों फैलाई?"

"महाराज!" अपराधी ने अपनी स्थिति स्पष्ट की, "मैंने किसी बुरे काम की नहीं, बल्कि एक अच्छे काम की ही खबर फैलाई है—ऐसे काम की जिसे अगर कोई करे तो उससे दूसरों का बहुत भला हो और स्वयं उसका बहुत यश हो। उस काम को करने के लिए कोई न कोई आदमी चाहिए था, और उस आदमी के होने के लिए कोई न कोई गांव भी आवश्यक था। इसलिए मैंने उस खबर के साथ आदमी और गांव के नाम भी मन से सोचकर जोड़ दिये थे।"

राजा असमंजस में पड़ गया। उस दिन तक किसी भी आदमी ने किसी से कोई अनहोनी या अन-हुई बात नहीं कही थी और इस प्रकार के अपराध के लिए राजकीय दण्ड के नियमों में कोई व्यवस्था भी नहीं थी। यह एक सर्वथा नये ढंग का अपराध था।

उचित न्याय का आश्वासन देकर राजा ने लोगों को विदा किया और अपराधी को राजकीय बन्दीगृह में आदर और आराम के साथ रखवा दिया।

राजा ने इस नये अभियोग के सम्बन्ध में राजगुरु के साथ परामर्श किया। राजगुरु के लिए भी यह एक नये ढंग का अपराध था। उन्होंने देवराज इन्द्र के सामने यह अभियोग उपस्थित किया।

देवराज इन्द्र की आज्ञा से देवदूतों ने भूमण्डल में पूरी छान-बीन करके अपना वक्तव्य दिया :

"पृथ्वी के वर्तमान कुल ८,३२,४८० ग्रामों-नगरों में ८०,१६,८०,४२१ मनुष्य इस समय रह रहे हैं और उन सबने मिल कर, लेखराज महाचौहान के रजिस्टरों के अनुसार, अब तक ३७,१४,५५,८०,३५,१७,८२७ कर्म किये हैं। जिस गांव, मनुष्य और कर्म की खोज करने की हमें आज्ञा दी गई थी, उन तीनों का अस्तित्व उन गांवों, मनुष्यों और उनके अब तक के कर्मों में कहीं भी नहीं है।"

अभियुक्त मनुष्य का अपराध प्रमाणित हो गया। उसने सचमुच एक अस्तित्वहीन बात कही थी। मनुष्य-जाति की ओर से यह पहला ही इतना विचित्र और भयंकर अपराध था। स्वयं देवराज इन्द्र भी नहीं जानते थे कि ऐसा भी अपराध कोई मनुष्य कर सकता है। इस अपराध का प्रभाव कितना व्यापक हो सकता है और इसका दण्ड क्या होना चाहिए, इसी सोच में वे पड़ गये।

अपनी सहायता के लिए इन्द्र ने धर्मराज यम की ओर दृष्टि फेरी और कुछ देर तक टकटकी लगाये उनकी ओर देखते रहे; किन्तु यमराज स्वयं इस नई पहेली की गुत्थियों में उलझ गये थे और उनका दण्ड-व्यवस्था की कोई भी धारा इस अपराधी पर लागू नहीं हो रही थी। लाचार वह भी गर्दन घुमाये दूसरी ओर को इस प्रकार देखने लगे जैसे उन्हें इन्द्र के देखने की खबर ही न हुई हो!

"अपराधी का अपराध गम्भीर है," देवराज इन्द्र ने कहा। "उस पर कोई निर्णय देने के पहले हमें देवगुरु का परामर्श लेना होगा।"

देवगुरु बृहस्पति को उसी समय देव-सभा में आमंत्रित किया गया।

"आपने भूलोक की छान-बीन करा ली है," बृहस्पति देव ने अभियोग की सारी कथा सुन चुकने के पश्चात् कहा, "लेकिन क्या भुवर्लोक और स्वर्ग-लोक की भी छान-बीन करा कर आपने निश्चय कर लिया है कि इन लोकों में भी उस नाम का कोई गांव, उस नाम का कोई व्यक्ति और उस प्रकार का कोई किया हुआ कर्म नहीं है?"

देवगुरु के इस प्रश्न से सारी देव-सभा सोच-विचार में पड़ गई। साधारणतया मनुष्यों के कार्यों से स्वर्ग और भुवर्लोक का कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए था।

'अपराध में कहे हुए नामों का कोई गांव, कोई व्यक्ति और कोई कर्म स्वर्ग और भुवर्लोक में निर्मित नहीं हुआ।" स्वर्ग और भुवर्लोक के तत्सम्बन्धी विभागों के अधिकारियों ने उत्तर दिया।

'अधिक अच्छा हो कि आप लोग इन बातों की खोज एक बार और अपने लोकों में कर लें।" देवगुरु ने मुस्कराते हुए कहा।

देवगुरु के आदेश का पालन हुआ। अनेक काम-दूत और देवदूत इस खोज के लिए छोड़ दिये गये।

अगले दिन देव-सभा में उन्होंने आकर सूचना दी कि स्वर्ग और भुवर्लोक दोनों में उस नाम का गांव, और उस नाम का व्यक्ति विद्यमान है और उसने सचमुच उस प्रकार का कम किया है।

सारी देव-सभा इस समाचार से स्तब्ध रह गई।

देवगुरु ने कनखियों से देखते हुए एक व्यंग्य-पूर्ण मुस्कान उन अधिकारियों की ओर डाली जिन्होंने पिछले दिन विपरीत उत्तर दिया था।

"किन्तु गुरुदेव!" उन्होंने हाथ जोड़ कर उत्तर दिया, "हमने तो अपने लोकों में वैसे किसी गांव, व्यक्ति या कर्म का निर्माण नहीं किया।"

बृहस्पति देव का स्वाभाव-सिद्ध सुकोमल अट्टहास देव-सभा में गूंज उठा।

'आप अकेले ही ब्रह्मा के सहकारी, सृष्टि के निर्माता नहीं हैं, मनुष्य भी उनका सहकारी और आपका सहयोगी है। जिस प्रकार ब्रह्मा जी अपने संकल्प-बल से और आप लोग अपने ध्यान-बल से रचना के विविध रूपों का निर्माण करते हैं, उसी प्रकार मनुष्य का भी काम है कि वह अपने कल्पना-बल से वस्तुओं का निर्माण करे। वह आपका समकक्ष है और आपके लोकों के निर्माण में भी उसका प्रायः उतना ही हाथ है, जितना उसके लोक के निर्माण में आपका। जिस मनुष्य को आप अपराधी के रूप में अपने सामने रक्खे हुए हैं, वह मनुष्य-जाति में ब्रह्मा का विशेष पुत्र और मनुष्य-जाति का प्रधान शिक्षक है। कल्पना उसका कार्योपकरण है और कहानीकार उसका जाति-वाचक नाम है। आपका अभियुक्त मनुष्य-जाति में पहला पूजनीय कहानीकार और ब्रह्मा का सर्वप्रथम सह-निर्माता है!"

* * *

कहते हैं कि देवताओं के और मनुष्यों के भी आगामी बृहत्तम शब्द-कोष में 'झूठ' के अर्थ का कोई शब्द नहीं है और जो कुछ भी मनुष्य के मुख से निकल सकता है, उसका मूर्त अस्तित्व कहीं न कहीं अवश्य होता है।

विजय-पुस्तक भण्डार की सामयिक पुस्तकें

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित

स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा

इस पुस्तक में लेखक ने भारत एक और अखण्ड रहेगा, भारतीय विधान का आधार भारतीय संस्कृति पर होगा, इत्यादि विषयों का प्रतिपादन किया है। मूल्य १।) रुपया।

जीवन में विजय प्राप्त करने के लिये
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित

'जीवन संग्राम'

का

संशोधित दूसरा संस्करण पढ़िये। इस पुस्तक में जीवन का सन्देश और विजय ललकार एक ही साथ हैं पुस्तक हिन्दी भाषियों के लिये मनन और संग्रह के योग्य हैं। मूल्य १) डाक व्यय।-)

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति की

'जीवन की झांकियां'

प्रथम खण्ड—दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन, मूल्य ।।)

द्वितीय खण्ड—मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला ? मूल्य ।।)

दोनों खण्ड एक साथ लेने पर मूल्य ।।।)

सामाजिक उपन्यास

सरला की भाभी

[ले०—श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति]

इस उपन्यास की अधिकाधिक मांग होने के कारण पुस्तक प्रायः समाप्त होने को है। आप अपनी कापियें अभी से मंगा लें, अन्यथा इसके पुनः मुद्रण तक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।

मूल्य २)

हिन्दू संगठन हौआ नहीं है

अपितु

जनता के उद्‌बोधन का मार्ग है।

इसलिये

हिन्दू-संगठन

[लेखक—स्वामी श्रद्धानन्द संन्यासी]

पुस्तक अवश्य पढ़ें। आज भी हिन्दुओं को मोहनिद्रा से जगाने की आवश्यकता बनी हुई है, भारत में बसने वाली प्रमुख जाति का शक्ति सम्पन्न होना राष्ट्र की शक्ति को बढ़ाने के लिये नितान्त आवश्यक है। इसी उद्देश्य से पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। मूल्य २)।

पं० मदनमोहन मालवीय

[श्री रामगोविन्द मिश्र]

महामना मालवीय जी का क्रमबद्ध जीवन-वृत्तान्त। उनके मन का और विचारों का सजीव चित्रण। मूल्य १।।) डाक व्यय ।=)

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस

नेता जी जन्मकाल से सन् १९४५ तक, आजाद हिन्द सरकार की स्थापना, आजाद हिन्द फौज का संचालन आदि समस्त कार्यों का विवरण। मूल्य १) डाक व्यय ।=)

पण्डित जवाहरलाल नेहरु

[श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति]

जवाहरलाल क्या हैं ? वे कैसे बने ? वे क्या चाहते हैं और क्या करते हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर इस पुस्तक में आपको मिलेगा।

मूल्य १।) डाक व्यय ।=)

प्राप्ति स्थान—विजय पुस्तक भण्डार, श्रद्धानंद बाजार, दिल्ली

न·'४८]

हास परिहास

दो रंगीले मित्र एक चित्रशाला में गये। दीवार पर लम्बे-लम्बे बालों वाले एक प्रसिद्ध कलाकार का चित्र देख कर एक बोला—"मैं समझता हूं, लम्बे बालों से साधारण आदमी भी बुद्धिमान-सा दीखने लगता है।"

दूसरा बोला — "नहीं, यह गलत है। कल रात अचानक ही मेरी पत्नी ने मेरे कोट के कालर में कुछ लम्बे-लम्बे बाल उलझे हुए देख लिये। उन बालों के कारण मुझे कितना बेवकूफ बनना पड़ा, यह मैं ही जानता हूँ!"

* * *

पति महाशय काफी रात गये घबराये हुए घर लौटे। पत्नी ने पूछा—"आज इतनी देर क्यों की?"

पति बोला — "कुछ न पूछो। साईकल में बत्ती न होने के कारण सिपाही ने पकड़ लिया। कल कोर्ट में हाजिर होना है — या बीस रुपये जुर्माना और या दस दिन की कैद।"

पत्नी ने सन्तोष की सांस लेते हुए कहा — "चलो अच्छा हुआ। तुम दस दिन की कैद ही स्वीकार कर लेना, क्योंकि आज नौकर के भाग जाने से खाना बनाने में मुझे दिक्कत हो रही है।"

* * *

"**मि**त्र, इतने दिन हो गये, तुमने अभी तक मेरे बीस रुपये वापस नहीं लौटाये।"

"ओह, मैं तो भूल ही गया था। खैर, परसों तुम्हारा जन्म-दिन है; मैं बधाई के साथ तुम्हें रुपये दूंगा।"

"तुम केवल रुपये ही ले आना। बधाई मैं अपने आपको स्वयं दे लूंगा।"

* * *

"**प**रन्तु, पिछली बार जब तुम मांगते हुए आये थे तो तुमने अपने बारे में हमें और ही बातें कही थीं!"

"श्रीमान् जी, क्या करूं, मेरी उन बातों पर कोई विश्वास ही नहीं करता। मजबूरन अब मैंने ये बातें कहनी शुरू कर दी हैं!"

* * * *

मित्र — (वैद्य जी से) क्यों भई, जो भी नया रोगी आता है, उससे पहले तुम यही पूछते हो कि रात को क्या खाया था; यह किस लिए?

वैद्य जी — इस से रोगी की हैसियत मालूम हो जाती है!

* * * *

एक क्लर्क महाशय दफ्तर की ओर लपके चले जा रहे थे। डर था कि कहीं देर न हो गई हो। राह चलते एक सज्जन को रोक कर बोले — "आपकी बजी में क्या घड़ा है?"

उस सज्जन ने जेब से घड़ी निकालकर और देख कर बड़ी नम्रता से उत्तर दिया — "जी नौने पौ का टाइम है।"

क्लर्क महाशय बोले—"थैंक थू!"

* * *

पति-पत्नी चायघर में चाय पी रहा थे। उनके निकट ही एक कुर्सी पर कोई सुन्दर रमणी कॉफी पी रही थी। पति देवता कनखियों से उस सुन्दरी को बार-बार देख लेते थे; यहां तक कि पत्नी ने उनकी नजर को हर बात पर तिरछा ही पाया। आखिर श्रीमती जी से न रहा गया, बोलीं — "देखिये ये टोस्ट ठंडे हुए जा रहे हैं। वह तो सब दर्पण और पाउडर की करामत है। आज शाम को हम भी अपना शृङ्गारदान खरीद लायंगे; आप चैन से चाय तो पीजिये।"

पति देवता इतने शरमा गए कि एक सांस में प्याले की सब चाय पी गये। दूसरे सांस में अपना और पत्नी के हिस्से का टोस्ट भी उड़ा गये।

* * *

स्कूल में एक जुआरी के सात वर्षीय लड़के को गिनती गिनने को कहा गया। वह तुरन्त गिनने लगा — "एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ, नौ, दस, गुलाम, बेगम, बादशाह।"

* * *

पागलखाने की छत पर मरम्मत हो रही थी। नगर का एक राज काम कर रहा था। उसे एक सहायक की आवश्यकता पड़ी। सुपरिण्टैन्डेन्ट ने उसे पागलखाने का ही एक व्यक्ति दे दिया जिसके सम्बन्ध में उसे विश्वास था कि वह अब बिल्कुल ठीक हो गया है। वह व्यक्ति दिन भर ठीक-ठीक काम करता रहा।

सायंकाल के समय काम समाप्त करके राज खड़ा हुआ। वह छत के बिल्कुल सिरे पर खड़ा था। इतने में उस मजदूर ने सहसा उसकी गर्दन पकड़ ली और भयानक अट्टहास करता हुआ कहने लगा, "आओ, अब ऊपर से नीचे छलांग लगाएं।"

राज मारे डर के कांपने लगा, परन्तु उस ने धैर्य और सूझ-बूझ का सहारा लेते हुए उत्तर दिया, "वाह, यह भी कोई बड़ा काम है! ऊपर से नीचे तो सभी छलांग लगा सकते हैं। आओ, हम नीचे उतरें और नीचे से ऊपर छलांग लगाएं।"

यह बात पागल को जंच गई और वह राज के साथ नीचे उतर आया।

* * *

अमरीका के एक निवासी ने आत्म-हत्या करली। उसकी जेब से यह पत्र मिला —

"मैंने एक विधवा से शादी की थी। उसकी एक बड़ी आयु की लड़की भी थी। मेरे पिता का मेरी पत्नी की लड़की से प्रेम हो गया और उसने उस लड़की से शादी कर ली। मेरी पत्नी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो मेरे पिता का साला लगा और मेरा मामा भी, क्योंकि वह मेरी सौतेली मां का भाई था। कालांतर में, मेरे पिता की पत्नी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो मेरा भाई तो हुआ ही, साथ ही धेवता भी हुआ, क्योंकि वह मेरी लड़की का पुत्र था। उधर मेरी पत्नी मेरी नानी भी हुई, क्योंकि वह मेरी मां की मां थी। इस तरह मैं अपनी पत्नी का धेवता भी तथा पति भी हुआ और क्योंकि नानी का पति नाना होता है, तो इस तरह मैं स्वयं अपना नाना हुआ।"

* * *

स्वस्थ शरीर ही सुन्दर हो सकता है

स्वास्थ्य और सौन्दर्य का चोली-दामन का साथ है। सच तो यह है कि स्वस्थ शरीर ही सुन्दर हो सकता है। रंग भले ही गोरा हो, खद्दोखाल व अवयव भले ही सांचे में ढले हों, क्रीम, पाउडर इत्यादि प्रसाधनों से भले ही सौन्दर्य-वृद्धि की गई हो, पर यदि शरीर स्वस्थ नहीं तो सौन्दर्य कभी भी आकर्षक नहीं हो सकता। इसके विपरीत, यदि कोई स्त्री सुन्दर न हो, परन्तु स्वस्थ हो, तो वह बरबस आकर्षण का केन्द्र बन जाती है। अतः सौन्दर्य-साधना के साथ-साथ स्वास्थ्य-साधना भी आवश्यक है।

भारतीय स्त्रियां प्रायः अपने स्वास्थ्य की ओर से उदासीन रहती हैं। बचपन में तो कन्यायें स्कूल या घर में शायद कुछ खेल-कूद लें, परन्तु गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करने के कुछ काल बाद ही वे घरेलू धन्धों में इतनी बुरी तरह उलझ जाती हैं कि वे अपने स्वास्थ्य, सौन्दर्य तथा वेशभूषा की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दे पातीं। स्वास्थ्य के ह्रास के साथ ही उनका सौन्दर्य भी नष्ट हो जाता है और बीस वर्ष की अवस्था में ही वे अधेड़-सी लगने लगती हैं। भारतीय स्त्री के मुकाबले में अंग्रेज स्त्री चालीस-पैंतालीस वर्ष की आयु में भी युवती और सुन्दर बनी रहती है। कारण स्पष्ट है। अंग्रेज महिला सदैव अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखती है। वह प्रति-दिन नियमित रूप से व्यायाम करती है। अपने खान-पान का विशेष ध्यान रखती है। इंगलैण्ड की एक सुन्दरी अपने सौन्दर्य का रहस्य यह बताती है—"मैं कभी ठूंस-ठूंस कर नहीं खाती। जिस दिन मैं भूलकर आवश्यकता से अधिक खाना खा लेती हूं, उस दिन मैं लम्बी सैर करती हूं। मैं सप्ताह में एक बार अवश्य ही फलाहार करती हूं। सैर में एक दिन भी नागा नहीं डालती। यही कारण है कि आज चालीस वर्ष की होते हुए भी मैं बीस वर्ष की सुन्दरी दिखलाई देती हूं।"

भारतीय स्त्रियों को भी अपने खान-पान, रहन-सहन तथा व्यायाम का सदा ध्यान रखना चाहिये। ऐसा करने से वे बहुत बड़ी आयु तक युवा, स्वस्थ तथा सुन्दर दिखाई दे सकती हैं।

सन् १९४८ अमरीकन लड़कियों के लिये शुभ

श्री जगदीश चन्द्र अरोड़ा

युवक युवती को पाने के लिये अधिक उत्सुक है या युवती युवक को ? यदि भारतीय ढंग से इस प्रश्न का उत्तर दिया जाय तो उत्तर होगा न युवक न युवती, बल्कि उनके माता-पिता। जब उनकी तबियत में यह बात जम जाती है कि हां, अब उनकी सन्तान को जीवन-साथी की जरूरत है तो वे दूसरे पक्ष की तलाश में निकल पड़ते हैं। तबियत में बात उस समय भी जम सकती है, जब दोनों में से कोई छः महीने का भी हो।

लेकिन पाताल-लोक में, जहां संयुक्त राज्य अमरीका नामक एक देश है, अवस्था केवल भिन्न ही नहीं, वरन् बिल्कुल विपरीत है। उदाहरण लीजिएगा।

ये हैं मेरी सेक्रेटरी (टाइपिस्ट) मिस शर्ले एडल। मिस शर्ले काफी हँसमुख और सुन्दर हैं। आयु २३ वर्ष की है। कसर सिर्फ इतनी है कि जरा मोटी हैं, परन्तु तो भी, स्वयं उन्हींके कथनानुसार, पिछले छः महीनों में वे पांच बार विवाह-प्रस्ताव को अस्वीकार कर चुकी हैं। उनसे जो अधिक सुन्दर हैं, जरा लम्बी और लचकदार हैं, उनको इससे दुगनी अथवा तिगुनी बार 'नहीं' कहने का सु-अवसर मिल जाता है। परन्तु मिस शर्ले की कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। वे कहती हैं, और मैं जानता हूं कि वे सेंट-लुइस निवासी एक युवक जेरी हरमन से प्रेम करती हैं। सेंट लुइस इस नगर से १०० मील दूर है, अतः वे प्रति शनि-रवि की छुट्टी में उससे मिलने जाती हैं। यह मित्रता आज की नहीं, तीन वर्ष पुरानी है। जेरी कहता है कि वह भी शर्ले से प्रेम करता है।

परन्तु शर्ले का भाग्य, उसने आज तक विवाह का प्रस्ताव नहीं किया और रिवाज के अनुसार शर्ले स्वयं भी प्रस्ताव नहीं कर सकती, न उसके माता-पिता, न अभिभावक, कोई नहीं। विवाह का प्रस्ताव करना है तो सिर्फ जेरी को ही, और मजा तो यह है कि 'कम्बख्त' को मालूम भी है। तो फिर क्या जेरी के प्रेम पर सन्देह किया जाय ?

इस लेख के लेखक श्री जगदीश चन्द्र अरोड़ा आजकल अमरीका में ही रहते हैं और वहां के रीति-रिवाजों से भली भांति परिचित हैं। 'लीप' के वर्ष में अमरीकन लड़कियों को विवाह करने की खुली छुट्टी मिल जाती है, यह बात वस्तुतः मनोरंजक है।
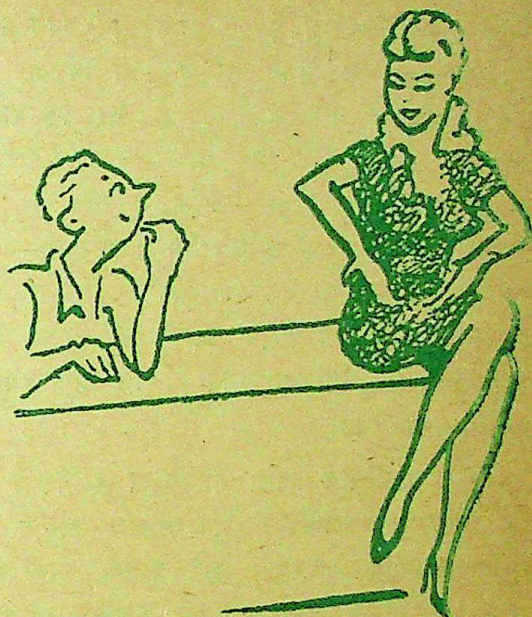
विवाह प्रस्ताव

खैर, अब तक बेचारी शर्ले के पास इसका उत्तर पाने की कोई राह नहीं थी; परन्तु सन् १६४८ के आते ही उसे स्वयं प्रस्ताव करने की खुली छुट्टी है और इससे मान-भंग भी नहीं होता। यदि जेरी ने स्वीकार कर लिया तो ठीक, वरना प्रेम झूठा।

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर सन् १६४८ ने शर्ले को इतनी खुली छुट्टी क्यों दे दी? कथा बहुत-बहुत पुरानी है, परन्तु तब से आज तक प्रति चौथे वर्ष, जिसे 'लीप ईयर' कहते हैं -- अर्थात् जब वर्ष की संख्या चार के अंक से बराबर-बराबर विभाजित हो जाती है और जिस वर्ष फरवरी मास में २६ दिन होते हैं और वर्ष में ३६६ दिन—लड़कियों को स्वयं विवाह का प्रस्ताव करने की छुट्टी मिल जाती है।

जिस कथा के आधार पर यह सुविधा प्राप्त हुई है, उसकी नींव इसी धारणा पर है कि विवाह की गरज अधिक युवती को ही होती है। आप कहेंगे कि शर्ले तो पांच बार 'नहीं' कर चुकी है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह विवाह के लिये उत्सुक नहीं और उसकी इस उत्सुकता का पूरा दारोमदार युवक की इच्छा पर ही अवलम्बित नहीं। कारण केवल यही है कि शर्ले को ये पांच युवक पसन्द नहीं आये और यह स्थिति वर्तमान नारी-स्वतन्त्रता की प्रवृत्ति के कारण है। अमरीकन युवक विवाह से पूर्व न जाने कितनी युवतियों से प्रेमालाप करता है,

परन्तु यह आवश्यक नहीं कि जिससे प्रेमालाप करे उससे शादी का प्रस्ताव भी करे। उधर लड़की कई बार 'नहीं' कर सकती है, परन्तु तो भी जिसे वह चाहती है उसे पाने के लिए वह उसी के प्रस्ताव के लिए मुंह तकती है, स्वयं पहला कदम नहीं उठा सकती।

पुराने समय में भी स्त्रियों को पुरुष के प्रस्ताव की राह देखनी पड़ती थी और कई तो राह देखते-देखते बूढ़ी हो जाती थीं। बाइबिल में एतद् विषयक एक मनोरंजक कहानी मिलती है। कुंआरी सेन्ट ब्रिडजेट अपने प्रेमी सेन्ट पैटरिक के प्रस्ताव करने की राह देख रही थी। जब उसके पिता ने देखा कि उनकी पुत्री पति पाने में सफल नहीं हो रही है तो उसे अलस्टर के एक व्यापारी के हाथ बेचने की तैयारी की, परन्तु ब्रिडजेट 'नन' (सन्यासिनी) बन गयी और गिरजाघर में लड़कियों को पढ़ाने लगी। परन्तु उसने वहां भी लड़कियों को उसी 'इन्तजार' करने वाली विपत्ति में पड़े देखा। अन्त में उसने एक दिन सेन्ट पैटरिक से चर्चा की — "लड़कियां एक दिन विद्रोह कर देंगी। वे कहती हैं कि उन्हें भी कभी-कभी स्वयं विवाह का प्रस्ताव करने की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए।" विचार-विमर्श के उपरान्त सेन्ट

पैटरिक ने कहा — "अच्छा, हर सातवें वर्ष लड़कियां स्वयं प्रस्ताव कर सकेंगी।" यह सुनते ही ब्रिडजेट ने पैटरिक के गले में बांहें डाल दीं और कहा कि सात साल बहुत ज्यादा हैं, चार साल का समय रखो। प्रेमालाप से प्रसन्न होकर पैटरिक ने कहा — "मैं लड़कियों को एक 'लीप' का वर्ष दूंगा जो और सब वर्षों से लम्बा होगा।" भाग्यवश वही लीप का वर्ष था और ब्रिडजेट ने स्वयं उसी समय पैटरिक से विवाह का प्रस्ताव किया जो स्वीकृत हो गया। और 'लीप इयर' का रिवाज चल पड़ा।

परन्तु यह रिवाज केवल परम्परागत ही नहीं है। सन् १२८८ में स्काटलैंड में एक सरकारी कानून के अनुसार लड़कियों को स्वयं पहले प्रस्ताव करने की हर लीप के वर्ष में स्वतन्त्रता मिली। इसके तुरन्त बाद ही फ्रांस ने भी ऐसा ही नियम बना दिया और पन्द्रहवीं शताब्दी में जेकोवा और फ्लोरेन्स के साम्राज्यों ने भी ऐसा नियम घोषित किया।

संयुक्त राज्य अमरीका में ऐसा नियम तो नहीं है, परन्तु परम्परागत रिवाज जरूर है और व्यापारी-विज्ञापन भी निकालते हैं — अपने मन चाहे पुरुष के लिए यह भेंट खरीदो – इत्यादि और स्कूल कालेजों में, लड़कियों के होस्टलों में लड़कों के लिए दावतें इत्यादि होती हैं। पश्चिमी सभ्यता की युवतियां सेन्ट ब्रिडजेट और पैटरिक के प्रति इस स्वतन्त्रता और सुविधा के लिए अत्यन्त कृतज्ञ हैं। लीप का वर्ष आते ही वे लड़कों पर एक तरह से आक्रमण कर देती हैं।

'लीप इयर' में लड़कियों के इस 'आक्रमण' से बचने के लिए लड़के विचित्र-विचित्र नियम बनाते हैं। दाढ़ी बढ़ाओ, महीने में एक बार से ज्यादा किसी लड़की के साथ घूमने न जाओ खाने अथवा सिनेमा देखने न जाओ, टेलीफोन पर दो मिनट से ज्यादा बात मत करो, महीने में नजदीकी रिश्तेदार लड़कियों को छोड़ कर किसी को एक पत्र से ज्यादा न लिखो, प्रेमसंगीत और सामूहिक नृत्य में भाग न लो इत्यादि। परन्तु यह सब कुछ व्यक्तिगत क्लबों और छात्रावासों तक ही सीमित है।

आधुनिक स्त्री-पुरुष। अब शायद पुरुष बराबरी के अधिकारों के लिये आंदोलन करेगा!

इतनी स्वतन्त्रता मिलने पर भी देखा गया है कि विवाह का प्रस्ताव करने में लड़कियां लड़कों की अपेक्षा अधिक लजालू हैं—यदि इसे लज्जा कहा जाय तो! सन् १९४० (लीप इयर) में संयुक्त राज्य में केवल १५६५००० विवाह हुए, जबकि १९४१ में १६७६०००। उसी प्रकार १९३६ के लीप इयर में १३६६०००, परन्तु १९३७ में १३७५०००। सन् १९३२ के लीप इयर में ९८१९०३, परन्तु १९३३ में १०९८००० शादियां हुईं।

लड़कियों की यह स्वतन्त्रता लड़कों की सांसत है। एक कोमलांगी के सम्मुख वह 'नहीं' क्यों कर कहे, यह उसकी सबसे बड़ी समस्या है।

सम्पादक के नाम

इस स्तम्भ में प्रति मास संपादक के नाम आये पाठकों के कुछ चुने हुए पत्र प्रकाशित किये जाते हैं और सर्वोत्कृष्ट पत्र पर पांच रुपये का पुरस्कार दिया जाता है। पत्र सार्वजनिक हित व रुचि के किसी भी विषय को लेकर लिखा जा सकता है।

पत्र संक्षिप्त, स्पष्ट और सुरुचिपूर्ण होना चाहिये और उसके साथ 'मनोरंजन पत्र-प्रतियोगिता कूपन' आना चाहिये।

दिल्ली रेडियो के प्रोग्राम

मुझे आशा है कि आप 'आल इण्डिया रेडियो दिल्ली' के प्रोग्रामों को सदा नहीं तो कभी-कभी अवश्य सुनते होंगे। मैं इसे अपना सौभाग्य कहूँ या दुर्भाग्य कि मुझे प्रतिदिन 'आल इण्डिया रेडियो दिल्ली' के प्रोग्राम सुनने ही पड़ते हैं। आपने यह प्रतिबन्ध लगा रखा है कि पाठकों के पत्र संक्षिप्त होने चाहियें, इसलिए यहां मैं अपने उस सौभाग्य या दुर्भाग्य का केवल निर्देश मात्र ही कर सकूंगा, विस्तार से विवेचन नहीं।

पुरस्कृत पत्र

हमें बताया गया है कि हम स्वतन्त्र हो गये हैं। उस स्वतन्त्रता का अर्थ हम समझते हैं, हमारे देश में हमारी भाषा, संस्कृति, रीति-रिवाज, वेशभूषा आदि भारतीयता द्योतक सभी वस्तुओं का सम्पूर्ण आधिपत्य। परन्तु सरकारी विभागों पर हमारी स्वाधीनता और भारतीयता का प्रचारक रेडियो आज भी विदेशी भाषा में प्रचार करना अधिक गौरव का काम समझता है। समाचारों को अंग्रेजी में जिस रूप में सुनाया जाता है, उस रूप में हिन्दी में सुनाने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। सम्भवतः रेडियो के अधिकारियों की दृष्टि में हमारे देश की जनता समाचारों के योग्य ही नहीं है। हिंदुस्तानी (?) के समाचारों को जो समय दिया जाता है, उससे कहीं अधिक समय अंग्रेजी के समाचारों के लिये आवश्यक समझा जाता है। साथ में सदा हमारा ही अपमान करने वाले बी॰ बी॰ सी॰ के अंग्रेजी समाचारों को हम लोगों पर लाद दिया जाता है। मैं समझता हूँ कि रेडियो वालों को समय रहते अंग्रेजी समाचारों के स्थान पर हिन्दी में समाचार आरम्भ कर देने चाहियें।

हमारे साथ केवल यही अन्याय नहीं किया जाता कि अंग्रेजी के समाचारों को अधिक समय दिया जाता है, अपितु समाचारों को जान-बूझ कर ऐसी खिचड़ी-भाषा में प्रसारित किया जाता है जो न तो लोकभाषा होती है और न ही किसी वर्ग की भाषा। मेरा अभिप्राय समाचारों की 'हिन्दुस्तानी भाषा' से है। रेडियो विभाग जिस उर्दू-अंग्रेजी-बहुल भाषा को गढ़ कर हम लोगों पर लादने का प्रयत्न कर रहा है, उससे तो रेडियो के प्रति अरुचि ही पैदा होती जा रही है। सम्भवतः रेडियो वालों का उद्देश्य यह है कि उसे सामान्यजन न सुन कर केवल विशिष्ट राजनीतिक विचारों के लोग ही सुनें और उन्हें 'वरदान' दें।

दिल्ली रेडियो से ब्राडकास्ट होने वाले अन्य प्रोग्रामों का भी वही हाल है जो समाचारों का है। ऐसा प्रतीत होता है कि दिल्ली रेडियो स्टेशन पर कोई साहित्यिक परामर्शदाता ही नहीं है। यदि है तो उसकी घोर उपेक्षा की जाती है। मैं रेडियो द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले 'नव भारत' के रूपकों की ओर आप का ध्यान आकृष्ट करता हूँ। प्रथम बार सोत्साह यह रूपक सुनने के विचार से रेडियो खोल कर बैठा। उस प्रथम रूपक को सुनने के बाद फिर कभी दूसरा रूपक सुनने का प्रयास नहीं किया। बच्चों और स्त्रियों के प्रोग्राम भी अत्यंत नीरस होते हैं। उन्हें उपस्थित करने की कुशलता तो रेडियो कलाकारों में है ही नहीं। मैं अपने रेडियो रखने वाले मित्रों से प्रायः सुनता हूँ कि उन लोगों ने अब ये प्रोग्राम सुनने बन्द कर दिये हैं। लगता है, रेडियो-

कर्मचारियों के पास नई सूझबूझ है ही नहीं। अभी हाल ही में मथुरा में हुए सूर-जयन्ती-समारोह के कार्यक्रम को रिले करने वाले उद्घोषक की सूझबूझ-शून्य घोषणाओं को इसके प्रमाण में उपस्थित करता हूँ।

वक्ताओं को माइक पर लाने से पूर्व उस पर उन्हें बोलने का अभ्यास भी नहीं कराया जाता। कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि वक्ता कोई चौथी-पांचवीं श्रेणी का विद्यार्थी है, जिसे मास्टर ने बैंच पर खड़ा करके पुस्तक पढ़ने का आदेश दिया है और वह रुक-रुक कर उसे पढ़ रहा है। माइक पर कुछ उद्घोषक पाठ तो 'नीति' करते हैं; परन्तु श्रोताओं को वह 'नीत' सुनाई देता है। सम्भवतः रेडियो के सर्वेसर्वा ध्वनि-विज्ञान से अनभिज्ञ हैं। उन्हें पता होना चाहिये कि यह कम्बख्त 'माइक' ह्रस्व मात्राओं को विशेषतः ह्रस्व 'इकार' को 'अकार' में बदल देता है।

अपने गीतों को ब्राडकास्ट कराने वाले शौकीन कवि तो रेडियो पर अपने गीत को सुनकर प्रसन्न हो सकते हैं, परन्तु श्रोता नहीं। अधिकांश गीत ऐसे उपस्थित किये जाते हैं जो गेय नहीं होते। बेचारा संगीतज्ञ वाद्य-यन्त्रों के सहारे गीतों की अगेयता को छिपाने का प्रयत्न करके भी छिपा नहीं पाता।

मेरे कुछ रेडियो-श्रोता मित्रों ने मुझसे यह भी शिकायत की है कि अब रेडियो केवल वैष्णव धर्म और इस्लाम का प्रचारक हो गया है। शैवों, शाक्तों, वल्लभ-कबीर आदि पंथियों, जैनों, आर्य समाजियों, ब्रह्म समाजियों और सिखों के प्रोग्राम तो शायद ही कभी उपस्थित किये जाते हों। मैं स्वयं वैष्णव हूँ, तो भी रेडियो-विभाग का यह साम्प्रदायिक पक्षपात देख कर मुझे खिन्नता होती है।

आशा है, रेडियो अधिकारी उपर्युक्त बातों की ओर उचित ध्यान देंगे और रेडियो-प्रोग्रामों के प्रति जनता की अरुचि को और नहीं बढ़ने देंगे।

सब्जीमंडी, दिल्ली

—वसंतकुमार

★

भारतीय मुद्रा पर विदेशी लिपियां

अभी थोड़े दिनों से भारत में पाकिस्तानी मुद्राओं और डाक-टिकटों ने प्रवेश किया है। इन मुद्राओं और टिकटों पर केवल अंग्रेजी और उर्दू अक्षरों का ही प्रयोग किया गया है। पाकिस्तान का अपने राष्ट्रीय जीवन के इतने अत्यल्प समय में स्वमन्तव्यानुसार मुद्राओं और टिकटों पर लिपि का प्रयोग वस्तुतः सराहनीय है। इसके विपरीत भारतीय मुद्राएं और डाक टिकटें लगभग सम्पूर्ण रूप से अंग्रेजी से भरी पड़ी हैं और नोटों को भी अधिकांश रूप में अंग्रेजी से भर कर एक कोने में आठ लिपियों की प्रदर्शिनी भी कर दी गई है। यह पद्धति हमारी दास-मनोवृत्ति की सूचक है। इसे हमें यथाशीघ्र हटा देना चाहिये और पाकिस्तान से एक पग आगे बढ़ कर मुद्राओं, टिकटों और नोटों पर केवल मात्र एक ही लिपि — देवनागरी — का प्रयोग करना चाहिये।

बम्बई

—राघवेन्द्र बी० ए०

भ्रांत प्रचार का दुःखद प्रभाव

'मनोरंजन' के गतांक में 'हिन्दी को इन हिन्दी वालों से बचाइये' पत्र में बहुत ही महत्वपूर्ण समस्या की ओर ध्यान खींचा गया है। युक्तप्रान्त के कुछ साहित्यिक मल्लों के इस प्रचार का कि "हिन्दी को शुद्ध रूप में युक्तप्रान्त के निवासी ही लिख और बोल सकते हैं" अन्य प्रांतों पर जो प्रभाव हो रहा है, वह हिन्दी के लिये हितकर नहीं है। यदि शुद्ध हिन्दी बोल सकने और लिख सकने की एक मात्र कसौटी युक्तप्रान्त का निवासी होना ही है तो हम जैसे पंजाब निवासियों को तो इसे दूर से ही प्रणाम करके अपनी मातृभाषा को समुन्नत करने में लग जाना चाहिये। यह प्रतिक्रिया केवल मुझ पर हुई हो, ऐसा नहीं है। इस समय पंजाब में 'पंजाबी स्पीकिंग पीपल्स लीग' की स्थापना हो गई है और उसके ४० हजार सदस्य बन चुके हैं। इस संस्था का उद्देश्य केवल मात्र पंजाबी के लिये आन्दोलन करना ही नहीं

है, अपितु हिन्दी का विरोध करना भी है। यह स्थिति जोकि हिन्दी के लिये हितकर नहीं है, युक्तप्रान्त के साहित्यिक मल्लों द्वारा ही पैदा कर दी गई है।

हिन्दी भाषियों के इस दावे के कारण केवल अन्य प्रान्तीय भाषाओं को अपनी उन्नति के लिये चेतना ही नहीं प्राप्त हुई है; अपितु अन्य प्रान्तों के व्यक्ति जिस आदर भावना के कारण हिन्दी में साहित्य-सृजन कर रहे थे, उससे भी वे विमुख हो रहे हैं। कुछ समय पूर्व उर्दू वालों में भी ऐसी वस्तु पैदा हो गई थी। दिल्ली-लखनऊ के उर्दू-लेखक पंजाब के उर्दू लेखकों को हीन दृष्टि से देखते थे और ठीक इसी प्रकार का प्रचार करते थे जैसा कि आज तथाकथित हिन्दी वाले कर रहे हैं। परन्तु उर्दू साहित्य का इतिहास यह स्पष्ट कर देता है कि दिल्ली और लखनऊ के साहित्यिक तो अपने दम्भ के कारण कोसों पीछे जा पड़े और पंजाब के उर्दू लेखक अपनी सतत तपस्या द्वारा उर्दू के उच्चकोटि के लेखकों के रूप में आ उपस्थित हुए।

अब यह निश्चय करना तो युक्तप्रान्त के साहित्यिक मल्लों का काम है कि वे अन्य प्रान्तों के हिन्दी लेखकों को अपनाते हैं अथवा उन्हें दुत्कारते हैं; परन्तु हमारा विचार अवश्य है कि हिन्दी को तो उसे "शुद्ध बोल-लिख सकने वालों" के पास छोड़ कर हमें अपनी प्रान्तीय भाषाओं को समृद्ध बनाने का यत्न करना चाहिये, जिससे हम लोग जनता के अधिक निकट पहुंच सकें।

जालंधर

—वेदव्रत 'आर्य'

★

चार अनमोल अनुभव

मेरी आयु इस समय ४५ वर्ष की है। मैंने जीवन के बहुत-से उतार-चढ़ाव देखे हैं, विविध प्रकार के अनुभवों और परिस्थितियों से होकर गुजरा हूँ। अब मैंने निम्नलिखित चार बातों को चिरंतन सत्य के रूप में स्वीकार कर लिया है —

माया आनी जानी है,
शरीर नाशवान है,
संसार में कोई किसी का नहीं है,
सब तज, हर भज।

ऐहिक जीवन के इन तथ्यों से भला कौन इन्कार कर सकता है!

कटरा नील, दिल्ली

—दया नारायण धौन

★

'मनोरंजन' की लोकप्रियता

'मनोरंजन' घर में सबको आकर्षक और प्रिय लगता है। आस-पड़ोस वाले तक इसके आने की प्रतीक्षा करते हैं। तुम्हारी सफलता इससे अधिक और क्या हो सकती है। तुम्हें बार-बार बधाई है। 'मनोरंजन' जन-जन के मन में घर करता चला जाए, यही मेरी कामना है!

बरेली

—निरंकारदेव सेवक

★

कूपन

मनोरंजन-पत्र-प्रतियोगिता

नं० ३

श्री 'अज्ञेय'

(पृष्ठ १२ का शेष)

"यह बताना मुश्किल है, क्योंकि इसके लिए सन्तोष की परिभाषा करनी पड़ेगी। बात दरअसल यह है कि अलग-अलग चीजों से अलग-अलग प्रकार का संतोष होता है। वैसे मुझे अपनी एक कहानी बहुत प्रिय है। नाम है — 'कड़ियां'। उसमें 'इमोशनल शॉक' लगता है। यह कहानी दो घटनाओं से बनी है। छः महीने तक मेरी समझ में नहीं आया कि इन दो घटनाओं में परस्पर क्या सम्बन्ध है? लेकिन मन कहता था कि हां, सम्बन्ध है, पर दिखता नहीं है कि कैसा सम्बन्ध है। एक दिन अचानक देखा कि दोनों घटनाएं परस्पर सम्बन्धित हैं और मिलकर उस व्यक्ति को प्रेरित कर सकती हैं। इसी में उस कहानी की 'यूनिटी' है। उस कहानी को मैं अपनी सफलता मानता हूं। वह टैकनीक के अनोखेपन के साथ-साथ एक मनोवैज्ञानिक हलचल को भी शमन करती है और अपने ढंग की नवीन कहानी होने के कारण भी उसका महत्व है। जहां तक कविताओं का सम्बन्ध है, 'इत्यलम्' के आखिरी दो खण्डों में संकलित कुछ कविताएं मुझे ज्यादा अच्छी लगती हैं। उनमें 'रात होते, प्रात होते,' 'मुक्त है आकाश,' 'नन्ही शिखा,' 'बाहु मेरे रुके रहे,' 'पानी बरसा,' 'माघ, फागुन, चैत,' 'जन्म-दिवस' तो और भी अच्छी लगती हैं। 'विपथगा' की दो-एक कहानियां भी प्रिय हैं। बाकी संग्रह 'परम्परा' का अधिक अच्छा बन पड़ा है।"

अज्ञेय जी टैकनिशियन हैं और शैलीकार की दृष्टि से हिन्दी में उनका अपना स्थान है। उनकी कृतियों में एक विशेष प्रकार का तारतम्य और गहराई रहती है। कोई भी कृति हो — छोटी या बड़ी — एक निश्चित रेखा में उसका विकास होगा; यह टैकनिशियन की विशेषता का परिचायक है। इसके लिए साधना की भी आवश्यकता है। यही सोच कर मैंने उनसे पूछा — "सृजन के समय आपकी मनःस्थिति क्या होती है?"

उन्होंने कहा — "कहानी तो मैं आमतौर पर दो 'सिटिङ्ग' में लिखता हूँ। कभी-कभी एक सिटिङ्ग में भी लिख डालता हूँ। उपन्यास के लिए ४–६ महीने सोचना पड़ता है। नोट्स लेता हूं। जब सामग्री तैयार हो जाती है, तब १०–१२ घण्टे की सिटिङ्गों में लिखता हूँ। 'शेखर' के दूसरे भाग का आखिरी खण्ड एक सिटिङ्ग में सवेरे ८ से रात के २॥ बजे तक लिखा था। बीच में दो बार चाय पी थी। थकने पर टहलने लगता था और उंगलियां के दुखने पर दो उंगलियों से कलम पकड़ कर लिखता था। ५०–५५ फुलस्केप पेज तक एक सिटिङ्ग में लिख लेता हूँ। उन दिनों पढ़ना बन्द रहता है। डाक खोल कर भी नहीं देखता। परिचितों तक से नहीं मिलता। किसी प्रकार की बाधा नहीं चाहता।

"मेरी राय में उपन्यास-लेखक को कम से कम छः महीने अनुभव संचय करना चाहिए। उसके साथ ही संवेदना भी गहरी होनी चाहिए। फिर जीवन में घटनाएं भी होनी चाहिएं। अपने में ही नहीं, दूसरों के जीवन की घटनाओं में भी लेखक की पैठ होनी चाहिए। संवेदना के सहारे अपने ही नहीं, दूसरों के भी अनुभव का संचय न करते रहने से लेखक का 'स्टाक' शीघ्र खत्म हो जाता है और लेखन-कार्य रुक जाता है या आवृत्ति होने लगती है। हमारी कमजोरी तो यह है कि न तो हमारे मन गहरे होते हैं और न हम ऊंचे उठते हैं। मैं प्रयत्न करता हूं कि अनुभव के विस्तार और गहराई को बनाए रहूँ। इसीलिए नोट्स लेता रहता हूँ और 'प्लानिङ्ग' करता रहता हूँ। यहां तक कि कागज पर लिखने से पहले दो एक बार तो रचना को मनमें ही लिख लेता हूं। अच्छे वाक्यों, कथोपकथन के अंशों, मार्मिक उक्तियों आदि को नोट करता रहता हूँ और कौन कहां जायगा, यह अंकित कर देता हूँ। कोई अच्छी 'इमेज' सूझती है तो उसे लिख लेता हूं। कभी वाद-विवाद के लिए कोई प्रश्न लिख लेता हूं। इस अच्छे संचय में से उपन्यास लिखते समय अवसर के अनुकूल उपयुक्त सामग्री ले लेता हूं या तत्काल पुनः ढाल लेता हूँ।"

इसी बीच जब मैंने उनसे पूछा कि क्या आप प्रत्येक रचना के लिए योजना बनाना आवश्यक समझते हैं, तो उन्होंने बताया --- 'इसमें दोनों बातें होती हैं। कुछ रचनाओं के लिए जान-बूझकर योजना बनानी होती है और कुछ रचनाओं के लिए नहीं। उदाहरण के लिए कुछ चीजें तो मैंने स्वप्न में ही देखी हैं और ज्यों की त्यों लिख डाली हैं। 'गृह-त्याग' कहानी स्वप्न में देखी हुई कहानी है। मेरा विश्वास है कि स्वप्न अकारण नहीं देखे जाते। उनकी भी एक क्रमबद्ध शृङ्खला होती है, जिसका जीवन से कहीं न कहीं सम्बन्ध होता ही है।"

यह कहते-कहते उन्होंने अपने जेल-जीवन का वर्णन किया। उसी सिलसिले में वे कहने लगे--"जेल में तो मैंने अंधेरे में लिखने का अभ्यास कर लिया था। कागज-पेंसिल सिरहाने रखकर सो जाता था। जब कविता या कोई अन्य चीज सूझती थी तो अंधेरे में ही लिख डालता था और चुपचाप लिखकर सो जाता था। एक बार मैंने देखा कि मैं स्वर्ग में हूं, वहां बड़े साहब की परेड होनी है। अतः कपड़े धोने होंगे। इसके लिए साबुन का पार्सल घर से आया है। साबुन खोला तो उसके ऊपर लिपटे कागज में मेरे नाम पत्र है। पत्र क्या है, एक लम्बी कविता है। वह मैंने पढ़ी। तभी स्वप्न टूट गया। जागा तो कविता अभी याद थी। मैंने कागज पर लिखी और फिर सो गया। सवेरे उठा तो कुछ याद नहीं था। कागज पर लिखी कविता देखकर स्वप्न की याद आयी। देखा कि कविता बिल्कुल दुरुस्त है, केवल दो पंक्तियों में छन्दोभंग था, जो ठीक कर दिया। यह कविता 'चिन्ता' में है--पृष्ठ ७५ पर।"

"अपने समकालीन लेखकों के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?"

"सच पूछिए तो आजकल के अनेक लेखक ऐसे हैं, जिनकी रचनाएं पढ़ने के बाद लगता है कि हम हिन्दी में जो लिख रहे हैं, सब रद्दी लिख रहे हैं; हममें महान् लिखने वाले कुछ हैं हीं नहीं। फिर मैं सोचता हूँ कि हिन्दुस्तानी लेखक और उसके जीवनानुभव का क्षेत्र इतना सीमित है कि उसमें से बड़ी चीज निकल ही नहीं सकती। इसीलिए कभी-कभी सोचता हूँ कि लिखना पढ़ना बन्द करके पहले इसी परिस्थिति का सुधार करना चाहिए। फिर यदि रहे तो हम लिखेंगे और यदि हम नहीं रहे तो और तो लिखेंगे। फिर भी अगर मैं लिखता हूँ तो इसलिए कि मुझे कई अन्य लेखकों की अपेक्षा कुछ अधिक सुविधायें प्राप्त होती रही हैं। उनके सहारे यदि लिख सकूं तो मुझे लिखना चाहिए। कलम छोड़ कर कोड़ा चलाऊं और फिर कोड़ा छोड़ कलम ले बैठूं, यह समझ में आता है। लेकिन जब कोड़ा चलाऊं तो यह समझलूं कि मैं कलम चला रहा हूँ या कि यही श्रेष्ठ कलम है, यह मेरे लिए मुश्किल है। यह दुहरे कर्त्तव्य का प्रश्न सबके सामने आता है, आना चाहिए। और जो इसे हल कर सकें, उन्हें करना चाहिए--वे भाग्यशाली हैं।"

अज्ञेय जी, जैसा कि मैं आरम्भ में कह चुका हूँ, स्वाभाविक कलाकार हैं और साहित्य में शुद्ध कलाकार की दृष्टि से ही कार्य करते हैं; इसलिए उनके पास जो दृष्टिकोण है, वह मौलिक है। ऐसे व्यक्ति का जीवन साधारण लोगों की अपेक्षा अधिक रहस्यमय और गहरा होता है। यही कारण है कि उनसे प्रश्न पूछते-पूछते तबियत नहीं भरती। ऐसे कलाकारों से बात करते हुए व्यक्ति अपने को ऊंचा उठा हुआ पाता है। 'अज्ञेय' जी के साथ बात करते हुए मेरी स्थिति वैसी ही थी। इसलिये प्रश्न करता ही जाता था। हमारी बैठक को २-२॥ घण्टे हो चुके थे। खाने का समय हो गया था। बातचीत बीच में ही बन्द कर देनी पड़ी।

* * *

रसोईघर में हम चार लोग थे--श्री अज्ञेय जी, स्व० प्रेमचन्द जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री श्रीपतराय, श्री गजानन माधव मुक्तिबोध और मैं। सन् ४१ के बाद अज्ञेय जी से यह पहली मुलाकात थी। मिलने से पहले लोगों ने उनके बारे में मुझसे कहा था--"अज्ञेय बहुत बड़ा आदमी हो गया है। तीन सौ-साढ़े तीन सौ रुपये के बंगले में रहता है। 'एरिस्ट्रोक्रेसी' की हद है। अब वह पहला अज्ञेय नहीं है। फौज में जाकर बदल गया है।" आदि आदि। अपनी असमर्थता कहूँ या क्या, मैंने उन बातों पर विश्वास-सा कर लिया था; परन्तु 'अज्ञेय' जी के साथ घण्टों बातचीत करते समय और फिर रसोई में बैठ कर इकट्ठे भोजन करते समय मैंने अनुभव किया कि ये सब बातें निराधार हैं, भ्रम हैं। मैं उनमें वही

भोलापन, वही आत्मीयता, वही विशालता, वही सहृदयता पा रहा था, जो आगरे में कभी यमुना के किनारे बीहड़ में सैर के लिए जाते समय पाई थी। उनमें रत्ती भर भी परिवर्तन न हुआ था। हां, गम्भीरता अवश्य कुछ बढ़ी हुई जान पड़ती थी। यह भी देखता था कि उनकी वह मधुर मुसकान विषाद से पूर्ण हो गई है, पर वे दृढ़ता के कारण विषाद को व्यक्त नहीं होने देते मैं चूंकि उनको पहले से थोड़ा-बहुत जानता हूँ, इसलिए यह अनुभव करता हूँ। साधारण व्यक्ति सहसा आज के 'अज्ञेय' के मन के विषाद को नहीं समझ सकता।

ये पंक्तियां मैंने सोद्देश्य लिखी हैं। मैं चाहता हूँ कि किसी कलाकार के सम्बन्ध में फैले इस प्रकार के भ्रम पर विश्वास न किया जाय।

* * *

भोजन हो चुका। मुक्तिबोध जी जाने की जल्दी में थे। अज्ञेय जी ने उन्हें 'इत्यलम्' की एक प्रति भेंट करके विदा कर दिया। उनके जाने के बाद मैं फिर अपने काम में जुट गया। मैंने अज्ञेय जी से पूछा — "क्या साहित्य-साधना से कभी आपका जी भी ऊबा है? यदि हां, तो उसके क्या कारण रहे हैं?"

वे बोले — "यों तो कभी कभी अपने आप से भी मन ऊबता है, लेकिन वैसे कोई ऐसी बात नहीं है, जो मन को उबाए। लारेंस ने कहा है - 'काश कि मैं झरने के पानी में झूमती हुई पत्ती होता, क्योंकि मैं अपने आपसे ऊब गया हूँ।' मेरी 'करमकल्ला' वाली कविता भी तो ऐसी ही मनःस्थिति की सूचक है।"

यहीं मैंने प्रश्न किया — "क्या आपकी दृष्टि में साहित्योपजीवी होकर जिया जा सकता है?"

उनका कहना था — "यों तो जिया ही जा सकता है, पर यहां बड़ी मुश्किल से। मेरी राय जानना चाहते हैं तो यथासम्भव साहित्य को उपजीव्य न बनाना चाहिए। साहित्यकार अगर अपनी रोटी साहित्य के अलावा किसी और काम से—साहित्य से सम्बन्ध न रखने वाले काम से — कमावे तो अच्छा है। उसी में उसकी मुक्ति है। फिर भले ही वह जूता गांठने का काम क्यों न हो! साहित्य को उपजीव्य बनाना अपने को बेचना है। हर कोई अपना एक अंश बेचता है, लेकिन वह अंश क्यों बेचा जाय, जिसका दाता होने का हम दावा करते हैं या करने के अधिकारी बने रहना चाहते हैं? साहित्य से मिलता-जुलता काम—यथा पत्र-सम्पादन आदि करने में भी यह खतरा रहता है कि हम भूल जाते हैं कि हमें क्या नहीं बेचना है, या कि अपने को धोखे में डाल सकते हैं। जूता गांठने में उस भूल की कोई गुंजायश नहीं—वह स्पष्टतया बेचा हुआ श्रम है। हां, जो उसी काम का कलाकार हो उसे फिर और कुछ बेचना चाहिये तात्पर्य यह है कि साधना को साधना रखना चाहिए और सब कला-सृजन साधना है। उधर रोटी भी अनिवार्य है। उसके लिए साधना से अलग अपना श्रम-विनिमय करना चाहिए। यों पत्रकार होकर भी अपने दो अलग कर्मों को अलग-अलग निबाह लेना असंभव नहीं है, पर बहुत कठिन अवश्य है और उसकी सफलता के उदाहरण भी देखने में आते हैं।"

"आप कवि भी हैं और कहानी-लेखक भी। लेकिन यह बताइये कि पहले आप कवि हैं या कहानी-लेखक?"

'अज्ञेय' जी इस प्रश्न पर कुछ मुस्कराए और बोले - "मैं तो 'मैं' पहले हूँ, लेकिन इधर देखता हूँ कि जो कुछ और जैसा कुछ कहना चाहता हूँ, उसके लिए उपन्यास और कहानी ठीक माध्यम हैं। काफी पहले मानता था कि कवि हूँ, पर अब नहीं मानता। प्रतिभा यदि है तो किसी भी माध्यम से व्यक्त हो सकती है, लेकिन फिर भी जब एक कला का कलाकार है तो वह किसी दूसरी कला में एक विशेष सीमा तक ही सफल हो सकता है। यों किसी भी कला के लिए अभिव्यक्ति और समझने की शक्ति होनी ही चाहिए। इतना अवश्य है कि कहानी के दोष ज्यादा स्पष्ट दीख जाते हैं, इसलिए काम-चलाऊ कवि होने से काम-चलाऊ कहानीकार होना मुश्किल है।"

यहीं मैंने पूछा —"आपकी राय में हिन्दी के कौन कहानी-लेखक अच्छे हैं?"

"अच्छे कथाकार में व्यापक संवेदना, सामाजिकता या कि समाजगत मानव के साथ सहानुभूति, निर्ममत्व, और टैकनीक पर अधिकार—ये चार गुण होने अनिवार्य हैं। हिन्दी में सब से अच्छा और महत्वपूर्ण कथाकार मैं जैनेन्द्र को मानता हूं और हिन्दुस्तान में रवीन्द्र को। जिनकी कृतियों से मैं परिचित हूं, उनमें से

यशपाल और 'अश्क' भी मुझे अच्छे लगते हैं। उपन्यासकारों में महान कहलाने वाला कोई नहीं है। यों अपेक्षया तो प्रेमचन्द जी का स्थान है ही। 'गोदान' और 'त्यागपत्र' को मैं उपन्यास की सफलता मानता हूं।"

"कुछ लोग आपको प्रयोगवादी कवि कहते हैं और आपको प्रयोगवादी स्कूल का प्रवर्त्तक मानते हैं। आपका इस सम्बन्ध में क्या विचार है?"

"प्रयोग के साथ 'वाद' न लगाइए। यदि किसी का कोई अधिकार छिन जाय और वह विरोध करे तो वह विरोध आग्रह का रूप ले लेता है, पर वह 'वाद' नहीं है। प्रयोग करना मैं कलाकार का जन्म-सिद्ध अधिकार मानता हूं। सब प्रयोग सफल नहीं होते, यह प्रयोगशीलता का दोष नहीं है और न इसके आधार पर यही कहा जा सकता है कि प्रयोग नहीं करना चाहिए। प्रयोग को लेकर मेरा वाद है तो इतना ही कि कोई भी कला अपनी अभिव्यंजना के विकास और उन्नति के लिए प्रयोग मांगती है और प्रयोग के बिना प्रगति नहीं हो सकती। हिन्दी और उर्दू के कई नए कवियों ने नए प्रयोगों से काव्य-साहित्य को नई अभिव्यंजनाएं दी हैं। इनमें से कुछ प्रगतिशील लेखक संघ के सदस्य हैं, कुछ नहीं। अभिव्यक्ति के लिए नए साधनों का अन्वेषण या आविष्कार जीवन के लिए नए साधनों का अन्वेषण या आविष्कार है। वह बृहत्तर या सम्पन्नतर जीवन की खोज है। यदि कोई कलाकार कहे कि मैंने जीवन भर कला के क्षेत्र में कोई प्रयोग नहीं किया तो मैं उसका अर्थ यही समझूंगा कि उसने जीवन को उन्नत बनाने की कोई चेष्टा नहीं की।"

मैं देख रहा था कि इस प्रश्न का उत्तर देते समय 'अज्ञेय' जी काफी गम्भीर हो गए हैं। इसलिए मैंने एक प्रश्न उनसे 'शेखर' के विषय में पूछा, ताकि गम्भीरता कम हो जाय। वह प्रश्न था—"क्या 'शेखर : एक जीवनी' का नायक शेखर स्वयं लेखक 'अज्ञेय' ही है?"

"इसका उत्तर मैं 'शेखर' की भूमिका में दे चुका हूं। लेकिन यह बात वहीं तक सही है, जहां तक कि कोई भी रचना उसके रचयिता के विकास का इतिहास या प्रतिबिम्ब होती है, उससे अधिक नहीं। अगर मैं शेखर हूँ तो क्या शेखर का पिता मदनसिंह, मुहसिन, मणिका, सदाशिव, विद्यावती, शशि और शुक्कू मास्टर भी मैं नहीं हूँ। एक बात यह भी है कि जिस काल के जीवन-प्रकार की आलोचना करना मैंने चाहा है वह मेरा अपना काल है और जिस प्रकार के या जिस श्रेणी के लोगों की आलोचना मैंने की है, वे मेरे ही वर्ग के या मेरे ही आसपास के लोगों जैसे लोग रहे हैं। आज के अपने ज्ञान का आरोप मैंने बीते काल पर न करने की कोशिश की है। ऐसा मैंने ऐतिहासिक सत्य की रक्षार्थ किया है। इससे भ्रांति होनी तो नहीं चाहिए लेकिन मैं जानता हूं कि कुछ लोगों को हुई है।"

"हमारे साहित्य का भविष्य क्या होगा?"

"भविष्य उज्ज्वल नहीं है, यह कहना तो जीवित रहने की प्रेरणा से इन्कार करना है। लेकिन ऐसी कोई अनायास उज्ज्वलता भी मुझे नहीं दिखती, जिसके पीछे घोर संघर्ष और मनोयोगपूर्ण परिश्रम न हो। साहित्य सम्पूर्ण सामाजिक अस्तित्व की अभिव्यक्ति है। हमारा आज का जीवन न सम्पूर्ण है, न सामाजिक और न सच्चे अर्थों में जीवन है; तब इसकी अभिव्यक्ति सम्पूर्ण कैसे होगी? समाज के अन्दर समाज हैं। समाज और समाजों का संघर्ष है। फिर व्यक्ति और व्यक्ति का, व्यक्ति और समाजों का तथा समाज का संघर्ष और अंतःसंघर्ष है। ये सब जहां कर्म-प्रेरक हैं, वहां सम्पूर्ण सामूहिक जीवन के उपयोग में बाधक भी हैं। साहित्यकारों को यह संघर्ष भी करना है और लिखना भी है। लिखने में उस संघर्ष को अभिव्यक्त भी करना है और समाहित भी। जितना बड़ा काम है, उतने समर्थ कर्त्ता अपने समकालीनों में मुझे नहीं दिखते। लेकिन उनमें जहां कुछ को परास्त होते देखता हूँ, वहां यह भी देखता हूँ कि कुछ लड़ रहे हैं और साथ ही यह भी उद्योग कर रहे हैं कि संघर्ष का उनके लिए निजी परिणाम चाहे कुछ भी हो, क्षमता रहते-रहते वे कुछ औरों को संघर्ष जारी रखने के लिए प्रस्तुत कर देंगे।"

हमारी बातचीत को ५-६ घण्टे हो गए थे। प्रश्न भी इतने अधिक पूछ चुका था कि अब कुछ पूछने की इच्छा न थी। कुछ और वार्तालाप चलता भी, लेकिन 'हंस' के संपादक श्री अमृतराय सपरिवार आगए, इसलिए हमें स्वभावतः अपना कार्य समाप्त कर देना पड़ा।

★ दर्द ★ आज की रात ★ नाटक

बाजार में बच्चों के लिये दूरबीन जैसा एक खिलौना बिकता है। उसमें कांच के कई रंगों के छोटे-छोटे टुकड़े होते हैं, जो उस खिलौने को घुमाने से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में कई तरह की नई-नई आकृतियों में परिवर्तित होते जाते हैं। ठीक यही प्रक्रिया भारत में उन चल-चित्रों के निर्माण की है जो संगीत-प्रधान सामाजिक चित्र कहलाते हैं। उनमें मौलिकता अथवा नवीनता के बहुत कम दर्शन होते हैं। एक ही प्रकार के कथानक को तोड़ मरोड़ कर, कुछ घटनाओं व पात्रों का हेर-फेर करके, यहां-वहां एक ही तरह के आठ-नौ गीतों को जोड़कर और एक ही तरह के कलाकारों को इकट्ठा करके नया चित्र तैयार कर दिया जाता है। उदाहरण के लिये हम 'दर्द', 'आज की रात' और 'नाटक' —ये तीन नये (?) चित्र लेते हैं। तीनों का कथानक प्रेम और विवाह की समस्या को लेकर एक लड़के और दो लड़कियों के इर्द-गिर्द घूमता है और अन्त में लम्बे घटनाक्रम द्वारा एक लड़की को रास्ते से हटाकर और दूसरी लड़की और लड़के का मिलन दिखाकर चित्रों को सुखांत बना दिया गया है। कथानकों का यह साम्य 'दर्द' और 'नाटक' में और भी स्पष्ट है। शायद इस लिये कि ये दोनों चित्र एक ही कम्पनी — कारदार प्रोडक्शंस—द्वारा निर्मित हैं। दोनों चित्रों में अन्त में उस लड़की की मृत्यु हो जाती है जिससे चित्र का नायक प्रेम नहीं करता। अन्तर केवल इतना है कि 'दर्द' में वह लड़की टी० बी० से मरती है और 'नाटक' में वह लड़की पिस्तौल से आत्म-हत्या करती है दोनों चित्रों में वह लड़की, जिससे कि नायक प्रेम करता है, ग्रामीण है दोनों चित्रों में नायक और नायिका के प्रेम-सम्बन्ध का रहस्य एक अंगूठी से प्रकट होता है। दोनों ही चित्रों में खलनायक (विलेन) का अभिनय एक ही अभिनेता ने लगभग एक ही तरह की भाव-भंगी, वेशभूषा और कार्य-कलाप द्वारा किया है। अन्तर केवल इतना ही है कि 'नाटक' का खलनायक अन्त में नायिका का भाई बन जाता है और 'दर्द' का खलनायक कहानी के अन्तिम विकास के लिये अनावश्यक समझ कर रास्ते में ही छोड़ दिया जाता है।

दोनों चित्रों के कथानकों में इतनी समानता होते हुए भी सिने-कला की दृष्टि से दोनों के गुणात्मक स्तर में काफी अन्तर है। 'नाटक' की अपेक्षा 'दर्द' निश्चय ही एक उच्चकोटि का चित्र है। कारण स्पष्ट है। जहां 'दर्द' का निर्देशन स्वयं श्री कारदार ने किया है, वहां नाटक का निर्देशन उनके एक सहकारी ने किया है। दोनों में से किसने किसकी नकल की है, यह तथ्य तो दोनों चित्रों के निर्माण की तिथियों से ही मालूम हो सकता है।

'आज की रात' का निर्माण फेमस पिक्चर्ज नामक कम्पनी ने किया है। कम्पनियां भिन्न होते हुए भी 'नाटक' और 'आज की रात' के कथानक के मूल तत्व काफी आपस में मिलते हैं। दोनों चित्रों की उपनायिकायें बड़े घर की हैं, बदमिजाज हैं, मिथ्या घमण्ड से भरी हुई हैं और नायक की कुल-समाज धर्म सम्मत वैध पत्नियां है। दोनों चित्रों के नायक माता-पिता द्वारा चुनी गई इन पत्नियों से घृणा करते हैं। दोनों चित्रों के कथानक खलनायक के शरारत भरे कृत्यों से दिशा ग्रहण करते हैं और दोनों ही चित्रों के खलनायक अन्त में नायिका के हमदर्द और सहायक बन जाते हैं। कथानकों के इस साम्य के बावजूद भी दोनों चित्रों का अन्त भिन्न रूप से हुआ है (वैसे तो दोनों में ही दो लड़कियों में से एक को रास्ते में से हटाया गया है।) 'आज की रात' का अन्त नितांत व्यावहारिक तथा बुद्धि-संगत है, जबकि 'नाटक' का अन्त वही पुराने ढर्रे का है। 'नाटक' की अपेक्षा 'आज की रात' में प्रतिपादन सम्बन्धी थोड़ी बहुत मौलिकता भी है। कहानी का उत्तरार्द्ध बहुत ही मार्मिक बन पड़ा है। अतः सिने-कला की दृष्टि से यदि दोनों में तुलना की जाये तो 'आज की रात' चित्र श्रेष्ठ ठहरता है और इसका श्रेय इसके निर्देशक व कहानीकार श्री डी० डी० कश्यप को है।

तीनों चित्रों के कथानकों पर विचार करने के बाद हम इनके अभिनेताओं को लेते हैं। तीनों चित्रों की मुख्य भूमिकाओं में सुरैया ने ही काम किया है। यह ठीक है कि सुरैया एक मंजी हुई कलाकार है; परन्तु उसे एक साथ तीनों चित्रों में एक-सी भूमिका में देखकर उसके अभिनय में एकरसता का दोष ढूंढना कठिन नहीं है। हां, 'आज की रात' में वह अधिक आकर्षक और सफल जान पड़ती है। इस चित्र की उपनायिका अनिता शर्मा उसके सम्मुख ठहर ही नहीं पाती। 'नाटक' में भी यही अवस्था है; परन्तु 'दर्द' में पांसा पलट जाता है। 'दर्द' की उपनायिका 'पहली नजर' की ख्याति-प्राप्त अभिनेत्री मुनव्वर सुलताना है, जो सुरैया की तरह ही विशेष सुन्दर न होते हुए भी, अभिनय कला में अपनी श्रेष्ठता की धाक जमाये बिना नहीं रहती। मुनव्वर सुलताना के व्यक्तित्व में एक ऐसा आकर्षण है जो अद्वितीय है। 'पहली नजर' में उसने किस तरह वीणा जैसी कुशल कलाकार को मात दी थी, यह सिनेमा-प्रेमी नहीं भूले होंगे। अस्तु। तीनों चित्रों में नायक की भूमिकाओं में क्रमशः नुसरत, मोतीलाल और अमर ने काम किया है। कथानकों को ध्यान में रखते हुए जैसा कि स्वाभाविक है, इन तीनों की भूमिकायें एक-सी हैं। हां, तीनों में से मोतीलाल का काम निश्चय ही सर्वश्रेष्ठ है। खलनायकों में से 'आज की रात' के खलनायक राज मेहरा का काम प्रशंसनीय है। 'दर्द' व 'नाटक' का खलनायक एक ही अभिनेता है और वह यशस्वी अभिनेता याकूब की 'कार्बन कॉपी' जान पड़ता है। 'आज की रात' में शाहनवाज का अभिनय उत्कृष्टतम है।

चूंकि ये तीनों चित्र संगीत-प्रधान हैं, अतः इनके संगीत पर भी विचार करना आवश्यक है। 'दर्द' और 'नाटक' के संगीत का निर्देशन किया है श्री नौशाद ने और 'आज की रात' के संगीत का निर्देशन किया है श्री हुस्नलाल और भक्तराम ने। यह कम आश्चर्य की बात नहीं कि तीनों चित्रों के संगीत की शैली एक-सी है—वही ग्राम्य-गीतों और पाश्चात्य संगीत की पुट लिये हुए भड़कीली और लहराती-सी। खैर, 'दर्द' और 'नाटक' के संगीत की शैली का साम्य तो समझ में आता है—दोनों का संगीत-निर्देशन एक ही है—परंतु 'आज की रात' के संगीत के सम्बन्ध में यह चीज आश्चर्यजनक ही है। इसके संगीत निर्देशकों ने कहीं भी मौलिकता का परिचय नहीं दिया—गीतों की धुनों में नौशाद की धुनों की प्रतिध्वनि छिपाये नहीं छिपती।

तीनों चित्रों को सभी-दृष्टियों से एक ही सांचे में ढले हुए सिद्ध करने पर भी हम इनके मनोरंजक होने से इन्कार नहीं कर सकते। सिनेमा टैकनीक व कला की दृष्टि से इन तीनों चित्रों का यह क्रम हो सकता है—'दर्द,' 'आज की रात' और 'नाटक'।

परन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या इस तरह के केवल मनोरंजन-प्रधान, एक ही सांचे में ढले एक दूसरे की प्रति-लिपियां-मात्र चित्र भारतीय फिल्मोद्योग के लिये गौरव की वस्तु हैं? क्या भारत का यह उद्योग मनोरंजन के साथ-साथ राष्ट्र के पुनर्निर्माण में योग नहीं दे सकता?

—चिरंजीत

रेडियो और मनोरंजन

श्री कलाधर

मनुष्य में मनोरंजन और विनोद की वृत्ति चिरंतन और शाश्वत है। इस वृत्ति की तृप्ति के लिये मनुष्य आदिकाल से ही कई प्रकार के कलात्मक साधनों का आविष्कार करता रहा है। रेडियो मानव-बुद्धि द्वारा आविष्कृत मनोरंजन का नवीनतम तथा सर्व-सुलभ साधन है।

चूंकि इसकी अपील बहुत ही व्यापक है — प्रेस और सिनेमा से भी व्यापक है—अतः कतिपय देशों की सरकारों और शक्तिशाली राजनैतिक पार्टियों ने इसे अपने हाथ में रखकर निजी प्रचार का साधन बनाया हुआ है। और यह एक सर्वमान्य बात है कि यह प्रचार-कार्य तब तक सफल और प्रभावोत्पादक नहीं हो सकता जब तक कि यह मनोरंजक न हो। कड़वी कुनीन की गोली यदि खांड में लिपटी हो तो अधिक ग्राह्य हो जाती है।

इस तथ्य का एक और पहलू भी है। प्रत्येक रेडियो-सेट रखने वाले को सरकार से लाइसेंस लेना पड़ता है, अर्थात् रेडियो के प्रोग्राम सुनने के लिये श्रोता उसी तरह पैसे खर्चता है, जैसे कोई आदमी सिनेमा, नाटक अथवा कोई प्रदर्शनी इत्यादि देखने के लिये पैसे खर्चता है। तो यों पैसे खर्चने के बाद रेडियो-सेट के प्रत्येक मालिक को यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वह रेडियो के प्रोग्रामों के अच्छा होने की आशा तथा मांग कर सके। सामान्य श्रोता रेडियो के केवल उन्हीं प्रोग्रामों को अच्छा समझता है जिनसे कि उसका और उसके परिवार या मित्रों का मनोरंजन होता हो। उधर चूंकि रेडियो-विभाग श्रोताओं से वार्षिक लाइसेंस-फीस के रूप में पैसे लेता है, इसलिये उसका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह श्रोताओं को अच्छे — अर्थात् मनोरंजक — प्रोग्राम सुनवाये। यदि किसी भी देश का रेडियो-विभाग सम्यक् रूप से अपने इस कर्तव्य का पालन नहीं करता तो कर-दाताओं को उसके विरुद्ध आवाज़ उठाने का पूरा-पूरा अधिकार है।

जहां तक हमारे देश का सम्बन्ध है, इसके ध्वस्त जीवन के पुनर्निर्माण के लिये मनोरंजन उतना ही आवश्यक है जितनी कि अन्न इत्यादि वस्तुयें। प्रधान-मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में विनोद और हास्य से सार्वजनिक तथा सामाजिक जीवन सबल बनता है। अतः भारतीय रेडियो-विभाग की जिम्मेदारी इस दिशा में और भी बढ़ जाती है।

★

बच्चों का प्रोग्राम शायद मनोरंजक नहीं, इस लिये मुन्ना रो रहा है।

शाह आलम की आंखें*

हिन्दी-साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास अंगुलियों पर गिनने योग्य ही हैं और उनमें से भी अधिकांश में इतिहास के गुण तो हैं, पर उपन्यास के गुणों का अभाव है। पं० इन्द्र जी की प्रस्तुत कृति में दोनों का सुन्दर समन्वय पाया जाता है।

'शाह आलम की आंखें' मुगल-शासन के पतन की कारुणिक कहानी है। किस प्रकार शाह आलम की विलासिता, गुलाम कादिर, मंजूरअली आदि पठानों के षड्यन्त्र तथा मराठों और राजपूतों की प्रतिस्पर्धा के कारण भारत में मुगल-साम्राज्य का सूर्यास्त हुआ, इसका बड़ा मार्मिक वर्णन पुस्तक में किया गया है।

तेजसिंह और कमला के प्रेम का सम्बन्ध इतिहास की घटनाओं से कल्पना के आधार पर कायम किया गया है। कमला के रूप में एक वीर राजपूत रमणी और तेजसिंह के रूप में एक वीर राजपूत का चित्रण आदर्श है। लाख मुसीबतें उठाती हुई भी कमला अपना सतीत्व नष्ट नहीं होने देती। अंत में उसका विवाह तेजसिंह से हो जाता है। दोनों के प्रेम का वर्णन जगह-जगह इतना रसीला है कि प्रेमियों के दिल फड़क उठते हैं।

पुस्तक की भाषा के बारे में इससे अधिक और क्या प्रशंसा की जाय कि वह पं० इन्द्र जी की परिमार्जित लेखनी से निकली हुई चिर-परिचित ओजपूर्ण भाषा है। यदि आप यशस्वी लेखक व पत्रकार पं० इन्द्र जी को एक सफल उपन्यास लेखक के रूप में भी देखना चाहते हैं तो इस पुस्तक का रसास्वादन अवश्य कीजिये।

—गोवर्द्धनदास मेहता

इस उपन्यास का महत्व इसके रचनाकाल में निहित है. यह उपन्यास आज से ३० वर्ष पूर्व अर्थात् सन् १९१८ के आस-पास लिखा गया था और अब बिना किसी कथा अथवा भाषा सम्बन्धी परिवर्तन के अविकल रूप से छाप दिया गया है। जब हम इसकी उपर्युक्त समय के आस-पास अन्य लेखकों द्वारा लिखे गये उपन्यासों से तुलना करते हैं, तो इसे हम क्या भाषा, क्या शैली, क्या विषय—प्रत्येक दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ पाते हैं। उस समय के अधिकतर ऐतिहासिक उपन्यासों में यह दोष था कि केवल घटनाक्रम पर ही अधिक जोर दिया जाता था; तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक स्थिति के अध्ययन और संस्कृति के स्वरूप के अनुसंधान की कोई कोशिश नहीं की जाती थी। इस दोष से यह उपन्यास सर्वथा मुक्त है। अतः ऐतिहासिक उपन्यास होने के साथ-साथ यह हिन्दी के कथा-साहित्य की प्रगति की दृष्टि से अपना एक ऐतिहासिक महत्व भी रखता है।

—चिरंजीत

*ले०—पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति; प्रकाशक—नालन्दा प्रकाशन, सर फीरोजशाह मेहता रोड, फोर्ट बम्बई १; मूल्य ३)।

ग्रंथि बंधित स्नान

आर्य संस्कृति एवम् पातित धर्म की प्रबल प्रतीक भारतीय महिलायें जन्मान्तर में भी अपने वर्त्तमान पति प्राप्ति की कामना से सहस्त्रों की संख्या में विशेष कर पर्व के दिन तीर्थ स्थानों में इस बीसवीं सदी में भी ग्रन्थि बंधित स्नान करती दिखाई पड़ती हैं। इस प्रकार का स्नान उनके वांछित फल प्राप्ति में कहां तक सहायक होता है, यह तो उनके विश्वास का विषय है, पर स्नान का महत्ता सर्वथा निर्विवाद है और विशेषकर जब स्नान "प्रीफेक्ट साबुन" से किया जाता है, जो शरीर को न केवल स्वच्छ एवम् शान्त बनाता है वरन अपनी स्निग्ध सुवास में त्वचा के प्रफुल्लित तथा स्नान के बाद भी सुवासित रखता है।

प्रिफेक्ट
टॉयलेट सोप
विशुद्ध वनस्पति तेलों से निर्मित

स्थानीय डिपो—मेसर्स मोदी इण्डस्ट्रीज डिपो, दरयागंज दिल्ली।

★ ★ ★ फुलझड़ियां ★ ★ ★

संसार जानता है कि १५ अगस्त १९४७ से भारतीय जनता को स्वराज्य मिल गया है; परन्तु श्री विनोबा भावे जी कहते हैं कि स्वराज्य अभी आम जनता के पास नहीं पहुँचा।

तो क्या कांग्रेस-जन भारत की आम जनता में शामिल नहीं हैं?

* * *

हमारे सभी बड़े नेता आम कांग्रेसियों में फैले भ्रष्टाचार से परेशान हैं। पिछले दिनों पटना जिले के एक राजनैतिक सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कांग्रेस के महामंत्री श्री शंकरराव देव ने भ्रष्ट और पतित कांग्रेसियों को कांग्रेस से अलग हो जाने को कहा।

परन्तु यदि ऐसे लोग निकल गये तो कांग्रेस की कुल सदस्य-संख्या भला सौ-पचास से अधिक क्या रह जायेगी!

* * *

संयुक्त प्रान्तीय सरकार के पार्लमेंटरी सेक्रेटरी श्री गोविन्दसहाय ने पिछले दिनों मेरठ की एक सार्वजनिक सभा में विरोधियों की आलोचनाओं का उत्तर देते हुए कहा — "हमारे पास अलाउद्दीन का चिराग नहीं है कि सब चीजें एक साथ हो जायें।"

अलाउद्दीन का चिराग न सही, गांधी टोपी तो है!

* * *

भारत के दुर्भाग्य की क्या कहें, साम्प्रदायिकता और हिंसा का अभी पूरी तरह से खात्मा नहीं हुआ है कि इसकी छाती पर प्रान्तीयता का दानव दनदनाने लगा है। प्रत्येक हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तान को भूलकर अपने प्रान्त की संस्कृति, धर्म, भाषा, व्यापार इत्यादि की रक्षा के लिये हाय-तोबा मचाने लगा है।

कहीं उस अंग्रेज लेखक की ही यह बात सच न हो कि भारत अनेक जातियों का देश है!

* * *

प्रतिदिन बलवती होती हुई इस प्रान्तीयता की भावना के कारण आज भारत के प्रत्येक भाग से शरणार्थियों और स्थानीय लोगों के बीच बढ़ते हुए झगड़ों के समाचार आ रहे हैं। स्थिति ठीक रेल के तीसरे दर्जे के डिब्बे जैसी है, जिसके अन्दर आराम से बैठे हुए मुसाफिर तो यह प्रयत्न करते हैं कि उस में कोई और न चढ़े और उधर बाहर से नये मुसाफिर उसमें जबरदस्ती घुसने की कोशिश करते हैं।

प्रायः देखा गया है कि जो मुसाफिर जबरदस्ती डिब्बे के अन्दर घुसने की कोशिश नहीं करता, वह गाड़ी से रह जाता है!

* * *

हमारे प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने विदेशियों के इस मत को मिथ्या सिद्ध किया है कि भारत की जन-संख्या भौगोलिक दृष्टि से बहुत अधिक है। पं० नेहरू का कहना है कि भारत की जन-संख्या अधिक नहीं, बल्कि बहुत कम है—इसका एक तिहाई भाग गैर-आबाद पड़ा है।

शायद इसी लिये केन्द्रीय सरकार के दो मंत्रियों—डा० अम्बेडकर और श्री गाडगिल ने अधिक समय तक अविवाहित रहना उचित नहीं समझा!

* * *

यहीं पर, पता नहीं क्यों, अन्यत्र इन्टरव्यू के रूप में श्री 'अज्ञेय' के सम्बन्ध में प्रकाशित लेख का स्मरण हो आया है। जान पड़ता है कि मित्रवर 'कमलेश' ने संकोचवश 'अज्ञेय' जी से एक दो ऐसे प्रश्न नहीं पूछे जो कई दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण थे।

* * *

हिन्दी संसार में यह समाचार बड़े दुःख से सुना जायेगा कि प्रसिद्ध आलोचक व कवि डा० नगेन्द्र की किसी चोर ने नींद जैसी अमूल्य वस्तु चुराली है।

बाज लोगों का कहना है कि डाक्टर साहब चोर का नाम-पता तो जानते हैं, परन्तु बताते नहीं।

* * *

इस समाचार से पाठकगण चौंकें नहीं। श्री मन्मथनाथ गुप्त ने अपनी कहानी में ऐसी पत्रकार-कला को ही सही बताया है!

डी० सी० एम० केमिकल वर्क्स गन्धक के तेजाब को (१.८४०) या ९५%, (१.७५०) या ८२% और ओलियम १०% के तरीकों से बनाते हैं। आवश्यकतानुसार यह खरीदा जा सकता है। भेजने से पूर्व इसकी अच्छी तरह जांच कर ली जाती है। ९५% तेजाब विशेष रूप से निर्मित पीपों में भेजा जाता है।

अपनी जरूरतों के लिये लिखिये :—

निम्न वस्तुओं के भी निर्माता :—

शोरे का तेज़ाब, नमक का तेज़ाब, हरित गंधिताम्ल, अलम्यूनियम फेरिक, फिटकरी सफेद व लाल, साबुन व कृमिनाशक, टर्की रेड आयल, हड्डी का खाद व मिश्रित खाद, सरेस,

ऊँचे पैमाने के पूर्वपरीक्षित रसायन - निर्माता

ADARTS (DELHI) LTD.
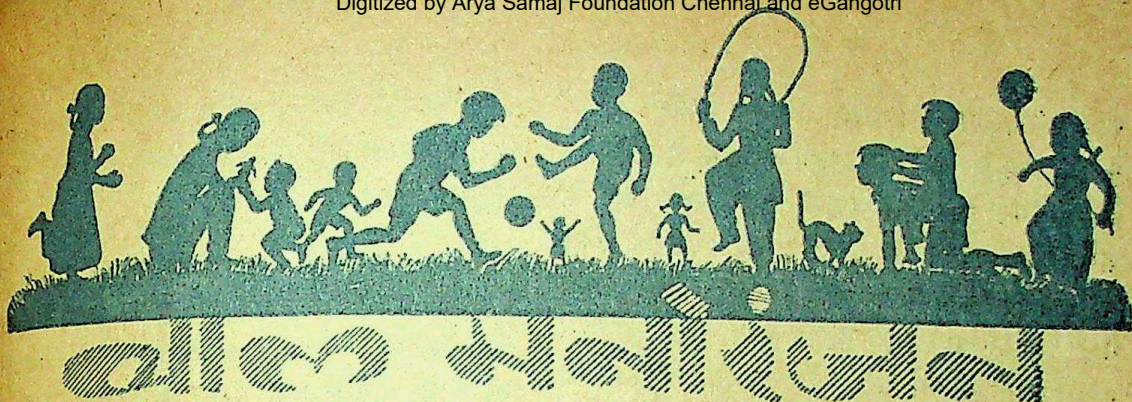
एक शिक्षाप्रद कहानी

देवताओं की विजय

श्री कृष्णचन्द्र विद्यालङ्कार

आपस के सहयोग के कारण देवताओं ने भर पेट मिठाइयां खाईं, परन्तु स्वार्थी और झगड़ालू असुरों को भूखा ही रहना पड़ा। प्रेमपूर्वक मिल-जुल कर काम करने से सब का हित होता है।

बहुत पहले की बात है। कोई नहीं जानता कि उसे कितने हजार बरस हो गये हैं। तब सृष्टि पैदा हो चुकी थी; हमारी पृथ्वी पर भी लोग बसने लगे थे। पृथ्वी पर राज्य कौन करे, इसके लिए जैसे आज विभिन्न जातियां परस्पर युद्ध करती रहती हैं, उसी तरह उन दिनों भी करती थीं। देवताओं और असुरों में हमेशा लड़ाई-झगड़ा रहता था। कभी देवता जीतते थे और कभी असुर।

एक युद्ध में असुर जीत गये। देवता हार गये। वे अत्यन्त निराश होकर अपने राजा इन्द्र के पास पहुँचे और कहने लगे – "भगवन्, अब कोई ऐसा उपाय बताइये कि आगामी युद्ध में हम निश्चित रूप से जीत जावें।"

देवराज इन्द्र ने कुछ क्षण तक सोचकर कहा – "विजय तो हमें मिल सकती है; किन्तु उससे पहले हमें एक यज्ञ करना होगा। यह यज्ञ पन्द्रह दिनों में समाप्त होगा।"

देवताओं ने इन्द्र की बात मान ली और यज्ञ की तैयारियां करने लगे। लेकिन प्रश्न यह था कि यज्ञ किया जाय तो कहां? भूमि पर तो असुरों का राज्य था। आखिर, देवताओं का एक डेपूटेशन असुरों के पास पहुँचा। उनके राजा से प्रार्थना की— "असुर-राज! हम युद्ध में हार गये हैं। अब हमारी न युद्ध करने की इच्छा है, न राज्य लेने की। अब तो हम अपना समस्त जीवन धर्म-कर्म यज्ञ-याग आदि में लगा देना चाहते हैं। इसलिए यदि आप हमें यज्ञ करने की सुविधाएं दे दें, तो हम आपके आभारी होंगे।"

असुर-राज ने जब यह सुना कि देवता न युद्ध करना चाहते हैं, न राज, तो बड़े प्रसन्न हो गये। यज्ञ की पूरी सुविधाएं दे दीं २००० बीघा भूमि में

यज्ञ की तैयारियां हुईं। उसमें भाग लेने के लिये दूर-दूर से देवता आये। समस्त यज्ञ-भूमि देवताओं से भर गई। नियत समय पर पीले रेशमी वस्त्र पहने यज्ञ के आचार्य यज्ञ-मण्डप में उपस्थित हुए। उनकी सफेद चांदी-सी चमकती दाढ़ियां और केश बहुत भले लगते थे। वैदिक मंत्रों से यज्ञ प्रारंभ हुआ और प्रतिदिन हजारों आहुतियां यज्ञ-कुण्ड में डाली जातीं। गाय का शुद्ध घी और अगर, तगर, चन्दन आदि सुगंधित सामग्री तथा ईन्धन से वहां का समस्त वायु-मण्डल मीठी सुगंध से महक उठा। आचार्य और हजारों देवता प्रातः ५ बजे आकर ११ बजे तक और फिर सायंकाल ३ बजे से ८ बजे तक यज्ञ करते।

देवताओं को इस तरह श्रद्धा से यज्ञ करते देखकर एक लखपति सेठ ने उन्हें भोजन का निमंत्रण दिया। बहुत आग्रह करने पर देवताओं ने उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। सेठ ने भोजन की बहुत बड़ी तैयारियां कीं। एक सौ हलवाई बुलाये गये और ५०० मन घी, १००० मन बूरा आदि मंगा लिया गया। बरफी, गुलाब जामुन, लड्डू, जलेबी, इमरती, बालोशाही, सोहन हलुवा, रसगुल्ले आदि तरह-तरह की मिठाइयां बनने लगीं।

असुरों ने जब भोजनशाला से नाना पदार्थों की मीठी-मीठी भीनी महक आती देखी, तो उनके मुंह में पानी आ गया। वे एक भारी संख्या में इकट्ठे होकर उस लखपति सेठ के पास पहुंचे। वे बोले—"राज हम करते हैं और हमें ही भोजन का निमंत्रण नहीं मिला। निमंत्रण दिया भी गया, तो गरीब और युद्ध में हारने वाले देवताओं को। पहले हमें निमंत्रण दो।

सेठ ने उनको गुस्से से लाल-पीले हुए देखा तो सहम गया। हाथ जोड़कर बोला—"आपको भी निमंत्रण अवश्य मिलेगा। आप तो राजा हैं, आपको निमंत्रण न दूं तो·······"

"लेकिन देवताओं से पहले" — बात काटकर असुरों ने कहा।

"अच्छा, जैसी आपकी आज्ञा" — सेठ ने उत्तर दिया। उनकी बात मानने के सिवा और कोई उपाय भी तो न था।

"लेकिन हम तो वही भोजन-सामग्री खावेंगे, जो देवताओं के लिए तैयार हो रही है"— असुरों ने तीसरी मांग पेश की। शायद उन्हें संदेह था कि देवताओं को तो यह बढ़िया स्वादु भोजन देगा और हमें यों ही टरका देगा।

"ऐसा ही होगा, आप निश्चिंत रहें," सेठ ने उत्तर दिया। असुरों की वह भीड़ संतुष्ट हो गई। लेकिन ज्यों ही वे जाने लगे, चतुर सेठ ने कहा— "आपकी तीनों आज्ञाएं मैंने स्वीकार कर ली हैं। एक छोटी-सी प्रार्थना मेरी भी है।"

"क्या?" असुरों ने रुककर एक स्वर से पूछा।

"भोजन करते समय सबको बाहुओं पर डेढ़-डेढ़ फुट की सीधी लकड़ी बांधनी पड़ेगी"—सेठ ने कहा।

बढ़िया, स्वादु, मीठा, सुगंधित भोजन पाने की खुशी में मस्त असुरों ने कहा—"हमें कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु देवताओं को भी बाहुओं पर ऐसी सीधी लकड़ियां बांधनी पड़ेंगी।" असुर यह कहकर चले गये और उधर सेठ भोजन की तैयारियों में लग गया।

नियत दिन और नियत समय पर हजारों असुर भोजन करने पहुँच गये। भोजन के बड़े बड़े हाल बढ़िया पदार्थों की सुगंध से महक रहे थे। असुर प्रसन्न थे। उन्होंने न जाने कितने पशुओं और पक्षियों का मांस कितनी बार खाया था; किन्तु एक साथ गुलाब जामुन, बरफी, लड्डू, जलेबी, इमरती और खीर-मालपुए उन्होंने कभी देखे न थे। आज देवताओं का भोजन मिलेगा, इस प्रसन्नता से वे नाच रहे थे। बाहुओं पर सीधी लकड़ियां जब बांधी जाने लगीं तो उनकी भी चिन्ता उन्होंने न की।

आसनों की पंक्तियों के आगे-आगे चमकते हुए थाल रख दिये गये और फिर स्वयंसेवकों ने एक-एक

करके जब सब मिठाइयां परोस दीं, तो सेठ ने हाथ जोड़कर असुरों से कहा—"भोजन प्रारंभ कीजिये।"

एक असुर ने लड्डू उठाया, पर चूंकि बाजू पर लकड़ी बंधी होने के कारण हाथ मुड़ नहीं सकता था, इसलिये लड्डू मुंह में जाने की बजाय पीछे बैठे किसी दूसरे असुर की आंख पर जा लगा। यही स्थिति सभी असुरों की थी। लकड़ी बंधी रहने के कारण हाथ अकड़े हुए थे। लकड़ी खोल नहीं सकते थे—वचन जो दे चुके थे। जब कोई मिठाई उठाते तो हाथ सीधा ऊंचा उठता और वह लड्डू या रसगुल्ला किसी दूसरे के सिर, आंख या नाक पर गिरता। जिस पर लड्डू गिरता, वह लड़ने के लिये खड़ा हो जाता। इस तरह पांच-दस मिनट में ही सब असुर अपनी-अपनी थालियां छोड़ कर एक दूसरे से लड़ने लगे। अन्त में विवश होकर सभी असुर बाहर चले गये और अपने घरों में जाकर पशु व नर-मांस से ही उन्हें अपनी भूख शान्त करनी पड़ी।

तीन दिन बाद देवताओं को निमन्त्रण था। देवता भी नियत स्थान पर पहुँचे। उनके भी हाथों में नियमानुसार लकड़ियां बांधी गईं और तब बढ़िया चमकते-चमकते थालों में उन्हें उसी तरह मिठाइयां आदि परोसी गईं। सब भोजन परोसने के बाद सेठ ने हाथ जोड़ कर उन्हें भी भोजन प्रारम्भ करने को कहा। 'ओ३म् अन्नपते' के मंत्र के बाद देवताओं ने भी उन्हीं बंधे हुए अकड़े हाथों से लड्डू उठाये। लेकिन हाथ उनके मुंह में लड्डू नहीं डाल सका। बड़ी पेचीदा समस्या थी। कुछ क्षण तक एक देवता ने सोचा। फिर उसने अपने हाथ का लड्डू अपने मुंह की बजाय सामने की पंक्ति में बैठे हुए देवता के मुंह में डाल दिया। उसने भी अपने थाल से लड्डू उठाकर पहले के मुंह में डाल दिया। यह देख कर सभी देवताओं ने उनका अनुकरण किया। प्रत्येक देवता अपने सामने बैठे हुए देवता से पूछता—"क्यों मित्र, क्या चाहिए?" जो कुछ वह मांगता, वही अपने थाल से उठा कर उसके मुंह में डाल देता और इसके बदले में वह भी अपने थाल की सामग्री उसे खिलाता जाता।

(शेष पृष्ठ ६४ पर)

बिना शुल्क

बाल-पहेली नं० ८

३० जून १९४८ तक सही उत्तर आने पर पांच रुपये नकद पुरस्कार

दायें से बायें

१. इसकी सहायता सबको करनी चाहिये। ५. 'सरल' के उलट-पुलट अक्षर। ६. "तुम्हारी धोती कोने पर से ··· हुई है।" ७. इसे देखते ही बच्चे उछल पड़ते हैं। ८. अस्तर। १०. फूलों का पराग। १२. विद्यार्थियों को इससे घृणा नहीं करनी चाहिये; यह भी काम की चीज है।

ऊपर से नीचे

१. गर्मियों में इसका खूब उपयोग होता है। २. बच्चों की सबसे प्यारी वस्तु। ३. इसके आरम्भ में यदि 'कु' लगादें तो महाराज अशोक के उस पुत्र का नाम बन जाता है जिसे अंधा कर दिया गया था। ४. बच्चे इससे खेल खेलते हैं। ६. फलों का भोजन। ९. एक कालवाचक क्रियाविशेषण जो मिश्रित-वाक्यों में प्रयुक्त होता है। ११. ईश्वर की रचना का पहला रूप।

सही उत्तर और पुरस्कार-विजेता का नाम जुलाई १९४८ के 'मनोरंजन' में प्रकाशित होंगे।

बाल-पहेली नं० ७ का पुरस्कार

मई १९४८ के 'मनोरंजन' में प्रकाशित 'बाल-पहेली नं० ७' का सही उत्तर विजयकुमार गुप्ता, ५८२, नया बाजार, दिल्ली ने और प्रताप चन्द्र तनेजा, कक्षा ६ अ, मिडिल स्कूल, पहाड़ ने भेजा है। दोनों को पांच-पांच रुपये का पुरस्कार दिया गया है। सही उत्तर निम्नलिखित है —

दायें से बायें — १. सारस, ३. नीम, ५. तप, ६. कलाक, ७. टसर, ८. रोना, १०. रीपनसा।

ऊपर से नीचे — १. सात, २. रपटना, ३. नीला, ४. म क ल, ६. कर, ८. रोग, ९. मन, ११. पद, १२. साख।

पहेली के नियम

१. केवल १४ वर्ष की आयु तक के लड़के-लड़कियां ही इस प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं। आयु के सम्बन्ध में माता-पिता अथवा स्कूल के अध्यापक का प्रमाण-पत्र भी उत्तर के साथ आना चाहिये।

२. उत्तर 'मनोरंजन' में छपे खाके को काट कर और भर कर भेजना चाहिए। किसी और कागज पर अलग से भेजे गये उत्तर पर विचार नहीं किया जायेगा। एक व्यक्ति एक से अधिक पूर्तियां भी भेज सकता है।

३. खानों को स्याही से सुस्पष्ट लिखे अक्षरों से भरना चाहिये। कटे-छंटे या पैंसिल आदि से लिखे अक्षर को सही नहीं माना जायेगा।

४. उत्तर ३० जून १९४८ को शाम तक 'मनोरंजन' कार्यालय, श्री श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली में पहुंच जाना चाहिये।

५. सम्पादक का निर्णय अन्तिम होगा।
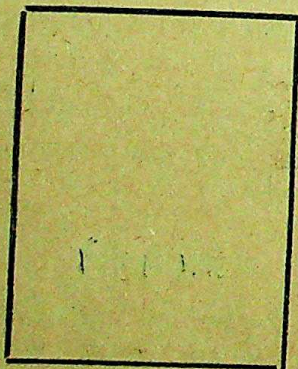
पुरस्कार विजेता का फोटो

खेद है कि 'बाल-पहेली नं० ६' के पुरस्कार-विजेता श्री बाबूलाल गुप्ता ने 'मनोरंजन' में छपने के लिये अपना फोटो नहीं भेजा। भविष्य में जो बच्चे बाल-पहेली का पुरस्कार जीतें, उनसे प्रार्थना है कि वे अपना फोटो और परिचय तुरन्त हमें भेज दिया करें।

—सम्पादक

(पृष्ठ ६३ का शेष)

इस तरह सब ने अपना-अपना पेट भरने की बजाय दूसरे का पेट भर दिया। एक-डेढ़ घंटे में वे सब देवता अत्यन्त प्रसन्न और तृप्त होकर जब चले, तो सेठ ने उन सबके हाथ खोल दिये और एक-एक स्वर्ण-मुद्रा दक्षिणा दी।

असुरों ने भी अपना एक गुप्त-दूत वहां देवताओं का तमाशा देखने के लिए भेज रखा था। जब उसने असुरों को बताया कि देवता तो आपस में लड़े नहीं, सामने बैठे एक दूसरे को खिलाकर वे सब भोजन सामग्री समाप्त करके उठे हैं, तो असुर कहने लगे—"हम स्वार्थी थे, हममें परस्पर सहयोग की भावना न थी, इसीलिये हम निराश होकर लौटे। देवता एक दूसरे के मित्र थे, एक दूसरे की सेवा-भावना उनमें थी। अतः वे पूर्णतः तृप्त होकर लौटे हैं।"

प्रिंटर पब्लिशर श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा द्वारा, अर्जुन प्रेस देहली से छप कर प्रकाशित।
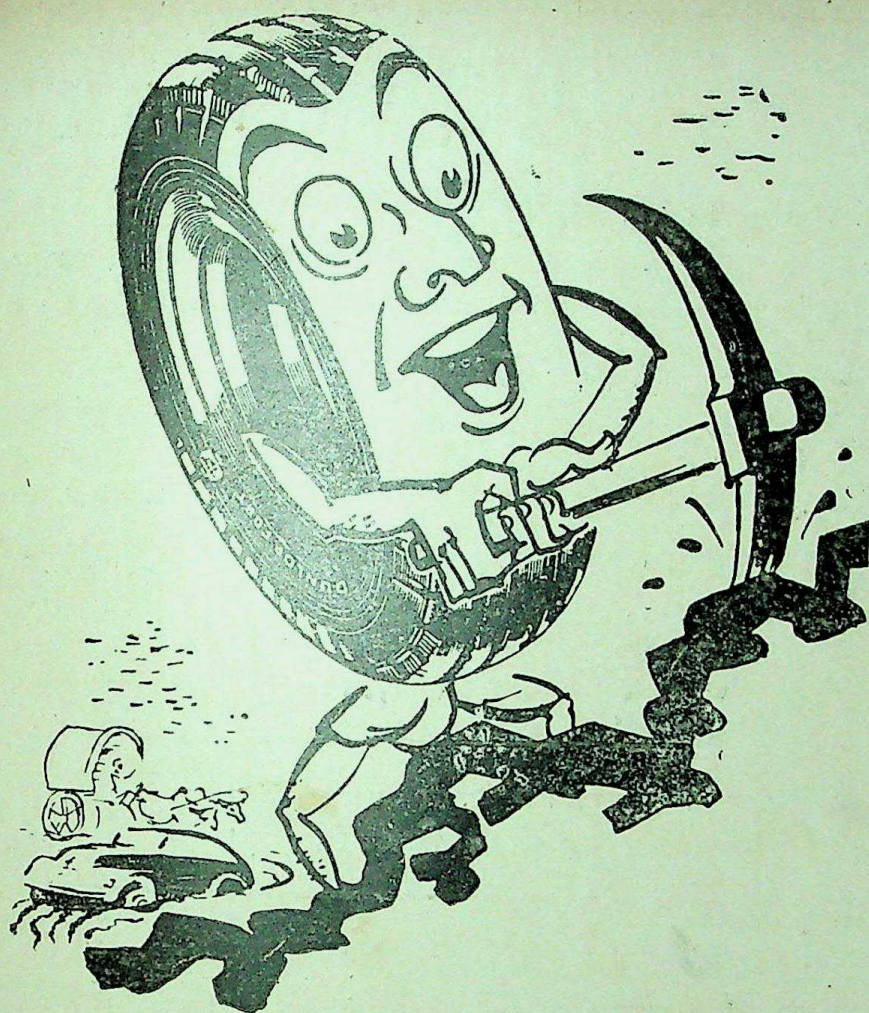
श्री श्रद्धानन्द पब्लिकेशन्स लिमिटेड

आज इस प्रकाशन संस्था के तत्त्वावधान में

★ दैनिक वीर अर्जुन
★ सचित्र वीर अर्जुन साप्ताहिक
★ मनोरंजन मासिक
★ विजय पुस्तक भण्डार
★ अर्जुन प्रेस

संचालित हो रहे हैं। यह प्रकाशन संस्था सुदृढ़ आर्थिक स्थिति की है।

अधिकृत पूंजी ५,००,००० **प्रस्तुत पूंजी २,००,०००**

गत वर्षों में इस संस्था की ओर से अपने भागीदारों को अब तक इस प्रकार लाभ बांटा जा चुका है

सन् १९४४	१० प्रतिशत
सन् १९४५	१० प्रतिशत
सन् १९४६	१५ प्रतिशत

१९४७ में कम्पनी ने अपने भागीदारों को
१० प्रतिशत लाभ देने का निश्चय किया है!

आप जानते हैं ?

* इस कम्पनी के सभी भागीदार मध्यम वर्ग के हैं और इसका संचालन उन्हीं लोगों द्वारा होता है।
* 'वीर अर्जुन' वर्ग के पत्रों की सम्पूर्ण शक्तियां अब तक राष्ट्र की आवाज को सफल बनाने में लगी रही हैं।

आपभी इस संस्था के भागीदार बन सकते हैं।

और

* इस प्रकाशन संस्था के संचालक वर्ग में सम्मिलित हो सकते हैं।
* राष्ट्र की आवाज को सबल बनाने के लिए इन पत्रों को और अधिक मजबूत बना सकते हैं।
* अपने धन को सुरक्षित स्थान में लगा कर निश्चित हो सकते हैं।
* आप स्थिर आय प्राप्त कर सकते हैं।

इस संस्था का प्रत्येक शेयर दस रुपये का है। आप भागीदार बनने के लिये आज ही आवेदन-पत्र की मांग कीजिये।

श्री श्रद्धानन्द पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली।

मनोरंजन

वर्ष १

संख्या १०

मनोरंजन

जुलाई

१९४८

दिल्ली

व्यवस्थापक

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

सम्पादक

श्री चिरंजीत

इस अंक में

मूल्य आठ आने

वार्षिक मूल्य ५॥)

लेखिका—
श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरेक्सा

राजधानी
शरणार्थी कैम्प का एक कोना,
२ जून, १९४८

प्रिय सत्या जीजी,

क्षमा करना, पुराने अभ्यासवश ही तुम्हें 'जीजी' लिख रही हूँ। पर आज यदि अपनी इस निर्वासिता कलंकिनी शीलो को तुम अपनी बहिन न समझो, तो इसमें तुम्हारा दोष न होकर मुझ अभागी का दुर्भाग्य ही प्रमुख होगा। जिस शीलो को गोद खिलाने के लिये तुम्हारा स्कूल जाना तक छूट गया था, फिर जिसके लिये अच्छे घर-वर की चिन्ता में अम्मा से अधिक तुम्हारा खाना-पीना छूट गया था और अन्त में जिसे विदा करते समय रोते-रोते तुम्हारी आंखें सूज गईं थीं, वही तुम्हारी दुलारी शीलो आज मर रही है; इस शरणार्थी कैम्प की टूटी चारपाई में अकेली—हां, एकदम अकेली ही जीवन-मरण के बीच झूल रही है। फिर भी भय है कि मौत भी कहीं मुझ अभागिन से डर न जाय! पहले भी तो वह एक दो बार समीप से निकल गई है। पर यदि इस बार भी मौत न आई, तो मैं क्या करूंगी? कहां जाऊंगी? अब तो इस भयानक शीतला के आक्रमण ने, जिसकी जलन से समस्त देह फुंकी पड़ती है, जिसके दानों ने सिर से पांव तक मक्की के दानों-सा जाल बिछा दिया है, नारी का अन्तिम अस्त्र उसका रूप भी छीन लिया है। दानों में पीप पड़ गई है; गले के भीतर भी छाले हैं; बोलना तक कठिन है। कैम्प के डाक्टर ने और मरीजों से दूर मेरी खाट डलवा दी है। बस, नर्स ऐडिथ कभी-कभी देख जाती हैं। उन्हीं से यह पत्र—जो भगवान करे अन्तिम हो—लिखवा रही हूँ।

जीजी! क्या सच में ही कोई पिछला जन्म होता है जिसके किये पाप जाने-अनजाने इस जन्म में भोगने पड़ते हैं? यदि ऐसा है, तो यह उस ईश्वर का सरासर अन्याय है। जिस दण्ड का कारण ही ज्ञात न हो, उससे लाभ? फिर जो पाप-कर्म मेरे इच्छाकृत नहीं थे, बल्कि जिन अत्याचारों ने मेरे मन-प्राणों को

क्या हिन्दू अपनी इतनी बड़ी संख्या को अपने से सहज ही काट फेंकेगा ? क्या जिन आततायियों ने उसकी मां-बहिनों पर अत्याचार किये उन्हें वह उन्हीं के आंचल में जगह ढूंढने को कहेगा ?

बींध कर छलनी कर दिया है, देह के अणु-अणु को पीड़ा से तड़पाया है, उसका भी दण्ड मुझे ही देना यह ईश्वर का, समाज का, तुम सब का कहां का न्याय है ? तुम्हें तो महीनों से मेरे मरने-जीने का भी पता नहीं है; फिर भी मैं तुम्हें दोष दे रही हूं। क्या करूं, अम्मा, बाबूजी ने, जिनके बूंद-बूंद रक्त से मेरा निर्माण हुआ है, जब उन्होंने ही मेरी छाया भी छूने से इन्कार कर दिया, तब क्या तुम इस अभागिन को आश्रय दे सकतीं ? फिर जब मेरे जीवन-मरण के साथी ने ही, जो अग्नि और जल, पृथ्वी और आकाश के समस्त देवताओं को साक्षी बना कर मुझे सदैव के लिये अपना चुका था, पुराने वस्त्र की भांति मुझे त्याग दिया, तो अब मैं और किससे आशा करूं ?

आज इस आजाद हिन्दुस्तान की धरती पर मेरा कोई नहीं है, कोई नहीं, कहीं नहीं··तीन डग धरती या गज भर आकाश की छांह को भी अपना कहते भय लगता है ! इसी आजाद हिन्द में ही तो मेरा लाल, मेरे कलेजे का टुकड़ा, मेरी आंखों का तारा ढाई वर्ष का नन्हा-मुन्ना गोपाल—मेरा चुन्नू आज मेरा नहीं है। इस भयानक रोग के कष्ट की पीड़ा से भी अधिक दाहक है उसका वियोग !

जीजी ! उन्होंने मेरे चुन्नू को मुझे गोद में भी नहीं लेने दिया। वह 'मां-मां' करके दादी की गोद से उतरा पड़ता था, मचल रहा था। उसने उनके दांत तक काट लिया। पर उफ ! वे उसे—उस रोते, मचलते फूल-से बच्चे को बलात् पकड़ कर पिछवाड़े ले गईं। मैं जो उसकी मां थी, टुकुर-टुकुर ताकती रही। यह हृदय तब भी न फटा। तभी तो सोचती हूँ, कहीं मौत इस बार भी दूर न भाग जाय !

सत्या बहिन ! इस तेईस वर्ष की अवस्था में मेरी समस्त आशा, भरोसा, मेरा भविष्य, मेरा जीवन और वह सम्बल जिसके कारण आज तुम सिर ऊंचा किए हो, जिसके झूठे बल पर मेरी गर्भधारिणी मां तक ने मुझसे आंखें फेर लीं, वही सतीत्व भी नष्ट हो गया। मेरा मन और आत्मा—यदि आत्मा कोई वस्तु है—आज भी उतनी ही पवित्र, कोमल और पर-दुःख-कातर है, जितनी आज से आठ मास पहले थी। इतना दुःख-कष्ट सह कर भी मैं कहती हूँ, भगवान सबका भला करे। पर तुम सबने तो अत्याचारों से जर्जर इस देह की झूठी पवित्रता को ही मुख्य माना है। फिर मैंने ही दुःख सहे। यदि कुछ नष्ट हुआ, तो मेरा और दण्ड भी मुझे ही मिल रहा है। क्या बढ़िया सनातनधर्म है हमारा ! नहीं, हमारा नहीं, जीजी ! वह धर्म मेरा तो है ही नहीं। मैं उसकी कोई नहीं हूँ; नहीं तो क्या वह मुझे यूं दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंकता ! मैं बड़े भ्रम में थी। सोचती थी, यह अत्याचार, यह संकट मुझ अकेली पर ही नहीं पड़ा है। क्या हिन्दू अपनी इतनी बड़ी संख्या को अपने से सहज ही काट फेंकेगा ? क्या जिन आततायियों ने उसकी मां-बहिनों पर अमानुषिक अत्याचार किए, उन्हें वह उन्हीं के आंचल में जगह ढूंढने को कहेगा ? सोचा था, दुनिया बहुत आगे बढ़ गई है। देश ने आजादी पाई है, जिसका इतना बड़ा मूल्य केवल देशवासियों की धर्मान्ध बर्बरता के कारण हम लूटी गई नारियों ने चुकाया है, जिसकी साक्षी हमारे नीले पड़े ओठों, क्षत-विक्षत अङ्गों और टूटी हुई रीढ़ों से पूछो। क्या वह अवर्णनीय कष्ट हमारे लिये पर्याप्त नहीं थे ? पर यह मेरी भूल थी; अन्यथा एकमात्र वेश्या बन कर इस आजाद हिन्द में जीवित रहने की अपेक्षा उन्हीं मूर्ख विधर्मियों की छत्र-छाया में (जहां कम से कम हम और हमारी सन्तानें उस समाज का अङ्ग तो होतीं ही) रहना कम से कम मैं तो अवश्य ही पसन्द करती।

पर, अपनों की मृग-मरीचिका मुझे दोबारा हिन्दुस्तान में खींच लाई। उनकी—जो तुम्हारे बहनोई तो शायद अब भी हैं, पर मेरे कोई नहीं—वे मोहभरी बातें, मेरे वियोग में प्राण दे देने की प्रतिज्ञायें, जो चार दिन मायके जाने के प्रस्ताव पर आंखों में आंसू ले आते थे, उनकी, उनके चरणों की सेवा करने की

लालसा मुझे फिर ले आई। प्यारे गोपाल की याद, उसका वह भोला मुखड़ा तो मुझे वहां के नरक में भी जीने का एकमात्र सम्बल रहा है। आज जहां गोपाल है, उसी नगर में आकर भी मैं उससे दूर हूँ—उतनी ही दूर, जितना बौना चन्द्रमा से, चांडाल देव-प्रतिमा से···जीजी! गले तक भरी अपनी इस दुःसह वेदना को मैं किससे कहूँ?

सोचा था, अब किसी से न कहूँगी। कोरी दया, सहानुभूति पोत-पोत ऊब गई हूँ। पर आज, जब डाक्टर भी केस को सीरियस कह कर सिर हिलाता हुआ चला गया है; तब जीवन का अन्तिम मोह, जीने की, सुख पाने की छिपी आकांक्षा मन के न जाने किस कोने से उमड़ कर घटा की भांति प्राणों पर छा गई है। किन्तु जी कर अब क्या करूंगी? किसके लिये जिऊंगी? मन में एक आग-सी जल रही है। काश, वह आग दावाग्नि बन जाती और मेरे साथ-साथ इस हिन्दू समाज को भी समेट लेती! वही स्वामी और ससुर, जो मेरे रात-दिन हठ करने पर भी लाहौर में केवल इस लालच से उस झगड़े के बीच भी रुके रहे कि दुकान का माल अच्छे दामों उठ जाय, तब चलें; मकान के अच्छे पैसे मिल जायें, तो बेचें; और अठारह अगस्त की उस प्रलयंकारी रात को, जब एक उन्मत्त भीड़ ने मोहल्ले में आग लगादी, तो बहादुरी से लड़ कर मरने की बजाय, पिछवाड़े से निकल कर भागे—ऐसे भागे कि भीड़ ने मुझे पकड़ लिया है, यह जान कर भी मुड़ कर न देखा। मोहल्ले की और भी दो-तीन युवती कन्याओं को उन राक्षसों ने पकड़ लिया। धर्म के मद में चूर, स्वधर्म की विजय से फूले उन नर-पिशाचों के लिए मानों हम खिलौने थे। जो जितनी अधिक सुन्दर थी, उसे उतनी ही अधिक यातना भोगनी पड़ी। जाने दो, जीजी! तुम तो अपने छोटे नगर के शान्त घर में सहज भाव से सती बनी हुई हो। तुम्हें उस बर्बर अत्याचार की कथा सुन कर दुःख तो कम, ग्लानि अधिक होगी। तुम सोचोगी, वे सब सतीत्व की रक्षा करती हुई मर क्यों न गईं? उन्हीं जलते मकानों में भस्म क्यों न हो गईं? पलंग पर लेट
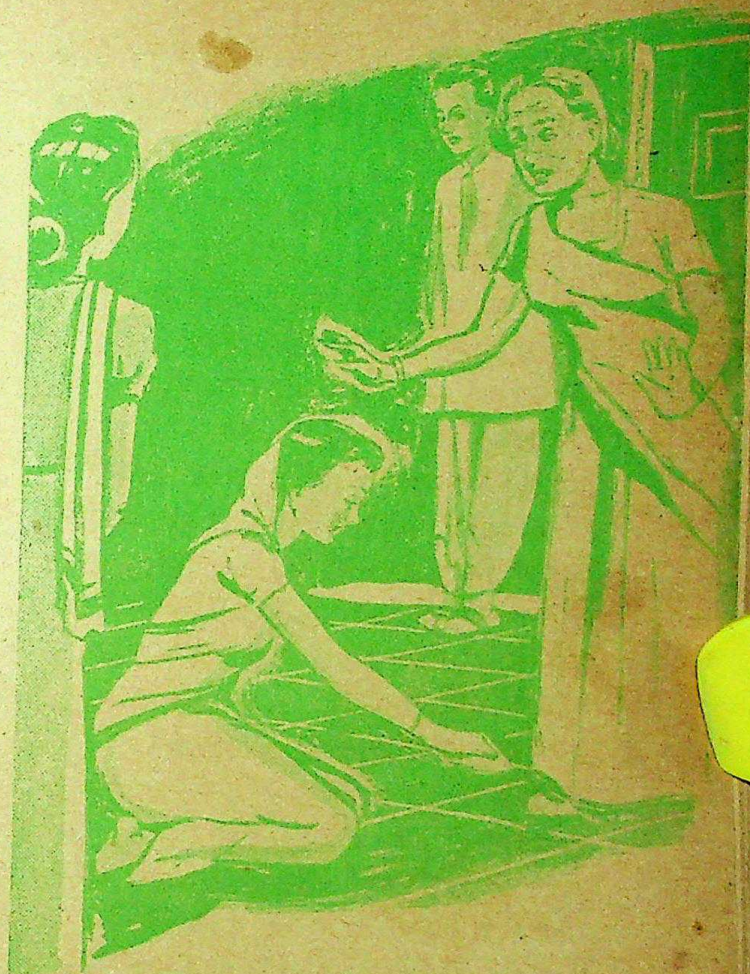
'यह तो बहू है; अगर हमारी बेटी होती, तब भी हम नहीं रखते।'

कर या रसोई में पूरी बेलते समय अथवा नन्हे को गोद में लेकर दूध पिलाते समय यह सब बड़ी सरलता से सोचा जा सकता है; विचारों में कोई बाधा न आयेगी। पर उस समय, उन दानवों के हाथों में जब हम भूखों के आगे तर माल की सूरत में थीं, जब हम चार-पांच लड़कियों पर पचासों बलिष्ठ बाहों के फन्दे थे, तुम्हारे तथाकथित सतीत्व की रक्षा या जल मरने की बात कोरी कल्पना से आगे नहीं जाती। फिर, एक उत्तेजना, एक भावावेश में जल मरने, डूब जाने या अपने छुरी भोंक लेने की बात सरल है; और लांछित अमर्यादित होकर 'असती' की संज्ञा प्राप्त करके फिर क्रमशः जल मरने का साहस और चाहे जिसमें हो, मुझ में तो न था। दस-पांच दिन बाद जब उन पिशाचों का नशा हल्का पड़ा, जब उनकी वासना की क्रूर

ज्वाला हमें लांछित, अपमानित और अर्धमृत करके शान्त हो चली, तब प्रश्न उठा — "इनका अब क्या करें ?"

मैंने, विद्या ने, धर्मकौर ने, सभी ने उनसे विनती की—"तुमने हमारा धर्म, हमारा सतीत्व, हमारी पवित्रता सभी तो नष्ट कर दी, हम अब जी कर क्या करेंगे ? जिन तलवारों से तुमने अनेकों 'काफिरों' को जहन्नुम रसीद किया है, हमें भी उन्हीं से उस पार पहुँचा दो !"

सच मानो सत्या जिज्जी ! उस समय वह नई आग, वह नया दुःख इतना असह्य था कि हममें से कोई भी मरने से पीछे न हटती। परन्तु इस जले भाग्य में तो अभी बहुत दुःख बदे थे। वहां मुल्ला ने फतवा दिया—"इन्हें कलामे-पाक के जरिये पाक इसलाम का जाम चखाओ। इन हूरों की औलादें आगे इस्लाम की मजबूत शहतीरें बनेंगी।"

जुमे अर्थात् शुक्रवार को हम रोती-बिलखती, भूखी-प्यासी नारियों को बलात् कलमा पढ़ाया गया। अभक्ष्य का भक्षण भी उस क्रिया का एक अङ्ग था। उस संकट का, उस अपार वेदना का तिलमात्र अनुभव भी तुम घर में बैठ कर नहीं कर सकोगी, जीजी ! वह दुःख, वह मानसिक सन्ताप और ग्लानि, वह देह और आत्मा का उत्पीड़न, जो मैंने और सैकड़ों धर्म-भीरु बहिनों ने इस पैशाचिक साम्प्रदायिक झगड़ों की विभीषिका में झेला है, जो असह्य दारुण पीड़ा पाई है, उसे प्रकट करने को मुझे शब्द नहीं मिलते। वह दुःख परमात्मा किसी दुश्मन को भी न दे ! और फिर सड़े हुए जख्म पर नमक छिड़कने के समान हम सभी को किसी न किसी की 'निकाहता' बना दिया गया।

जीजी ! उस दर्जी के यहां, जो मेरा पाकिस्तानी मालिक था, बुरके से ढंके रो-रोकर तीन महीने कटे। अपनी ओर से उसने जान-बूझ कर मुझे कष्ट दिया, ऐसा तो मैं इस मृत्यु-शैया पर आकर न कहूंगी। पर उसके धार्मिक-विश्वास, उसका भिन्न प्रकार का रहन-सहन और सबसे ऊपर प्यारे चुन्नू—गोपाल की याद ने, जो सोते-जागते, उठते-बैठते कभी एक क्षण को भी विस्मृत न होती थी, मेरे वे दिन नरक में बिताये कल्प-दिवस कर डाले थे। घर की या 'उनकी' याद न आती हो, सो बात नहीं; पर उसके साथ ही अपनी दुर्दशा से उत्पन्न लज्जा और ग्लानि का भार मस्तक को झुका देता था। किन्तु गोपाल ? कलंकिनी होने पर भी मैं उसकी मां थी; वह मुझ दुखिया असती के हृदय का अंश था।

दिन कट रहे थे कि एक दिन गली में अकस्मात् हिन्दुस्तानी फौज के कुछ युवक आये। उनके साथ कुछ हिन्दू महिलायें भी थीं। हवा सूंघ कर वे मेरी उस गलीज कोठरी में भी आ गईं।

"तुम हिन्दू हो ?"

प्रश्न सुनते ही इतने दिनों का रुका आंसुओं का तूफान झर-झर करके बरस पड़ा। क्या इसी जन्म में मैं फिर किसी हिन्दू स्त्री को देख रही हूं, मन को अनायास विश्वास नहीं होता था।

"बहिन, रोओ नहीं। सचमुच ही यदि तुम हिन्दू हो, तो हम तुम्हें यहां से ले चलेंगे। कोई तुम्हें तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध यहां न रोक सकेगा। बोलो, तुम हिन्दू हो न ?"

"कैसे कहूँ कि हिन्दू हूँ", रुंधे गले से मैंने उत्तर दिया, "मेरा सब कुछ नष्ट हो चुका है—धर्म, कर्म, सतीत्व···"

"तुम्हारा कुछ भी नष्ट नहीं हुआ, बहिन ! यदि कुछ हुआ भी, तो उसमें तुम्हारा कोई दोष थोड़े ही है। चलो, उठो, तुम्हें कोई कुछ न कहेगा। दुनिया अब बहुत आगे बढ़ गई है।"

जीजी ! उन देवी स्वरूपा बहिन के वे शब्द अमृत वाणी-से लगे। काश, उद्धार की उस पुण्य-वेला में ही भगवान मुझे अपने समीप बुला लेते ! फिर क्यों आगे इतनी विभीषिका, इतना अपमान सहना पड़ता जो उस नरक-वास से भी अधिक दारुण था······। अपने फटे पाजामे-कुरते को, जो वहां का अवशेष चिन्ह था, मैंने उन्हीं बहिन से एक धोती मांग कर दूर कर दिया।

कितने दिन यात्रा में कटे, कितनी मुझ-सी दुखियारी बहिनें साथ थीं, यह सब लिखा कर पत्र लम्बा करने की इच्छा नहीं है। ऐडिथ ने डियूटी पर जाना है। मेरी

दुःख-गाथा कोई काग़ज़ पर क्या लिख सकेगा ! बस, चुन्नू की याद, उसे देख पाने की तड़पन लिये मैं दस जनवरी को राजधानी आ पहुँची। मुझे अपने घर वालों का पता लग गया था। बैंक के अवशेष धन से ससुर जी ने यहां दुकान करली थी। इन्हें भी नौकरी मिल गई थी। एक सिहरती सन्ध्या के धुंधलके में जब मैं अपनी रक्षक सावित्री बहिन के साथ अकस्मात् ही आंगन में जाकर खड़ी हो गई और आहट सुन कर मेरी सास निकलीं, तो मुझे देख कर वह ऐसी सफेद पड़ गईं, मानों अन्धेरे में भूत देख लिया हो। मैं पैर छूने को आगे झुकी, तो वे चार पग पीछे हट गईं-- "हां, हां, रसोई की धोती है, छूना मत!" और मेरा माथा जो पहले ही अपनी दुर्दशा से नत था, एकदम फ़र्श से जा लगा।

"माता जी, कैसी बातें करती हैं आप!" बहिन सावित्री ने कहा, "इस बेचारी ने दुष्टों के हाथों कितने संकट झेले हैं, कैसे कैसे दुःख सहे हैं...केवल आप लोगों के दया और प्रेम के भरोसे ही यह दुखिया आज आपके सामने जीवित दिखाई दे रही है। आप लोगों को तो इसे गले लगाना चाहिए।"

"हां, हां, सो आप गले से लगाये तो हैं!" सास ने मुंह फुला कर कहा, "और शीलो, तेरी अक्ल पर भी पत्थर पड़ गए थे! चिट्ठी न पत्री, एकदम से आ धमकी। अरे बाबा, पहले खबर देकर पूछ तो लिया होता। क्या म्लेच्छों के साथ रह कर हिन्दू धर्म-कर्म को एकदम ही भूल गई! अरे, जब सती सीता को राजा राम न रख सके, तो हम गरीब किस गिनती में हैं?"

और जीजी, मैं सुन रही थी, वह कह रही थीं, कहती चली गईं— "राम राम करके गोपाल अब जरा मेरे से हिला है; नहीं तो अम्मा की याद में रो-रोकर कांटा हो गया था। यह अपना काला मुंह दिखाकर फिर उसे बीमार करना चाहती है। अरी, मां होकर डायन न बन। पिछले कर्मों से तेरा यह जन्म तो बिगड़ ही गया; अब बाल-हत्या सिर लेकर क्या अगला भी नष्ट करेगी? अरे, ओ जगदीश, देख तो यह क्या मुसीबत आ गई। घर जला, बेघर हुए, बेटे का घर बिगड़ा, बहू गई-- सब कष्ट तो आ लिए; अभी क्या कसर रह गई थी जो यह बिपता घर लौट आई? हाय राम! हम दुनिया में किसी के आगे कैसे सिर ऊंचा करेंगे!"

वह रोने लगीं। हतबुद्धि-सी सावित्री उन्हें ताक रही थी। वह क्या कहे! और मैं तो कहती ही क्या?

"कौन है, अम्मा?" चप्पल फटफटाते वे बाहर आ गए। इच्छा हुई कि दौड़ कर उनकी गोद में छिप जाऊं, कहूं — मेरे स्वामी! मेरे देवता! तुम्हारी शीलो ने असंख्य आपदायें झेली हैं! क्या तुम्हारे चरणों में आकर भी मेरा यों अपमान होगा? पर ज़ुबान तालू से सट गई।

"अरे!" करके वह जिस मूढ़-स्तब्ध भाव से मुझे देखते ही किवाड़ों के पास रुक गए, उससे मेरा रक्त नसों में ही जम गया। सावित्री ने उनके निकट जाकर कहा, "भाई साहब, माता जी को समझाइए। यदि सभी हिन्दू इनकी भांति इन देवियों से घृणा करेंगे, तो हमारा देश रसातल को चला जायगा। आपको तो दूने आदर-प्रेम से इन्हें ग्रहण करना चाहिए। इनका दोष क्या है? एक तो बेचारियों ने इतने कष्ट सहे, तिस पर हम लोग ही इनका अपमान करें! यदि अपने धर्म से, देश से, घर से इन्हें प्रेम न होता, तो यह वहां से लौटकर आती ही क्यों?"

"हां, हां, सो तो ठीक है," उन्होंने ठण्डे बेजान स्वर में उत्तर दिया, "अपमान करना तो एकदम ग़लत होगा। सब को जहां तक बने, इनकी सहायता करनी चाहिए; वरना फिर इन लोगों का......"

वाक्य अधूरा छोड़ कर वे अपना सिर खुजाने लगे।

मां जी ने भारी स्वर में तुरन्त कहा, "सहायता को हमारे पास क्या रखा है! घर लुटना, सिर पिटना, सब कुछ तो हो चुका! बस, तन पर कपड़े लेकर जान बचा पाये थे, जाने कैसे अपनी गुजर चला रहे हैं!"

"चन्दा देने को आप से कौन कहता है?" सावित्री इस बार थोड़ी तीखी पड़ी, "सवाल यह है कि आप लोग इन्हें ग्रहण करेंगे या नहीं?"

"अरे बाबा, जबरा मारे, रोने न दे", मां जी रुआंसी हो गईं। "कांग्रेस का राज है, चाहे जो करे! भंगी-चमार मंदिरों में दर्शन करते हैं; अब सत्तर

जनों की झूठी थाली को भी ग्रहण करना होगा! हमारा क्या, छोड़ जाओ। पड़ी रहेगी एक कोने में। पर जो तुम कहो कि यह हमारी बहू बन कर रहे, सो तो हो नहीं सकता। यह तो बहू है, अगर हमारी बेटी होती, तब भी हम नहीं रखते।"

और फिर धोती बचाती हुईं वह मेरे निकट आ गईं। फुसफुसा कर बोलीं, "अरी, जब धर्म-कर्म सब खो चुकी थी, तो वहीं क्यों न रह गई? एक ठिकाने तो पड़ी थी! हिन्दुस्तान में ही क्या लड्डू धरे हैं! पड़ेगी अब किसी जात-कुजात के पाले!"

"ओ मां!" जीजी, रोकते-रोकते भी मेरी चीख निकल गई। मैं अब इनकी नजर में एक वेश्या भर हूँ और यह सुन रहे हैं—यह, जो मेरे स्वामी हैं, जिनकी ब्याह के चार वर्षों में मन-वचन-कर्म से मैंने भक्ति की है, जिन्हें मैंने अपना ईश्वर माना है!

"देखो," अकस्मात् वह मेरे समीप आ गए, "शीला, अम्मा का विरोध तुम देख रही हो। वह भी क्या करें? जाति, समाज और दुनिया की लाज तो रखनी पड़ेगी। अभी यह सब जो बातें बना रहे हैं, फिर हमें अपने से नीचा समझेंगे। खैर, जो आ गई हो, तो अभी कैंप में रहो। जो बनेगा, सो मदद करूंगा। मुसीबत तो यह है कि तुम ज्यादा पढ़ी-लिखी भी नहीं हो कि तुम्हें किसी स्कूल में ही नौकर करा देते।"

भभकते पिघले सीसे की तरह उनकी वाणी मेरे कानों में पड़ रही थी। पर मेरी आंखें जब से आई थीं, अपने गोपाल को ढूंढ रही थीं। मेरे लाल को जाने इन्होंने कहां छिपा दिया था।

सब मूक थे। कोई क्या कहे; मैं क्या कहूँ?

"गोपाल, गोपाल!" रोकते-रोकते भी मेरे मुंह से कई बार पुकार निकली, "चुन्नू!" और आंखें मलता, "अम्मा, अम्मा!" पुकारता, जाने वह किधर से आ गया। क्या यह वही गोपाल था या उसका कंकाल — लम्बा, पतला, सिर के बाल उड़े हुए। मेरे मन के, तन के बांध टूट पड़े।

"चुन्नू, मेरे बच्चे, मेरे लाल," लपक कर मैंने उसे गोद में भर लिया। "बस, तुम मुझे मेरा चुन्नू दे दो; और मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

"अरे, क्या करती है शीलो! एकदम पागल हो गई है? बीमार बच्चे को ऐसे भींचती है!" और बलात् गोपाल को मेरी गोद से छीन कर घसीटती हुई मां जी उसे ले गईं। रोते, पैर पटकते, "अम्मा अम्मा!" पुकारते चुन्नू का स्वर बाहर जा कर विलीन हो गया।

बस जीजी, कहां तक लिखूं? ऐडिथ की कलम की स्याही खत्म हो चली है और मेरी आंखों के आंसू भी। कैसे लौटी, कहां रही, इसे क्या सुनाऊं! कितनी ही अपनी ही जैसी अपमानित बहिनों के साथ इस कैम्प में हूं। सावित्री देवी सब को ढाढ़स बंधाती हैं, प्रोत्साहित करती हैं। कहती हैं, "कोई दस्तकारी सीख लो, उससे गुजारा चल जायेगा। कोई उत्साही युवक तैयार होगा, तो तुम्हारा विवाह भी कर देंगे।"

पर सत्य बहिन, मन मेरा टूट चुका है। जैसे पतंग की डोर कट जाने पर वह फिर नहीं उड़ती, वैसे ही चुन्नू के बिछोह से मेरे प्राणों के तार टूट गए हैं।

सुन्दरी युवती, जो सदा घर की चहारदीवारी के भीतर पली हो, जो संसार के उतार-चढ़ाव को न जानती हो, कैसे अकेले दस्तकारी के बल पर रहेगी और क्यों कर रहेगी? पेट भरने को तो मुझे उस दर्जी के भी मिलता था। बुरा-भला आश्रय भी था ही। क्या वहां इसीलिए आई थी कि समाज का कलंक समझी जाऊं? वेश्या के लिये इस देश में स्थान है, पर विवशता में चाहे जो कुछ सहा हो, स्वेच्छा से भी तन का व्यापार कर सकूं, ऐसी प्रवृत्ति नहीं होती। अब एकमात्र मार्ग मृत्यु का शेष है। जान-बूझ कर शीतला के रोगियों में घूम कर मैंने उसी मार्ग को चुन लिया है। तुम अपने भगवान से मेरे लिए इतनी प्रार्थना करना कि तुम्हारी शीलो को वह फिर हिन्दुओं में नारी का जन्म कभी न दे, चाहे कीट-पतंग ही क्यों न बना दे! बस,

तुम्हारी—
शीलो

प्रो० भंसाली सेवाग्राम के दो विद्यार्थियों के साथ।

प्रो० भंसाली

श्री उमाशंकर शुक्ल

भंसालीजी महात्मा गांधी के विशेष शिष्यों में से हैं। प्रस्तुत लेख द्वारा उनके असाधारण व्यक्तित्व और कार्यों पर बहुत अच्छा प्रकाश पड़ता है।

पूरा सेवाग्राम आश्रम देख चुकने के पश्चात् मेरे बंगाली मित्र ने पूछा—"और हां, यह कौन है सामने तगड़ा-सा व्यक्ति जो जमीन पर चटाई बिछाये बैठा है? पास में दुनिया का मानचित्र, चर्खा, कपास, कुछ पुस्तकें और कुछ बरतन! देखो, सूत कातने में ही तल्लीन है; आस-पास की कुछ सुधि ही नहीं।"

मेरे मित्र आगे बढ़ते ही गए।

मैंने कहा—"यह हैं प्रोफेसर भंसाली, जिन्होंने सन् ४२ के आन्दोलन के दिनों में आष्टी व चिमूर की स्त्रियों के साथ पाशविक अत्याचार किए जाने पर निष्पक्ष जांच की मांग के लिए आमरण अनशन किया था। तिरसठ दिन तक अनशन करने के बाद इनका अनशन भंग हुआ और इनके सामने ब्रिटिश नौकरशाही को झुकना ही पड़ा।"

"अच्छा यही हैं वे प्रोफेसर भंसाली! ये तो बड़े ही योगी पुरुष दिखाई देते हैं," मेरे मित्र ने कहा।

"ये योगी ही हैं। इन्होंने हिमालय में जाकर वर्षों योग-साधन किया है; महीनों पत्तियां चबा कर रहे हैं। एक बार इन्होंने अपना मुंह ही सिला लिया था और नौ मास तक सिलाये रहे। जब गांधीजी को राजकोट में मालूम हुआ तो उन्होंने मुंह खुलवाया। गत पैंतीस वर्षों से भंसालीजी का गांधीजी से घनिष्ट सम्बन्ध था और कुछ वर्षों से तो बापू इन्हें बहुत ही चाहने लगे थे। वर्धा में जब भंसालीजी आमरण अनशन कर रहे थे, उस समय गांधीजी ने ब्रिटिश नौकरशाही से कहा था कि मुझे मरते हुए अपने साथी से मिल तो लेने दो। पर भला ब्रिटिश नौकरशाही बापू की इच्छा क्यों पूरी होने देती! वह भी एक युग था—सङ्कट का युग। और आज भी एक युग है। आज बापू नहीं हैं, फिर भी उनकी दिव्यात्मा हमारे बीच में है जो प्रेरणा दे रही है।"

भंसालीजी सन् १६४२ में अनशन करते हुए।

प्रोफेसर भंसाली का जीवन सादगी की खान है। वे व्याख्यान देने तथा लेख लिखने की अपेक्षा कुछ रचनात्मक कार्य करना अधिक पसंद करते हैं। इसलिए वे गांवों की सफाई करने, चरखा चलाना सिखाने, बच्चों को पढ़ाने, रोगियों की सेवा करने और किसानों को सन्मार्ग की ओर चलने को प्रेरित करने में ही लगे रहते हैं। 'यह काम करो' का आदेश न देकर वे कहते हैं 'आओ, हम यह काम करें!' 'यह काम करो' तथा 'आओ, हम यह काम करें' दोनों में कितना अंतर है। हमारे देश के किसानों में कार्य करने की शक्ति है, उनमें कार्यकर्त्ता हैं और वे अपना भला-बुरा भी सोच सकते हैं। कमी है तो सिर्फ इस बात की कि वे आलस्य का शिकार हो गये हैं। अगर कोई सच्चा कार्यकर्त्ता गांव में जाकर बैठे और गांव वालों के सहयोग से कार्य करे, तो हम देखेंगे कि वह गांव भूतल का स्वर्ग बन सकता है। भंसालीजी उन्हीं कार्यकर्त्ताओं में से हैं, जो गांवों में रहना पसंद करते हैं। गांव के उत्थान के लिए उनके हृदय में आग है। भंसालीजी प्रायः कहा करते हैं—"कहा जाता है कि हमारे देश का बहुत-सा काम अच्छे कार्यकर्त्ताओं के अभाव के कारण नहीं हो पाता; पर हम कहीं बाहर न जाकर कार्यकर्त्ताओं को अपने घर में ही ढूंढें तो कितना अच्छा हो।"

भंसालीजी सेवाग्राम में जब रहते हैं तो आश्रम के लिए दो पीपों की कांवर बना कर पानी भरते हैं। वे स्वयं पानी कुएं से खींचते हैं, जमीन खोदते व उसमें तरकारी-भाजी पैदा करते हैं। परिश्रम करना उनके जीवन का एक मुख्य अङ्ग है। वे दिन भर तो काम करते ही रहते हैं; किन्तु रात को भी वे काम करते हैं और वह काम है चक्की चलाने का। रात को ११ से ४ बजे सुबह तक चक्की चलाते हैं। सिर्फ ६ से ११ तक दो घण्टे सोते हैं।

एक बार मैंने पूछा—"भंसालीजी, आप भला उपवास के दिनों में क्या खाते हैं?"

उन्होंने उत्तर दिया—"अगर उपवास में कुछ खाया जाय तो फिर उपवास ही कैसा!"

एक बार भंसालीजी ने बीच में कुछ दिन तक उपवास किया। मैंने कारण पूछा उपवास का। उन्होंने जबाब दिया—"मेरा वजन बढ़ गया था; वजन कम करने के लिए मैं उपवास कर लिया करता हूँ।"

भंसालीजी का भोजन के सम्बन्ध में सिर्फ एक नियम है और वह यह है कि वे उबली हुई चीज नहीं खाते। जो कुछ खाते हैं, कच्चा ही। कुम्हड़ा, टमाटर, लहसुन, नीम की पत्ती, गुड़ का शरबत, मूंगफली, इमली, दूध आदि चीजों का वे अपने भोजन में उपयोग करते हैं। कभी-कभी तो कच्चा आटा ही फांक लेते हैं।

भंसालीजी अखबारों तथा आत्म-विज्ञापन की दुनिया से बहुत दूर रहते हैं। कहां क्या चल रहा है, उन्हें कुछ भी पता नहीं। उनके साथी यदि कोई समाचार सुना देते हैं, तो सुन भले ही लेते हैं। एक बार 'नेशनल हेराल्ड' के भूतपूर्व सम्पादक श्री के०

(शेष पृष्ठ ५८ पर)
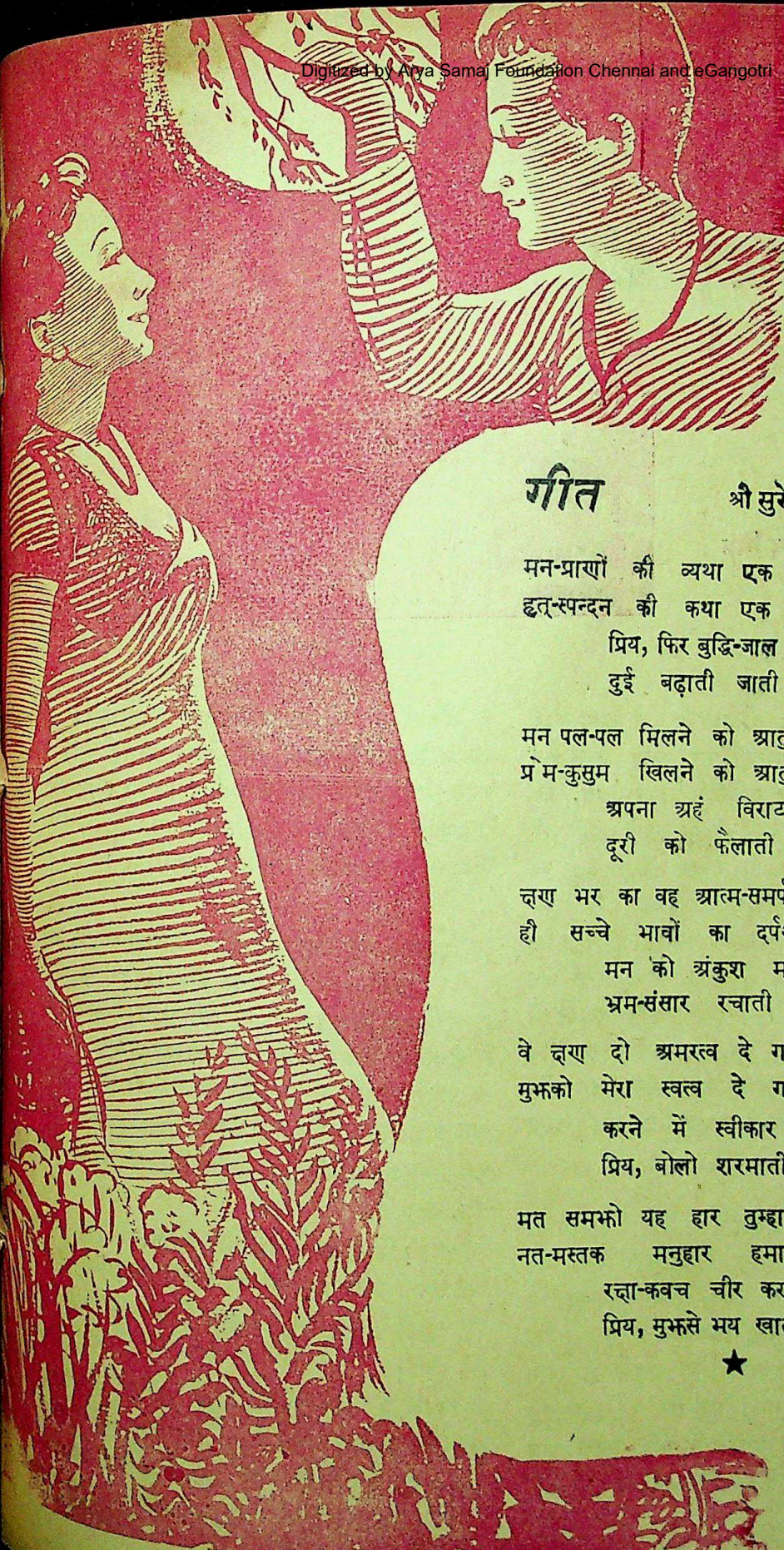
गीत

श्री सुरेन्द्र बालूपुरी

मन-प्राणों की व्यथा एक है,
हृत्-स्पन्दन की कथा एक है,
प्रिय, फिर बुद्धि-जाल रच-रच कर
दुई बढ़ाती जाती क्यों हो ?

मन पल-पल मिलने को आतुर,
प्रेम-कुसुम खिलने को आतुर,
अपना अहं विराट बन कर
दूरी को फैलाती क्यों हो ?

क्षण भर का वह आत्म-समर्पण
ही सच्चे भावों का दर्पण,
मन को अंकुश मार-मार कर
भ्रम-संसार रचाती क्यों हो ?

वे क्षण दो अमरत्व दे गये,
मुझको मेरा स्वत्व दे गये,
करने में स्वीकार सत्य को
प्रिय, बोलो शरमाती क्यों हो ?

मत समझो यह हार तुम्हारी,
नत-मस्तक मनुहार हमारी,
रक्षा-कवच चीर कर रख दो,
प्रिय, मुझसे भय खाती क्यों हो ?

★

कहानी

उत्तराधिकार की समस्या

श्री गङ्गाप्रसाद मिश्र

मैं उस बिरादरी का आदमी हूँ, जो लोग लहरें गिनके भी आमदनी कर लिया करते हैं। मैं मिलिटरी इंजीनियरिङ्ग सर्विस में हेडक्लर्क था, जहां अगर आमदनी न करने की कसम खाई जाय तो नौकरी और जिन्दगी दोनों ही बेकार हो जायं। यह मेरा पूर्ण विश्वास था और इसी कारण दोनों हाथ पैसा बटोर रहा था कि अफसरों की निगाह में खटक गया और उन्होंने आव देखा न ताव, सीधे मेरी शिलांग बदली कर दी। उन्होंने अपनी समझ में मुझे काले पानी भेज दिया था, पर स्थानान्तर होने से मेरी आमदनी में तो कोई विशेष अन्तर पड़ा नहीं। हां, युक्तप्रान्त में मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहा करता था, सो वहां पहुंचते ही धीरे-धीरे सुधरने लगा।

कैसा सुन्दर था वह प्रदेश! वास्तव में प्रकृति का पालना, क्रीड़ा-क्षेत्र, जो कुछ भी उसे कहा जाय सब थोड़ा है। हरियाली इस कदर फैली हुई थी कि आंखों में बस गई थी। जिन झरनों और जल-प्रपातों को देखने के वास्ते नैनीताल और मसूरी में लोग मीलों चले जाते हैं, वे वहां पग-पग पर दिखलाई देते थे। सुन्दरता जितनी प्रकृति में थी, उससे कम मानव में नहीं दिखलाई देती थी। वहां की युवतियों के सौन्दर्य में जो स्वाभाविकता और स्वास्थ्य की झलक दिखलाई पड़ती थी, उसके सामने यूरोपीय चटक-मटक से भरा सौन्दर्य पानी भरता था। अवस्था के ढलाव ने जो मन में एक उदासीनता भरना प्रारम्भ किया था, वह वहां न जाने कहां हवा हो गई!

मेरे मकान-मालिक और मालकिन एक नव दम्पति थे। गुलाब-सा दोनों का वर्ण था और शरीर उनका मालूम होता था जैसे पराग की कोमलता से ही निर्मित हुआ हो। इतने सरल स्वभाव के थे कि पहली ही भेंट में उन्होंने अपना सब कुछ मुझे बता डाला, कुछ भी गुप्त न रक्खा।

नवयुवक से मैंने पूछा—'क्यों मिस्टर, आप कहां काम करते हैं?'

'मैं? मैं तो कहीं काम नहीं करता; क्योंकि मेरी पत्नी अपनी समस्त मातृ-सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी है।'

'इसके मायने इनके कोई भाई नहीं है?' मैंने पूछा।

'नहीं, है क्यों नहीं' — वह अपनी स्वाभाविक मुस्कराहट के साथ बोला—'पर इस देश का कानून ऐसा ही है कि सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी लड़की

जिसे दूसरों द्वारा कमाई हुई सम्पत्ति बिना मेहनत-मजदूरी किये अनायास ही मिल जाती है, उसके सौभाग्य व ठाठ की भला कौन कहे! परन्तु यदि वह मिली हुई सम्पत्ति हाथ से छिन जाये, तब क्या दशा होती है, यह इस कहानी में पढ़िये।

ही होती है, लड़का नहीं—और लड़की भी जो सबसे छोटी हो। यहां का समाज मातृ-प्रधान है, पितृ-प्रधान नहीं।'

वहां की यह परिपाटी जानकर मुझे अधिक आश्चर्य न हुआ—इस कारण न हुआ कि राजनीति व समाज-शास्त्र की पुस्तकों में मैं यह बात पढ़ चुका था।

फिर अन्य विषयों पर बातचीत होती रही। बातचीत में मालूम हुआ कि नवयुवक यद्यपि ग्रेजुएट है, पर चूंकि सम्पत्ति प्राप्त होने के कारण उसे जीवन भर आर्थिक उलझनें नहीं होना है, इसलिए उसने अपने आपको किसी नौकरी इत्यादि के बन्धन में डालना व्यर्थ समझा। युवक और युवती दोनों ही युवती के माता-पिता के प्रति बड़ी ही श्रद्धा रखते थे, जिनसे उन्हें वह सम्पत्ति प्राप्त हुई थी। मुझे उन्होंने अपने अन्दर के कमरे में ले जाकर दिखलाया जहां युवती के माता-पिता के चित्र लगे हुए थे। पैंतालीस और पचास के बीच में उनकी अवस्था थी और दोनों का ही स्वास्थ्य बड़ा अच्छा था। दोनों चित्रों पर दो बड़े-बड़े ताजे हार टंगे हुए थे। नवयुवक ने बतलाया कि वे दोनों सुबह उठ कर पहले इनकी पूजा करते हैं, तब कोई और काम करते हैं। 'बड़े ही सन्त स्वभाव के हैं मेरे सास-ससुर!' नवयुवक बोला, 'यद्यपि वे अभी वृद्ध नहीं हैं, पर संसार की तरफ से आंखें फिराकर वे अभी से बिल्कुल विरक्त-से हो गए हैं।'

मैंने उन दोनों के प्रति काफी अच्छी राय कायम की, क्योंकि इस संसार में उपकारी के प्रति कृतज्ञता का भाव रखने वाले भी बहुत थोड़े मिलते हैं।

उन दोनों से मेरी कुछ ही दिनों में काफी घनिष्ठता हो गई। युवती पहले तो कुछ संकोच सा अनुभव करती रही, पर बाद में वह दूर हो गया। हम तीनों घण्टों बैठे बातें किया करते। अतिथि-सत्कार में जितना पैसा इन दोनों को खर्च करते मैंने देखा था, उतना कम लोगों को देखा है। सच तो यह है कि पैसे को वे लोग कुछ समझते ही नहीं थे—पानी की तरह बहाते थे। मेरे पहुँचते ही, या किसी के भी आने पर, एक से एक बढ़िया विलायती शराब की बोतलें खुल जातीं और बढ़िया से बढ़िया खाने आते। वे लोग बिल्कुल राजसी ठाठ से रहते थे। सूती कपड़े पहने मैंने उन्हें बहुत कम देखा था, ज्यादातर रेशम ही पहनते थे। केवल दो प्राणी होते हुए भी उनके यहां छः नौकर थे। युवक महोदय का मुख बिना सिगार के मैंने कभी नहीं देखा था और युवती अपने कानों में जो बड़े-बड़े हीरे के इयरिंग सदैव पहने रहती थी, वे ऐसे थे जो अच्छे अच्छे रईसों को भी मयस्सर नहीं होते थे।

मेरी पत्नी अब चूंकि आ गई थी, इसलिए मेरा उन लोगों के साथ उठना-बैठना बहुत कम हो गया था, क्योंकि एक तो श्रीमती जी को शराब से बहुत चिढ़ थी—जिससे उन लोगों के यहां जाकर बचना असम्भव था। दूसरे, श्रीमती जी यह बात बिल्कुल पसन्द न करती थीं कि मैं किसी ऐसी जगह जाकर बैठूं, जहां किसी युवती की छाया भी पड़ती हो। और वहां तो अप्सरा-सी वह युवती थी जो अपने हाथ से मदिरा-

पान भी कराती थी। तब श्रीमती जी मेरा विश्वास कहां कर सकती थीं!

जून का प्रारम्भ ही था, पर उस देश में बादल चाकरों की भांति आस-पास मंडराया करते थे और प्रत्येक आधे घण्टे बाद खूब जोरों से वर्षा हो जाया करती थी। सामने की उस ऊंची पहाड़ की सफेद चोटी के आसपास ऐसा कभी न होता था कि बादल घिरे हुए न दिखाई देते हों।

रविवार का दिन था और खूब जोरों से वर्षा हो रही थी, इस कारण मैं अभी चारपाई से सोकर नहीं उठा था। नींद खुली तो देखा, घड़ी में नौ बज चुके थे। सोच रहा था कि अभी उठूं या न उठूं कि एक-दो बड़ी जोर की आवाजें हुईं। ऐसा मालूम हुआ कि कोई बड़ी कांच की चीज जमीन पर गिर कर टूटी हो। मैं तुरंत बिस्तरे पर से उठा। खिड़की खोल कर देखा तो उन दम्पति के सीमेन्ट के बने हुए टेनिस कोर्ट पर माता-पिता दोनों के चित्र पड़े हुए थे। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। ऐसा कौन व्यक्ति आ गया, जिसने उन दोनों के इन श्रद्धेय व्यक्तियों के चित्र इस बुरी तरह फेंक दिए। बड़ी उत्सुकता मेरे मन में इस बात को देख कर हुई।

पानी थोड़ी देर बाद रुका तो मैं श्रीमती जी की अनुमति से उन लोगों के मकान में पहुँचा। नवयुवक सामने के कमरे में बड़ी उद्विग्नता से टहल रहा था। मुझे देखकर निकल आया।

'यह चित्र किसने फेंके हैं?' मैंने प्रश्न किया।

'मैं ने साहब, मैं ने!' नवयुवक का चेहरा क्रोध से तमतमा आया। वह बोला —'इन दोनों बुढ़िया-बुड्ढे ने मुझे कहीं का न रक्खा, साहब! इस उम्र में इन्होंने एक लड़की पैदा करके रक्खी है और मुझे तार से खबर दी है कि सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी अब वही है, इसलिए मुझे अपनी और अपनी पत्नी की आजीविका का कुछ और प्रबन्ध करना चाहिए। मेरी तो जिन्दगी बर्बाद हो गई, साहब! सरकारी नौकरी के लायक अब मेरी उम्र भी नहीं रही। मेरी पत्नी गर्भवती है, शीघ्र ही उसके बच्चा होने वाला है। उसके पालन-पोषण में भी तो कुछ लगेगा। बताइये, अब मैं क्या करूं? अब मेरा कुछ न रहा।'

मैंने देखा वह युवती सामने सोफा पर बैठी रो रही थी। मैं वहां से धीरे-धीरे बाहर आया। वह युवक मेरे पीछे-पीछे आया, बोला—'साहब, आपके दफ्तर में मुझे कोई नौकरी न मिल सकेगी?'

'क्यों नहीं, क्यों नहीं'— मैंने उसे आश्वासन दिया।

बाहर निकल कर देखा तो टेनिस-कोर्ट पर पड़े हुए उन चित्रों के रंग पानी में धुंधले हो रहे थे और कांच चारों तरफ फैला हुआ था।

गीत

श्री निरंकारदेव सेवक एम० ए०

मैं किसी के रूप का शृंगार बनकर क्या करूं ?
मैं किसी के प्यार का आधार बनकर क्या करूं ?

कौन-सा सपना नहीं है टूट जाने के लिए,
कौन-सा अपना नहीं है छूट जाने के लिए,
मैं किसी के स्वप्न का संसार बनकर क्या करूं ?
मैं किसी के प्यार का शृंगार बनकर क्या करूं ?

सैकड़ों रंगीन रातों की कहानी भूलकर,
सैकड़ों सुकुमार कलियों की जवानी भूलकर,
मैं किसी की याद का अधिकार बनकर क्या करूं ?
मैं किसी के प्यार का आधार बनकर क्या करूं ?

जानता हूँ मैं किसी के पास आना भी कठिन,
मानता हूँ मैं किसी से दूर जाना भी कठिन,
मैं किसी उर के चपल उद्गार बनकर क्या करूं ?
मैं किसी के रूप का शृंगार बनकर क्या करूं ?

बात अन्तर की न अधरों तक अगर मैं ला सका,
खोल स्वर के पर न अम्बर में अगर उड़ जा सका,
मैं किसी के गीत की झंकार बनकर क्या करूं ?
मैं किसी के प्यार का आधार बनकर क्या करूं ?

स्वतन्त्र भारत में

एक व्यंग्य-लेख—
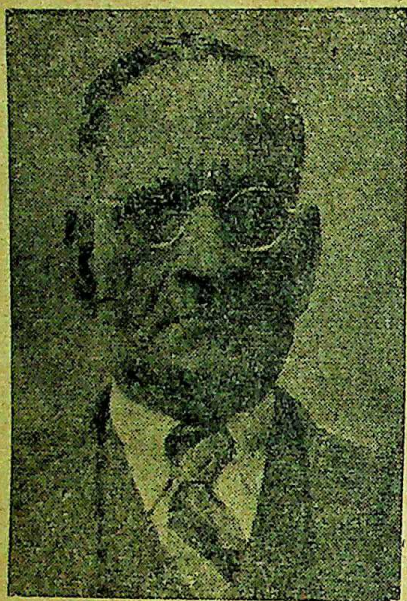
श्री गोपालस्वामी आयंगर

त्रावणकोर के भूतपूर्व दीवान सर सी. पी. ('यू० पी०' नहीं) रामास्वामी अय्यर ने जब त्रावणकोर के स्वतन्त्र रहने की हिमायत में सरदार वल्लभ भाई पटेल से टक्कर ली, तो हमने समझा था कि यह 'शेर' भी 'शान' रखता है। पर भारत के स्वतन्त्र होते ही सर सी. पी. इस तरह गायब हुए जैसे गधे के सिर से 'सींग'। इस घटना को हमने 'स्वतन्त्र-भारत' में मदरासियों के लिये 'अपशकुन' समझ लिया था। लेकिन हमारा यह अन्दाज गलत साबित हुआ। सर सी. पी. की 'बलि' चढ़ते ही भारत सरकार के हर विभाग में मदरासी इस तरह बढ़ गए कि जैसे बरसात में मेंढकों की बारिश होती है। स्वतन्त्र-भारत की राजनीति में भी मदरासी का महत्व खूब बढ़ा-चढ़ा है। राजा जी शुरू में तो बंगाल के गवर्नर ही बने थे, पर उनका भविष्य बहुत उज्ज्वल हो रहा है। देखिए न, वे अब गवर्नर से सीधे उठे तो गवर्नर जनरल माउण्टबेटन के ही उत्तराधिकारी बन गए हैं! यह है उनकी घुटी 'चांद' का असर! बंगाल में चांद-मारी करके दिल्ली के चांदनी-चौक की रौनक बढ़ाने के लिए तैयार हैं! उधर 'लेकसक्सेस' में एक दूसरे मदरासी सर गोपालस्वामी भी कम नहीं दहाड़े; मगर पता नहीं उस ताजाब का नाम किसने गलत 'लेक-सक्सेस' रख दिया है! वहां तो बजात-खुद 'सक्सेस' भी 'फेल' हो रही है! विजयलक्ष्मी पण्डित ने अफ्रीकन-शेर के नाखून रगड़ कर उसे भले ही अशक्त कर दिया था; पर उस पर कोई असर नहीं हुआ। जगत् ने श्रीमती पण्डित की 'सक्सेस' का डङ्का पीटा; पर बतलाइए, हुआ फील्ड-मार्शल स्मट्स पर कोई असर? फिर गोपालस्वामी की दहाड़ें अरण्य-रोदन बन जायें तो कौन-सा आश्चर्य! आज काश्मीर का 'केस' और फिलस्तीन का प्रपंच-पचड़ा वैसे ही तो पड़ा हुआ है। बात यह है कि इसमें कुसूर 'लेक-सक्सेस' का है, न कि गोपालस्वामी का। वे तो बिना-विभाग में मदरासी-मिनिस्टर बने ही हुए हैं। काश्मीर के 'केस' के लिए वे 'रिजर्व' हैं!

अब जरा अन्तरिम गवर्नमेण्ट के समय की तरफ निगाह डालिए। राजा जी तो रहने के ही थे, पर पण्डित जी के प्रतिनिधि 'मि० मेनन' ने उन दिनों बड़े कीमती काम किए। लोगों की जबान पर उस समय इन मेनन का नाम खूब महत्व पाया हुआ था। और आज जब से देश स्वतन्त्र हुआ है, तब से दर्जनों मदरासी (मदिराशी नहीं, हालांकि इनका गुण-धर्म नाम समान ही है!) मान के साथ शान गांठे हुए हर विभाग में अपना भाग भज रहे हैं। राजनीति में तो 'मेननजाईटिस' की तरह मेनन ही मेनन फैले हुए हैं — इतने मेनन हैं कि उनके नामों के प्रथमाक्षरों को याद रखना मुश्किल मामला हो गया है। चीन के राजदूत भी मेनन थे और पण्डित जी के 'दूत' भी मेनन। पर इन मेननों (मेमनों नहीं!) ने नम्बर मार गए हैं स्टेट-विभाग के सेक्रेट्री मेनन। हां, तो इन सभी के नामों को याद रखना मुश्किल मामला है। भला बूझिये तो सही, कौन से मेनन का किस मेनन से क्या रिश्ता है? और फिर चीन, लन्दन, न्यूयॉर्क के ये मेनन कौन-कौन हैं?

मदरासियों का महत्व

—श्री सूर्यनारायण व्यास

श्री वी० पी० मैनन

खैर, यह तो मानना ही होगा कि स्टेट-डिपार्टमेण्ट के मेनन इन सभी मेननों में महत्व के हैं। उनके नाम के आगे 'वी० पी०' लगी हुई है, इसलिए वे भुलाए नहीं जा सकते हैं — खासकर के पांच-छः सौ राजा और १० करोड़ राज्यवासी प्रजा-जन तो इनको बहुत ठीक (बहुत तरह से भी) पहचानने लगे हैं; क्योंकि इन महाशय ने देश भर में राजा-महाराजाओं की सहज ही 'वी० पी०' रवाना कर दी है और खुद 'नकद-मनिऑर्डर' बन गए हैं! रियासतों में, रियासती राजनीति में इनका नाम अमर ही समझिएगा! जिस रियासत में जनाब तशरीफ ले गए, आपकी आवभगत
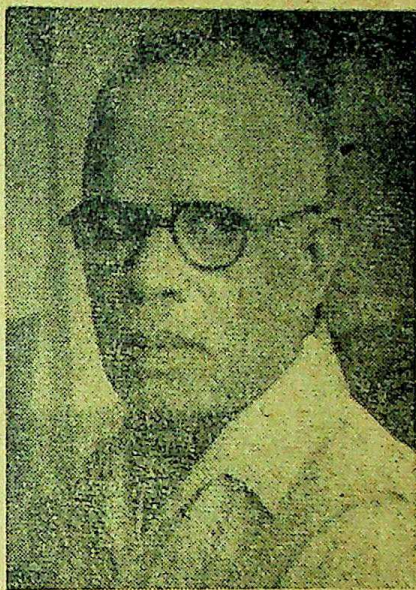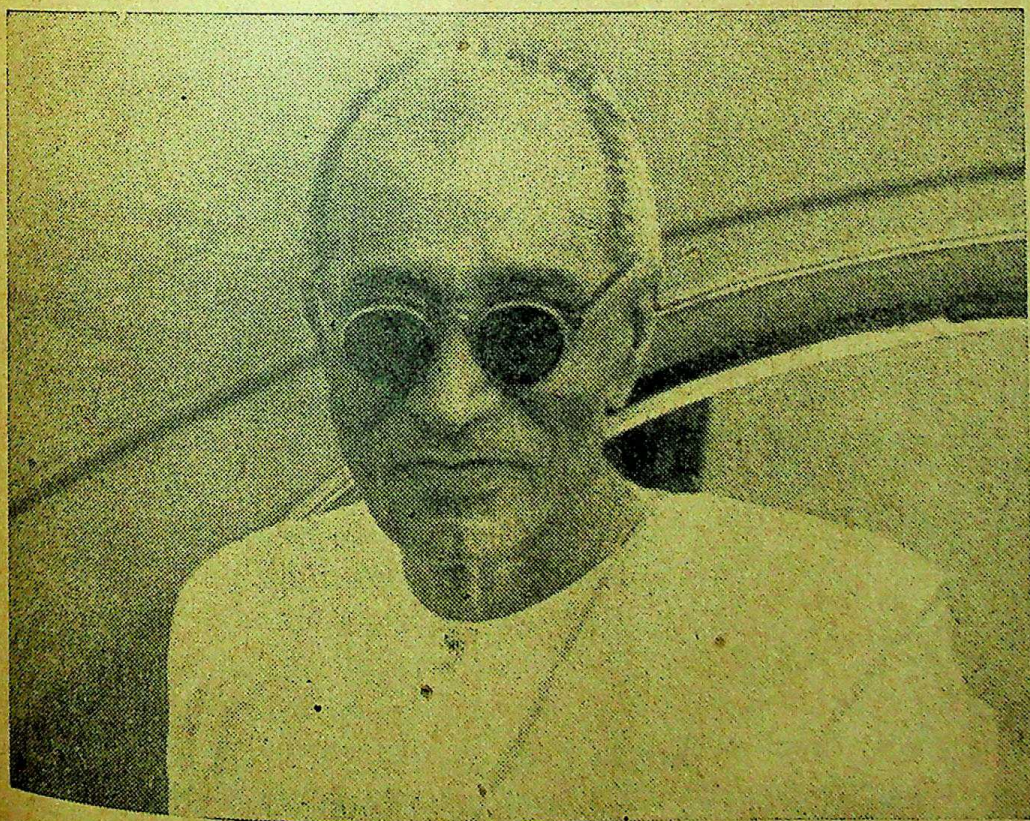
चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य
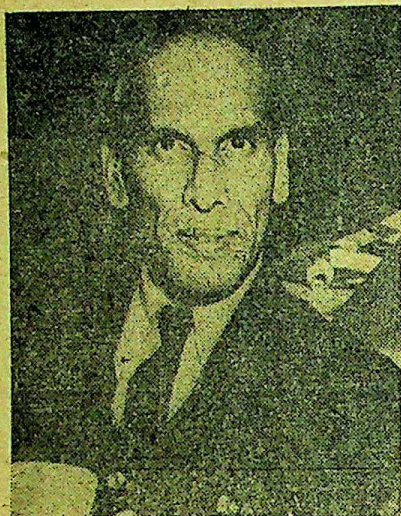
श्री कृष्णा मेनन

हुई, आपकी 'कीमत' हुई। पर वस्तुतः आप राज्यों के लिए तो 'मल्कुल-मौत' ही साबित हुए। अफवाहें भी बहुत फैली हैं। हाल ही में जब आप इन्दौर पहुँचे तो लोगों ने कहा—इन्दौर का बढ़िया असर हुआ है। और ज्यों ही ग्वालियर से होकर वापिस दिल्ली लौटे कि यारों ने फैलाया कि—ग्वालियर में इनको गांठ लिया गया है। भोपाल के मामले में भी यार लोगों ने ऐसी ही बातें उड़ाईं। पर मशहूर आदमी के बारे में अफवाहें तो फैला ही करती हैं! कौन कह सकता है कि मेनन-महाशय पर कोई असर-वसर पड़ता भी है या नहीं! मतलब यह है कि मदरासियों में भी जितना 'मेनन' का महत्व है, उतना औरों का नहीं। चाहे सारे राष्ट्र का धन षण्मुखम् चेट्टी की 'चाबी' में क्यों न बंधा हो, और मि० नरहरी राव उसपर रोज क्यों न वाद-विवाद किया करें, पर मेनन का-सा न तो मान मिल सकता है, न वह माद्दा ही। हां, रहे मि० करियप्पा, सो इनका 'सिप्पा' तो सारी सेना पर ही पुख्ता जमा हुआ है। और थिमय्या ने काश्मीर पर अपनी पकड़ पुख्ता बना ही ली है।

भारतीय पार्लमेंट में जब से सत्यमूर्ति स्वर्गीय हो गए, कोई ऐसा मदरासी 'वाक्-शूर' दिखाई नहीं पड़ रहा था; पर अब डॉ० पट्टाभि भी कम कुशल वक्ता नहीं हैं। वे देशी राज्यों की एक हाथ से 'कमान' सम्हाले हुए हैं, तो दूसरा हाथ पार्लमेंट पर भी उनका पक्का हुआ है। उनके साथ ही इधर अविनाशलिंगम् तथा रामलिंगम् भी चमक रहे हैं; पर मि० 'महा-लिंगम्' संभव है इन्हें 'मात' दे जाएं। रंगनाथम् और स्वामीनाथम् का नाम हम जानें या न जानें, बाहर तो लोग जानने लगे हैं। देवताओं की तरह पता नहीं इन मदरासियों में भी कोई 'द्वादश-ज्योति-लिंगम्' भी है या नहीं!
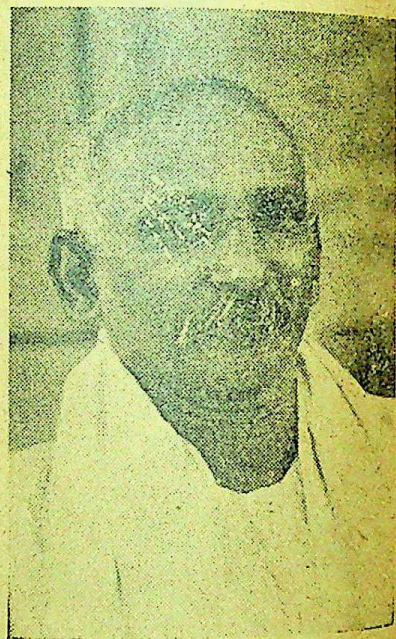
श्री पट्टाभि सीतारमैया

डॉ० पट्टाभि की याद आते ही रियासती राजनीति में पड़े हुए मदरासियों का भी स्मरण हो आना अस्वाभाविक नहीं। यद्यपि सर मिर्जा को हम मुसलमान के नाते जानते-पहचानते हैं; पर वे मैसूरियन् हैं, यह हमें भुलाना न होगा। उन्हीं की तरह सर रामास्वामी मुदालियर भी ऐसे व्यक्ति हैं जो मदरासी होकर भी 'अन्तर्राष्ट्रीय' हैं। सर टी० कृष्णमाचारी को कौन और उदयपुर के सर टी० विजयराघवाचारी को कौन नहीं जानता? सर राममूर्ति भी हाल ही में उदयपुर से विदा हुए हैं, जैसे कि मि० व्यंकटाचारी जोधपुर से मध्यभारत में विदा पा गए। अब मध्यभारत में एक संघ बन जाने पर मि० विश्वनाथन् से लेकर ...

आई० सी० एस० मदरासी महमान बनकर पहुँच रहे हैं। परन्तु पता नहीं उधर सौराष्ट्र (काठियावाड़) का पानी किसी मदरासी को क्यों माफिक नहीं आया ! खैर, ग्वालियर, इन्दौर, बड़ौदा तो मैसूरियान मदरासियों के पोषण के लिए तीर्थ की तरह बने रहे हैं। राजगोपालाचार्य, श्रीनिवासन्, राघवाचारी आदि का पोषण यहीं तो होता रहा है। आज भी चाहे भारत-पार्लमेंट में 'अविनाश लिङ्गम्', और 'रामलिङ्गम्' जैसे साधारण सदस्य रहते हों, पर ग्वालियर के पुलिस-मंत्री के पास मि० 'महालिङ्गम्' मौजूद हैं। वैसे देश में सर रमन्, रमणमहर्षि, सर राधाकृष्णन्, सर विश्वेश्वरैया, प्रो० कुमारप्पा, प्रो० रङ्गा का भी कम महत्व नहीं है। ये अपने ही नहीं, पराये देशों में भी मान पाए हुए मदरासी हैं।
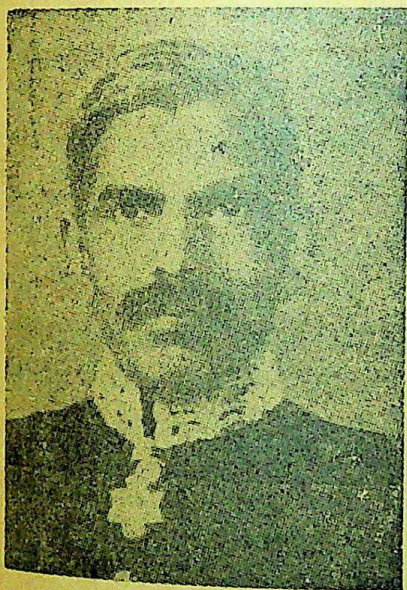
सर रामास्वामी मुदालियर

जो भी हो, आज हमारे देश के हर विभाग में मदरासी का बोल-बाला है। न जाने कितने-पिल्लई, चेट्टी, अप्पा, अय्या, चारी हैं, जो सारे सेक्रेटरियट की 'चेअर' पर चतुराई से 'फिट' हो रहे हैं। कोई रियासत 'मर्ज' हुई कि मदरासी पहुँच जाता है; कोई नया प्रान्त बनां कि मदरासी की बन आई; कोई डेपूटेशन चला कि उसमें मदरासी का नाम जोड़ दिया गया। इसलिए यदि हम इस युग को 'मदरासी युग' कहें तो अतिशयोक्ति तो नहीं होगी। परन्तु इनमें भी 'मेनन्' का जितना महत्व है, उतना औरों का नहीं है। रियासतों के विलीनीकरण के इतिहास में इन मेनन् का नाम किस तरह की 'स्याही' में लिखा जाएगा, कह नहीं सकते।

बहुत से प्रान्तों को यह शिकायत है कि भारत के स्वतंत्र होते ही सारी 'बुद्धि' का 'ठेका' मदरास प्रान्त को दे दिया गया है। पर इसका कोई क्या करे ! टेंडर देते समय मदरास का 'कोटा' कम रहा होगा, सस्ताई का सौदा 'ब्लैक' के जमाने में हो तो कौन इन्कार करेगा ? खैर, यहां तक तो भारत के अन्य प्रान्तों और रियासतों की बात हुई। खुद मदरास तो मदरास ही है। वहां अगर 'टी' (चाय भी) प्रकाशम् (उजेला) कर सके तो अजीब नहीं ! हमारे देशवासी लंका को राक्षसों की नगरी समझकर भय मानते हैं, पर मदरास में 'लंका-सुन्दरम्' है। सो यहां तो जो कहो वही थोड़ा है।

अब मैं यह चर्चा यहीं छोड़ देना चाहता हूं; क्योंकि भय है कि दिल्ली का कोई मदरासी पत्रकार प्रसिद्ध व्यंग्य-चित्रकार मि० शंकर से मेरी शिकायत न कर दे और छिपकली की तरह जिन्ना का कार्टून बनाने वाले ये मि० शंकर कहीं मेरा भी कोई कार्टून न बना दें !

प्रो० कुमारप्पा

जनसेवक

श्रीमती होमवती

"सारा दिन इधर से उधर और उधर से इधर मारे-मारे फिरते रहते हैं, न नहाने का होश और न खाने की सुध!" जानकी ने पैरों की नई पायजेब और हाथों के दस्तबन्द डिब्बे में रखते हुए अपनी पड़ोसिन से फिर पूछा—
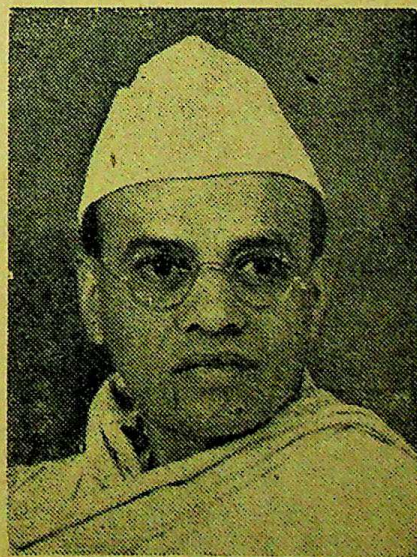
"अच्छे बने हैं न? पूरे दो महीने में बना कर दिए हैं सुनार ने। उन्हें तो फ़ुरसत मिलती ही नहीं; फिर तकाजा करने कौन जाता? वे तो इन शरणार्थियों की सेवा में बावले से रहते हैं। पहले कांग्रेस के काम में धूल छानते फिरते थे; अब अपनी सरकार बनी तो यह इनाम मिला कि रात-दिन इन कैम्पों में खाक फांकते फिरो···"

"हां, सो तो है ही। पर सोना-चांदी तो बड़ा मंहगा है, जी! कितने में बनीं ये दोनों चीजें? गढ़ाई भी तो बहुत गई होगी।"

"साढ़े बारह तोले के हैं ये दस्तबन्द और चालीस तोले की पायजेब। जब हिसाब होगा, तब बताऊंगी; हजारों समझो।"

"हां, आजकल तो एक मामूली-सी अंगूठी भी पूरे पचास से कम नहीं बैठती, फिर यह तो रकम ठहरी। बिचारों ने बड़ी हिम्मत की जो इस जमाने में जी पक्का करके यह बनवा डाली। एक हम हैं, साल भर हो गया कानों के 'टौप्सों' के लिए कहते-कहते, पर उनके कानों पर जूं तक नहीं रेंगती, सुनी-अनसुनी कर देते हैं।"

"पैसा हाथ में आना बड़ा मुश्किल है, जीजी! खून पसीना एक करना पड़ता है। अब देखो न, बरसों हो गए, कार-बार सब चौपट हो गया, तनदुरुस्ती अलग खराब हो गई, सूख कर कांटा हुए जा रहे हैं······

"खादी के बाने के नीचे जन-सेवा का भोल चढ़ाये,काला मन लिये फिरते हैं। गरीबों का पेट काट-काट कर अमीर बनने की साध जगी है। आखिर कब तक सरकार और जनता की आंखों में धूल भोंकते रहेंगे!"

चलूं, अभी तो सारा काम पड़ा है। बखत पर बन गया तो एक टुकड़ा पेट में पड़ जायेगा।" कहती हुई जानकी खड़ी हो गई।

गंगा उसका मुंह ताकती हुई बोली—"यहां तो रात-दिन कागज पीटते-पीटते भी दो रोटियों के लाले हैं। कहने को तो जजी में क्लर्क हैं; पर न तन पर कपड़ा, न पेट को रोटी। फूल-सा एक बच्चा दिया है भगवान ने, सो वह भी बूंद-बूंद दूध को तरसता है। कौन पिलाए दस आने सेर का दूध लेकर! तुम्हीं एक पाव दूध अपनी भैंस का दे दिया करो, दो सेर के भाव लगा लेना।"

"ना बीबी, भैंस अब कहां देती है। हम दोनों तो पीते ही नहीं। हां, चारों बच्चों को पाव भर धोवन

फूल-सा बच्चा बूंद-बूंद दूध को तरसता है।
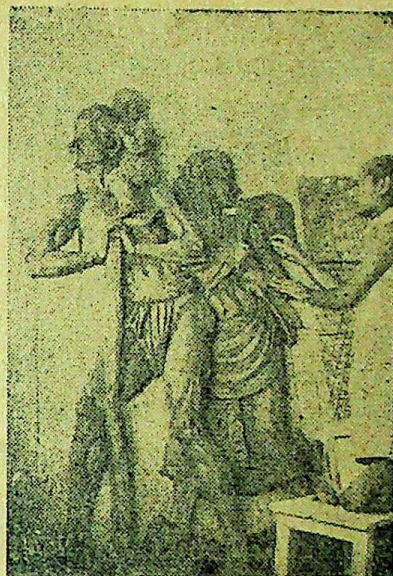
जरूर मिल जाता है।"

गंगादेई ने पिछली बात का कोई उत्तर दिए बिना ही कहा—"गरीबों की हर तरह मुसीबत है। हम से तो चार पैसे का मजदूर भला, जो लंगोटी लगाए घूम सकता है। आफत तो इन सफेद-पोशों की है, जो दो रुपये रोज पर जान मारते रहते हैं। आज दिन तो मामूली मजदूर भी चार रुपये से कम पर काम करने को तैयार नहीं होता। एक हम हैं, मुंह चिकना, पेट खाली!"

और फिर वह जीने से उतर कर अपने घर को ओर चल दी। सामने ही लाला दीनदयाल को तांगे से उतरते देखा। वह बहुत से फल, मिठाई, घी का कनस्तर और अनाज की बोरी उतरवा रहे थे। छोटे बच्चों के लिए जूते और खिलौने। मँझले के लिए छोटी बाइसिकल भी तांगे से उतारी जा रही थी। गंगा ने ललचाई आंखों से सब देखा और गली के मोड़ पर ठिठक कर एक लम्बी सांस फेंकती हुई चली गई।

घर में आज अनाज का दाना नहीं और घी के नाम 'कोटोजम' की बूंद नहीं, करें तो क्या करें? अभी तो पूरे दस दिन बाकी हैं महीने में, कैसे खर्च चलेगा? रविवार का दिन था। भोलानाथ पत्नी की पुरानी साड़ी लेकर बच्चे के कुरते बुतवाने दर्जी

की दूकान पर गए थे। अब आते ही होंगे, नन्हा भी भूखा होगा। शायद दो पैसे की जलेबी दिला दी हो—सोचती हुई गंगादेई रसोई-घर में जा बैठी। खिचड़ी बनाने को आज उसका जरा भी मन नहीं था। पर दूसरा उपाय भी क्या था? दाल-चावल निकाल कर वह बीनने बैठ गई—"यह भी तो सुभीता नहीं कि एक लोटा मट्ठा ही इसके घर से मिल जाए। रात-दिन गांव-गांव से नई-नई चीजें शरणार्थियों के नाम पर ढो-ढो कर लाता है। सरकार से मिलता है सो अलग। और फिर भी चार पैसे सेर मट्ठा बेचती रहती है। कहती है, बच्चों को दूध का धोवन मिलता है! मुफ्त में भैंस पल रही है। एक बूंद मट्ठा तक नहीं दिखलाती किसी को! मालिक लाल बना पड़ा है। सुई चुभा दो तो खून की धार बह निकले। कहती है, सूखकर कांटा हो गए हैं!" सोचते-सोचते गंगा को अपने पति की छाया सम्मुख दीख पड़ी। सूखे हुए ओंठ, गढ़े में धंसी आंखें और पिचके हुए गाल। उसका अंतर हाहाकार कर उठा। ओः, अभी तो पूरे तीस के भी नहीं हुए। बीं० ए० पास करके शादी की थी और तब तेईस वर्ष के थे। शादी को तो कुल पांच ही साल हुए हैं अभी·····

"लो, यह सो गया गंगा, बहुत रोया।" कहते हुए भोलानाथ बाबू ने घर में प्रवेश किया।

गंगादेई ने बच्चे को खाट पर सुलाते हुए कहा—"भूखा होगा, सवेरे जरा-सा टुकड़ा खाया था, बस। घर में अनाज का दाना नहीं रहा और...और न घी।"

"घी मत कहो, 'कोटोजम' या तेल ही कहो, बस। हां, मैं लाया हूं दो रुपये का खुला हुआ और पांच सेर गेहूँ—पूरे अढ़ाई के मिले हैं। एक रुपये के जौ और एक के चने। काम चलाओ, फिर देखा जायेगा।" पति ने मजदूर लड़के के सिर से गठरी उतारते हुए कहा।

"पर पैसे तो थे नहीं; रात ही तो जिकर कर रहे थे।" गंगा ने आश्चर्य भरी दृष्टि पति के चेहरे पर गड़ाते हुए पूछा।

"अरे, दुनिया का काम कहीं रुकता है। पैसे का काम तो पैसे से ही चलता है, गंगा! बड़े आदमियों का तो लोग हजारों का विश्वास कर लेते हैं, तो हमारा क्या दस-बीस रुपये का भी नहीं करेगा कोई! फिर दे देंगे; न होगा तो एक बखत खाकर रह जायेंगे। घबराने की क्या बात है, नेक-नीयती चाहिए, बस। देखती नहीं, लाखों जन बे-घरबार के हो गए—धन भी गया और जन भी। फिर हम तो उनके मुकाबिले में सुखी ही हैं। लो, यह दो फली केले की रख लो नन्हें के लिए। सो गया, खाई ही नहीं।" कहते हुए भोलानाथ ने जेब से दो केले निकाल कर चारपाई पर डाल दिए।

गंगा की दृष्टि में दीनदयाल की बहू के नए दस्त-बन्द और पायजेब घूम गई। सोचा, एक वे हैं और एक हम; उधार का ही खाते-खाते आधा महीना कटता है। फिर पति से बोली—"आज तो जानकी ने नए दस्तबंद और पायजेब दिखलाई थीं। बड़ी सुन्दर बनी हैं। लाला जी बहुत सा सामान भी लाए हैं तांगे में लादकर और एक छोटी साइकिल, नन्दू के लिए लाए होंगे।"

"हां, लाए होंगे। भगवान न करे जो हमारी बुद्धि ऐसी हो! खादी के बाने के नीचे जन-सेवा का झोल चढ़ाए काला मन लिए फिरते हैं। गरीबों का पेट काट-काट कर अमीर बनने की साध जगी है। आखिर कब तक सरकार और जनता की आंखों में धूल झोंकते रहेंगे? और झोंकते भी रहें तो हमें क्या! हमें तो अपनी मेहनत का ही पैसा भला है। नेकनामी की गरीबी भली बदनामी की अमीरी से! लोग नई-नई बातें हर रोज कहते हैं उनके बारे में। अपने मुंह मियां-मिट्ठू बनने से क्या! भला वह है, जिसे चार जने भला कहें। और सुनो, तुम उनके घर न जाया करो। इससे तो यह भला है कि घर में बैठकर कुछ लिखा-पढ़ा करो, या कोई दस्तकारी का काम किया करो।"

"अच्छा, तो अगले महीने थोड़ा-सा ऊन और रेशम ला देना।"

"हां-हां, जरूर। और देखो, मुहल्ले में से कुछ कपड़े इकट्ठे करो; किसी दिन कैम्प में जाकर बांट आयेंगे छुट्टी के दिन। समझीं।"

गंगा ने स्वीकृति में अपना सिर झुका दिया।

आधार

श्री कमल कुलश्रेष्ठ

सबल आधार जीवन का मुझे भी चाहिए है!

धरा से व्योम तक है शून्य बंधनहीन सारा,
पवन के लघु झकोरे के सदृश
मैं घूमता फिरता, नहीं पर मिल सका कोई सहारा,
कि दो क्षण बैठकर मैं घाव सहलाता,
कि दो क्षण बैठकर हारे-थके मन को
किसी के पास बहलाता!
किसी के भाग्य से ईर्ष्या मुझे कुछ भी न, लेकिन—
मधुर संसार बंधन का मुझे भी चाहिए है!
सबल आधार जीवन का मुझे भी चाहिए है!

उपेक्षा, छल, घृणा, अपमान औ' रसहीनता की
बना प्रतिमा रहा कारुण्य औ'
उपहास-शर से बिद्ध दारुण दीनता की,
कि मेरे पास से कोई अगर जाता
अमित कटुतमे घृणा से भर
उपेक्षा के चरण से आज ठुकराता;
कि सब पूजें मुझे यह चाहता बिल्कुल न, लेकिन—
प्रणय औ प्यार यौवन का मुझे भी चाहिए है!
सबल आधार जीवन का मुझे भी चाहिए है!

न संभव हो सकें जो वे कभी सपने न पाले,
न औषधि हो कहीं जिनकी
न ऐसे हैं हृदय के घाव औ' छाले,
न मेरी चाह अमरों की कि नंदन में रहूँ
औ' स्वर्ग की रानी मुझे सर्वस्व निज माने
अमिट उल्लास भर मन में;
धधकते रूप की इच्छा मुझे बिल्कुल न, लेकिन—
सुघर आगार रज-कण का मुझे भी चाहिए है!
सबल आधार जीवन का मुझे भी चाहिए है!

खुशामद

श्री प्रभाकर माचवे

'पहिले अस्तुति करूं विघनहर्त्ता गनेस की !'

हमारा कोई भी धर्म-ग्रन्थ, यहां तक कि काव्य और नाटक भी, उठाकर देख लीजिये, आरम्भ में मङ्गलाचरण अथवा देवताओं की खुशामद जरूर होती है। देवताओं की खुशामद क्यों ? इसलिये कि वे प्रेरणा देते हैं, स्फूर्ति देते हैं; स्तुति न करो तो कुपित हो जाते हैं। जैसे मुगलों के जमाने में कुर्निश करने का एक खास ढंग था—दरबारे-आलिया में जब शहनशाह पधारते तो वंदीजन (चारण) खास अंदाज और लहजे में 'सलामा-सलामाSS, हुजूर तशरीफ ला रहे हैं', कहते थे। या अंग्रेज के जमाने में मामूली साहब भी आने वाला हो तो सेठजी रायबहादुरी के लालच में डाली चढ़ाते थे। या एक छोटी रियासत में पहिले जब पता चला कि अमुक वायसराय की पत्नी को हल्का गुलाबी रङ्ग पसंद है, तो महलों, मंदिरों, अस्पतालों, स्कूलों, अफसरों के साफों और डिनर टेबल के मेजपोशों तक को उसी गुलाबी रङ्ग से रङ्ग दिया गया और ऐन दो दिन पहिले जब पता चला कि वह गुलाबी नहीं, 'माव' रङ्ग है तो फिर हल्के नीले जामुनी रङ्ग की पर्तें चढ़ाई गई। वैसे खुशामद के आलम्बन चाहे बदलते रहे हों, युग-युग के अनुसार, पर मूल भावना वही रही है। खुशामद से कौन खुश नहीं होता ? जरा आपका नाई भी जब धीमे से कहता है कि—"बाबूजी, आपको तो ऐसे-ऐसे 'काट' के बाल ज्यादा अच्छे मालूम होते हैं," तो आप भी चणेक आईने में झांक लेते हैं (चाहे सूरत आपकी झांकने लायक न हो)। हम सब के दिल में चोर की तरह 'नारसिसस' बैठा है, और जब अन्य कोई आपकी खुशामद नहीं करता दिखाई देता तो आप की स्वयं ही खुशामद कर लेते हैं, यानी आईने में बैठे देखते हैं, या पहलवान किस्म के आदमी हों अपनी भुजाओं की मछलियों को उभार कर, फुलाकर देखते हैं, या अगर लेखक हों तो इस फिराक में रहते हैं कि कहीं 'फोटू' ही छप जाय और उसे हस्ताक्षर का ब्लाक भी हो तो क्या कहने हैं!

खुशामद के आधुनिकतम तरीके, कांग्रेस के हाथ में सत्ता आने पर और गांधी-वध के बाद, कुछ इस प्रकार के हैं :

(१) १५ अगस्त से पहिले आप चाहे किसी विदेशी कपड़ा पहिनते हों, अब खादी का एक सूट सिलवा लीजिये। (चाहे वह खादी 'अनसर्टिफाइड' खद्दर-भंडार की ही क्यों न हो)।

(२) शिरोभूषण अवश्य खद्दर की टोपी का हो।

(३) तिरंगे या सुभाष बोस के चित्र वाले बटन लगा लीजिये।

(४) महिला हों तो तिरंगे किनारे की साड़ी आपको अधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

(५) आप नेताओं का नामोल्लेख यथासम्भव अखबारी या किताबी ढंग से जवाहरलाल नेहरू या महात्मा गांधी न करके, पंडित जी, बापूजी (या सिर्फ बापू) और सरदारजी आदि रूपों में करें।
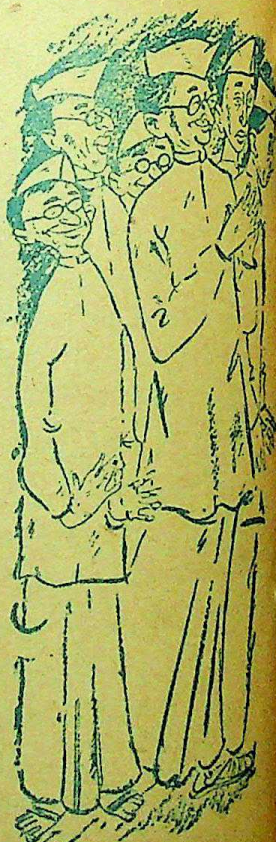
(६) यदि आपके कुटुम्ब में, परिवार में या दूर के रिश्तेदारों में कोई त्यागी, भूतपूर्व जेलवासी या कोड़ाखाऊ या ब्रिटिश दमन का शिकार या शहीद व्यक्ति हो तो बात-चीत में किसी प्रकार उसका नाम जरूर घसीट लावें।

(७) पन्द्रह अगस्त से पहिले आप अंग्रेजी नौकरशाही के घुटे-घुटाये पुर्जे चाहे रहे हों, आज एकदम 'नेशनलिस्ट' विचारों का अपने आप को बतायें।

(८) ३० जनवरी के पहिले आप चाहे हिंदू सभा, संघ आदि के खुले समर्थक हों, 'आर्गनाइजर' पढ़कर खुश होते हों, पर ३० जनवरी के बाद आप गांधीजी के अनन्य-भक्त अपने आपको बतलायें। आपका हृदय-परिवर्तन कितनी जल्दी हो गया है, यह जोर दे कर कहें।

(९) पहिले आप मुस्लिम लीग या अन्य कांग्रेस-विरोधी पक्षों से मैत्री दिखाते रहे हों, अब दिन में तीन बार इन सब पक्षों और उनके नेताओं को खराब से खराब गालियां दीजिये, और

खुशामद व चापलूसी करने की सहज प्रवृत्ति वैसे तो मानव-सृष्टि के आरम्भ से ही चली आ रही है; परन्तु वर्तमान युग में इसने उपयोगिता की दृष्टि से एक अत्यंत महत्वपूर्ण तथा वरद कला का रूप धारण कर लिया है। प्रस्तुत लेख इस कला के प्रेमियों और महत्वाकांक्षी लोगों के लिये निश्चय ही उपयोगी सिद्ध होगा।

(१०) अंत में, सबसे आवश्यक यह है कि आज देश में उत्पादन की इतनी बड़ी जरूरत के समय मजदूर-किसानों में असंतोष भड़काने वाले सोशलिस्ट-कम्यूनिस्ट आदि की सख्त से सख्त आलोचना कीजिये।

यह मैं, ओ खुशामदखोर बाबू! तुझे 'टिप' के तौर पर नहीं बतला रहा हूँ। तू तो इस कला में मुझ से बहुत अधिक चतुर पहिले से ही है। मैं तो तेरे व्यवहार से जो निष्कर्ष निकाल पाया हूँ, वही यहां लिख रहा हूं।

खुशामद के और कई प्रकार भी हैं। अपने 'बॉस' या 'आका' या प्रधान, जिस किसी से भी आपको मतलब ऐंठना हो, उसके मन को पूरी तरह समझना चाहिये। फिर भक्ति के 'स्मरणं, कीर्तनं चैव' जैसे नवधा प्रकारों की तरह, पहिले तो उस आका की, जिसे सुविधा के लिये 'अ' मान लें, उसके निकट सम्पर्क के व्यक्ति — रिश्तेदार, भांजे-भतीजे आदि या मित्रजनों के सामने तारीफ के पुल बांध देने चाहिएं। जितने विशेषण संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी कोष में मिलें, उन पर उंडेल दें। यह ध्यान रखें कि साथ ही साथ 'अ' के शत्रु पर उतनी ही सख्त गाली-निंदा की बौछार भी करते जाइये। अब आपका नाम धीरे-धीरे वहां 'दरबार' में पहुँच गया कि — "हां, साहब, फलां-फलां आपके बारे में बहुत ऊंचा खयाल रखते हैं, या श्रद्धा रखते हैं, या आपके कायल हैं," वगैरह-वगैरह।
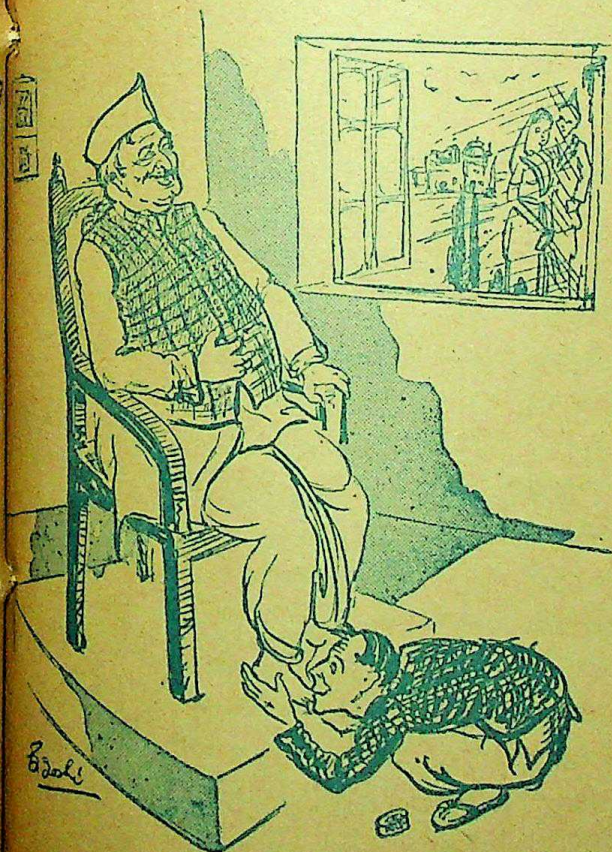
फिर सालोक्य-सारूप्य-सामीप्य की अवस्थाओं से सायुज्य (मुक्ति) की प्राप्ति होती है। परसों एक वयोवृद्ध अफसर मुझे 'टिप' दे रहे थे — देखो, भाई, अपनी तो यह नीति रही है कि ऐसी किसी सभा या सोसाइटी में आगे बढ़ने से चूकना नहीं, जहां अपने अफसर जाते हों। वहां जरूर अपना नाम वक्ताओं में लिखा देना चाहिये और ऐसा धुंआधार लेक्चर देना चाहिये कि बस रौब गठ जाय। कल तक आर्यसमाजी थे, या सघ के 'बौद्धिक' समर्थक के रूप में गांधी-कांग्रेस की बदनामी करते थे तो क्या, आज कांग्रेसी मंत्री के सामने ऐसे-ऐसे गुण-गान कांग्रेस के कीजिये कि क्या कहने! कल तक आपने गांधी की एक भी किताब चाहे लाइब्रेरी में न मंगाई हो और सावरकर, राय और अम्बेडकर की सब कांग्रेस-गांधी-विरोधी किताबें जमा कर ली हों, आज कांग्रेस-मंत्री के सामने दस्तबस्ता कहिये — 'भगवन्! हम गांधी जी का लाइफ-साइज पोर्ट्रेट इस ग्रन्थालय में लगा रहे हैं; एक पूरा अलमारा भर गांधी-साहित्य मंगा लिया गया है। आप हम पर कृपा करें।' आपके सब पाप धुल जायेंगे।

तो सालोक्य की एक तरकीब यह है कि जहां अपने आका पहुँचें, वहां आप हाजिर रहिये। यह पता लगा लीजिये कि आपके आका को कौन पोशाक पसन्द है, उसी में जाइये। फिर उनके आगे-आगे आने का कोई मौका न चूकिये। उनके जूते खो गये हों तो खोज दीजिये, उन्हें सबसे आगे फ्रन्ट सीट पर बैठा दीजिये, प्यास लगी हो तो कुल्हड़ में पानी ला दीजिये। आवश्यकता पड़ने पर उन्हें पंखा भी झल सकते हैं। यह मौका न मिले तो किसी नामधारी संस्था के कुछ भी, आनरेरी मंत्री-फंत्री बन कर नेता-देवता के गले में हार डालने पहुँचिये; सस्मित नमस्कार करके कुछ खानगी याद दिलाइये। वे बलात् मुस्कराएंगे या चार शब्द बोलेंगे ही, तब आप जनता की ओर सगर्व देखकर अपने आप में कृतार्थ हो जाइये। सालोक्य की और तरकीबें खुद या अपनी लड़की की मारफत आटोग्रॉफ मांगना या 'फोटू' के लिये पोज लेने जाना आदि भी हो सकती हैं।

कुछ महिलाएं संगीत-नाच इत्यादि कलात्मक प्रकारों से नेता-देवताओं को रिझाती हैं, परन्तु वह साधारण कोटि के मानवों से सम्भव नहीं।

अब सारूप्य के कुछ प्रकार सुनिये। गांधी जी जब थे, तब कुछ लोग उन्हीं के तरह सींग के फ्रेम का उसी रंग का चश्मा पहिन कर, धोती बांध कर, लटका कर, सोमवार को मौन रख कर, उन्हीं की तरह धीमे-धीमे 'तो...तो...' बीच में रुक रुक कर, उनकी नकल टीपना चाहते थे। पर यार लोग ऐसे नकलचियों को जापानी खिलौनों की तरह 'जापानी गांधी' कहते थे। कुर्ता न पहिनने और घड़ी लटकाने का जिक्र कृपलानी जी ने अपने सर्वोदय-समाज वाले भाषण में किया ही था। अब कुछ लोग जवाहर जाकेट और चूड़ीदार खादी का पायजामा, शेरवानी पहनने लगे हैं। शायद राजाजी की तरह रंगीन चश्मा पहिनने का भी रिवाज चल पड़े।

तो यथासम्भव आप रूप में अपने आका के समान होने का प्रयत्न करें।

तीसरी अवस्था सामीप्य की है। कई महानुभाव अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये घर को ताला लगा कर दो-दो तीन तीन महीने अपने गुरुओं की सेवा में बिता देते हैं। चरण चापते हैं, उनकी हर बात के उगालदान को उठाने के लिये तैयार रहते हैं, संक्षेप में, यदि आप मुझे थोड़ा गंवारू बनने दें तो कहूँ कि 'मक्खन का डिब्बा साथ लिये चलते हैं।' इस मामले में नकली हंसी, लाघव और मधुर-मधुर संलाप की चतुराई बहुत काम आती है। अन्ततः कभी-कभी यह तपस्या फलीभूत हो जाती है — कुछ न कुछ प्रसादी प्राप्त हो ही जाती है।

खुशामद के कई और प्रकार भी हैं। तन, मन, धन से सबसे खुशामद करने वाले खुशामद करते हैं। तन सो तन वाली बात कुछ लिखने लायक नहीं। तन अपने या अन्यों के हो सकते हैं। बकौल कार्ल मार्क्स के इस युग में तन भी आखिर एक पण्य (कॉमोडिटी) बन गया ही है। साहब के जमाने में मेमसा'ब या बैरा का मान था, आजकल व्यक्ति बदल गये हों, परन्तु 'पहुँच' और 'जरिया' और ...

(शेष पृष्ठ ४७ पर)

कहानी

गारजियन ट्यूटर

श्री राजेन्द्र शर्मा

सेठ जी ने कुछ सोच विचार के बाद कहा — "देखिए, अशोक की उम्र तो अभी सात ही वर्ष की है। सत्तर रुपए माहवार ले लीजिएगा और यहीं रहिये। भोजन का भी यहीं प्रबन्ध करा देंगे। आपको स्वीकार हो तो आज ही से अशोक को संभाल लीजिए।"

रुक्मण एक-दो क्षण रुक कर बोला — "आपके मैनेजर साहब ने लखनऊ से मुझे भेजा तो इसी काम के लिए था; पर उनका यह कहना था कि दो सौ रुपए मिल जायेंगे।"

"ठीक है," बीच में ही सेठ जी ने बात काट दी और समझाया, "गारजियन ट्यूटर को तो घर में रहना होता है। आप भी यहीं रहेंगे। और देखिए, हमारा रहन-सहन ऊंचे स्तर का ठहरा। दो सौ रुपए भी दे देते, लेकिन आप तो अभी बी. ए. की परीक्षा ही देकर आ रहे हैं, परिणाम भी पता नहीं अभी तो···"

रुक्मण के सामने अपने किसान बाप की गरीबी आ खड़ी हुई। उसने सोचा—सत्तर रुपए में से पचास तो हर माह बचा ही सकूंगा। चलो, अभी यही सही। सेठ जी का बड़ा नाम है। सारे मुल्क में सैकड़ों धन्धे फैल रहे हैं। खुश कर लूंगा, तो कहीं भी अच्छा पद दिला देंगे··· मन आह्लाद से भर गया। भावी सम्मान, सुख-वैभव और सम्पन्नता की सुनहरी कल्पनाओं की भूल-भुलैयों में पड़ कर रुक्मण ने सेठ जी की बात स्वीकार कर ली।

और सेठ जी अपनी व्यवहार-कुशलता को एक बार फिर सफल देख कर फूले न समाए। भीतर जाकर सेठानी से बोले, "देखो, लखनऊ से हमारे बड़े मैनेजर साहब ने एक बड़े ही होशियार युवक को भेजा है। बहुत प्रशंसा लिखी है उनकी। आज से हमारा अशोक उन्हीं के सुपुर्द रहेगा। वही उसे पढ़ायेंगे, खिलायेंगे, सुलायेंगे। अब तो तुम आसानी से मेरे साथ किसी भी 'कॉकटेल' में चल सकोगी न?"

कुसुम के नेत्र झुक गए और मुस्करा कर उसने अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

* * *

सेठ जी के एक ही सेठानी न थी। बिचली पत्नी राधारानी को जब इस 'गारजियन ट्यूटर' की नियुक्ति का पता चला, तो वह सौतिया डाह से जल मरी। और दूसरे दिन ही राधारानी का कमरा 'कैकेयी का कोप-भवन' बन गया। बहुत मान-मनौती करने पर राधा ने मुंह खोला और उपालम्भ भरे स्वर में कहा — "अब तो छोटी ही बहू आपको प्यारी लगती है! उसका अशोक आपको प्राणों से भी प्यारा लगता है और यह लता आपकी आंखों का कांटा बन गई है।"

"बस, इतनी ही बात थी!" सेठ जी ओठों पर धीमी मुसकान और आंखों में प्यार ला कर बोले — "मास्टर अशोक को ही नहीं पढ़ायेगा, लता को भी पढ़ा दिया करेगा।"

"पढ़ा नहीं दिया करेगा," राधा तनिक स्वर खींच कर बोली, "यह कहिए कि मास्टर जी लता के लिए रखे गए हैं या अशोक के लिए?"

सेठ जी इस क्षण दुविधा के पाश में फंसे मौन थे कि राधारानी फिर स्वर में चढ़ाव लाकर कहने लगी — "मैंने भी लखनऊ से आए इन मास्टर जी की प्रशंसा सुनी है। लता को ये ही पढ़ायेंगे और कोई मास्टर नहीं!"

और राधा वक्र-दृष्टि से सेठ जी को निहारती हुई मेज पर पड़ी पैंसिल दांतों में फंसा कर घुमाने लगी। सेठ जी उसकी बात कैसे टाल सकते थे। भीगी बिल्ली की तरह बोले — "देखो, अशोक और लता को वह साथ ही साथ पढ़ायेंगे। उम्र में भी दोनों की एक ही वर्ष का अन्तर है। साथ-साथ एक-एक विषय पढ़ते रहेंगे। इसमें हानि ही क्या है?"

तभी मोटर का हार्न बजा और सेठ जी बोले — "लो, मैं तो भूल ही गया था। चलो न, 'रैड हाउस' के टिकट खरीद लिये थे। छः बज गए हैं, जल्दी करो।"

यह प्यार भरा स्वर सुन कर राधा फूली न समाई। अधिकार भरे स्वर में उसने दासी रम्भा को आवाज दी और कहा—"देखो, ड्राइङ्गरूम के बराबर वाले कमरे में मास्टर जी ठहरे हैं न, वहां लता को छोड़ आओ। अशोक के साथ ही पढ़ा करेगी।"

* * *

रसोइए ने दो दिन के परिचय में ही मास्टर जी को बंगले का सारा कच्चा चिट्ठा सुना दिया था। "सेठ जी ने पांच तो ब्याह किए हैं और इधर-उधर से चार-पांच लड़कियां और भी आ जा चुकी हैं। धन भगवान ने इतना दिया है कि कलियुग के कुबेर समझो। किसी बात की पूछताछ ही नहीं। सात साल से मैं यहां पड़ा हूं, बीस रुपए रोटी पर। इसमें कहीं गुजर होती है? बस, राधा बाई की बात कभी नहीं टालता। और बड़ी सेठानी जो हैं कलाबाई, सो पाठ-पूजा में लगी रहती हैं। उनके सामने तो हर बात में भगवान का नाम जोड़ दो, सोई प्रसन्न हैं। पर छोटी जो हैं कुसुम बाई, उनकी भी हां में हां मिलानी ही पड़ती है। सेठ जी की दो पत्नियां विदेश में हैं। हर माह सात हजार और दस हजार रुपया दोनों को चला जाता है। बाबू जी, बस खुशामद करके बने रहो, पौ बारह हैं!"

रसोइया अपने काम में लगा और यह सब कच्चा चिट्ठा सुनकर रुक्मण कुछ गम्भीर हो गया। विश्वविद्यालय के जीवन में चरित्र-गठन और नैतिकता के जिन आदर्शों पर ऊंचे उठने का संकल्प वह किया करता था, यहां आकर जैसे वह दो ही दिन में चूर-चूर हो गया। सात हजार प्रतिमास और सत्तर रुपए प्रतिमास की असमानता देख कर उसकी आंखें फटी की फटी रह गईं।

रसोइया सामने भोजन रख गया, पर रुक्मण का मस्तिष्क विचारों में, संकल्प विकल्पों में उलझ गया था। जब हरलाल ने कहा — "क्या भोजन नहीं करना है, मास्टर जी?" तो रुक्मण का ध्यान उचटा। बड़े थाल में छोटी-छोटी चार-छः कटोरियां और छोटी-छोटी चार पूरियां रखी थीं। फिर भी रुक्मण को वह खाली लग रहा था। पास रखी आम की दो फांकें और चांदी के गिलास में कुंए जैसा खारा गरम-सा पानी। सब कुछ देखकर रुक्मण का मन खट्टा हो गया। आठ पूरियां खा लीं, पर भूख न मिटी। अधिक मांगते लज्जा आती थी और डरता भी था कि एक ही दिन में कहीं यह रसोइया सेठ जी से यह न कह दे कि आपने किस गंवार को रखा है, आधा आटा तो यही खा जाता है"। रुक्मण भूखे पेट ही उठ गया। हाथ धोते न धोते दासी रम्भा लता को यह कह कर छोड़ गई — "मास्टर जी, बिचली सेठानी जी कह गई हैं कि आप लता को पढ़ायेंगे।"

"और अशोक?" मन में प्रश्न उठा, लता कौन है? रसोइए ने जो कुछ बताया था, उसे याद किया। लेकिन अशोक कौन है? कब आयेगा? कौन नौकर

उसे यहां पहुँचायेगा ? यह प्रश्न बना ही रहा। उलझनों में पड़कर दिमाग परेशान था। रुक्मण कमरे से बाहर आ बरामदे में टहलने लगा। सामने खिल रहे बड़े-बड़े गुलाब, मोतिया और चमेली आदि के फूल उसे अपनी ओर आकर्षित न कर सके। सब कुछ जड़ मालूम पड़ रहा था। मुद्रा पर कोई भाव न था कि लता बोली, "मास्टर जी !"

"हुं ! हां ! तुम लता हो ? बड़ा सुन्दर नाम है।" रुक्मण जैसे आप ही आप बोलने लगा—"पढ़ोगी न तुम ?"

"हां, मास्टर जी !" नीची गरदन किए लता मुस्कराई।

उसे प्रसन्न करने के अभिप्राय से वह बोला, "मैं आज सुबह तुम्हारे लिये बहुत-सी किताबें लाया हूँ। उनमें ऐसी सुन्दर-सुन्दर तस्वीरें हैं कि बस, हंसते-हंसते लोट-पोट हो जाओगी।"

यह कहकर रुक्मण ने अलमारी से बीस-पच्चीस पुस्तकें निकालकर मेज पर ढेर लगा दिया और लता को बड़ी दिलचस्पी के साथ वह बारी-बारी सभी पुस्तकें दिखाने लगा। एक सर्कस का चित्र देखकर लता बाल-सुलभ उत्सुकता से बोली, "हमारे शहर में सर्कस आयेगा, मास्टरजी ?"

"हां, हां, आयेगा। तब दिखायेंगे न तुम्हें भी !"

और तभी हरलाल आया। कहने लगा, "मास्टर जी, छोटी बहू जी ने कहलाया है कि अशोक को डाक्टर साहब के ले जाना है।"

"डाक्टर के ?" विस्मय से, रुक्मण ने पूछा।

"हां, जी। बाबू जी आपको पता नहीं, उसे चार दिन से बुखार है।"

"चार दिन से ?"

"जी ! मैं बताऊं आपको। बड़ी मोटर तो सिनेमा गई है। आप छोटी गाड़ी निकलवा लीजिए और टैगोर लेन में डा० सेन हैं न, उनके यहां ले जाइए।"

यह सब सुनकर रुक्मण एक क्षण को किंकर्त्तव्य-विमूढ़-सा हो गया। लता की ओर देखा उसने और बोला—"लता रानी ! हम अशोक को दिखा लायें ?"

लता का इतना-सा मुंह निकल आया यह सुनकर। उसने कहा, "मैं भी चलूंगी आपके साथ, मास्टरजी !"

रुक्मण ने छोटी गाड़ी के लिए ड्राइवर की तलाश की और जब वह बंगले पर न मिला तो वह स्वयं तांगा किराए पर ले आया। अनिच्छा होते हुए भी अशोक और लता को साथ लेकर वह टैगोर लेन की ओर चल दिया। डा० सेन मिले अशोक की परीक्षा करने के बाद बोले, "कल सुबह लाइए, मैं इंजक्शन लगाऊंगा।"

अनमना-सा रुक्मण अशोक और लता को लेकर बंगले पर आ गया।

* * *

रात को सिनेमा देखने के बाद सेठजी होटल में खाना खाकर जब लगभग ग्यारह बजे बंगले पर वापस आए, तो नौकर को भेजकर रुक्मण को बुलवाया। लेकिन, वह सो चुका था। सेठजी ने कहा—"जगाकर लाओ, बहुत जरूरी बात करनी है।"

रुक्मण जाग गया। रात के प्रथम प्रहर में जब वह नींद की गोद में सुख से सो रहा था, उसे झकझोड़ कर जगाया जाना बड़ा बुरा जान पड़ा। आंखें मलते हुए जब वह कमरे से बाहर चला तो ओठों को दांतों से दबा लिया था। सेठ जी ने सामने आते ही प्रश्न किया, "अभी से सो गए आप ?"

रुक्मण ने दांत पीसते हुए एक क्षण सेठजी की ओर देखा। बिजली के चमचमाते प्रकाश में सेठ जी की झूमती हुई लाल डोरेदार आंखों का बदलता हुआ भाव देखकर उसने नेत्र झुका लिए।

"लता ने खाना खाया ?"

इस प्रश्न से, जो रुक्मण के लिये अप्रत्याशित था, कमरे का वातावरण मानों स्तब्ध हो गया। सेठ जी ने फिर प्रश्न किया—"आपने खाना खाया ?"

तब रुक्मण ने मौन तोड़ा। शिष्टाचार का पूरा-पूरा ध्यान रखते हुए बोला—"जी, हरलाल कमरे में ले आया था, तो मैंने खा लिया। लेकिन अशोक को डाक्टर के यहां ले गया था न, सो लता भी जिद करके साथ चली गई थी। और वहां से लौटकर......"

"लौटकर लता कहां गई, आपको पता नहीं ?" सेठजी चिल्लाए। वाणी की कठोरता ने रुक्मण को मौन कर दिया। सेठजी बोले--"कल से इस बात का ध्यान रखिएगा कि लता और अशोक ठीक वक्त पर खाना खाएं। हो सके तो अपने ही साथ बैठा लिया करें। और हां, डा० सेन ने क्या कहा ? अशोक का टैम्प्रेचर लिया था शाम को ?"

रुक्मण को एक क्षण के लिए फिर मौन होना पड़ा। उसे लग रहा था जैसे एक बार फिर वह आठ साल का बच्चा बन गया है और कक्षा में अल्पज्ञ अध्यापक जैसे उसे व्यर्थ डांट रहा हो। सेठजी चीखकर बोले—"आप तो हर बार चुप हो जाते हैं। आप टैम्प्रेचर नहीं लेंगे तो और कौन लेगा ?"

"जी, लिया तो नहीं टैम्प्रेचर, पर डा० सेन कहते थे कि कल इंन्जेक्शन लगाऊंगा सुबह, उसके बाद टैम्प्रेचर चार्ट रखना..."

"और दवा कुछ दी है ?"

"दी तो थी..."

"क्या पिलादी अशोक को ?"

"नहीं तो ! वह मना करता था, रोने लगा..." कहते-कहते रुक्मण भी रुआंसा हो गया।

सेठ जी बोले, "आप तो अभी कुछ नहीं जानते। उसे बहला कर दवा पिला देनी थी। कल से सब बातों का ध्यान रखिए। आप इस तरह दिमाग परेशान न किया करें; जाइए।"

दण्डित छात्र की तरह वह कमरे से बाहर आ गया। अपनी चारपाई पर आ लेटा, तो उसे नींद न आई। अपमानित होने के बाद रुक्मण का अहम् अन्तर्दाह से जलने लगा। जो कुछ दो दिन में ही उसने देखा, अनुभव किया, उस सबकी रुक्मण को स्वप्न में भी आशा न थी। मन में एक बार आया कि यह दासता मुझसे नहीं सही जायेगी। देश के स्वनाम-धन्य सेठ के यहां पैर टिकाने की जगह मिलने पर उसके आत्मीय जितने प्रसन्न हुए थे, उन सबसे कहीं अधिक रुक्मण प्रसन्न हुआ था—जीवन में शायद सबसे अधिक प्रसन्नता का अवसर था वह और अब रुक्मण ने अनुभव किया दुःख! शारीरिक क्लेश से भी कहीं अधिक हानिकर इस मानसिक पीड़ा ने उसे अशान्त कर दिया।

* * *

दूसरे दिन प्रातः ही उसने निश्चय किया कि इस गुलामी को अविलम्ब छोड़ देना है। कहीं भी साठ रुपए की क्लर्की में मुझे ज्यादा सुख मिल सकेगा। सेठ जी को सूचना देने से पूर्व ही उसने अपना सामान 'पैक' करना चाहा। लता प्रातः ही आ गई थी, उसने कहा — "मास्टर जी, आप मेरे साथ घूमने नहीं चलेंगे पार्क में ?"

रुक्मण ने उसे यह कह कर टाल दिया—"देखो, अब तो डा० सेन के यहां जाना होगा; देर हो गई तो वह न मिलेंगे। शाम को चलेंगे।"

लता चली गई। फिर हरलाल आया, बोला— "बड़ी सेठानी जी के लिए, आप डा० सेन के यहां जब जाएं, तो 'ब्लड वीटा' की एक बोतल लेते आएं।"

रुक्मण ने उसे भी टाल दिया — "डा० सेन ने तो ग्यारह बजे बुलाया है।"

हरलाल के जाते ही रुक्मण ने कमरा अन्दर से बन्द कर लिया और सामान पैक करने लगा। लेकिन थोड़ी देर बाद ही जब किसी ने बाहर से दरवाजा थप-थपाया, तब रुक्मण का माथा ठनका। क्या ईश्वर यह नहीं चाहता ? वह उद्विग्न हो गया। रुक्मण किवाड़ की झिरी खोल कर झांका, पूरे किवाड़ न खोले। हरलाल था, बोला--"चिट्ठी है आपकी, मास्टर जी !"

रुक्मण ने शीघ्रता से लिफाफा ले लिया। कांपते हाथों से खोला और एक ही सांस में पढ़ा — 'बेटा,

सेठ जी के यहां कोई शिकायत की बात न हो जाय। डर कर काम करना। बड़े आदमी हैं। कुछ दिन लगे रहोगे, तो हमारे दरिद्दर भी दूर हो जायेंगे! भगवान तुम्हें राजी रखे, बड़ी सुन्दर बहू लाऊंगी। मेहनत से काम करते रहना, तभी सुख मिलेगा......।'

और मां का यह पत्र पढ़ते ही रुक्मण अधमरा-सा हो गया जैसे बढ़ते हुए पौदे पर कुल्हाड़ी का आघात हुआ हो। यन्त्रवत् उसने चटखनी खोल दी और जो कुछ बांधा था, उसे खोल कर वह भारी पैरों से अशोक के कमरे की ओर चल दिया।

मौन समर्पण

श्रीमती शान्ति सिंहल

यदि मेरे नन्हे हाथों में अर्चन का सामान नहीं था,
यह मत समझो इन प्राणों में पूजन का अरमान नहीं था।

मन-मन्दिर में वह बाला था मैं ने प्रेम-प्रदीप अनोखा,
जिसे बुझाने में निष्फल था निष्ठुर झंझा का भी झोंका।
तव छवि देखी और विमोहित अधर न यदि हिल पाये मेरे,
कैसे कह दूं इन प्राणों में भी तेरा गुण-गान नहीं था !

मेरे नयनों के निर्झर ने तुझ पर अपना जीवन वारा,
मेरी आकुल अभिलाषा ने तुझको सौ-सौ बार पुकारा !
जिस लघुता की अवहेला करते हो तुम मुसका-मुसका कर,
अपनी उस लघुता पर भी तो मुझको कब अभिमान नहीं था !

कब से पलकें बनी हुई हैं आशा का सुकुमार बिछौना,
कब से आंखें तरस रही हैं, जैसे प्यासा हो मृग-छौना !
कैसे तुझको रिझा न पाया इन प्राणों का मौन समर्पण,
पाषाणों में रहने वाले प्रिय ! तू तो पाषाण नहीं था !

कुरूपता का वरदान
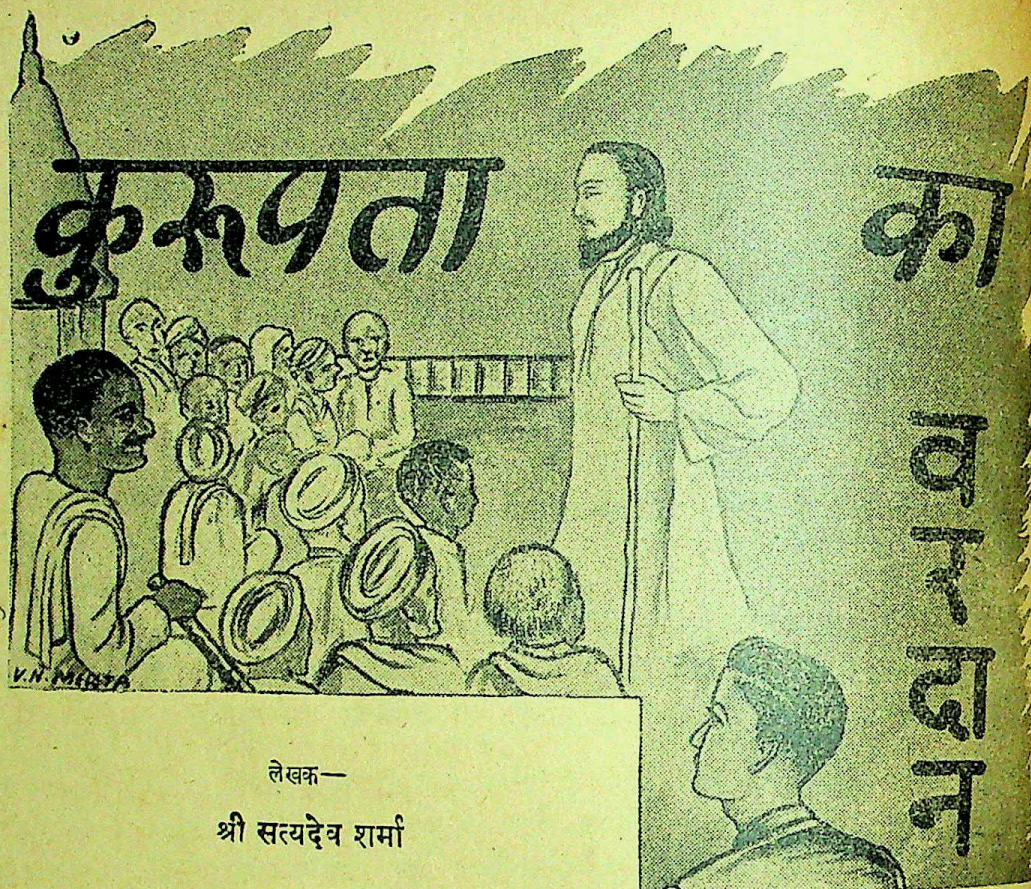
लेखक—

श्री सत्यदेव शर्मा

शिवरात्रि के दिन उस छोटे से मन्दिर में बड़ी भीड़ थी; इतनी चहल-पहल शायद इससे पहिले उस मन्दिर में कभी न हुई थी। इस पर भी मन्दिर के बूढ़े पुजारी खुश नहीं थे। झुर्रियों से भरे नंगे शरीर पर मोटा-सा जनेऊ लटकाए बड़ी व्यग्रता से वे इधर-उधर घूम रहे थे और मुख से घोर कलियुग में होने वाले कुकृत्यों पर वाक्य-बाणों की वर्षा भी करते जा रहे थे 'घोर कलियुग आ गया, अब धर्म नहीं रहा! इन लौंडों को तो देखो कलि के अवतार हैं! धर्म ध्वंसक कहीं के! इन छोकरों की इतनी हिम्मत! जाने त्र्यम्बक भगवान अपना तीसरा नेत्र क्यों नहीं खोल देते!"

इस वाक्य-बाण-वर्षा के अतिरिक्त पुजारी जी बहुत अधिक मन में विचार भी कर रहे थे विचारों के इस प्रबल तूफान में कब क्या बाहिर आ रहा है, यह देखने की उन्हें फ़ुर्सत कहां थी। फिर जो कुछ बाहिर निकलता था, वह कम था और भीतर का झंझावात अधिक। उनके मनोभावों का आन्दोलन त्योरियों के रूप में मस्तक पर उतरता-चढ़ता था। आज उनके मन्दिर से ही हरिजनों को देव-दर्शन के अधिकार का श्रीगणेश किया जाय... अधिकार-दाताओं को भी और किसी बड़े आदमी का अपना मन्दिर नहीं दिया! फिर पुजारी जी ही अपने शिवालय के देव को अछूतों के दृष्टिपात से भला क्यों न बचाते? लेकिन उनकी कुछ न चली। घोर कलियुग में भला उनकी कौन सुनता! मन्दिर के प्रबन्धकों ने भी बड़ा जोर लगाया: लेकिन अस्पृश्यों को शिव-चौदस के दिन देव-दर्शन तो कराने ही होंगे। युवक इसी लिये इतने अधिक बेचैन दिखाई पड़ते थे, ... सागर की चंचल और तूफानी लहरें। भोले शंकर ... भी समुद्र-मंथन के विष-पान की तरह अन्त्यजों को ... देने के लिये जैसे तैयार हो गए थे। वे तो ...

हरिजनों का वह चौधरी मानों कुरूपता का प्रतीक था—काला भोंडा चेहरा चेचक के बड़े-बड़े दागों से और भी भयंकर हो उठा था।

वह नहीं देखना चाहता था, परन्तु उसकी दृष्टि उसके मन को धोखा देकर बार-बार उसी चौधरी पर जा जमती.........

वह सूरत भयानक छाया की भांति उसके दिमाग से चिपट गई और जब उसने पुत्र-जन्म का समाचार सुना तो उसे भय हुआ कि कहीं..........

मशानवासी हैं और सब बातों से बेनयाज। अन्य देवता जब समुद्र से निकले रत्नों को स्वयं हथिया ले गए और विष-पान के समय लगे बगलें झांकने तो भोले बाबा आंख मींचकर विष पी गए और तब से नीलकण्ठ बने। इसी प्रकार अछूतों को दर्शन देने का भार जब किसी अन्य देव-मूर्ति ने नहीं सम्हाला तो आड़े में दिगम्बर शंकर ही काम आए। फिर हरिजनों के उत्साह की न पूछिए। काले-काले, पीले-पीले मटमैले-भंगी, डोम, चमार, पासी, काली-काली, पीली-पीली, गन्दी पोशाकें पहने यूं उमड़े आ रहे थे जैसे सावन भादों की काली-पीली आंधियां। मन्दिर के साथ ही पिछली ओर एक लम्बे-चौड़े मैदान में हजारों अछूत बैठे थे। मालूम होता था कि हिन्दुस्तान का यह छोटा-सा भू-भाग अछूतस्तान बन गया है।

देव-दर्शन के पहिले उत्सव का प्रबन्ध किया गया था। नेताओं के व्याख्यान और महिला-विद्यालय की छात्राओं के संगीत की व्यवस्था थी। प्रधान महोदय की प्रतीक्षा की जा रही थी और मैं भी मंच पर बैठा प्रतीक्षा करने वालों का दिल बढ़ा रहा था। एकाएक मैंने खुले मैदान में बैठी हुई हरिजन-जनता की ओर विहंगम दृष्टि डाली। देव-दर्शन का अधिकार दिलाने वालों की अपेक्षा दर्शन पाने वालों से मुझे अधिक सहानुभूति थी। चक्र बनाती हुई कम्पास की भांति घूमती-घूमती मेरी दृष्टि कोने में बैठे हुए एक चौधरी पर जा अटकी और फिर वहां से हटने का नाम नहीं लिया। मैं बार-बार मना करता हूं, लेकिन मानता ही नहीं। शहद पर की मक्खी की तरह नजर उलझ-उलझ कर वहीं रह जाती है। किसी घृणित वस्तु को आप न देखना चाहें तो भी आंखें बरबस ही उधर उठ जाती हैं। जाने क्यों? वह कोने वाला चौधरी मानों कुरूपता का प्रतीक हो। दुनिया भर की कुरूपता उसमें ही आ बसी थी। शायद कुरूपता ने उसके शरीर में केन्द्रित होकर अपना प्रतिनिधित्व करना चाहा हो। काला-भोंडा चेहरा, चेचक के बड़े-बड़े दागों से और भी भयंकर हो उठा था। एक आंख बहुत छोटी; दूसरी बहुत बड़ी, लेकिन फोले के कारण दृष्टि से हीन।

प्रधान के आने से जल्से की कार्यवाही शुरू हो चुकी थी। बड़ी-बड़ी तकरीरें हो रही थीं। अछूतों के सुधार के लिये बड़ी-बड़ी स्कीमें उपस्थित की जा रही थीं और हजारों अछूतों के कान उन बातों से तृप्त हो रहे थे। उनमें से बहुत से ऐसे भी थे जो अपने भावी जीवन के सुन्दर-सुन्दर स्वप्न देखने लगे थे। उनके मुंह फैल गए थे और आंखें छोटी होती जाती थीं। लेकिन उस सारे एकत्रित अछूत-समाज की उपेक्षा करके मेरी आंख फिर वहीं जा पहुँची वही कोने में दुबक कर बैठा हुआ अत्यन्त कुरूप-कुत्सित-सा चौधरी। आज मन और आंखों से मैं परास्त हो रहा था। नहीं देखना चाहता, नहीं देखना चाहता; लेकिन क्या करूं? घृणा से मुंह फेर लेता हूँ, आंखें बन्द कर लेता हूँ, भजन और व्याख्यानों में उलझ कर खो जाना चाहता हूँ; लेकिन नजरें फिर धोखा देकर हेर-फेर कर उसी चौधरी पर जम जाती हैं। वह भी तो कम्बख्त उठने का नाम नहीं लेता। वहीं जम कर बैठा है, जैसे युगों तक वहीं बैठा रहेगा—इसीलिये वह पैदा हुआ है! वहीं बैठा-बैठा कुरूपता का मापदण्ड बना

रहेगा। मैं खीझ उठा। अपने भाग्य को कोसने लगा कि कहां से देव-दर्शन का उत्सव देखने आ बैठा। अपने दोष पर भाग्य को कोस लेने से संतोष तो होता ही है।

उधर भंगियों के बड़े चौधरी ने अपनी मांगें पेश कर दीं। मैं वही सुनने लगा। मुझे भी तो उनकी समस्याओं के सम्बन्ध में विचार करना चाहिये, मैं भी तो समाज का प्राणी हूँ। हां, मन मान गया। बड़ा चौधरी कह रहा था — "हमारे आर्थिक प्रश्नों का हल भी होना चाहिये; निरे देव-दर्शन से हमारी भूख नहीं मिटती।"

सच है, भूखा पेट आंखों की दृष्टि छीन लेता है हां, वह चौधरी भी तो भूखा ही होगा। और इस विचार के आते ही हाथ से खींच कर छोड़े हुए रबड़ की तरह मेरी नजर फिर वहीं जा पहुंची। अब उस चौधरी ने दांत फैलाए हुए थे। कुरूपता नग्न हो रही थी। जाने उस कुरूपता का भयानक उपग्रह मेरे इर्द-गिर्द क्यों छा-सा गया। मुझे मालूम होने लगा जैसे मैं स्वयं ही काली स्याही से पुता जा रहा हूं, मेरे अन्दर गहरा काला धुंआ-सा भरा जा रहा है। सारा शरीर भैंस के चमड़े जैसा हो गया है और चेहरा मधुमक्खियों द्वारा छोड़े हुए छत्ते की तरह।

मुझे उबकाई आने लगी। वही चौधरी हजारों सूरतों से मानों मेरे चारों तरफ नाचने लगा। अब क्या करूं? यहां और भी तो हजारों व्यक्ति हैं। मंच पर तो सुन्दर-स्वस्थ तथा प्रतिष्ठित पुरुष और महिलाएं हैं। पर उससे क्या होता है? वह एक कुरूप चौधरी सब पर भारी था। इत्र से भरे हुए बरतन में लहसुन की एक फांक भारी ही तो होती है। क्या यह कुरूपता की विजय नहीं? इससे छुटकारा पाना कठिन नहीं है?

अब नहीं बैठूंगा। चलने को तैयार हुआ ही चाहता था कि प्रधान के वक्तव्य के बाद जलसा जय-जयकार से मुखरित हो उठा और अब हरिजन भोले भंडारी के दर्शन करने चले। मैं उस दृश्य को देखने का लोभ संवरण नहीं कर सका। इसकी पृष्ठ-भूमि में कोने वाले उस काने चौधरी को और पास से देखने का लोभ भी न जाने राख के नीचे दबी आग की तरह किस तरह चमक उठा। मन फिर खीझ... निरुत्साह से भर गया; पर पांव उधर ही जा रहे थे।

ज्यों-ज्यों अछूत मन्दिर की दहलीज की ओर... आ रहे थे, बूढ़े पुजारी का चेहरा फैलने और सिकु... लगा था। उसकी आंखें कपाल पर चढ़ फटकर... ही चाहती थीं कि श्रद्धा और भक्ति से नतमस्तक हो... हरिजनों ने 'हर-हर' करते हुए अपने तन-मन के... अपने श्रम से अर्जित धन में से भी खन-खन... कुछ अर्पण करना शुरू किया। भोले महादेव स्थि... भाव से बैठे रहे। उनके लिये भक्त-भक्त में भेद न... पूजा की विधि का भी ध्यान नहीं। वहां तो भक्ति ही मूल्य रखती है। लेकिन बूढ़े पुजारी ने सिर... हाथ फेरा और उसके झुर्रीदार चेहरे पर मुस्कराहट दौड़ गई, जैसे बुढ़ापे को जवानी की मीठी... आ जाए बस, अब पुजारी जी एक-एक 'खन'... बदले दस-दस आशीर्वाद देने लगे। (एक पैसे... दस आशीर्वाद सस्ते ही थे!) बिहारियों के मन्दिर की सेवा करते-करते २० वर्ष बिताने पर भी उन्होंने शिवालय में इतने पैसे चढ़ते नहीं देखे थे। शिवालय के पाषाण निर्मित देव तो इससे किंचित नहीं हिले पर पुजारी यदि मुलायम पैसे देखकर फिसल गए तो इसमें आश्चर्य की कौन बात! फिर वे बूढ़े भी थे।"

अरे, वह कोने वाला चौधरी बहुत समीप आ गया! मेरी धमनियों का रक्त सूख-सा गया। ... वह मेरे पास से होकर देव-मन्दिर की ओर बढ़ा... मैंने घबराकर आंखें बन्द कर लीं, मानों कोई ... कड़वी दवाई पीने चला हो। भोले महादेव फिर भी निर्विकार ही थे। उनके भाई ब्रह्मा ने ही ... इसे भी रचा। रचयिता प्रजापति शायद कुरूप... घड़ने में भी बाजी मारना चाहते थे। फिर भोले शंकर अपने भाई की कृति पर कैसे आपत्ति करते। परन्तु मुझे इससे क्या? मेरा इससे क्या मेल! लोग कहते हैं आत्मा सबकी एक ही है। क्या इस कुरूप... में भी हमारी-सी ही आत्मा है? मुझे इसमें ... हुआ। उधर चौधरी ने बड़े प्रेम से शंकर जी को प्रणाम किया और चला गया। मेरी जान में जान आई।

[मनोरंजन

जीवन-नृत्य
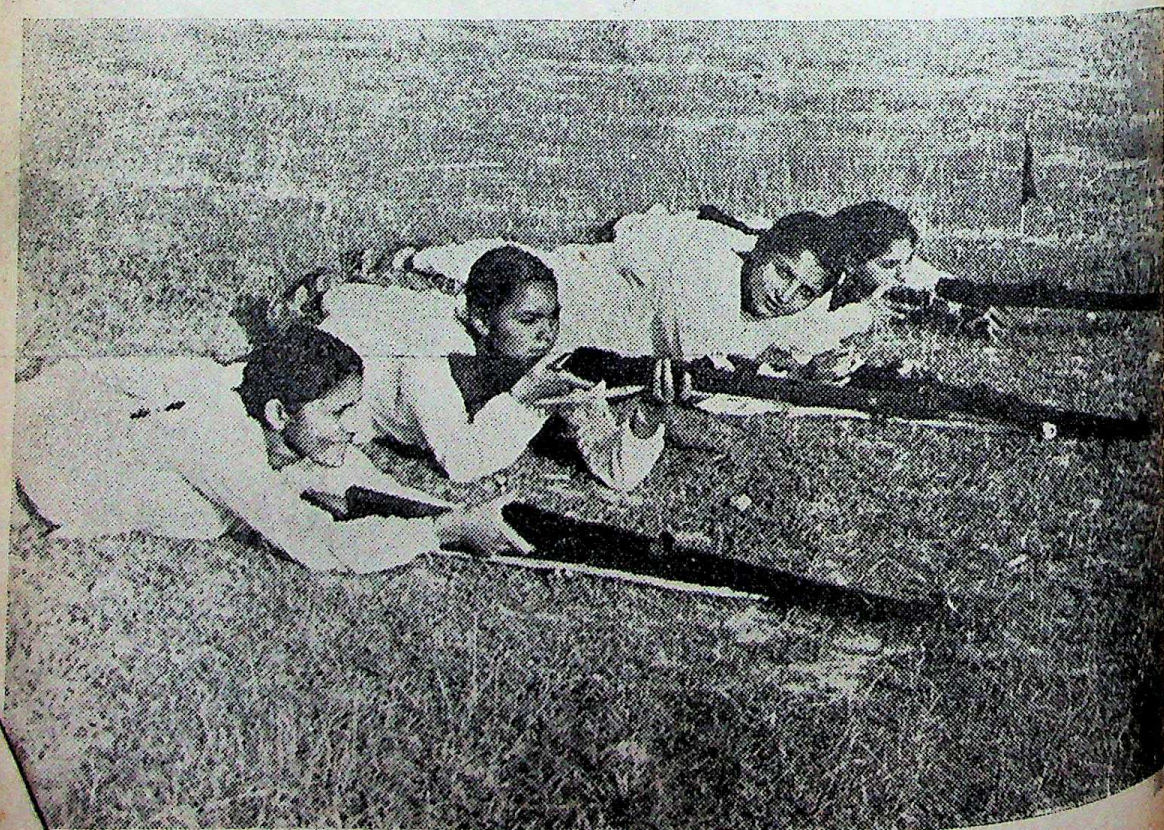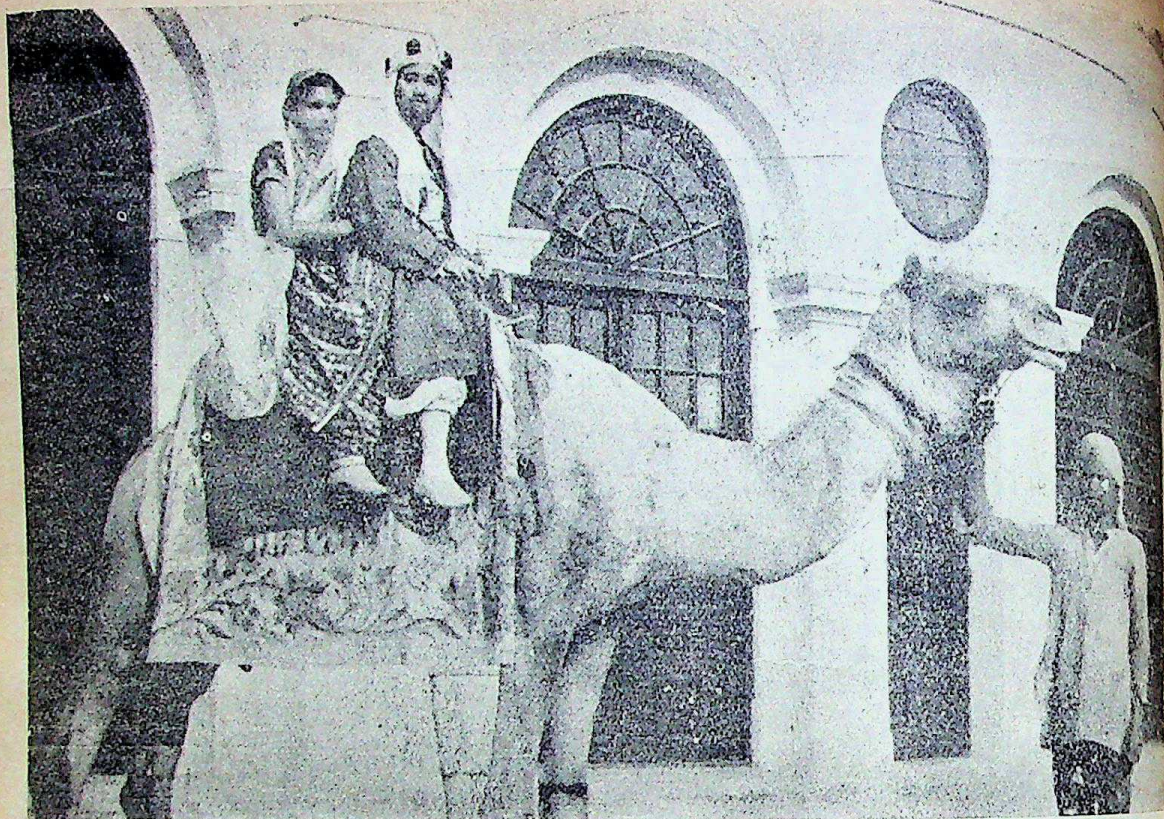
आधुनिका के शौक

* बाजार में जाकर वह आवश्यकता न होते हुए भी जूते, वस्त्र और प्रसाधन की वस्तुएं खरीदती है।

* कालिज में पढ़ते हुए वह रूमान-भरे नाटकों और स्वांगों में भाग लेकर (भले ही वह स्वांग अपने देश के बारे में हो!) अपने भावी दाम्पत्य जीवन के स्वप्न देखती है।

* स्वयं 'तस्वीर' होकर भी वह दूसरों की तस्वीर बनाती है।

* स्वस्थ व सुन्दर बनने के लिए वह पुरुषोचित खेलों में भाग लेती है।

* 'अबला' होते हुए भी वह आधुनिक ढंग के शस्त्रास्त्र चलाना सीखती है और कभी कभी अपने अपमान का बदला लेने के लिए अथवा 'पुरुषों के अत्याचार' की ओर संसार का ध्यान खींचने के लिए आवेश-वश इन अस्त्रों का प्रयोग भी कर बैठती है।
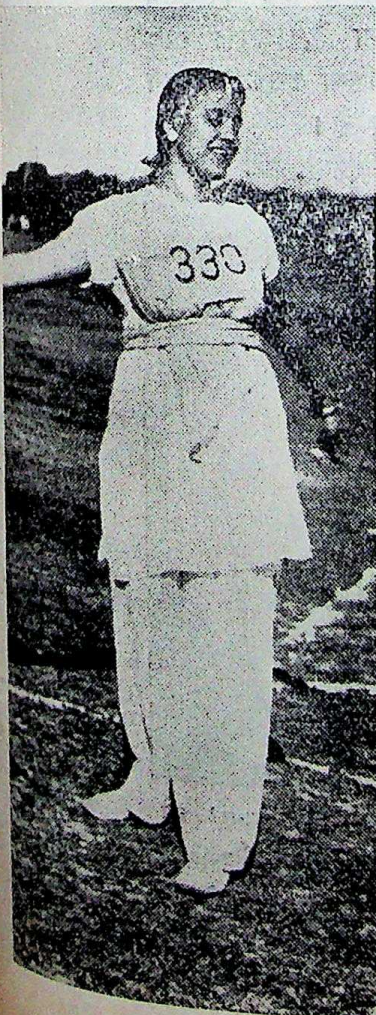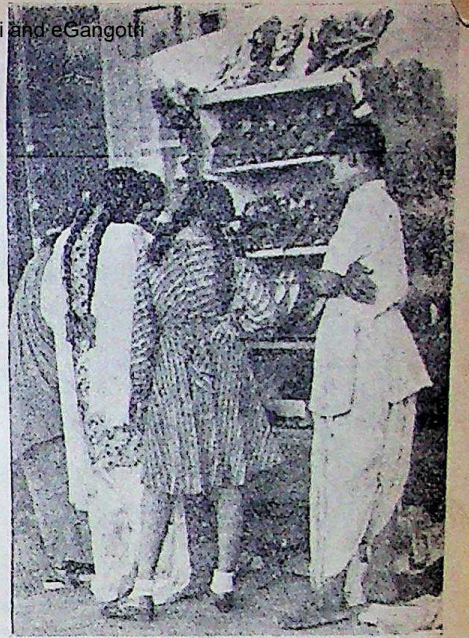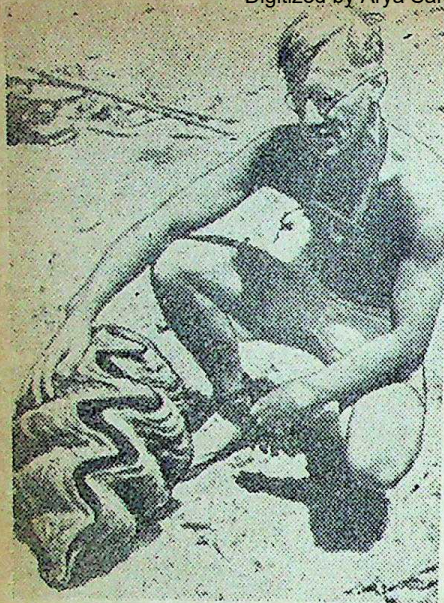
इस सीपी का वजन लगभग सात मन है। इस प्रकार की सीपियां बड़ी खतरनाक होती हैं। यदि किसी का इस पर असावधानी से पांव पड़ जाय, तो चूहेदानी की तरह यह तुरंत बन्द हो जाती है और पांव फंस जाता है।
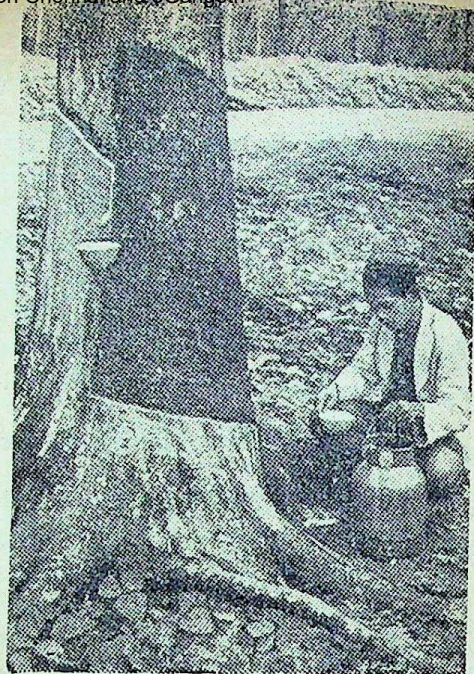
रबड़ के वृक्ष को यों काट कर उसमें से दूध निकाला जाता है, जिसका रबड़ बनता है। इण्डोनेशिया इसके उत्पादन का बहुत बड़ा केन्द्र है।
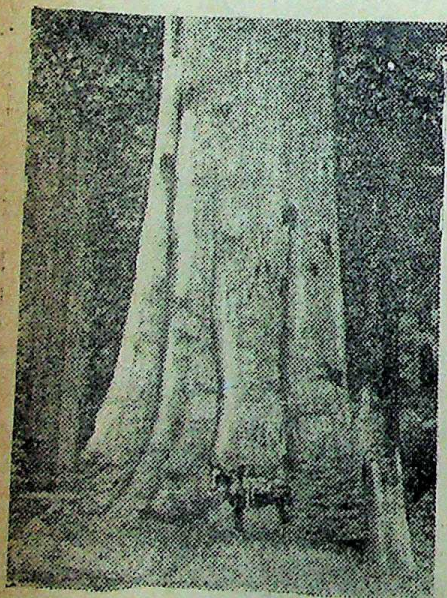
यह संसार के प्राचीनतम वृक्ष का तना है, जिसका घेरा ३०—३२ गज का है। वृक्ष की आयु चार हजार वर्ष की है और यह कैलेफोर्निया के एक पार्क की शोभा बढ़ाता है।

मुर्गी के अण्डों में 'विटेमन-ए' की काफी मात्रा होती है; परन्तु वैज्ञानिकों की खोज के अनुसार, इसके छोटे से यकृत में इस विटेमन की मात्रा जीवन भर में दिये गये अण्डों के कुल विटेमन की मात्रा से कहीं अधिक होती है।

उत्सव खत्म हुआ। हरिजनों ने देव-दर्शन पाया। हिन्दू जाति ने अपना पाप धोया। लोगों ने कीर्ति अर्जित की। बिहारियों को मनःताप हुआ। पुजारी जी ने पैसे पाए और भगवान् के भक्तों में वृद्धि हुई। लेकिन मुझे क्या मिला ? मेरे दिमाग ने एक छाया प्राप्त की — वह छाया जो कभी-कभी अब भी मेरे मस्तिष्क में व्याप्त हो मुझे डरा देती है। वह— वही कोने वाला घिनौना चौधरी —वह तो मेरे दिमाग में बुरी तरह चिपट गया है।

एक दिन दूकान से घर लौटा तो पत्नी कुछ प्रसन्न जान पड़ी। वह स्वभाव से कुछ अधिक खुश थी। विवाह के दो-तीन वर्ष बाद आज ही उसे इतना प्रसन्न देखा था। पर उसकी प्रसन्नता का कारण ढूंढे भी न मिल सका। बहुत इधर-उधर करने के बाद इशारों से उसने बताया कि वह अपने नारीत्व को सफल बनाने की स्थिति में है।

जाने मेरे मन में यह कैसे आ गया कि वह पुत्र ही प्रसव करेगी। फिर मैंने पुराने पन्ने उलटने शुरू किये। वही अछूतों का जलसा, बिहारियों का मन्दिर, वह कोने वाला चौधरी। हां, वही तो दिन था, वही। इतना विचार आते ही फिर वही कोने वाला काना कुरूप चौधरी विचारों पर छा गया। मैं अपने विचारों की भीषणता से आप ही सिहर उठा। मैं अपने लिये ऐसे अमंगल की बात क्यों सोचूं ? मेरा बेटा, और वह चौधरी...... नहीं नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा। लेकिन फिर वही चौधरी, वही उसकी आकृति ! मैंने चाहा, अपने सिर में कील ठोंक कर इस विचार का रास्ता बन्द कर दूं। लेकिन मानसिक विज्ञान-विशारद तो था नहीं, वैसे जानता कि विचार-प्रवेश का मार्ग कहां है, कौन-सा है।

पत्नी मेरी चुप्पी से घबराकर अनमनी-सी और उदास हो गई। शायद मर्द ऐसी खबर का यों ही स्वागत करते हों। लेकिन वह क्या जानती थी कि अपने को फिर बालक के रूप में देखकर कौन प्रसन्न न होगा ? पर उस दिन वाली कोने में बैठी भयानक मूर्ति ने अपनी उग्रता यहां भी न छोड़ी। कहीं मैं पागल तो नहीं हो रहा.....?

नौ महीनों में मैं होने वाले बच्चे की सूरत का ख्याल मुश्किल से नौ बार भी न छोड़ सका। जब भी उसके सुन्दर रूप की कल्पना करता, चौधरी का रूप साथ-साथ रहता। उजाले और अंधेरे में एक अति क्षीण रेखा का अन्तर शायद ही होता है। ज्ञान और अज्ञान पास-पास ही खेलते हैं। मैंने अपनी विचार-धारा से काफी युद्ध किया, लेकिन बीभत्सता को मनोहरता से दूर न कर सका।

शान्ति, मेरी छोटी बहिन दौड़कर आई, बोली— कुछ मुंह मीठा हो जाए !"

"क्यों ?" मेरा मन प्रसन्नता से फूल उठा।

"मुन्ना हुआ है, भैया !"

"कैसा है ?" मैंने एकाएक पूछा।

शान्ति कुछ चुप हो रही। उसे शरारत सूझी, बोली, "मिठाई तो खाऊंगी, पर भर-पेट नहीं।"

"क्यों ?" मैंने व्यग्रता से पूछा।

कहने लगी, "मुन्ना बिल्कुल कुरूप है, काला-कलूटा।"

हाय री तकदीर ! मेरी सारी खुशी काफूर हो गई। मैं पागलों की तरह दौड़कर अन्दर चला गया। स्त्रियां रोकती ही रह गईं। जल्दी से वस्त्र हटाकर देखा। देखकर जान में जान आई। नवजात शिशु अपने बचपन-सा ही गोरा-चिट्टा और सुन्दर था।

मैंने संतोष की सांस ली। कुरूपता ने सौन्दर्य को अक्षुण्ण रखा। चौधरी शाप नहीं, वरदान ही सिद्ध हुआ।

सोहो

श्री मोहनचन्द्र पन्त

गत महायुद्ध के समय श्री मोहनचन्द्र पंत बी० बी० सी० के एक अधिकारी के रूप में लदन में रहते थे। वहां उन्होंने जो कुछ देखा और अनुभव किया, उसे 'डायरी' के रूप में लिख डाला। उसी डायरी का कुछ अंश यहां प्रकाशित किया जा रहा है। यह एक तरह से पश्चिम के उच्छृंखल और विलासी जीवन की एक झलक है।
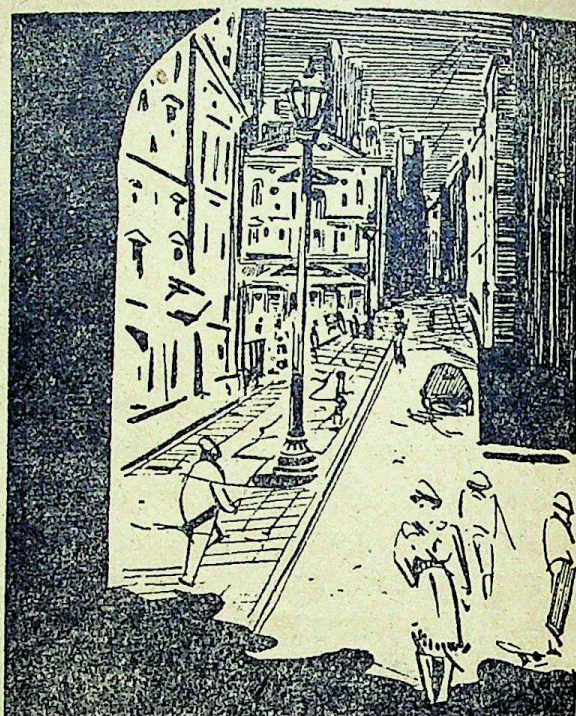
ऑक्सफोर्ड स्ट्रीट, चैरिंग क्रॉस रोड और पिकेडिली से घिरा हुआ लंदन का जो इलाका है, उसे 'सोहो' कहते हैं। लन्दन में रह कर जिसने 'सोहो' को नहीं देखा-भाला, और लन्दन से बाहर रहकर जिसने 'सोहो' का नाम नहीं सुना, वह आधुनिक जीवन के कई पहलुओं से अनभिज्ञ है। 'सोहो' में अनगिनत नाचघर हैं, नाइट-क्लब हैं, होटल-रेस्टुरां हैं, सिनेमा-हाल हैं और हैं वेश्यालय। यहां चोरी होती है, खून होते हैं, नशे की चीजों का व्यापार होता है, तरह-तरह के खाने मिलते हैं, हर किस्म की शराब मिलती है और हर तरह के लोगों से भेंट होती है। यहां जीवन की तरंगें तेजी से इठलाती और बल खाती हुई लहराती हैं। हर दम सतर्कता से रहना पड़ता है; हर कदम फूंक-फूंक कर रखना पड़ता है। यहां लक्ष्मी का निवास है, कामदेव का राज्य है गन्धर्वों की धाक है और उमर-खय्याम का नाम है। यहां यौवन बिकता है, जीवन घुलता है, पाप के जाल बिछे रहते हैं, लोभ की घटाएं छाई रहती हैं, कामुकता की बौछार होती है, मानवता का गला घोंटा जाता है, अंगों में रंग और रंगों में अंग होते हैं, अशान्ति टांगें पसारे लेटी रहती है और भौतिकतावादी दृष्टिकोण से ही हर चीज और हर बात परखी जाती है।

सड़कों पर बिजली के खम्भों के सहारे, दुकानों की ओट में, होटलों, सिनेमाघरों, नाचघरों, थियेटर-हालों और गलियों के मोड़ों के सामने लाल, सुनहले, भूरे, काले बालों वाली, गुलाबी कपोलों वाली तरुणियां, काले ओवरकोटों और काले दस्तानों से तन ढांके, कृत्रिम मुस्कराहट से राह चलते राहियों की ओर ललचाई और मदमाती आंखों से घूरती हैं। नाचघरों या शराबखानों में अनजाने लोगों से घुल-मिलकर तन-मन की बातें करने, मेल बढ़ाने, दिल बहलाने, प्यास बुझाने और धन कमाने की लालसा में न जाने कितनी नवयुवतियां दिन-रात हर किसी की हर समय प्रतीक्षा करती हैं। यहां हर देश के, हर वर्ग के, हर वर्ण के, हर पेशे के लोग नजर आते हैं। यहां सौदा होता है वाद-विवाद होता है, लड़ाई-झगड़ा होता है, मोल-तोल होता है, प्रेम होता है, घृणा होती है, द्वन्द्व होता है, प्रतिद्वन्द्व होता है, अन्तर्द्वन्द्व होता है।

यहां स्वर्ग भी है और नरक भी है। यहां मितव्ययी भी रहते हैं, अपव्ययी भी; सभ्य भी, असभ्य भी; अच्छे भी, बुरे भी। सारांश यह कि 'सोहो' में वह चमक-दमक है जो इन्द्रपुरी में भी न होगी; 'सोहो' में वे बातें होती हैं जो अन्धेर-नगरी में भी न होती होगीं।

'सोहो' आधुनिक इतिहास और समकालीन जीवन के अशांत, कृत्रिम और विकल पहलू की तस्वीर है!

कल रात मैं भी 'सोहो' गया। एक तुर्की होटल में ताश-कबाब खाए और बाद में एक शराब खाने में घुस गया। ऐसे तो लन्दन में हर सड़क पर, हर गली में, हर मुहल्ले में अनगिनत शराबखाने हैं; किन्तु 'सोहो' के शराबखानों की बात ही दूसरी है। खैर, ज्यों ही मैं शराब का गिलास लेकर एक कुर्सी पर बैठा, त्यों ही एक नितान्त अपरिचित स्त्री मेरे पास आकर बोली—"क्या मैं आपके पास बैठ सकती हूँ?"

मैंने कहा—"अवश्य, क्या आप शराब पीएंगी?"

उसने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया और मैं उठकर एक गिलास शराब और खरीद लाया। वह स्त्री स्त्री थी, नवयुवती नहीं—अधेड़ उम्र की, दुनिया देखी हुई। किन्तु वह असुन्दर नहीं, सुन्दर थी। पका हुआ रूप था, गठा हुआ शरीर था, तीखे नक्श थे, बड़ी-बड़ी आंखें थीं और पीठ तक लहराते हुए सुनहले केश थे।

मैंने शराब का गिलास ऊपर उठाते हुए कहा—"आपके स्वास्थ्य और उज्ज्वल भविष्य के लिए!"

उसने भी गिलास ऊपर उठाया और मुस्कराकर कहा, "धन्यवाद! सबके स्वास्थ्य और उज्ज्वल भविष्य के लिए!"

नाच घर

जिस तरह वह योंही निःसंकोच मेरे पास आकर बैठ गई थी और जिस तरह उसने निःसंकोच सब की स्वास्थ्य-कामना की थी, वह मेरे लिये अनोखी बात थी। उसकी बेतकल्लुफी में, उसकी निडर आंखों में, उसके निराले तौर-तरीकों में न नारी की लज्जा थी, न भय, न हया, न कोमलता!

मुझे विचारों में डूबा हुआ देखकर वह मुझसे बोली, "तुम बहुत जवान लगते हो।"

मैंने कहा, "मैं जवान हूँ, इसलिए यदि जवान लगता हूँ तो इसमें मेरा क्या दोष?"

मेरा उत्तर सुनकर वह खिलखिलाकर हंसी और बोली—"इसमें तुम्हारा दोष नहीं, मेरा दोष है। मैं तुम्हारी तरह जवान नहीं।"

मैंने कहा, "लेकिन कभी तो आप भी जवान रही होंगी?"

वह गम्भीर होकर बोली—"नहीं, मैं कभी भी जवान नहीं रही। जवानी में मैं जवान लगती थी—अब भी कभी-कभी लगती हूं—किन्तु मैं जवान कभी नहीं रही। जवान होना और जवान लगना, दो भिन्न-भिन्न चीजें हैं। मैंने शारीरिक यौवन के उत्थान और पतन का अनुभव तो किया है, किन्तु मानसिक या आध्यात्मिक यौवन का नहीं। यौवन के इस दूसरे पहलू को सोचने, समझने, परखने और अनुभव करने का समय मुझे मिला ही नहीं। इतना अवकाश ही नहीं था। जीवन ने व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से विकसित होने का समय ही नहीं दिया। मैंने लोगों को लूटा, लोगों ने मुझे लूटा।"

मैं आंखें फाड़-फाड़ कर उसे देख रहा था। बात नई नहीं थी; किन्तु वह जिस लगन से, जिस स्पष्टता से, जिस तन्मयता से अपनी आत्मग्लानि का प्रकाशन कर रही थी, वह रोचक थी। मुझे 'जोला'

की 'नाना' का स्मरण हो आया।

मुझे चुप देखकर वह झल्लाकर बोली—"क्या तुम्हें मेरी आत्म-कहानी निराली नहीं लगी?"

मैंने मुस्कराकर कहा, 'निराली नहीं, रोचक!"

क्योंकि वह मेरी उत्सुकता नहीं उभार सकी, मेरी दया या सहानुभूति का दामन नहीं छू सकी, इसलिए वह चुप हो गई। और मैं भी शराब की घूंट लेता हुआ, सिगरेट के कश खींचता हुआ इधर-उधर ताकने लगा।

मुझे मालूम है कि द्वन्द्व-प्रतिद्वन्द्व के इस युग में नवयुवतियां कई कारणों से प्रेरित होकर कुकर्मों के कूप में गिर जाती हैं और अपूर्ण और अशान्त जीवन के बोझ से सदा ही दबी रहती हैं। मुझे यह भी ज्ञात है कि इस अवनति का मुख्य कारण हमारी आधुनिक पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था है। किन्तु इसके साथ ही जो लोग केवल यह कहकर कि समाज और पूंजीवाद हो सब विकृतियों की जड़ हैं, व्यक्तिगत पतन की जिम्मेदारी व्यक्ति पर नहीं डालते, उनसे मुझे विशेष सहानुभूति नहीं। हां, यदि व्यक्तित्व के हर पहलू का स्पष्टीकरण इस तरह करना अभीष्ट हो कि ग्लानि या पश्चात्ताप के दामन में मुंह न छुपाना पड़े, तो सब कुछ उचित है। किन्तु ऐसा कलाकार ही कर सकता है और करता है; हर किसी में न ऐसी योग्यता है और न हिम्मत।

मैंने विचारों के जाल से अपने आपको मुक्त कर फिर उस स्त्री की ओर देखा। वह अधखुली आंखों से छत की ओर देखती हुई न जाने क्या सोच रही थी। उसके गहरे लाल रंगे हुए होठों से लिपटी हुई एक फीकी मुस्कराहट उसके जीवन की शून्यता और ध्येयहीनता की खिड़की बन अप्रिय सत्य की एक झलक मेरी आंखों के सामने उपस्थित कर रही थी। 'सोहो' का साकार रूप मेरे सामने था। मैंने उसे देखा—खूब अच्छी तरह देखा और फिर उससे विदा मांग मैं शराबखाने से बाहर निकल आया।

बाहर ठंड थी, लैम्पों के क्षीण प्रकाश से जूझता हुआ अंधकार था और उस अंधकार में ये शराब के नशे में चूर अमरीकन सैनिक, लड़कियां और हब्शी। किसी को भी चौराहे पर खड़े पुलिस के सिपाही का ध्यान नहीं था।
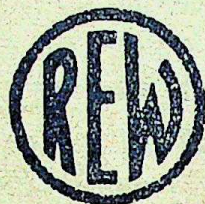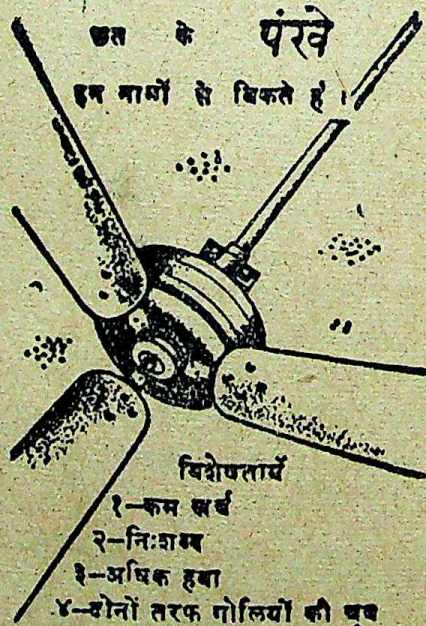
★

भारत में भांग मादक-पेय के रूप में खूब लोकप्रिय है इसके सेवन पर हमारी सरकार को भी कोई आपत्ति नहीं। (भगवान महादेव की प्यारी जो हुई!) अतः यह घर-बाहर सभी जगह खुले खजाने छनती है। प्रस्तुत लेख में इस विश्व-विजयिनी का इतिहास दिया गया है जो इसके प्रेमियों के लिये ज्ञान-वर्द्धक व रुचिकर सिद्ध होगा।

★

श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार

एशिया और अफ्रीका के प्रदेशों में भांग के योग मादक वस्तु के रूप में अत्यन्त प्राचीन काल से प्रयुक्त हो रहे हैं। लाखों जातियों को भांग, गांजा, चरस आदि के पीने की लत पड़ गई है। इनके मादक तथा वेदना दूर करने के, गुणों को अन्तिम शताब्दी के आरम्भ में पाश्चात्य चिकित्सकों ने भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है और ब्रिटिश संयुक्त-राज्य की औषधियों में भी इसे स्थान दिया गया है। यह पौदा संसार के भिन्न-भिन्न भागों में मिलता है; परन्तु भारत को छोड़ कर कुछ ही स्थान ऐसे हैं जहां यह द्रव्य गुण की दृष्टि से भारतीय भांग की श्रेणी में रखा जाता है। नर की अपेक्षा मादा पौदा अधिक ऊंचा होता है और इसकी पत्तियां अधिक लम्बी, अधिक गहरे रंग की और संख्या में भी अधिक होती हैं।

छठी शताब्दी ईस्वी पूर्व से चीन के लोग इस पौदे को जानते हैं और सम्भवतः चीन के कुछ कम ऊंचे पहाड़ों में यह प्रकृत रूप में पाया भी जाता है। पांच सौ ईस्वी पूर्व में लिखे गये चीनी ग्रन्थ शु-किंग में भांग के नर और मादा भेद लिखे मिलते हैं।

संस्कृत में इसके नाम भंग, गञ्जिका आदि हैं। हिन्दी और फारसी में इसे भंग, बंगाली में गाञ्जा, जर्मनी में हन्फ (hanf), अंग्रेजी में हेम्प, फ्रेंच में चन्व्रे, केल्टिक और आधुनिक ब्रिटेन में केनस, ग्रीक और लैटिन में कैनाबिस और अरबी में केन्नाब कहते हैं।

उत्पत्ति-स्थान

प्रेन नामक वनस्पति-शास्त्री के मतानुसार भांग का आदि उत्पत्ति-स्थान भारत नहीं है। भारत में यह रेशे पैदा करने वाले पौदे के रूप में लाई गई थी; परन्तु लोगों पर जब इसका नशीला गुण प्रकट हुआ तो यह इसी प्रयोजन के लिए उगाई जाने लगी। एक और विद्वान जार्ज वाट का इस बात पर कोई निश्चित मत नहीं है। भारतवर्ष में इसका पौदा हिमालय की पश्चिमीय पर्वत-श्रेणियों पर और काश्मीर के जंगलों में स्वतः उगा हुआ मिलता है। लाहौर, हरिद्वार आदि स्थानों में मैंने इसे मानवीय प्रभाव से दूर उगा हुआ पाया है। भारत के मैदानों में अब यह उन स्थानों की जलवायु के अनुकूल बन चुका है। एशिया और यूरोप के नामों का संस्कृत नामों के साथ जो आन्तरिक सम्बन्ध है, उससे भांग

का मूल उद्भव-स्थान कहीं मध्य एशिया में समझा जाता है।

हिमालय पर काश्मीर से आसाम के पूर्व तक के स्थानों में भी भांग उगती है। दस हजार फीट से ऊपर यह नहीं मिलती। पर्वतों के दक्षिणी ढालों के नीचे और पंजाब में तथा गंगा के आस-पास कुछ सीमित दूरियों तक यह फैली हुई है। आसाम के पहाड़ी मार्गों में भी यह पाई जाती है और पूर्वीय बंगाल के पर्वतीय मार्गों में भी यह फैल गई है। निर्धारित की जाय तो इसकी दक्षिणीय सीमा लगभग यह होगी — पेशावर से पंजाब और संयुक्त प्रान्त के मध्य तक और गंगा के साथ-साथ।

हेरोडोटस (जन्म ४८४ ईस्वी पूर्व) के मतानुसार सीथियन लोग भांग इस्तेमाल करते थे। परन्तु उसके समय में ग्रीक लोग इससे मुश्किल से ही परिचित थे। सिराक्यूज के राजा हीरो द्वितीय ने गौल में स्थित अपने जहाजों के रस्सों के लिए भांग खरीदी थी और लुसिलिअस सबसे पहला रोमन लेखक है जिसने ईस्वी सन् के सौ साल पहले इस पौदे का जिक्र किया था। हिब्रू पुस्तकें और वैदिक संहिताएं तथा ब्राह्मण ग्रन्थ भांग का उल्लेख नहीं करते। प्राचीन मिश्र में 'ममियों' को जिन आच्छादनों में लपेटा जाता था, उनमें इसका उपयोग नहीं होता था। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक भी मिश्र में यह एक प्रकार का नशीला पेय प्राप्त करने के लिए ही बोयी जाने लगी थी। रोमन-राज्य में यहूदियों के नियमों का जो संग्रह तालमुद्र बना, उससे पता चलता है कि उस समय रस की रेशे सम्बन्धी उपयोगिता के बारे में लोगों को बहुत कम ज्ञान था। यह सम्भव है कि सीथियन्स इस पौदे को मध्य एशिया और रूस से उस समय ले गये हों जब उन्होंने ईस्वी पूर्व लगभग १५०० में, ट्रोजन युद्ध से कुछ पहले, पश्चिम की ओर प्रयाण किया था। थ्रेस और पश्चिमीय यूरोप में यह आर्यों के प्रारम्भिक आक्रमणों में भी सम्भवतः आ गया हो। यदि ऐसा माना जाय तो इटली में यह अधिक पहले से ज्ञात होना चाहिए। स्विट्जरलैण्ड और उत्तरीय इटली के झील-प्रदेशों में भांग नहीं पायी गयी है।

डहूरिया में, बैकाल झील से परे, किरगिस के रेगिस्तान में, इर्टिश के समीप, साइबेरिया में, कैस्पियन समुद्र के दक्षिण की ओर जंगलों में यह पौदा निस्सन्देह मिलता है। कुछ लेखक तो इसे सारे दक्षिणीय तथा मध्य रूस में और कॉकेशस के दक्षिण में भी इसका पाया जाना बताते हैं, परन्तु यहां इसका जंगली होना सुनिश्चित नहीं है, क्योंकि ये आबाद प्रदेश हैं और भांग के बीज बगीचों से बहुत आसानी से जंगलों में चले जा सकते हैं। चीन में भांग की कृषि की प्राचीनता को देखकर एल्फान्स डि कैण्डोल नामक लेखक यह विश्वास करता है कि इसका उद्भव-क्षेत्र और आगे पूर्व की ओर चला गया है, यद्यपि इस बात को वनस्पति-शास्त्र के विद्वानों ने प्रमाणित नहीं किया है। बापस्सीर इस पौदे को पर्शिया में लगभग जंगली बताता है। केण्डोल को यहां उसके जंगली होने में सन्देह है। वे कहते हैं कि यदि यह वहां प्राकृतिक होता तो ग्रीक और हिब्रू लोग इसे बहुत पहले से जानते होते।

विजय-पुस्तक भण्डार की सामयिक पुस्तकें

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित

स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा

इस पुस्तक में लेखक ने भारत एक और अखण्ड रहेगा, भारतीय विधान का आधार भारतीय संस्कृति पर होगा, इत्यादि विषयों का प्रतिपादन किया है। मूल्य १।।) रुपया।

जीवन में विजय प्राप्त करने के लिये
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित

'जीवन संग्राम'

का

संशोधित दूसरा संस्करण पढ़िये। इस पुस्तक में जीवन का सन्देश और विजय ललकार एक ही साथ हैं पुस्तक हिन्दी भाषियों के लिये मनन और संग्रह के योग्य हैं। मूल्य १) डाक व्यय।-)

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति की

'जीवन की झांकियां'

प्रथम खण्ड—दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन, मूल्य ।।)

द्वितीय खण्ड—मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला ? मूल्य ।।)

दोनों खण्ड एक साथ लेने पर मूल्य ।।।)

सामाजिक उपन्यास

सरला की भाभी

[ले०—श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति]

इस उपन्यास की अधिकाधिक मांग होने के कारण पुस्तक प्रायः समाप्त होने को है। आप अपनी कापियें अभी से मंगा लें, अन्यथा इसके पुनः मुद्रण तक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।

मूल्य २)

हिन्दू संगठन हौआ नहीं है
अपितु
जनता के उद्बोधन का मार्ग है।
इसलिये

हिन्दू-संगठन

[लेखक—स्वामी श्रद्धानन्द संन्यासी]

पुस्तक अवश्य पढ़ें। आज भी हिन्दुओं को मोहनिद्रा से जगाने की आवश्यकता बनी हुई है, भारत में बसने वाली प्रमुख जाति का शक्ति सम्पन्न होना राष्ट्र की शक्ति को बढ़ाने के लिये नितान्त आवश्यक है। इसी उद्देश्य से पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। मूल्य २)।

पं० मदनमोहन मालवीय

[श्री रामगोविन्द मिश्र]

महामना मालवीय जी का क्रमबद्ध जीवन-वृत्तान्त। उनके मन का और विचारों का सजीव चित्रण। मूल्य १।।) डाक व्यय।=)

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस

नेता जी जन्मकाल से सन् १९४५ तक, आजाद हिन्द सरकार की स्थापना, आजाद हिन्द फौज का संचालन आदि समस्त कार्यों का विवरण। मूल्य १) डाक व्यय।=)

पण्डित जवाहरलाल नेहरु

[श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति]

जवाहरलाल क्या हैं ? वे कैसे बने ? वे क्या चाहते हैं और क्या करते हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर इस पुस्तक में आपको मिलेगा।

मूल्य १।) डाक व्यय।=)

प्राप्ति स्थान—विजय पुस्तक भण्डार, श्रद्धानंद बाजार, दिल्ली

आर्य संस्कृति एवम् पतित धर्म की प्रबल प्रतीक भारतीय महिलाये जन्मान्तर में भी अपने वर्त्तमान पति प्राप्ति की कामना से सहस्रों की संख्या में विशेष कर पर्व के दिन तीर्थ स्थानों में इस बीसवीं सदी में भी ग्रन्थि बंधित स्नान करती दिखाई पड़ती हैं। इस प्रकार का स्नान उनके वांछित फल प्राप्ति में कहां तक सहायक होता है, यह तो उनके विश्वास का विषय है, पर स्नान का महत्ता सर्वथा निर्विवाद है और विशेषकर जब स्नान "प्रीफेक्ट साबुन" से किया जाता है, जो शरीर को न केवल स्वच्छ एवम् शान्त बनाता है वरन अपनी स्निग्ध सुवास में त्वचा के प्रफुल्लित तथा स्नान के बाद भी सुवासित रखता है।

प्रिफेक्ट
टॉयलेट सोप
विशुद्ध वनस्पति तेलों से निर्मित

मोदी सोप वर्क्स, मोदीनगर, यू॰ पी॰

स्थानीय डिपो—मेसर्स मोदी इण्डस्ट्रीज डिपो, दरयागंज दिल्ली।

स्त्रियाँ अच्छे पतियों को पसन्द नहीं करतीं

श्री रामचरण महेन्द्र

अंग्रेजी की प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका कुमारी ब्लूम ने एक जगह लिखा है — "अच्छे पतियों के विषय में बहुत-सा निरर्थक प्रलाप सुनने और पढ़ने को मिलता है। लोग उनकी प्रशंसा करते नहीं थकते। अमुक स्त्री का पति बड़ा भलामानुस है; कभी लड़ता-झगड़ता नहीं, जो कुछ वह कहती है, चटपट मान लेता है। वह उसकी नाक में नकेल डाल कर जिधर चाहती है, उधर ले जाती है; वह चूं भी नहीं करता। ऐसी अनेक बातें कह कर लोग उस स्त्री के भाग्य की सराहना करते हैं। परन्तु स्त्रियों का हृदय जानता है कि वे इस प्रकार के अच्छे पति को पसन्द नहीं करतीं वे पति के रूप में एक मिट्टी का माधो नहीं चाहतीं; वे श्रद्धालु दूल्हा नहीं चाहतीं। वे ऐसी टेक नहीं चाहतीं जिसके ऊपर वे अपने 'अहम्' की बेल को चढ़ा सकें। वे ऐसा पति नहीं चाहतीं, जिस पर वे विश्वास कर सकें। ज्योंही वे इस योग्य होती हैं कि पुरुष पर भरोसा कर सकें, उनके लिए उसमें कोई विशेष आकर्षण नहीं रह जाता। जिस पुरुष को हृदय से स्त्रियां चाहती हैं, वह स्पष्टतः बुरा पति है।"

अंग्रेज महिला ने स्त्रियों के विषय में एक मनोवैज्ञानिक सत्य का विवेचन उपर्युक्त उद्धरण में किया है। ऊपर से कदाचित् कोई स्त्री उपर्युक्त बातों से सहमत न हो, किन्तु आन्तरिक हृदय से वह इसी तथ्य को मानती है।

बुरा पति क्या है? उपन्यास-लेखिका का तात्पर्य उद्दण्ड पति से है। पति दो प्रकार के होते हैं। एक तो श्रद्धालु और पत्नी-भक्त पति। यह कर्त्तव्य और बुद्धि-विवेक से संचालित होने वाला धर्म-भीरु पुरुष होता है और हर प्रकार गार्हस्थ्य-जीवन में निभाव करता जाता है। दूसरे प्रकार का पति उद्दण्ड और उन्मत्त होता है। वह निर्दयी और क्रूर, शरीर से बलिष्ठ, मन का उन्मत्त, उतावला, शंकाशील होता है। उसका स्वभाव अस्थिर, शीघ्रकोपी, तेज और निष्ठुर होता है। वह पत्नी को प्रेम करता है, किन्तु उसके प्रेम में उन्मत्तता, पौरुष, और उग्रता रहती है। स्त्री के शरीर पर उसका अधिकार होता है और उसके मन पर स्त्री का। स्त्री इस प्रकार के पति की निंदा करती है, दूसरों से शिकायत करती हैं; किन्तु हृदय में उसे चाहती है।
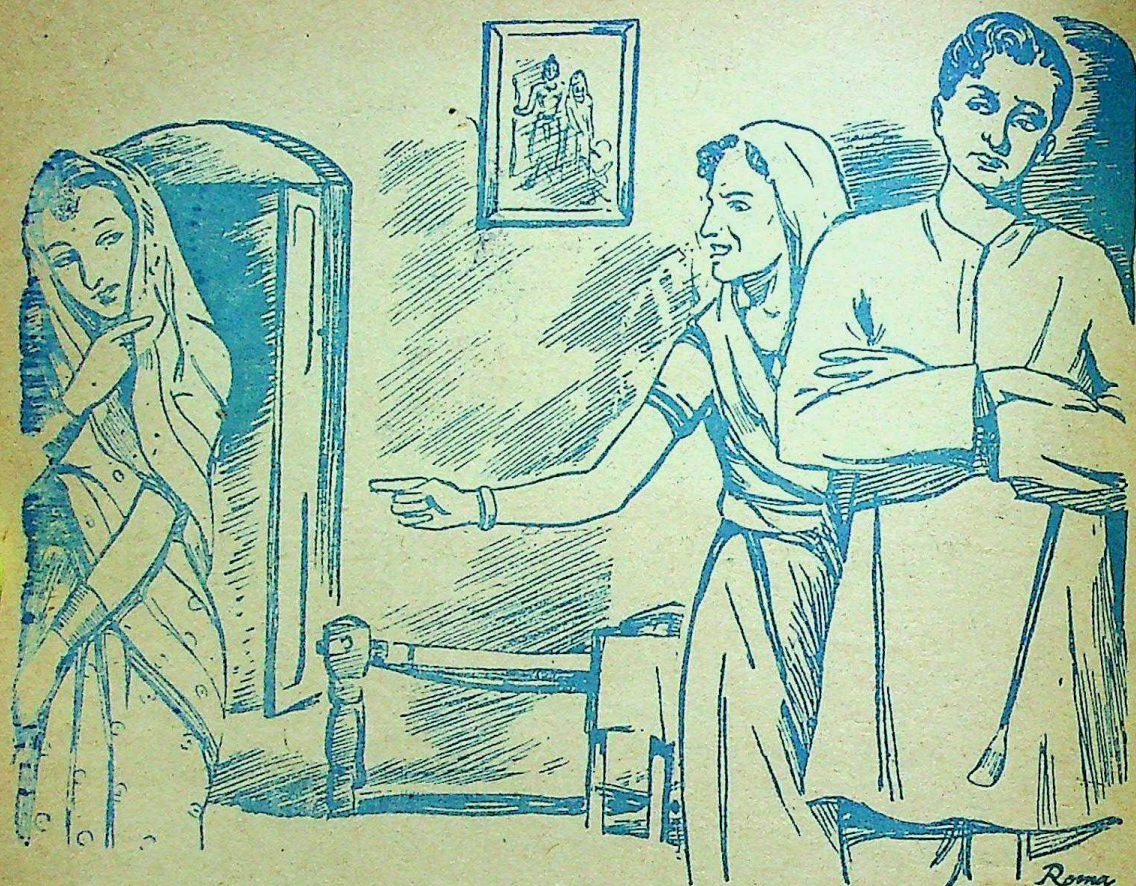
उस पति के गार्हस्थ्य-जीवन की कल्पना कीजिये जो पग-पग पर भलमनसाहत, दया, कर्त्तव्य-मिश्रित-प्रेम से भरपूर रहता है। वह स्त्री की सहायता करने, उसे ऊंचा उठाने, शिक्षा देने में सदैव तत्पर रहता है। प्रत्येक बात में वह पत्नी की देख-रेख, सहायता, उद्धार के लिये प्रस्तुत रहता है। अनेक बार वह पत्नी की उचित-अनुचित इच्छाएं भी पूर्ण करता है। स्त्री प्रायः अपनी फरमाइशों द्वारा उस पर हावी रहती है, पर उससे प्रेम नहीं करती।

स्त्री जिस चीज से सबसे अधिक प्रेम करती है, वह है अभाव। उसमें जो-जो गुण नहीं है, वह प्रकृति के द्वारा जिन गुणों से वंचित रक्खी गई है, उन गुणों से युक्त पुरुष से ही वह प्रेम कर सकती है। स्त्री में प्रकृत्या दया, कोमलता, कमनीयता, भलमनसाहत, शील, सहानुभूति आदि गुण बड़ी मात्रा में विद्यमान हैं। यदि पुरुष में ये ही गुण (या कमजोरियां ?) विद्यमान हों, तो वह उन्हें प्रेम न करेगी। कमजोर, सुकुमार, छुई-मुई, लाज से भरे, हीनत्व से पूर्ण, पुरुषत्वहीन युवक को वह कभी नहीं चाहती। वह उदार, दयावान्, नारी-भक्त दूल्हा नहीं चाहती। इस तरह के तथाकथित अच्छे पतियों को वह पसन्द नहीं करती।

स्त्री जिस पुरुष को चाहती है वह मजबूत, निर्णायक, स्वमताभिमानी दृढ़, प्रचण्ड, उग्र, बेलगाम, निग्रहहीन, पौरुषयुक्त और लड़ने वाला है। इस श्रेणी का पति उपन्यास-लेखिका ब्लूम के मतानुसार उच्च-श्रेणी का प्रेमी हो सकता है। इसके प्रेम में कौतूहल और रोमांच है। इसमें औरतों में पाये जाने वाले गुण —सौकुमार्य, कोमलता, करुणा, सहजबुद्धि, आगा-पीछा सोचना, दब्बूपन, मितव्ययता इत्यादि नहीं हैं। यह अच्छा पति नहीं, उत्कृष्ट प्रेमी अवश्य है। प्रेम की दृष्टि से स्त्रियों को यही पुरुष प्रिय है।

गर्मियों में

सौन्दर्य-साधना

कुमारी नीलिमा एम० ए०

गर्मियों में धूप, लू और उमस के कारण रंग-रूप संवला जाता है, त्वचा खुश्क हो जाती है और ताजगी नष्ट हो जाती है। गर्मी और पसीने के कारण वैसे भी तबियत परेशान रहती है। अतः यह आवश्यक है कि सौन्दर्य-प्रसाधन और वेश-विन्यास ऐसा हो जो नयनाभिराम, सुखद और आकर्षक तो हो ही, साथ ही शीतलता और ताजगी प्रदान करने वाला भी हो।

सर्वप्रथम मैं शारीरिक-शुद्धि को लेती हूँ। गर्मियों में अत्यधिक ठंडे पानी से स्नान नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से स्नान के तुरन्त बाद बहुत पसीना आता है और शरीर चिपचिपा-सा हो जाता है। पानी का तापमान शरीर के तापमान से कुछ ही दर्जे कम होना चाहिये। पानी में चंदन अथवा गुलाब-जल जैसी कोई ठंडी व सुगंधित वस्तु मिला ली जाये तो अच्छा है। स्नान के पश्चात् शरीर को तौलिये से खूब रगड़ कर पोंछना चाहिये। इससे कुछ समय के लिये रक्त-प्रवाह की गति तेज हो जाती है, जो स्वास्थ्य के लिये लाभप्रद है।

वस्त्र पहनने से पहले शरीर के उन संधि-स्थलों पर खूब 'टैलकम पाउडर' छिड़कना चाहिये जहां पसीना अधिक आता हो। इससे गंदे पसीने का निराकरण तो होगा ही, त्वचा में सुवास, मृदुलता, ठंडक और ताजगी का अनुभव भी होता रहेगा।

रंगों की प्रकृति भी शीत व उष्ण होती है। हल्के रंग ठंडक पहुँचाते हैं। अतः गर्मियों में अधिकतर हल्के रंगों के वस्त्र ही पहनने चाहियें। वस्त्रों की फिटिंग भी कुछ ढीली होनी चाहिये, क्योंकि अधिक तंग वस्त्रों में अधिक गर्मी अनुभव होती है।

वस्त्रों की तरह ही चेहरे का प्रसाधन भी बहुत ही हल्का और सादा होना चाहिये। त्वचा की स्निग्धता बनाये रखने के लिये रात को सोते समय किसी अच्छी क्रीम का उपयोग तो करना ही चाहिये, परन्तु दिन में चेहरे पर क्रीम और पाउडर की तह इतनी हल्की होनी चाहिये कि जिससे गर्मी से संवलाई हुई रंगत भर ढंक जाये। 'लिपस्टिक' (अधर-राग) का रंग भी गहरा लाल नहीं,बल्कि गुलाबी या अनार की कली-सा खिलता हुआ होना चाहिये। धूप की चमचमाहट में लाल रंग के यही 'शेड' अच्छे लगते हैं।

आंखों की कांति व सुन्दरता को धूप से हानि पहुँच सकती है, अतः बाहर जाते समय रंगीन ऐनक का उपयोग करना चाहिये।

सिर के बाल सप्ताह में कई बार धोने चाहियें और पसीने से बचने के लिये उन्हें मस्तक व कानों से ऊपर उठाकर बांधना चाहिये।

'सौन्दर्य-सम्राज्ञी'

कुमारी शैलबाला

किसी राष्ट्र अथवा देश के लोगों का सुन्दर व स्वस्थ होना सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से बहुत ही महत्व की बात है। पाश्चात्य देशों में प्रतिवर्ष स्वास्थ्य तथा सौन्दर्य सम्बन्धी प्रतियोगितायें होती हैं। जैसे पुरुषों में से वर्ष का सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी, पहलवान अथवा तैराक चुनकर उसे गौरवान्वित किया जाता है, वैसे ही स्त्रियों में से सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी चुनने की भी परिपाटी है। मैं समझती हूँ, इस प्रकार की कोई व्यवस्था हमारे देश में भी होनी चाहिए। इस काम के लिये हमारे यहां किसी सरकारी अथवा गैर-सरकारी (गैर-सरकारी अधिक उपयुक्त है) संस्था का निर्माण होना चाहिये जो सौन्दर्य व स्वास्थ्य-साधना का जनता में प्रचार करे, सुन्दर स्त्रियों को प्रतियोगिता में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित करे और सौन्दर्य-शास्त्रियों तथा स्वास्थ्य-शास्त्रियों के बोर्ड नियुक्त करके उनकी सहायता से प्रति वर्ष राष्ट्र की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी चुने।

स्त्रियों को अपनी निजी सम्पत्ति के रूप में चहारदीवारी के अन्दर बन्द रखने के पक्षपाती तथा दकियानूसी विचारों के लोग धर्म व नैतिकता की दुहाई देकर मेरे इस सुझाव का निश्चय ही विरोध करेंगे और मुझपर पश्चिम के अनुकरण का आरोप लगायेंगे। ऐसे महानुभाव भारत के प्राचीन गौरवमय इतिहास की ओर जरा दृष्टिपात करें, जबकि सौन्दर्य-चर्या को आदर और गौरव की दृष्टि से देखा जाता था। कालिदास आदि संस्कृत के कवियों और नाटककारों की कृतियों में वसंतोत्सवों पर देश या जनपद विशेष की सुन्दरतम स्त्री को 'सौन्दर्य-सम्राज्ञी' की गौरवान्वित उपाधि दिये जाने के बीसियों उदाहरण मिलते हैं।

मेरी कुछ ऐसी बहिनें भी, जो सौन्दर्य-चर्या तथा शृंगार-प्रियता को स्त्रियों की दुर्बलता व पराधीनता का द्योतक मानती हैं, मेरे इस सुझाव पर आपत्ति कर सकती हैं। उनसे मेरा नम्र निवेदन है कि सुन्दरता स्त्री का सहज तथा उत्तम गुण है। केवल इस गुण के कारण अपने आप को पुरुष की तुलना में हीन समझना सर्वथा असंगत है।

अतः अब जब कि हम स्वतंत्र हो चुके हैं, हमारे देश में सौन्दर्य-चर्या जैसे सांस्कृतिक तथा कलात्मक आन्दोलनों को प्रोत्साहन मिलना ही चाहिये और प्रतिवर्ष देश की सुन्दरतम स्त्री को 'सौंदर्य-सम्राज्ञी' की उपाधि से विभूषित किया जाना चाहिये।

हास-परिहास

मनोविज्ञान-शास्त्री के पास वह अपने मानसिक रोग की चिकित्सा के लिये गया था। उसने बताया, "मैं प्रत्येक रात को एक अत्यन्त डरावना स्वप्न देखता हूँ।"

"क्या डरावना स्वप्न देखते हो?" मनोविज्ञान-शास्त्री ने उससे पूछा।

"मैं सदा स्वप्न में यही देखता हूँ कि मेरा विवाह हो रहा है।"

"ठीक, ठीक! अच्छा, तो यह बताओ कि स्वप्न में तुम्हारा विवाह होता किससे है?"

"अपनी श्रीमती जी से ही!"

* * *

लेखक—(सम्पादक से) आपको यह क्यों आग्रह है कि मैं कागज के एक ओर ही लिखा करूं।

सम्पादक—आग्रह नहीं, लिहाज कहिये; वर्ना मैं तो चाहूंगा कि आप दोनों ओर ही न लिखा करें!

* * *

रोगी अपने बारे में बहुत चिंतित था, डाक्टर से बोला—"डाक्टर साहब, क्या आपको विश्वास है कि मुझे निमोनिया ही है? बात यह है कि मैं ऐसी कई घटनायें सुन चुका हूं कि जब डाक्टर तो इलाज करता रहा निमोनिया का और रोगी मरा टाइफायड से।"

डाक्टर ने रोगी को तसल्ली देते हुए कहा—"ऐसा वहम ही न करो। मैं जब निमोनिया का इलाज करता हूं तो रोगी निमोनिया से ही मरता है।"

* * *

उसने टैक्सी-ड्राइवर से पूछा—"इसमें कितनी सवारियां बैठ सकती हैं?"

टैक्सी-ड्राइवर ने उत्तर दिया—"वैसे तो यह टैक्सी चार सवारियों के लिये है; परन्तु यदि सवारियां परस्पर अच्छी तरह परिचित हों तो छः भी बैठाई जा सकती हैं!"

* * *

मास्टर—मोहन, धरती की आकृति कैसी है?

मोहन—गोल।

मास्टर—धरती गोल है, इसका तुम्हारे पास क्या प्रमाण है?

मोहन—प्रमाण? तो अच्छा, धरती गोल नहीं, चौकोर है। मैं बेकार बहस में नहीं पड़ना चाहता।

* * *

'अरे यार, तुम बड़े स्वार्थी हो; अकेले ही सारा तर माल उड़ा गये!'
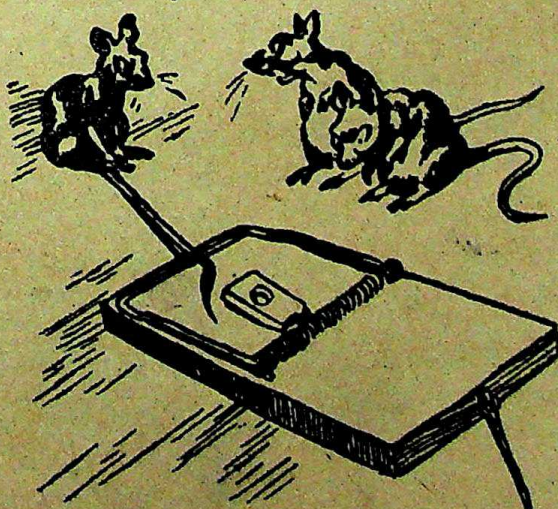
प्रोफेसर साहब परीक्षा की कापियां देख रहे थे। एक कापी में कोई भी प्रश्न हल नहीं किया गया था; बिल्कुल कोरी छोड़ दी गई थी। एक पृष्ठ पर एक कब्र का रेखा-चित्र था, जिसपर निम्नलिखित शिला-लेख अंकित किया गया था—

"उस स्मरण-शक्ति की पावन स्मृति में, जिसकी ऐसे अवसरों पर सदा अकस्मात

गीत

प्रो० हरीश सिंहल

आजकल मैं हर जगह उल्लू बनाया जा रहा हूँ !

जब वकीलों का अदालत में हुआ है हाल ढीला,
और मांगें चार-छः, तो मैं कहूँ तू एक ही ला !
अधिक क्या, हर रोज तांगे का किराया ला रहा हूं,
किन्तु फिर भी हर जगह उल्लू बनाया जा रहा हूँ !

दो कुँआरी लड़कियों के ब्याह का है बोझ सिर पर,
बिन टके-कौड़ी लिए कोई नहीं मिलता उचित वर;
दूं कहां से, खुद जमा-पूंजी बकाया खा रहा हूँ !
पर यहां हर ओर से उल्लू बनाया जा रहा हूँ !

चुन लिया इस बार कुलियों ने मुझे अपना सभापति,
अब करूं उनकी कही, वर्ना बनेगी खूब दुर्गति,
औ' इधर सरकार द्वारा भी दबाया जा रहा हूं !
गर्ज यह, हर बात में उल्लू बनाया जा रहा हूँ !

ही मृत्यु हो जाती है !"

* * *

आज फिर नौकरानी ने चीनी की एक प्लेट तोड़ दी थी। गुस्से से भरकर मालकिन ने उसे बुला कर डांटा और कहा—"तुम पर जुर्माना भी क्या करूं; हर महीने तुम अपनी तनख्वाह से कहीं अधिक मूल्य की चीजें तोड़ देती हो। समझ में नहीं आता कि तुम्हारा इलाज क्या हो !"

"इलाज ?" नौकरानी इतमीनान से बोली, "आप मेरी तनखाह बढ़ा दीजिये !"

* * *

एक अधेड़ उम्र की अंग्रेज स्त्री चिड़ियाघर देखने गई। उसे भिन्न-भिन्न प्रकार के पशु-पक्षी दिखाता हुआ 'गाइड' कंगारू के कठघरे के सामने पहुंचा और उधर संकेत करते हुए बोला—"मैडम, यह है आस्ट्रेलिया का एक निवासी।"

"उई मां", वह स्त्री एकाएक घबराकर बोली, "मेरी छोटी बहिन आस्ट्रेलिया में है और उसने हाल ही में वहीं के एक निवासी से विवाह कर लिया है। ऐसा ही होगा उसका पति !"

* * *

मजिस्ट्रेट—(अपराधी से) तुम्हें शरम आनी चाहिये कि तुम सातवीं बार अदालत में आये हो।

अपराधी—हुजूर, गुस्ताखी माफ हो, मुझ से अधिक तो आप को शरम आनी चाहिए, क्योंकि आप प्रतिदिन अदालत में आते हैं !

* * *

मोहन—जेल में रहने से एक बात का आराम है।

सोहन—वह क्या ?

मोहन—वहां कोई कम्बख्त आधी रात को जगाकर यह तो नहीं कहता कि जाकर देख आओ पिछवाड़े वाला दरवाजा बन्द है या खुला !

* * *

"क्या तुम्हारे पिताजी घर में हैं ?"

"नहीं, वे बाहर गये हुए हैं।"

"कब तक वे घर लौटेंगे ?"

"ठहरिये, मैं अभी अंदर जाकर उनसे पूछकर आता हूँ।"

* * *

श्रीमती जी बी० एस-सी० पास थीं। जब घर का नौकर भाग गया तो रसोई का काम उन्हें स्वयं करना पड़ा। एक दिन भोजन परोसते हुए पतिदेव से बोलीं—"यदि मैं एक मास तक तुम्हारा खाना पकाती रहूं, तो मुझे क्या पुरस्कार मिलेगा ?"

पतिदेव बोले—"मेरा बीमा !"

* * *

मैनेजर—(क्लर्क से) आज फिर तुम देर से आये हो ?

क्लर्क—जी, बात यह हुई कि आज मेरी आंख जरा देर से खुली.....

मैनेजर—तो क्या तुम घर पर भी सोते हो !

खुशामद

(पृष्ठ २४ का शेष)

तो काम आता ही है। सो यह तन वाली पहिचान जो है सो 'खग जाने खग ही की भाषा।' मन का यह हिसाब है कि इस कम्बख्त का कोई आकार ही नहीं। वह 'पानी तेरा रङ्ग कैसा ? जिसमें मिलाओ वैसा' है। गंगा गये गंगादास, जमना गये जमनादास। 'अ' के पास जायें तो 'ब' की निन्दा करे; और 'ब' के पास जायें तो 'अ' को भर पेट बुरा-भला कह ले। यह निश्चित है कि 'अ' और 'ब' दो खेमों में बंटे हैं—न 'अ' से पूछने 'ब' जायेगा कि यह बात जो आपने कही है, सच है या झूठ, और न 'ब' से पूछने 'अ' ही जायेगा। आपकी दोनों ओर से चांदी है; जो भी काम आ जाये। सो मन को जितना ढुलमुल रखेंगे, उतने ही आप इस जनतांत्रिक युग में सफल हैं। जनतंत्र में पक्ष बदलते रहते हैं; आज की माइनौरिटी कल की मैजोरिटी हो सकती है। तो बुरा क्यों बनो ? दोनों हाथों लड्डू रखो। माइनौरिटी से कहो कि मैजोरिटी तुम पर दमन-अत्याचार-उत्पीड़न कर रही है और मैजोरिटी से कहो कि यह माइनौरिटी ही सब कुछ गड़बड़ करा रही है। लेकिन इस तरह कभी-कभी आप 'न हियों में न शियों में' रह जायंगे; और चमगादड़ की कहानी प्रसिद्ध है ही कि पशुओं ने उसे पक्षी माना और पक्षियों ने पशु।

इसलिए खुशामदी आदमी सबको खुश रखना चाहता है, जैसे वेश्या या जैसे व्यापारी। वह किसी का शत्रु नहीं है, इसलिये वह 'अकुतोभय' है, सदा नम्र है।

और धन से खुशामद तो इस युग की सबसे प्रधान पद्धति है। जब आप हनुमान जी को या शनी महाराज को एक पैसा चढ़ाते हैं और सफल-मनोरथ होने की कामना करते हैं, तब से लगाकर लाखों के जो चंदे फंडों में दिये जाते हैं, वहां तक यही 'अंगुली देकर पहोंचा निकालने' की वृत्ति निहित है। आपको मालूम है कि बाघ के पास की अंगूठी लेने के लिए लालची ब्राह्मण या बनिया—जो भी उस ईसप् की कहानी का नायक हो—कैसे आगे-आगे दलदल में धंसता गया और फिर भी अंगूठी की ओर हसरत भरी निगाह उसने गड़ाये रखी। यही वृत्ति बड़े-से-बड़े खुशामदी की होती है। वह अपने मन का भाव किसी पर व्यक्त नहीं होने देता।

मुझे ऐसे खुशामदी भी मालूम हैं जो अपने आकाओं के लिये भाषण लिख देते हैं, उनकी स्तुति में गुमनाम लेख छापते हैं, उनके फोटो विज्ञापनों में काम में लाते हैं (सन् तीस में अहमदाबाद की मिलों की धोती पर सब नेताओं के सुन्दर तिरंगे चित्र रहा करते थे), उनके बच्चों को दीवाली-क्रिसमस के उपहार भेजते रहते हैं, उनको प्यारी मिठाइयां या फल या रागनियों के रेकार्ड या बढ़िया सिगरेट निरंतर 'सप्लाई' करते रहते हैं, उनकी हां में हां मिलाते हैं और अगर वे शुद्ध हिन्दी के पक्ष में हों तो ये खुशामदखोर हजरत भी शुद्ध हिन्दी के हिमायती बन जाते हैं और अगर हिन्दुस्तानी का पक्ष लेने से ज्यादा ऊंची तनखा या ओहदा या प्रतिष्ठा या मान मिलता हो तो ये हिन्दुस्तानी के सबसे बड़े समर्थक बन जाते हैं। सारांश यह है कि मैं खुशामद के ऐसे कई सैंकड़ों ढंग आये दिन इस दुनिया में देखता आ रहा हूँ।

परन्तु इस सब के जानने से आप यह न समझें कि इस 'फन' में मैं उस्ताद हूँ। यह सब मेरा निरीक्षण है, दूसरों का अनुभव है। आत्मानुभूति यदि बना पाता—डा० नगेन्द्र के शब्दों में 'आत्माभिव्यंजना' कर पाता तो फिर मैं यों दस साल उसी तनखा पर मास्टरी करते नहीं पड़ा रहता और शायद इतनी स्पष्टता से यह लेख भी नहीं लिख पाता। मुश्किल तो हमारी यह है कि इस व्यावसायिक दुनिया में हम जैसे नीतिशास्त्र के पढ़े आदमियों को अपनी आत्मा और Conscience का ख्याल हो आता है, जिसे किसी कीमत पर बेचना हमें मंजूर नहीं। और उसी के सतीत्व को निभाने में सब तरह की मुसीबतें झेल रहे हैं।

सम्पादक के नाम

इस स्तम्भ में प्रति मास संपादक के नाम आये पाठकों के कुछ चुने हुए पत्र प्रकाशित किये जाते हैं और सर्वोत्कृष्ट पत्र पर पांच रुपये का पुरस्कार दिया जाता है। पत्र सार्वजनिक हित व रुचि के किसी भी विषय को लेकर लिखा जा सकता है।

पत्र संक्षिप्त, स्पष्ट और सुरुचिपूर्ण होना चाहिये और उसके साथ 'मनोरंजन पत्र-प्रतियोगिता कूपन' आना चाहिये।

भाषा के आधार पर प्रांतों का निर्माण

आजकल भाषा के आधार पर प्रान्तों के पुनर्निर्माण की बात बहुत जोरों पर है। विधान-परिषद् ने भी एक समिति नियुक्त करके इस सम्बन्ध में अपनी सहमति प्रकट कर दी है। अतएव इससे पहले कि ऐसे नये प्रान्त बन जायें, हमें सोचना चाहिये कि इनके बनाने में क्या-क्या कठिनाइयां हो सकती हैं और बनने पर क्या प्रभाव देश पर पड़ सकता है।

पुरस्कृत पत्र

सर्वप्रथम तो यही कठिनाई है कि बनी बनाई शासन-व्यवस्था को उलटना पड़ेगा और पुरानी राजधानियों की जगह नई राजधानियां बनानी पड़ेंगी। बनी बनाई व्यवस्था को बदलना बुद्धिमानी नहीं। हम यदि इतिहास से शिक्षा लें, तो हमारे सामने मुहम्मद तुगलक की सनक का उदाहरण है। ताजा उदाहरण पूर्वी पंजाब का है।

एक और कठिनाई सीमा-सम्बन्धी भी है। आप कोई एक ऐसी रेखा नहीं खींच सकते, जिसके एक ओर के सभी लोग तो एक भाषा और दूसरी ओर के सभी लोग दूसरी भाषा बोलते हों। देखने में आया है कि प्रत्येक ऐसी सीमा पर एक ऐसे प्रदेश की पट्टी होती है, जिसमें दोनों भाषायें मिली-जुली रहती हैं। यदि किसी तरह सीमा-निर्धारण हो भी जाये, तो नित्य ही एक प्रान्त दूसरे प्रान्त के किसी एक भू-भाग की मांग करेगा कि वहां हमारी भाषा बोली जाती है, वह हमें मिलना ही चाहिये और दूसरा कहेगा कि नहीं। उदाहरणार्थ बंगाल और बिहार का झगड़ा हमारे सामने है।

अब देखें कि ऐसी उलट-पुलट का हमारे देश पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यह स्पष्ट है कि भारत में अंग्रेजी का स्थान हिंदी ही लेगी। परन्तु जब प्रत्येक प्रांत की भाषा वहां की प्रान्तीय भाषा ही होगी और स्थानीय भाषा ही पढ़ लेने से एक व्यक्ति का काम चल जायेगा, तो वह राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रति अवश्य ही उदासीन हो जायेगा। फलतः यदि एक व्यक्ति किसी दूसरे प्रान्त में जायेगा तो एक राष्ट्र-भाषा के अभाव में उसे विचार-विनिमय करने में कठिनाई होगी। इसी कारण लोग दूसरे प्रान्तों में कम आया-जाया करेंगे। देश टुकड़ों में बंट जायेगा। राष्ट्र-भाषा के अभाव में केन्द्र और प्रान्तों के बीच सम्पर्क बनाये रखने के लिये सब प्रान्तीय भाषाओं के अनुवादक रक्खे जायेंगे। इससे काफी व्यय बढ़ेगा।

एक तो आज भारत में वैसे ही प्रान्तीयता का जोर है; अब स्थानीय भाषाओं को प्रोत्साहन देकर उसे और बढ़ाना राष्ट्र के लिये किसी तरह भी हितकर नहीं होगा।

बरेली —कैलाश कुमार

★

क्या गांधी जी की इच्छा पूरी होगी ?

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य उन इने-गिने राष्ट्रीय नेताओं में से हैं, जिन्हें गांधी जी का सच्चा अनुयायी और उनके सिद्धान्तों का मर्मज्ञ कहा जा सकता है। आज वे हमारे देश के गवर्नर जनरल हैं; इसलिए गांधी जी के आदर्शों और उनकी इच्छाओं को पूर्ण करने की जिम्मेदारी भी उन पर सबसे अधिक आ पड़ी है। गांधी जी के क्या स्वप्न थे, राजाजी किसी दूसरे से

डी० सी० एम० केमिकल वर्क्स गन्धक के तेजाब को (१.८४०) या ६५%, (१.७५०) या ८२% और ओलियम २०% के तरीकों से बनाते हैं। आवश्यकतानुसार यह खरीदा जा सकता है। भेजने से पूर्व इसकी अच्छी तरह जांच कर ली जाती है। ६५% तेजाब विशेष रूप से निर्मित पीपों में भेजा जाता है।

अपनी जरूरतों के लिये लिखिये :—

निम्न वस्तुओं के भी निर्माता :—
शोरे का तेज़ाब, नमक का तेज़ाब, हरित गंधिताम्ल, अलम्युनियम फेरिक, फिटकरी सफेद व लाल, साबुन व कृमिनाशक, टर्की रेड आयल, हड्डी का खाद व मिश्रित खाद, सरेस,

ऊँचे पैमाने के पूर्वपरीक्षित रसायन - निर्माता

ADARTS (DELHI) LTD.

DCM 7. HIN

अधिक जानते हैं। वे अंग्रेजी को राजभाषा के रूप में एक क्षण भी अधिक देखना सहन नहीं करते थे, वे अंग्रेजी रहन-सहन के घोर विरोधी थे, वे शासन-चक्र पर होने वाले भारी वेतन-व्यय को दरिद्र जनता का शोषण समझते थे—आदि इन बातों को राजाजी न जानते हों, यह कैसे हो सकता है। लेकिन मैं तो एक दूसरी बात की ओर ही उनका ध्यान खींचना चाहता हूँ। गांधी जी ने स्वतंत्र भारत की चर्चा करते हुए कभी कहा था कि वाइसराय का शानदार भवन स्वतंत्र भारत में हरिजनों को दिया जाय, ऐसी मेरी इच्छा है। आज राजा जी उस भवन के प्रमुख निवासी हैं। क्या वे गांधी जी की इस इच्छा को पूर्ण करेंगे?

आगरा —राजाराम

★

अभिशाप

हमारा आज का जीवन क्या है? केवल एक जटिल समस्या। परन्तु स्वतंत्र देश में तो जीवन की कोई समस्या रहनी ही नहीं चाहिये। फिर भला यह जटिल समस्या कैसी? वस्तुतः यह हमारे पीछे लगा हुआ एक अभिशाप है—समाज का अभिशाप। आज हमारे समाज का अभिशप्त जीवन ठीक उस रोगी के समान हो उठा है, जो गलित कोढ़ से ग्रस्त हो और मजा सड़-सड़ कर उसके अङ्गों से गिर रही हो। प्रत्येक हिन्दू कहलाने वाले मानव का जीवन ठीक उस नारकीय कीट के समान हो गया है, जो अनजाने में ही किसी सड़े पानी के गढ़े में उत्पन्न होकर दो दिन पृथ्वीवास करके जीवन समाप्त कर देता है।

आज हमारे पांव लड़खड़ा रहे हैं। चारों ओर निराशा, विषमता व कटुता का कुहासा छाया हुआ है। कहीं निर्दिष्ट पथ नहीं लक्ष्य पर पहुँचने का दीखता। मालूम होता है कि विशाल मानवता के प्रदेश में हिन्दू समाज ठीक उस बूढ़े तरु के समान खड़ा है, जो झंझावात के एक झोंके से ही ढह पड़ेगा। हमारा कोई अपना अस्तित्व ही नहीं। अशक्त, निर्बल, हतोत्साह-से मुंह बाये खड़े हुए हैं। हमारे लिये इससे बड़ा और क्या अभिशाप हो सकता है?

लेकिन हमें इस अभिशाप को मेटने के लिये भारी तप करना होगा। हमारा तप होगा कर्त्तव्य व निष्ठा का, जिससे हम में इतनी शक्ति आ जाये कि रूढ़ियों की सभी बेड़ियां, जो हमें केकड़े की नाई जकड़े हुए हमारा लहू चूसे जा रही हैं, स्वयं टूट-टूट कर गिर जायें और एक नये सुन्दर, सुदृढ़, सबल व संगठित समाज का प्रादुर्भाव हो जाय।

यदि देखा जाये तो हमारे जीवन का कोई मूल्य ही नहीं यदि हम उसे सुखी, बन्धन-मुक्त व सरल न बना सकें।

सूक्ष्म समाज मानवता का ही स्वरूप है। यदि उसी का पतन हो रहा है तो हमारी बृहद् मानवता ही नष्ट हो रही है। यदि मानवता ही नष्ट हो गई तो पशुवत् जीवन से ही क्या लाभ?

हमें दृढ़व्रती बन कर अपने समाज के दोष दूर करने होंगे। हम लोगों का कर्त्तव्य है कि हम सतत साधना से अपने समाज को शाप-मुक्त करके अपने भविष्य को उन्नत एवं उज्ज्वल बनायें।

मथुरा —प्रभा शर्मा

★

हिन्दी के लिये 'मनोरंजन' शोभा की वस्तु

'मनोरंजन' की संख्या ६ मिली। मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि 'मनोरंजन' उत्तरोत्तर उन्नति करता जा रहा है। इसकी सामग्री का स्तर भी ऊपर उठ रहा है। हिन्दी के लिए 'मनोरंजन' शोभा की वस्तु है।

नागपुर, सैक्रेटेरियट —डा० रामकुमार वर्मा
एम. ए., पी. एच. डी.
उपसंचालक सार्वजनिक शिक्षा विभाग,
मध्यप्रान्त व बरार सरकार।

कूपन

मनोरंजन-पत्र-प्रतियोगिता

नं० ४

रेडियो के लिये लिखना भी एक कला है (१)

श्री कलाधर

मई के 'मनोरंजन' में मैंने रेडियो पर बोलने की कला पर विचार किया था। प्रस्तुत लेख मेरे उस लेख का एक अंग ही समझिये। अन्तर्राष्ट्रीय रूप से स्वीकृत ब्राडकास्टिंग के नियमों में से एक यह नियम भी है कि कोई भी चीज (सिवाय किसी समारोह अथवा घटना के आंखों देखे हाल के) बिना लिखित पाण्डु-लिपि के रेडियो से ब्राडकास्ट नहीं की जा सकती। अतः रेडियो पर जो कुछ बोला जाता है, वह पहले लिखा जाता है।

यदि घोषणा, भाषण, नाटक, रूपक इत्यादि कोई रचना ब्राडकास्टिंग की टैकनीक को ध्यान में रख कर लिखी गई है तो यों समझिये कि रेडियो-वक्ता ने आधी बाजी मार ली। और यदि लेखक ने रेडियो-टैकनीक की अवहेलना की है, तो उसकी रचना, वैसे चाहे कितनी भी उत्कृष्ट हो, ब्राडकास्ट होते समय श्रोताओं को न तो आकृष्ट कर सकेगी और न अभीप्सित प्रभाव ही डाल सकेगी। अर्थात् रेडियो की दृष्टि से वह रचना सफल नहीं समझी जायेगी। अतः यह कहा जा सकता है कि रेडियो पर बोलने की तरह रेडियो के लिये लिखना भी एक कला है—ऐसी कला जो सीखनी पड़ती है। इस कला को सीखने की सर्वोत्तम विधि यह है कि रेडियो के प्रोग्रामों को ध्यान-पूर्वक सुना जाये। कुछ दिनों बाद इसकी टैकनीक अपने आप समझ में आ जायेगी।

रेडियो के प्रोग्रामों के लिये सामान्यतया तीन प्रकार की चीजें लिखी जाती हैं, अर्थात् — भाषण, रूपक और नाटक। इन तीनों में गीत को भी सम्मिलित किया जा सकता है।

भाषण, रूपक और नाटक के लिखने की टैकनीक अलग-अलग होते हुए भी दो बातें समान रूप से
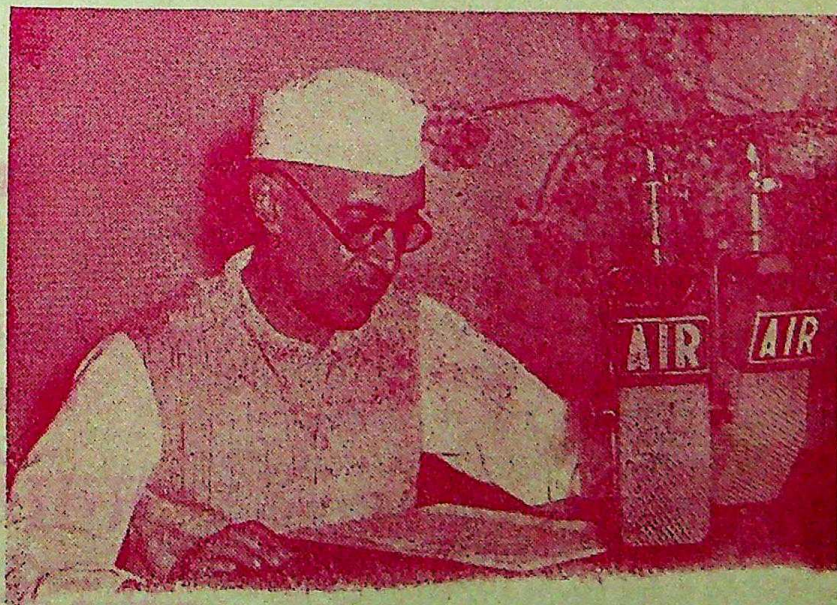
प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू रेडियो से अपना भाषण ब्राडकास्ट कर रहे हैं।

इन तीनों पर लागू होती हैं। पहली तो है भाषा की सरलता और स्पष्टता। क्लिष्ट, दुरूह और उलझी हुई भाषा पत्र-पत्रिका तथा पुस्तक में तो चल सकती है, लेकिन रेडियो के प्रोग्रामों में नहीं, क्योंकि रेडियो के प्रोग्राम केवल सुने जाते हैं। नाटक या भाषण सुनते हुए श्रोता न तो रेडियो-वक्ता से कोई अस्पष्ट अथवा दुरूह वाक्य दुहराने को कह सकता है और न उसी समय शब्दकोष की सहायता ही ले सकता है। अतः यदि कोई लेखक यह चाहता है कि उसकी कृति को अधिक से अधिक रेडियो-श्रोता सुनें और समझें तो उसे अपना भाषा-सम्बन्धी 'पाण्डित्य' दिखाने के फेर में नहीं पड़ना चाहिये। यथासम्भव मिश्रित की बजाय सरल व छोटे वाक्य ही अधिक अच्छे रहते हैं।

दूसरी बात है वर्णनात्मक शैली। वैसे तो रेडियो केवल श्रव्य ही है, परन्तु, यदि ब्राडकास्ट होने वाली रचना वर्णनात्मक हो तो वह श्रव्य के साथ-साथ एक तरह से दृश्य भी हो जाती है।

अब मैं भाषण, नाटक और रूपक पर अलग-अलग विचार करता हूँ।

भाषण

सफल रेडियो-भाषण की सब से बड़ी विशेषता यह है कि श्रोताओं को वह यों लगे जैसे कि रेडियो-वक्ता उनके पास ही कमरे में बैठा जाने-पहचाने मित्र या साथी की तरह घुल-मिल कर बड़े ही रोचक ढंग से बात-चीत कर रहा है। इस प्रकार के भाषण को ही श्रोता मन लगा कर बड़े शौक से सुनता है। बाज लेखक प्रत्येक विषय के भाषण में—चाहे वह आलू की फसल के ही बारे में हो—साहित्यिक तथा अलंकारिक पुट देने का लोभ नहीं संवरण कर पाते। उनका ऐसा प्रयत्न हास्यास्पद तो सिद्ध होता ही है, साथ ही भाषण का वास्तविक उद्देश्य भी नष्ट हो जाता है। बाज लेखक अपने भाषण में एक साथ बहुत-सी बातों के विवेचन के मोह में फंस जाते हैं और समय के प्रतिबन्ध के कारण वे विषय के साथ पूरा-पूरा न्याय नहीं कर पाते। बेहतर यही है कि विचारणीय विषय-सम्बन्धी एक-दो बातों को ही लेकर उनका संतोषजनक ढंग से विवेचन तथा प्रतिपादन कर दिया जाये।

रेडियो-भाषण पांच मिनट, दस मिनट अथवा पन्द्रह मिनट लम्बा ही हो सकता है—पन्द्रह मिनट अन्तिम सीमा है। (हालांकि, हाल ही में दिल्ली रेडियो स्टेशन से तीस-तीस मिनट तक के भाषण भी ब्राडकास्ट किये गये हैं। यह अपवाद सम्बद्ध कर्मचारियों के ब्राडकास्टिंग सम्बन्धी अज्ञान का ही सूचक है।) मनोवैज्ञानिकों का यह मत है कि मनुष्य की श्रवणेन्द्रिय एक ही चीज पर अधिक से अधिक पन्द्रह मिनट तक केन्द्रित रह सकती है। अतः इसमें लेखक का अपना ही हित है कि वह अपने भाषण को नियत समय से अधिक लम्बा न करे। रेडियो-भाषण में निम्नलिखित बातों का भी ध्यान रखना चाहिये —

१. उसमें किसी व्यक्ति या संस्था का विज्ञापन न किया जाये।

२. उसमें अनावश्यक रूप से किसी विवादग्रस्त विषय को छू कर ब्राडकास्टिंग के मान्य नियमों का उल्लंघन न किया जाये।

३. उसमें कोई ऐसी बात न हो, जिससे कि श्रोताओं की भावनाओं को ठेस पहुँचने का डर हो।

४. वह निंदात्मक न हो, और

५. कुरुचिपूर्ण न हो।

(क्रमशः)
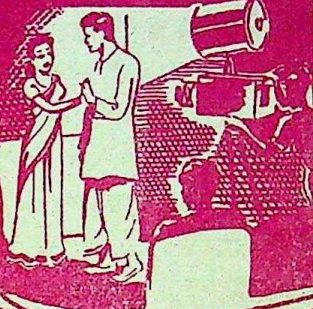
★ ★ ★ खिड़की ★ ★ ★

श्री कलाधर

यह चित्र मनोरंजन-प्रधान, नृत्य-संगीतपूर्ण तथा 'बाक्स-आफिस' की दृष्टि से अत्यन्त सफल 'शहनाई' नामक चित्र के निर्देशक व लेखक श्री संतोषी की नवीनतम कृति है। चित्र को देखने पर 'कृति' की अपेक्षा 'अनुकृति' शब्द ही अधिक जंचता है; क्योंकि इसकी रूप-रेखा बहुत कुछ 'शहनाई' से मिलती है। इस तरह इस बात का एक और प्रमाण मिल जाता है कि भारतीय फिल्म-निर्माता व कथा-लेखक बहुत कम मौलिकता व नवीनता का परिचय देते हैं। ज्योंही एक चित्र 'बाक्स आफिस' की दृष्टि से सफल हुआ कि यह स्वीकार कर लिया जाता है कि उस तरह का जो भी कोई और चित्र बनेगा, वह अवश्य सफल होगा। परन्तु व्यावसायिक बुद्धि की प्रेरणा से किया गया इस प्रकार का अन्धानुकरण हर बार ही सफलीभूत नहीं होता। प्रसिद्ध चित्र 'रतन' के निर्माताओं ने अपने उस चित्र की अभूतपूर्व सफलता के बाद उसी तरह का एक चित्र 'दो दिल' बनाया। दुनिया जानती है कि 'दो दिल' को 'रतन' की तुलना में शतांश सफलता भी न मिली। एक चित्र-समीक्षक की हैसियत से मैं कह सकता हूं कि श्री संतोषी का प्रयास भी किसी तरह सफल नहीं कहा जा सकता।

रिहाना

'शहनाई' चार लड़कों और चार लड़कियों के प्रेम की कहानी थी। 'खिड़की' ग्यारह लड़कों और ग्यारह लड़कियों के प्रेम की कहानी है। किसी नगर में 'कमला-कला-कुञ्ज' नाम की एक संस्था है जिसमें अविवाहित तथा निःसहाय लड़कियों को विभिन्न प्रकार के कला-कौशल सिखा कर आत्म-निर्भर बनाया जाता है और पुरुषों की छाया से बचाया जाता है। इस संस्था की बिल्डिङ्ग की खिड़की के ठीक सामने है 'समाज सेवक संघ' की बिल्डिङ्ग का छज्जा। यह सङ्घ बेकार और अविवाहित पुरुषों को आश्रय देता है। 'कमला-कला-कुंज' की अध्यक्षा और 'समाज-सेवक-संघ' के अध्यक्ष की आपस में नहीं पटती। खैर, अध्यक्षा की निषेधात्मक आज्ञाओं के बावजूद भी इधर खिड़की से ग्यारह लड़कियों और छज्जे पर से ग्यारह लड़कों का पहले प्रेम-पत्रों की बौछारों, फिर मुंहतोड़ कवालियों, फुटबाल के मैचों, स्त्री-वेषधारी पुरुषों और पुरुष-वेषधारी स्त्रियों द्वारा परस्पर प्रेम-संग्राम चलता है। लड़कियों के दल की मुखिया रानी सामने के लड़कों के दल के एक सदस्य जवाहर को चाहती है, क्योंकि उसने एक बार रानी को हत्या के अपराध से बचाया था। यह दोनों नायक और नायिका हैं। सीधे-सादे घटना-चक्र के बाद अन्त में जब इन दोनों का आपस में विवाह

होता है तो साथ-साथ शेष दस जोड़े भी विवाह-सूत्र में बंध जाते हैं।

नृत्य-सङ्गीतपूर्ण होने के साथ-साथ 'शहनाई' की सफलता का एक कारण उसकी नये ढङ्ग की कहानी भी थी, जो रोचक तो थी ही, थोड़ी बहुत स्वाभाविकता भी लिये हुए थी। उसकी तुलना में 'खिड़की' की कहानी नितान्त कमजोर है। अन्त का पता आरंभ में ही चल जाता है। ग्यारह जोड़ों में नायक-नायिका की प्रेम-कहानी तनिक भी उजागर नहीं हो पाई। हास्य और मनोरंजन के लिये निर्बल कथा-सूत्र में जो परिस्थितियां जोड़ी गई हैं, वे नितान्त हल्की व निम्नकोटि की हैं। वैसे तो कहानी का आधारभूत विचार ही बहुत निम्नकोटि का है। यौन-लिप्सा से पीड़ित ग्यारह अविवाहित युवकों और ग्यारह अविवाहित युवतियों के इर्द-गिर्द घूमने वाली कहानी नैतिक दृष्टि से भला उच्चकोटि की हो भी कैसे सकती है?

इस कोटि के चित्र में एक जगह राष्ट्रीय झण्डा भी लहराया गया है। क्या राष्ट्रीय झण्डे की मर्यादा सम्बन्धी भारत सरकार की आज्ञा फिल्म-लोक पर लागू नहीं होती? राष्ट्रीय झंडे के प्रदर्शन से भी अधिक वह गीत अखरता है, जिसमें महात्मा गांधी की जय बोली गई है। हास-विलास पूर्ण चित्र में सेवा-भाव, गांधीजी, और राष्ट्रीय झंडे को शायद व्यावसायिक दृष्टि से जोड़ दिया गया है। हमारी अशिक्षित जनता इनसे प्रभावित तो होती ही है।

कहानी के अलावा सङ्गीत में भी 'शहनाई' का अनुकरण किया गया है और नकल तो असल से घटिया होती ही है!

कलाकारों में से रिहाना, वी० एच० दिसाई और जवाहर कौल के नाम उल्लेखनीय हैं। जान पड़ता है कि 'शहनाई' के बाद रिहाना की अभिनय-कला का विकास रुक गया है।

खैर, जो लोग सस्ते किस्म के मनोरंजन में रुचि रखते हैं, वे निश्चय ही इस चित्र को पसन्द करेंगे।

★

★ नव प्रकाशन ★

काली छाया—(कहानी संग्रह) लेखिका—श्रीमती रामेश्वरी शर्मा; प्रकाशक—रूरल पब्लिशिंग हाउस, ६५ नया कटरा, प्रयाग; मूल्य १॥=)।

श्रीमती रामेश्वरी शर्मा प्रगतिशील विचारों की उदीयमान लेखिका हैं। प्रस्तुत संग्रह में उनकी सामाजिक चेतना तथा संवेदना से ओत-प्रोत दस कहानियां संकलित हैं। जैसा कि एक स्त्री-लेखिका से आशा की जा सकती है, अधिकांश कहानियां भारतीय नारी के सामाजिक तथा गार्हस्थ्य जीवन से सम्बन्ध रखती हैं। विचारों और शैली में थोड़ी बहुत अपरिपक्वता होते हुए भी सभी कहानियां खासी अच्छी बन पड़ी हैं। संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानी "काली छाया" है। शायद यह इस लिये सर्वश्रेष्ठ बन पड़ी है कि लेखिका ने काफी निर्ममता के साथ इसमें भारतीय जनता की दरिद्रता का चित्रण किया है। परन्तु यह देख कर दुःख होता है कि इतने अच्छे संग्रह को प्रकाशक ने पूरी जिम्मेदारी के साथ नहीं छापा। कम से कम ऊपर का चित्र तो अच्छा होता। प्रकाशक की अपेक्षा भूमिका की लेखिका ने अधिक धांधली का परिचय दिया है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से प्रकाशित 'हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियां' नामक पुस्तक के आरम्भ में श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी ने कथा-साहित्य की जो मीमांसा की है, प्रस्तुत संग्रह की भूमिका-लेखिका ने उसमें से केवल वाक्य ही नहीं, बल्कि कई पैराग्राफ ज्यों के त्यों उड़ा कर यों भूमिका में सजा दिये हैं जैसे ये उन्हीं के मस्तिष्क की उपज हों। पता नहीं, हमारे यहां साहित्यिक चोरी की यह आदत कब खत्म होगी!

बाल-भारती—(बालोपयोगी मासिक) संपादक—श्री मन्मथनाथ गुप्त; प्रकाशक—पब्लिकेशन्स डिवीजन, भारत-सरकार, दिल्ली; मूल्य वार्षिक ३), एक प्रति।)।

प्रसिद्ध मासिक पत्र 'आजकल' की प्रकाशक-संस्था की ओर से बच्चों के लिये यह सर्वाङ्ग सुन्दर मासिक पत्र हाल ही में प्रकाशित होने लगा है। इसका पहला अङ्क हमारे सामने है। बढ़िया कागज, सुन्दर रङ्गीन छपाई, चित्रों से अलंकृत नयनाभिराम गेट-अप, ३२ पृष्ठों की मनोरंजक तथा ज्ञान-वर्द्धक पाठ्य सामग्री, इतनी बातों के बावजूद भी कम मूल्य इत्यादि 'आजकल' की सभी विशेषतायें इसमें हैं। इतने कम मूल्य पर इतना बढ़िया पत्र देना सरकारी विभाग के लिये ही सम्भव है। खैर, व्यावसायिक प्रश्न को यहां न उठाते हुए यहां यह कहना अत्युक्ति न होगी कि बाल-साहित्य की दृष्टि से 'बाल-भारती' हिन्दी में एक अभूतपूर्व प्रकाशन है और हम इसका स्वागत करते हैं।

प्रदीप—(पाक्षिक पत्र) प्रधान संपादक—श्री वीरेन्द्र एम० ए०; संपादक—एल० आर० नायर तथा रजनी नायर; प्रकाशक—पब्लिसिटी विभाग, पूर्वी पंजाब सरकार, शिमला। मूल्य वार्षिक ४॥), एक प्रति ≡)।

भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् जिन प्रांतीय सरकारों ने जनता व समय की मांग को स्वीकार कर हिन्दी को प्रांतीय भाषा घोषित किया है, उन में पूर्वी पंजाब की सरकार भी शामिल है। सरकार और जनता के आपसी सम्पर्क को बनाये रखने के लिये तथा प्रांत की सांस्कृतिक, कलात्मक, साहित्यिक, सामाजिक इत्यादि विभिन्न प्रकार की गतिविधि के प्रोत्साहन, परिचय तथा मूल्यांकन के लिये पत्र एक प्रभावशाली साधन है। इसी तथ्य को ध्यान में रख कर पूर्वी पंजाब की सरकार ने हिन्दी में इस पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया है। इस के दो अङ्क हमारे सामने हैं। बढ़िया छपाई, सुन्दर गेट-अप और उच्चकोटि की सुरुचि-पूर्ण पाठ्य सामग्री को देख कर यह आशा होती है कि यह पत्र अपने उद्देश्यों में सफल होगा और पंजाब में हिन्दी के अच्छे पत्रों का जो अभाव है, उसे दूर करेगा।

विजय—(साप्ताहिक) संपादक—श्री सत्यकाम विद्यालंकार; प्रकाशक—डेली तेज लिमिटेड, दिल्ली; एक प्रति का मूल्य।)।

हिन्दी के साप्ताहिकों की पंक्ति में यह पत्र हाल ही में एक निरालापन लेकर अवतरित हुआ है। इस का निरालापन सुन्दर छपाई व सचित्र गेट-अप के साथ साथ मनोरंजक तथा ज्ञानवर्द्धक पाठ्य सामग्री में निहित है। पत्र को औरों की भांति दैनिक समाचारों का साप्ताहिक-सारांश-अङ्क न बना कर संपादक का ध्येय इसे आधुनिक विचारधारा के मासिक का सा स्वतन्त्र रूप देने का जान पड़ता है, जो वस्तुतः स्तुत्य है। इसका भविष्य उज्ज्वल है। —चिरंजीत

प्रो० भंसाली

(पृष्ठ ८ का शेष)

रामाराव ने पूछा—"भंसालीजी, आप का वर्त्तमान युद्ध के सम्बन्ध में क्या विचार है ?"

उन्होंने कहा—"क्या कोई युद्ध चल रहा है ?"

यह उस समय की बात है जब द्वितीय महायुद्ध चल रहा था।

आश्रम की बहिनों व बच्चों को वे पढ़ने वाले की योग्यता के अनुसार, हर विषय पढ़ाते हैं। पहली कक्षा से लेकर ऊंची से ऊंची कक्षा तक की पढ़ाई वे कराते हैं। पढ़ाते समय वे बराबर चर्खा चलाते और सूत कातते रहते हैं। भंसालीजी का शिक्षण एम० ए० तक हुआ है। उन्होंने इतना अध्ययन स्वयं किया है कि वे किसी भी विषय को अच्छी तरह से पढ़ा सकते हैं। उन्हें बहुत-सी भाषाओं का ज्ञान है—हिन्दी, मराठी, गुजराती, बङ्गला, तथा अंग्रेजी।

वस्त्र के नाम पर भंसालीजी सिर्फ एक अंगोछा पहनते हैं। हमेशा खुले सिर रहते हैं। चलते समय लाठी हाथ में रखते हैं—लम्बी लाठी नहीं, बल्कि छोटी। पैदल चलने में उन्हें आनन्द आता है। जहां तक हो सके सवारी से बचते हैं।

आष्टी व चिमूर के लोगों ने सन् ४२ में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का तख्ता उलटने में जो कार्य किया, वह इतिहास में गौरव के साथ देखा जायगा। वहां की स्त्रियों ने भी खूब कार्य किया। उनकी सहायतार्थ 'आष्टी-चिमूर-फंड' खोला गया था। भंसालीजी उस फण्ड में सहायता दिया करते थे। जब कोई भंसालीजी के पास अपनी नोट-बुक में हस्ताक्षर करवाने आता तो भंसालीजी उससे पहले हस्ताक्षर करवाई की फीस कम से कम एक रुपया लेते और फिर हस्ताक्षर करते। वही फीस वे 'चिमूरफण्ड' को भेजते।

दक्षिण हैदराबाद में रजाकारों ने जो उपद्रव शुरू किए हैं और वहां के निहत्थे हिन्दुओं पर जो आफत आज आई है, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। स्त्रियों का सामूहिक रूप से अपहरण व उन पर पाशविक अत्याचार किए जा रहे हैं। यह सब सुनकर प्रो० भंसाली की आत्मा कांप उठी। वे अन्याय को देख कर आंखें बन्द नहीं कर सकते। कोई भी स्वाभिमानी ऐसा बरदाश्त नहीं कर सकता। अतः अब भंसालीजी सेवाग्राम से हैदराबाद सत्याग्रह करने पहुंचे हुए हैं। अपने चौदह साथियों के साथ हैदराबाद के गांव-गांव में घूम रहे हैं और जनता से कह रहे हैं कि वह शांतिपूर्वक अहिंसात्मक तरीके से विरोध करे। उनके इस सत्याग्रह आन्दोलन में हैदराबाद के कई मुसलमान भी सम्मिलित हैं।

भंसालीजी आज वहां कार्य कर रहे हैं, जहां से लोग घबड़ा कर भाग रहे हैं। वे वहां सांत्वना देने पहुंचे हैं; शांति, प्रेम व अहिंसा का पावन सन्देश देने पहुंचे हैं, जिसे गांधीजी ने देश के कोने-कोने में जाकर मानवमात्र को दिया था। गांधीजी आज होते तो वे यही सन्देश जनता को देते। आज भंसालीजी गांधीजी का प्रतिनिधित्व निजाम की भूमि में कर रहे हैं। भंसालीजी में आत्मिक बल है और उसी के बूते पर उनकी विजय होगी, यह ध्रुव सत्य है।

एक बार आगाखां-भवन से महात्माजी ने प्रोफेसर भंसाली को एक पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने लिखा था कि उस गुरु को बड़ी प्रसन्नता होती है, जब उसका शिष्य उससे बढ़ जाता है।

भंसालीजी को उनके कार्यों में सफलता प्राप्त हो और वे चिरायु हों, यही हमारी मङ्गलकामना है!

फुलझड़ियां

विगत वर्षों की भांति अबके फिर वर्षा ऋतु में बेचारी दिल्ली को एक बूंद पानी के लिये तरसना पड़ा है। विदेशी सरकार के समय दिल्ली का वर्षा ऋतु में भी इस तरह 'भुनते' रहना तो खैर, समझ में आता था; लेकिन अपनी सरकार के समय में भी वह वर्षा से वंचित रहे, यह बात हमारी समझ में नहीं आई। खैर, हमारे वे सार्वजनिक नेता, जिन्होंने नेहरू-सरकार की आलोचना करना ही अपना धर्म बना लिया है, यदि चाहें तो इस प्रश्न को लेकर एक सरकार-विरोधी आन्दोलन शुरू कर सकते हैं। इस आन्दोलन को देश-व्यापी रूप दिया जा सकता है, क्योंकि दिल्ली समूचे देश की ही राजधानी है!

हम समझते हैं कि यदि समाजवादी दल इस प्रश्न को लेकर सत्तारूढ़ कांग्रेस-दल के विरुद्ध मोर्चा खड़ा करता तो संयुक्त प्रांत के चुनावों में उसकी कभी हार न होती।

* * *

हां, तो चर्चा चल रही थी दिल्ली में वर्षा न होने की और गर्मी की। इस अनावृष्टि तथा गर्मी के लिये अपनी सरकार को दोष देना व्यर्थ है। जब तक आस-पास काश्मीर और हैदराबाद की भट्टियां गर्म हैं, तब तक दिल्ली का दुःख दूर नहीं हो सकता। संयुक्त राष्ट्रीय संघ का काश्मीर-कमीशन भारत में पहुँच गया है। देखें यह कमीशन इन भट्टियों को ठंढा करता है या उनमें और ईंधन झोंकता है। वैसे यदि देखा जाये तो विदेशी 'व्यापारियों' का हित इन भट्टियों के गर्म रहने में ही है!

* * *

जब अधिक गर्मी पड़ती है तो उससे कई नई-पुरानी बीमारियां भी फैलती हैं। जो बीमारियां इस गर्मी में फैल रही हैं, उनमें से प्रान्तीयता की बीमारी सब से अधिक भयंकर है। इस महामारी के लिये किसी टीके-वीके का आविष्कार तो होना ही चाहिये!

* * *

जब कि आज भाषा और संस्कृति के आधार पर प्रांतों के पुनर्निर्माण की चारों ओर से मांगें आ रही हैं, पता नहीं ब्रज-साहित्य-मण्डल वाले क्यों चुप बैठे हैं। ब्रज-प्रांत की मांग करने का यही तो अच्छा अवसर है!

* * *

श्री सूर्यनारायण व्यास ने अपने लेख में यह प्रकट किया है कि आजकल भारत सरकार के प्रत्येक विभाग पर मदरासी छाये हुए हैं। इस में बुरा मानने की कोई बात नहीं। प्राचीन काल से ही केन्द्र पर किसी न किसी प्रांत के लोगों का प्रभाव रहा है। दूर न जा कर हम ब्रिटिश शासन-काल को ही लेते हैं। केन्द्र के सैक्रेटेरियट पर पहले बंगाली छाये हुए थे, फिर पंजाबियों का तूती बोला और अब, श्री सूर्यनारायण व्यास के कथनानुसार, मदरासियों का प्रभुत्व है। हमारा खयाल है कि यदि अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी केन्द्र की भाषा हो गई, तो मदरासियों का स्थान यू० पी० वाले ले लेंगे; क्योंकि यह तो तय है कि केवल यू० पी० वाले ही "शुद्ध" हिन्दी जानते हैं!

* * *

श्री प्रभाकर माचवे के लेख से हमें एक बात सूझी है और वह यह है कि 'खुशामद-कला' की उपयोगिता को देखते हुए हमारी सरकार इस की सार्वजनिक शिक्षा के लिये तुरंत ही या तो एक अलग यूनिवर्सिटी स्थापित कर दे, या वर्त्तमान यूनिवर्सिटियों में और विषयों के साथ इस विषय की शिक्षा अनिवार्य कर दे। इस विषय का पूर्ण ज्ञान होने से हमारे नवयुवकों को कालिज के बाद बेकारी की समस्या का सामना नहीं करना पड़ेगा!

* * *

श्री सुरेन्द्र बालूपुरी की कविता से लगता है कि कहीं सेर को सवा सेर मिला है!

प्रो० भंसाली

(पृष्ठ ८ का शेष)

रामाराव ने पूछा—"भंसालीजी, आप का वर्त्तमान युद्ध के सम्बन्ध में क्या विचार है?"

उन्होंने कहा—"क्या कोई युद्ध चल रहा है?"

यह उस समय की बात है जब द्वितीय महायुद्ध चल रहा था।

आश्रम की बहिनों व बच्चों को वे पढ़ने वाले की योग्यता के अनुसार, हर विषय पढ़ाते हैं। पहली कक्षा से लेकर ऊंची से ऊंची कक्षा तक की पढ़ाई वे कराते हैं। पढ़ाते समय वे बराबर चर्खा चलाते और सूत कातते रहते हैं। भंसालीजी का शिक्षण एम० ए० तक हुआ है। उन्होंने इतना अध्ययन स्वयं किया है कि वे किसी भी विषय को अच्छी तरह से पढ़ा सकते हैं। उन्हें बहुत-सी भाषाओं का ज्ञान है—हिन्दी, मराठी, गुजराती, बङ्गला, तथा अंग्रेजी।

वस्त्र के नाम पर भंसालीजी सिर्फ एक अंगोछा पहनते हैं। हमेशा खुले सिर रहते हैं। चलते समय लाठी हाथ में रखते हैं—लम्बी लाठी नहीं, बल्कि छोटी। पैदल चलने में उन्हें आनन्द आता है। जहां तक हो सके सवारी से बचते हैं।

आष्टी व चिमूर के लोगों ने सन् ४२ में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का तख्ता उलटने में जो कार्य किया, वह इतिहास में गौरव के साथ देखा जायगा। वहां की स्त्रियों ने भी खूब कार्य किया। उनकी सहायतार्थ 'आष्टी-चिमूर-फंड' खोला गया था। भंसालीजी उस फण्ड में सहायता दिया करते थे। जब कोई भंसालीजी के पास अपनी नोटबुक में हस्ताक्षर करवाने आता तो भंसालीजी उससे पहले हस्ताक्षर करवाई की फीस कम से कम एक रुपया लेते और फिर हस्ताक्षर करते। वही फीस वे 'चिमूरफण्ड' को भेजते।

दक्षिण हैदराबाद में रजाकारों ने जो उपद्रव शुरू किए हैं और वहां के निहत्थे हिन्दुओं पर जो आफत आज आई है, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। स्त्रियों का सामूहिक रूप से अपहरण व उन पर पाशविक अत्याचार किए जा रहे हैं। यह सब सुनकर प्रो० भंसाली की आत्मा कांप उठी। वे अन्याय को देख कर आंखें बन्द नहीं कर सकते। कोई भी स्वाभिमानी ऐसा बरदाश्त नहीं कर सकता। अतः अब भंसालीजी सेवाग्राम से हैदराबाद सत्याग्रह करने पहुंचे हुए हैं। अपने चौदह साथियों के साथ हैदराबाद के गांव-गांव में घूम रहे हैं और जनता से कह रहे हैं कि वह शांतिपूर्वक अहिंसात्मक तरीके से विरोध करे। उनके इस सत्याग्रह आन्दोलन में हैदराबाद के कई मुसलमान भी सम्मिलित हैं।

भंसालीजी आज वहां कार्य कर रहे हैं, जहां से लोग घबड़ा कर भाग रहे हैं। वे वहां सांत्वना देने पहुंचे हैं; शांति, प्रेम व अहिंसा का पावन सन्देश देने पहुंचे हैं, जिसे गांधीजी ने देश के कोने-कोने में जाकर मानवमात्र को दिया था। गांधीजी आज होते तो वे यही सन्देश जनता को देते। आज भंसालीजी गांधीजी का प्रतिनिधित्व निजाम की भूमि में कर रहे हैं। भंसालीजी में आत्मिक बल है और उसी के बूते पर उनकी विजय होगी, यह ध्रुव सत्य है।

एक बार आगाखां-भवन से महात्माजी ने प्रोफेसर भंसाली को एक पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने लिखा था कि उस गुरु को बड़ी प्रसन्नता होती है, जब उसका शिष्य उससे बढ़ जाता है।

भंसालीजी को उनके कार्यों में सफलता प्राप्त हो और वे चिरायु हों, यही हमारी मङ्गलकामना है!

फुलझड़ियां

विगत वर्षों की भांति अबके फिर वर्षा ऋतु में बेचारी दिल्ली को एक बूंद पानी के लिये तरसना पड़ा है। विदेशी सरकार के समय दिल्ली का वर्षा ऋतु में भी इस तरह 'भुनते' रहना तो खैर, समझ में आता था; लेकिन अपनी सरकार के समय में भी वह वर्षा से वंचित रहे, यह बात हमारी समझ में नहीं आई। खैर, हमारे वे सार्वजनिक नेता, जिन्होंने नेहरू-सरकार की आलोचना करना ही अपना धर्म बना लिया है, यदि चाहें तो इस प्रश्न को लेकर एक सरकार-विरोधी आन्दोलन शुरू कर सकते हैं। इस आन्दोलन को देश-व्यापी रूप दिया जा सकता है, क्योंकि दिल्ली समूचे देश की ही राजधानी है!

हम समझते हैं कि यदि समाजवादी दल इस प्रश्न को लेकर सत्तारूढ़ कांग्रेस-दल के विरुद्ध मोर्चा खड़ा करता तो संयुक्त प्रांत के चुनावों में उसकी कभी हार न होती।

* * *

हां, तो चर्चा चल रही थी दिल्ली में वर्षा न होने की और गर्मी की। इस अनावृष्टि तथा गर्मी के लिये अपनी सरकार को दोष देना व्यर्थ है। जब तक आस-पास काश्मीर और हैदराबाद की भट्टियां गर्म हैं, तब तक दिल्ली का दुःख दूर नहीं हो सकता। संयुक्त राष्ट्रीय संघ का काश्मीर-कमीशन भारत में पहुँच गया है। देखें यह कमीशन इन भट्टियों को ठंडा करता है या उनमें और ईंधन झोंकता है। वैसे यदि देखा जाये तो विदेशी 'व्यापारियों' का हित इन भट्टियों के गर्म रहने में ही है!

* * *

जब अधिक गर्मी पड़ती है तो उससे कई नई-पुरानी बीमारियां भी फैलती हैं। जो बीमारियां इस गर्मी में फैल रही हैं, उनमें से प्रान्तीयता की बीमारी सब से अधिक भयंकर है। इस महामारी के लिये किसी टीके-चीके का आविष्कार तो होना ही चाहिये!

* * *

जब कि आज भाषा और संस्कृति के आधार पर प्रांतों के पुनर्निर्माण की चारों ओर से मांगें आ रही हैं, पता नहीं ब्रज-साहित्य-मण्डल वाले क्यों चुप बैठे हैं। ब्रज-प्रांत की मांग करने का यही तो अच्छा अवसर है!

* * *

श्री सूर्यनारायण व्यास ने अपने लेख में यह प्रकट किया है कि आजकल भारत सरकार के प्रत्येक विभाग पर मदरासी छाये हुए हैं। इस में बुरा मानने की कोई बात नहीं। प्राचीन काल से ही केन्द्र पर किसी न किसी प्रांत के लोगों का प्रभाव रहा है। दूर न जा कर हम ब्रिटिश शासन-काल को ही लेते हैं। केन्द्र के सैक्रेटेरियट पर पहले बंगाली छाये हुए थे, फिर पंजाबियों का तूती बोला और अब, श्री सूर्यनारायण व्यास के कथनानुसार, मदरासियों का प्रभुत्व है। हमारा खयाल है कि यदि अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी केन्द्र की भाषा हो गई, तो मदरासियों का स्थान यू० पी० वाले ले लेंगे; क्योंकि यह तो तय है कि केवल यू० पी० वाले ही "शुद्ध" हिन्दी जानते हैं!

* * *

श्री प्रभाकर माचवे के लेख से हमें एक बात सूझी है और वह यह है कि 'खुशामद-कला' की उपयोगिता को देखते हुए हमारी सरकार इस की सार्वजनिक शिक्षा के लिये तुरंत ही या तो एक अलग यूनिवर्सिटी स्थापित कर दे, या वर्त्तमान यूनिवर्सिटियों में और विषयों के साथ इस विषय की शिक्षा अनिवार्य कर दे। इस विषय का पूर्ण ज्ञान होने से हमारे नवयुवकों को कालिज के बाद बेकारी की समस्या का सामना नहीं करना पड़ेगा!

* * *

श्री सुरेन्द्र बालूपुरी की कविता से लगता है कि कहीं सेर को सवा सेर मिला है!

रेडियो-संगीत-रूपक

लेखक—श्री चिरंजीत

झूला

(साज-सङ्गीत के साथ बच्चे गाते हुए आते हैं।)

कोरस-गीत

बच्चे—आहा, आहा, सावन आया !
बीत गया गर्मी का मौसम,
बरसेगा अब पानी छम-छम,
आसमान पर ऊदे काले—
घने बादलों का दल छाया !
आहा, आहा, सावन आया !

लदी फलों से डाली-डाली,
कूक रही कोयल मतवाली,
बन-बागों में मोर नाचते;
सबके मन यह मौसम भाया !
आहा, आहा, सावन आया !

आम-जामुनें जी भर खाओ,
लड्डू-पेड़े खूब उड़ाओ,
झूला झूलो, नाचो गाओ,
सावन यह सन्देसा लाया !
आहा, आहा, सावन आया !

(कोरस-गीत के समाप्त होते ही बादल के गरजने का शब्द सुनाई देता है।)

बच्चे—(खुशी से उछल-कूद कर)
बरसो राम धड़ाके से !
बुढ़िया मर गई फाके से !

(इन पंक्तियों को दोहराते हुए उछलते-कूदते वे चले जाते हैं। कुछ देर बाद पानी बरसने का शब्द सुनाई देता है।)

सूत्रधार—शुरू हुई सावन की वर्षा
बड़े जोर से, बड़े शोर से,
मेघों वाले आसमान से
निर्मल सौ-सौ धाराओं में
लगा बरसने झर-झर पानी;
घर-आंगन औ' गलि-कूचों में,
बाजारों, चौकों, राहों में,
उमड़ पड़ी नदियां ही नदियां;
जल, थल, अंबर एक हुए सब।

(साज-सङ्गीत के साथ पानी बरसने की आवाज उभरती है।)

यह ही तो झूले की ऋतु है;
पर जब ऐसी झड़ी लगी हो,
कैसे कोई बाहर निकले ?
इसी लिये तो नन्ही-मुन्नी
कमला, विमला, चन्द्रप्रभा ने
घर में ही कमरे के भीतर

डाल लिया गुड़िया का झूला,
और बुलाकर सब सखियों को
लगी झुलाने झूला गा-गा।
(गुड़िया को झूला झुलाते हुए सभी लड़कियां गाती हैं।)

कोरस-गीत

लड़कियां—झूला झूले गुड़िया रानी,
उड़-उड़ जाय चुनरिया धानी!
बहुरङ्गी रेशम की डोरी,
बांधे जिसमें मोती,
चांदी की पटरी बनवाई
जगमग-जगमग होती ।
झूला झूलें गुड़िया रानी,
उड़-उड़ जाय चुनरिया धानी!
पींग बढ़ाये, उड़-उड़ जाये,
जैसे उड़तीं परियां,
'चूं-चूं' करके गाना गाये,
छूट रहीं फुलझरियां।
झूला झूले गुड़िया रानी,
उड़-उड़ जाय चुनरिया धानी!
रानी गुड़िया, गुड्डा राजा,
जोड़ी प्यारी प्यारी,
सँग-सँग दोनों झूला झूलें,
मैं जाऊं बलिहारी!
झूला झूले गुड़िया रानी,
उड़-उड़ जाय चुनरिया धानी!

(साज-सङ्गीत के साथ दृश्य बदलता है)

सूत्रधार—कमला, विमला, चन्द्रप्रभा जब
कमरे में गुड्डे-गुड़िया को
झुला रही थीं गा-गा झूला,
गप्पू अपने कमरे में चुप—
बैठा मन में कोस रहा था
सावन की घनघोर घटा को
लगातार जो बरस रही थी,
बरस रही थी, रोक रही थी
गप्पू को बाहर बगिया में
जाने से, मन बहलाने से।

गीत

गप्पू — मैं कैसे बाहर जाउं, बदरवा बरस रहे!

मैं चाहूं बगिया में जाकर,
अपने सारे मित्र बुला कर,
झूलूं और झुलाउं, बदरवा बरस रहे!

हाय! करूं कैसे मनमानी,
घर-बाहर पानी ही पानी,
नाव कहां से लाउं; बदरवा बरस रहे!

कमला झूल रही गुड़ियों संग,
विमला झूल रही गुड़ियों संग,
मैं खीझूं दुख पाउं, बदरवा बरस रहे!
मैं कैसे बाहर जाउं, बदरवा बरस रहे!

(गीत समाप्त होते ही कमला और विमला
हंसती हुई कमरे में आती हैं।)

कमला — गप्पू भैया!
विमला — गप्पू भैया!
कमला — देखो, हमने कैसा आला
गुड़िया का है झूला डाला!
विमला — आओ, तुम भी इसे झुलाओ।
गप्पू—(गुस्से से) क्या बकती हो; दौड़ो जाओ!
मैं क्या कोई लड़की हूँ, जो—
झूठ-मूठ गुड्डे-गुड़िया को

घर में बैठ झुलाऊं झूला,
बरतन मांजूँ, झोंकूँ चूल्हा !

कमला — काहे को तुम गुस्सा करते ?

विमला — काहे को तुम हमसे लड़ते ?

कमला — गुड्डे औ' गुड़िया का झूला
अगर नहीं है तुमको भाता,
जाव, डाल लो अपना झूला !

गप्पू — कमला, समझो मुझे न लूला,
अभी बाग में जाऊंगा मैं,
झूला खूब झुलाऊंगा मैं।

कमला — गप्पू भैया, बढ़ ना हांको,
इधर जरा खिड़की से झांको !

विमला — जब तक बरस रहा यह पानी,
कर न सकोगे तुम मनमानी !

कमला — चलो, चलें हम विमला बहना,
बिरथा भैया से कुछ कहना !

विमला — चलो, झुलायें झूला सुन्दर,
गुड्डे औ' गुड़िया को चलकर !

(दोनों जाती हैं। गप्पू गुम-सुम खड़ा रहता है। दूर से कमला, विमला आदि लड़कियों के गाने का स्वर आता है—"झूला झूले गुड़िया रानी।" गीत के समाप्त होते ही दृश्य बदलता है।)

सूत्रधार—जब तक पानी रहा बरसता,
गप्पू घर में रहा कैद-सा।
जरा देर के बाद आप ही
बन्द हुआ जब मेंह बरसना,
उछल पड़ा वह हर्ष-खुशी से,
दबा बगल में रस्सी पटरी,
सँग ले अपने सब मित्रों को
जा पहुँचा वह झट बगिया में,
और आम के बड़े पेड़ पर
चढ़कर झूला लगा डालने।

(आम पर झूला डालते हुए गप्पू और उसके साथी गाते हैं)

लड़कों का कोरस-गीत

सब — डालो जी, अँबुआ की डाली
झूला प्यारा-प्यारा !

एक लड़का—मैं लाया यह रस्सी दुहरी,

गप्पू — मैं लाया रंगीली पटरी,

सब — आहा, आहा, खूब बनेगा
झूला झूलनहारा !
डालो जी, अँबुआ की डाली
झूला प्यारा-प्यारा !

गप्पू-(पेड़ पर चढ़ते हुए)
मैं चढ़ता हूं इसके ऊपर,
बांधूगा यों रस्सी कसकर—
जो ना टूटे, चाहे झूले
सारा नगर हमारा !

सब — डालो जी, अँबुआ की डाली
झूला प्यारा-प्यारा !

एक लड़का—संभल संभल कर चढ़ो पेड़ पर !

दूसरा लड़का—वा' रे मेरे प्यारे बन्दर !

गप्पू—(वृक्ष के ऊपर से)
मैं बन्दर, तू मस्त कलन्दर,
न्यारा जोड़ हमारा !

सब — डालो जी, अँबुआ की डाली
झूला प्यारा-प्यारा !

(गीत समाप्त होने पर सब लड़के हंसते और
कहकहे लगाते हैं।)

सूत्रधार—इधर आम की हरी डाल पर
डाल दिया गप्पू ने झूला,
उधर गगन में भी सतरंगा
दीख पड़ा इक झूला सुन्दर,
जिसमें झूल रहे थे बादल!
एक साथ लख दो झूलों को,
इक धरती पर, इक अम्बर में,
नाच उठे सब लड़कों के मन;
गप्पू भैया की खुशियों का
वार नहीं था, पार नहीं था।
सब से पहले वह झूले पर
बैठा, बाकी साथी उसके—
दे दे झोंटे लगे झुलाने।

(झूला झुलाते हुए लड़के गाते हैं)

कोरस-गीत

सब — दे झोंटा, भई दे झोंटा!
गप्पू — इतनी ऊंची पींग बढ़ाऊं,
चाहूँ तो अम्बर छू आऊं,
औ' मेघों को जा झकझोरूं,
रहे न पानी का टोटा!
सब — दे झोंटा, भई दे झोंटा!
एक लड़का — (गप्पू से)
जरा संभल कर पींग बढ़ाओ,
इतना ना तुम जोर लगाओ,
दूसरा लड़का—लुढ़क पड़ोगे झूले पर से,
ज्यों बिन पैंदी का लोटा।
सब — दे झोंटा, भई दे झोंटा!
एक लड़का—भूल गईं दद्दा की मारें,
दूसरा लड़का—भूल गईं मां की फटकारें,
गप्पू — भूल गया तड़-तड़ बरसने—
वाला मास्टर का सोंटा!
सब — दे झोंटा, भई दे झोंटा!

(आल इण्डिया रेडियो, दिल्ली के सौजन्य से।)

विना शुल्क

बाल-पहेली नं० ९

३० जुलाई १९४८ तक सही उत्तर

आने पर पांच रुपये नकद पुरस्कार

दायें से बायें

१. सावन में बच्चे इसे छोड़ते नहीं। ३. "क्या कहूँ, मुझे तो अपने मुन्ने को सारी रात ··· पड़ता है।" ६. इसके भी नीचे आकर कई लोग मर जाते हैं। ७. कई लड़के इसे पा बड़ी शरारतें करते हैं। ८. उलट कर इसके आगे 'खच्' लगाने से एक पशु विशेष का नाम बन जाता है। ९. कभी-कभी इसकी चमक से भी आंखें चुंधिया जाती हैं। ११. मां का एक सम्बन्धी जिससे बच्चे डरते भी हैं और प्यार भी करते हैं। १३ छोटा नगर। १५. 'पमार' के उलट-पुलट अक्षर।

ऊपर से नीचे

१. स्त्रियों का एक गहना। २. यह बुरी बला है। ४. सौ हजार। ५. लगाई-बुझाई करने वाले आदमी का लोग प्रायः यह नाम रख देते हैं। १०. भुलावा। १२. किसी वस्तु की लम्बाई-चौड़ाई। १४. इसके सामने कोई विरला ही ठहर सकता है।

[illegible] के 'मनोरंजन' में प्रकाशित होंगे।

बाल-पहेली नं० ८ का पुरस्कार

जून १९४८ के 'मनोरंजन' में प्रकाशित 'बाल-पहेली नं० ८' का सही उत्तर श्री रमेश-कुमार गुप्त, कक्षा ७, मिडिल स्कूल, बारां (कोटा स्टेट) ने भेजा है। अतः उन्हें ५) पुरस्कार दिया गया है। सही उत्तर निम्नलिखित है —

दायं से बायं—१. शरणार्थी, ५. रसल, ६. फटी, ७. केला, ८. तल्ला, १०. रज, १२. हिसाब।

ऊपर से नीचे—१. शरबत, २. रसगुल्ला, ३. णाल, ४. गोटी, ६. फलाहार, ६. जन्न, ११. जग।

पहेली के नियम

१. केवल १४ वर्ष की आयु तक के लड़के-लड़कियां ही इस प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं। आयु के सम्बन्ध में माता-पिता अथवा स्कूल के अध्यापक का प्रमाण-पत्र भी उत्तर के साथ आना चाहिये।

२. उत्तर 'मनोरंजन' में छपे खाके को काट कर और भर कर भेजना चाहिए। किसी और कागज पर अलग से भेजे गये उत्तर पर विचार नहीं किया जायेगा। एक व्यक्ति एक से अधिक पूर्तियां भी भेज सकता है।

३. खानों को स्याही से सुस्पष्ट लिखे अक्षरों से भरना चाहिये। कटे-छंटे या पैंसिल आदि से लिखे अक्षर को सही नहीं माना जायेगा।

४. उत्तर ३० जुलाई १९४८ को शाम तक 'मनोरंजन' कार्यालय, श्री श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली में पहुंच जाना चाहिये।

५. सम्पादक का निर्णय अन्तिम होगा।

श्री विजयकुमार गुप्त

इन्होंने पिछले महीने 'बाल-पहेली नं० ७' का सही उत्तर भेजकर पुरस्कार प्राप्त किया था। इनकी आयु १२ वर्ष की है और ७ वीं श्रेणी, कमर्शल हाई स्कूल, दिल्ली में पढ़ते हैं। अपने स्कूल के ये होनहार विद्यार्थी हैं। वैसे सैर-सपाटे में इनकी अधिक रुचि है।

'बाल-पहेली नं० ७' के दूसरे पुरस्कार-विजेता श्री प्रतापचन्द्र तनेजा का फोटो प्राप्त नहीं हुआ, अतः वह नहीं छापा गया।

प्रिंटर पब्लिशर श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा द्वारा, अर्जुन प्रेस देहली से छप कर प्रकाशित।

रजि० नं० — डी० १७३

मनोरंजन

प्रथम वर्ष
संख्या ११

अगस्त
१९४८

दिल्ली

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

सम्पादक
श्री चिरंजीत

इस अंक में

मूल्य आठ आने

वार्षिक मूल्य ५॥)

वर्षा-नृत्य

श्री रामकुमार वर्मा

यह वर्षा झूम उठी है !
जीवन की नव हरियाली
आंखों को चूम उठी है !

आंखों में जो थी छाई
वह नभ में फैल गई है !
यह छटा बिखर कर जैसे
आई नित निखर नई है !
वह खोज खोज कर मेरी
आंखों की मादक पलकें,
भूली सी नभ-आंगन में
फिर फिर से घूम उठी है !
यह वर्षा झूम उठी है !

यह पूर्व-दिशा अप्सरि-सी
दे दृग में अंजन-रेखा,
लज्जित-सी नत-लोचन है
क्यों मैंने उसको देखा।
जैसे ही मैंने अपनी
उस पर से दृष्टि उठाई,
वह साथ घटा के उमंगी,
छम छम छम छूम उठी है !
यह वर्षा झूम उठी है !

एक दिन भगवान शंकर भगवती पार्वती के साथ मर्त्यलोक की सैर करने निकल पड़े। वैसे चाहे कैलाश से स्थानान्तरित होने में आनाकानी भी करते; पर पार्वती जी की तबियत कैलाश-निवास से ऊब-सी गयी थी। अतएव भोलानाथ पार्वती के प्रस्ताव को स्थगित न कर सके। बोले—"तुम्हारा अनुरोध अस्वीकार करने की सामर्थ्य भगवान विष्णु में भी नहीं है, मैं तो शिवमात्र हूँ!"

"अच्छा!" उत्तर के साथ पार्वती जी के अधर-पल्लव हिल उठे—शंकर जी को प्रतीत हुआ, पद्म-दल खिल उठे!

उड़न-खटोला पवन-दोलन के साथ द्रुत गति से चला जा रहा था। दोनों उस पर बैठे हुए मर्त्यलोक का अवलोकन करते जा रहे थे। पार्वती जी को स्मरण था, इन्होंने विष्णु नाम के साथ मुझ पर कटाक्ष किया है। जान पड़ता है, कामदेव को भस्म करके इन्हें जितेन्द्रिय होने का अहंकार हो गया है। तब उन्होंने मन ही मन संकल्प किया — ठहरो, अभी बताती हूं!

कब रास्ता भूल गये, इसका उन्हें कुछ ध्यान ही न रहा।

पार्वती जी शंकर जी के कान के पास मुंह ले बात पूछ बैठीं (स्वामिन्, आप तो घट-घट वासी हैं) "यह आदमी मुझे कुछ गम्भीर जान पड़ता है। मुझे यह किस सोच विचार में है? इसे कोई कष्ट तो नहीं है?"

शंकर जी ने उत्तर दिया - "इसी से पूछ लो।"

क्षण भर में दोनों एक सद्‌गृहस्थ-दम्पति के रूप में परिणत हो गये।

पार्वती जी ने एक षोडशी बन कर उसके निकट जा कर पूछा — "क्षमा कीजियेगा, मुझे आपसे एक बात पूछनी है।"

वह व्यक्ति चौंक पड़ा। एक बार उस नवयौवना नारी की रूप-गरिमा और उसकी मान-मर्यादा की ओर उसने लक्ष किया और एक बार उसके प्रौढ़ पति की ओर। और बात की बात में विनीत होकर उसी का सम्बोधन करता हुआ बोला — 'कहिये, क्या आज्ञा है?"

पार्वती को मौन देख कर शंकर जी सोचने लगे जान पड़ता है, देवी जी कुछ विचार-मग्न हैं। वे ज्ञान-दृष्टि से तत्काल जान गये, क्या बात है। तब आप ही बोल उठे - 'क्या बात है, भवानी? मुझ पर कुछ रुष्ट तो नहीं हो, रानी?"

इतने में उड़न-खटोला एक दार्शनिक के निकट आ पहुंचा। वे महाशय प्रातः काल उठ कर गंगा-स्नान को जा रहे थे; पर विचार-मग्न इतने अधिक थे कि

शंकर जी ने लक्ष किया—प्रश्न पूछा भवानी ने और उत्तर मिल रहा है मुझे! इसलिए वे भवानी की ओर देख कर मुस्करा उठे। कदाचित उनका अभिप्राय था—देखा, 'यह व्यक्ति नारी का कितना सम्मान करता है! उसके प्रश्न का उत्तर तक नहीं देता!

किन्तु भवानी जी ने शंकर जी की मुस्कान का उत्तर ऐसी मुद्रा में दिया, जिससे ध्वनित होता था - देखा,
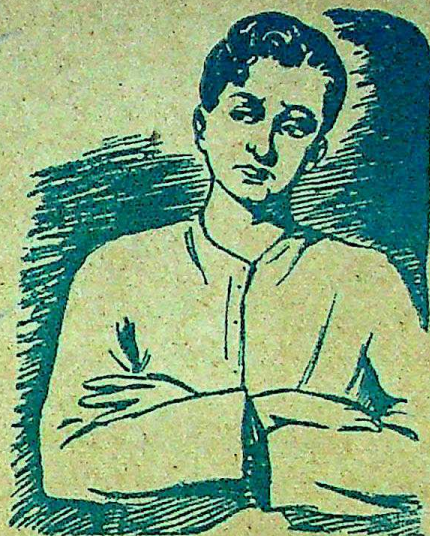
पुरुष—नारी, यदि तू निश्छल हो सकती !
नारी—पुरुष, यदि तू कुछ अधिक उदार हो सकता !

[पुरु]ष-जाति पर नारी-सौन्दर्य का अजेय आतङ्क ! उसके [प्रश्]न का उत्तर देने का भी उसे साहस नहीं होता !

शंकर जी ने भवानी के इस भाव को ज्यों ही लक्ष [कि]या, त्यों ही उन्होंने उस व्यक्ति से कहा—"आप [सम्]भवतः गंगा-स्नान को जा रहे थे; लेकिन यह राज[मार्ग] तो यमुना की ओर गया है। इस पथ परिवर्तन [का] कारण क्या मैं जान सकता हूँ ?

दार्शनिक ने तब इधर-उधर देखा। वह चौंक [उठा]। फिर हंसता-हंसता कहने लगा—"ओः, सच-[मुच] मैं रास्ता भूल गया ! धन्यवाद, महानुभाव !"

इस अवसर पर पार्वती जी बिना बोले न रह [सकीं]—'ज्ञान पड़ता है, आप कुछ सोच रहे थे। और [मैं] जानना चाहती हूँ कि आप क्या सोच रहे थे ?"

दार्शनिक पार्वती जी की ओर देख कर असमंजस में [पड़] गया। एक तो इतनी सुन्दर नारी से वार्तालाप [करने] का अवसर उसे इसके पूर्व कभी नहीं मिला था। दूसरे, उसके प्रश्न का उत्तर नारी-जाति की आलोचना से सम्बद्ध था।

दार्शनिक की भाव-भंगिमा देख शंकर जी को कुछ संदेह हो गया, बोले—"कहिए, निस्संकोच कहिये !"

दार्शनिक विवश होकर बोल उठा—"क्षमा कीजिये, मैं नारी-जाति पर ही विचार कर रहा था। मेरी स्त्री ने एक बात मुझ से छिपा रक्खी थी। माना, मैं उस बात को कोई महत्व नहीं देता; तो भी मेरी विवेचना में एक वाक्य बराबर सामने आकर ध्वनित हो उठता है।"

दार्शनिक इतना कह कर स्थिर हो गया।

तब शंकर जी बोल उठे—'अब वह वाक्य भी कह डालिये।"

और दार्शनिक ने कह दिया—"...नारी, यदि तू निश्छल हो सकती...!"

शंकर जी ने पार्वती जी की ओर देखा और मुस्करा दिया।

पार्वती जी ने मुस्कराने की चेष्टा की, पर शंकर जी ने लक्ष किया, चेष्टा सफल होती-होती रह गई।

विमान पुनः अविराम गति से दौड़ रहा था। पार्वती जी थोड़ी देर तक मौन बनी रहीं, फिर सोचने लगीं—मेरे इस मौन को ये कहीं पराजय की प्रतिक्रिया न समझ बैठें। तब वे सहसा बोल उठीं—"अब इस दार्शनिक की स्त्री के पास चलूं, तो कैसा हो?"

पार्वती का कथन सुन कर भोलानाथ मुस्कराये। बोले—"चलो!"

निश्चय हुआ, उस दार्शनिक की पत्नी चेतना के पास उसकी सखी के रूप में पहुँचा जाय। भोलानाथ बोले—"तुम एक बार विष्णु-प्रिया कमला का रूप धारण कर ही चुकी हो; सो तुम चेतना की सखी कमला बनो।"

पार्वती जी मन्दहास बिखेरती हुई बोलीं—"अच्छा, हां, ठीक है। मुझे स्वीकार है। लेकिन आपको भी उसकी दूसरी सखी प्रियम्वदा बनना पड़ेगा।"

सुन कर भोलानाथ आश्चर्य्य के साथ बोल उठे—'अच्छा!' और हंसने लगे।

तब पार्वती जी ने दृढ़ता के साथ कह दिया—"हंसने से काम न चलेगा। आपको आज मेरी बात माननी ही पड़ेगी।"

भोलानाथ ने देखा, बुढ़ापे में स्त्री को अप्रसन्न करना कभी ठीक नहीं होता; अतएव उन्हें पार्वती जी का अनुरोध मानना ही पड़ा।

चेतना कमला और प्रियम्वदा दोनों सखियों को एक साथ आती हुई देख हर्ष-गद्गद् हो उठी। स्वागतार्थ समक्ष आ कर बोली—"आओ बहिन बैठो। बहुत दिनों में सुधि ली।"

कमला के रूप में पार्वती जी ने उत्तर दिया—"क्या करूं बहिन, चुन्नू-मुन्नू से छुट्टी ही नहीं मिलती। गंगा स्नान करके लौट रही थी, रास्ते में प्रियम्वदा दीदी मिल गयीं। इन्होंने तुम्हारा समाचार पूछा। मैंने कहा—मुझसे तो इधर महीनों से भेंट नहीं हुई।"

इसी क्षण प्रियम्वदा के रूप में भोलानाथ बोल उठे 'तब मैंने कहा, देखती हूँ, संवरिया ने तुझे इस बुरी तरह मुट्ठी में कर रक्खा है कि धीरे-धीरे अपनी प्यारी-से-प्यारी सखियों से भी नाता तोड़ बैठी है।"

पार्वती जी ने लक्ष किया, भोलानाथ अब भी कटाक्ष करने में कोई कसर नहीं रख रहे हैं। चेतना कभी कमला की ओर देखती, कभी प्रियम्वदा की ओर। कमला की बात में उसे सर्वथा प्रकृत व्यवहार झलकता प्रतीत होता, लेकिन प्रियम्वदा का लोम-लोम इतना दोलनमय उसने कम ही पाया था।

कि इतने में प्रियम्वदा ने और भी चंचल होकर कह दिया—"तब बहुत वाद-विवाद के बाद तै हुआ कि चलो आज चेतना बहिन के शान्ति-निकेतन पर छापा मारा जाय!"

चेतना बोली—"धन्य भाग्य, जो इसी बहाने कमला रानी के इन गुलाबी चरणों ने इस अकिंचन-कुटीर को कृतार्थ तो किया!"

तब कमला ने मुंह बिदोर कर कह दिया—"यह बड़ी ठगिनी है, दीदी! देखने भर की ही भोली है यह! तुम इसकी बातों में न आया करो।"

प्रियम्वदा अस्थिर हो उठी। बाहुद्वय उठा कर भाल पर लगाते-लगाते, गदराये-से यौवन को मदिर झकोरा देकर वह कहने लगी—"आः, मैं तो मर गयी। यह वंचिका मुझे ठगिनी कहती है, मुझे! मेरे जैसी साधनाप्रिय कल्याणी को! मेरा बस चले तो मैं इसे मान-दग्धा सती बना कर छोड़ूं!"

पार्वती जी सुन कर स्तम्भित रह गईं। किन्तु वे अब मुख्य बात जानने को अधीर हो रही थीं; अतएव भोलानाथ के पैर छूती हुई बोलीं—"तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, दीदी, मुझे क्षमा कर दो! दो बातें कर लेने दो बहन से। कहीं जीजा जी आ गये, तो वार्तालाप की यह स्वतन्त्रता भी छिन जायगी!"

मुंह बना कर प्रियम्वदा ने धीरे से कह दिया—"मुझे क्या पड़ी है जो मैं तेरे बीच में बोलूंगी!"

चेतना बोली—"ऐसी तो कोई बात है नहीं, कमला रानी!"

कमला 'ऐसी कोई बात न होती, तो तुम इतनी गम्भीर न जान पड़तीं। सच-सच बताओ, जीजा जी से कुछ कहा सुनी तो नहीं हो गयी?"

प्रियम्वदा कमला की ओर इकटक देख रही थी—उसकी एक-एक भाव-मुद्रा के चढ़ाव-उतार को, अधरों के कम्पन और संकोचन के अभिनव प्रकार को।

तब चेतना फूट पड़ी, बोली—"क्या बतलाऊं बहिन, मैं तो इस जीवन से ऊब गई हूँ। तनिक-सी बात पर अपमानित और लांछित करते उन्हें देर नहीं लगती। एक दिन एक सखी को आवश्यकता पड़ने पर रुपये उधार दिये थे। अब तक उससे वापस नहीं मिले; मिलने की आशा भी नहीं है। मैंने जो उनसे कहा, तो बुरी तरह बिगड़ उठे। रह रह कर वही बात मन में उमड़-घुमड़ कर रह जाती है। सोचती हूँ—पुरुष, यदि तू कुछ अधिक उदार हो सकता······!"

कमला प्रियम्वदा की ओर कटाक्ष से देख मुस्करा उठी!

* * *

और विमान पर कैलाश की ओर जाती हुई पार्वती जी शंकर जी से पूछ रही थीं—"कहिये, क्या राय है ?"

गीत

श्री 'नीरव' एम० ए०

घिर कर आये घन बरस गये!

धुल गई क्षितिज की पलक-परिधि,
बहती नभ के प्राणों की निधि,
नव नील विहंगम सलिल-स्नात,
तृण तरु दल जन-मन सरस गये!
घिर कर आये घन बरस गये!

सब रुचिर अचिर पूर्णाभिलाष,
खुल गये दूर तक दिगवकाश,
पल पल को वह मधु तृप्ति मिली
जिसको तप के युग तरस गये!
घिर कर आये घन बरस गये!

लो, स्वप्नों की धूमिल छाया
हँस दी बन सिन्दूरी काया,
उलझा सतरंगी पट किसके
अज्ञात किरण-कर परस गये?
घिर कर आये घन बरस गये!

हमें स्वाधीन हुए

हम भारतीयों को स्वाधीन हुए एक वर्ष बीत गया। हम १५ अगस्त को प्रथम स्वतन्त्रता-दिवस भी मना रहे हैं। परन्तु कहीं ऐसा न हो कि स्वातन्त्र्य-उत्सव को प्रसन्नता में हमारा ध्यान कठोर वस्तु-स्थिति की ओर से हट जाय, इसलिये हमें चाहिये कि चतुर संसारियों की भांति अपने नये जीवन का एक वर्ष बीतने पर हम तनिक उसका लेखा-जोखा भी पड़ताल लें और देख लें कि गत वर्ष में हमने कितना कमाया या कितना खोया।

इस दृष्टि से यदि हम गत वर्ष की घटनाओं का तलपट अपने सामने रखेंगे तो हम देखेंगे कि १५ अगस्त १९४७ को हमने अपनी स्वतन्त्रता का जो अभूतपूर्व उत्सव मनाया था, उसकी धूम-धाम और प्रसन्नता की हलचल एक या दो सप्ताह से अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकी थी। देश के विभाजन की घोषणा के साथ ही जो साम्प्रदायिक लड़ाइयां हुईं और उनके कारण अकस्मात ही आबादियों का जो तबादला शुरू हुआ, वह अब तक खतम नहीं हुआ है। आज भी हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या पाकिस्तान से निर्वासितों की सहायता तथा पुनर्वास की है। और यह तथा इसके कारण उद्भूत अन्य समस्यायें हमें वस्तुतः यह अनुभव ही नहीं होने दे रहीं कि हम स्वतन्त्र हो गये हैं।

जन-साधारण की बात छोड़ भी दें और जनता के केवल उस भाग को देखें, जिसकी गणना हम राजनीतिक दृष्टि से जाग्रत लोगों में करते हैं, तो भी हमें कोई नया चित्र नहीं दीख पड़ता। जिन लाखों व्यक्तियों ने जेल जाकर या अन्य प्रकार यातनायें उठा कर देश के स्वातन्त्र्य-आन्दोलनों में अमली भाग लिया था, उन तक में बड़ी संख्या ऐसी ही है जिसे अपने जीवन के गत एक वर्ष में, यह ज्ञात होते हुए भी कि अब हमारा देश परतन्त्र नहीं है, स्वतन्त्रता का सुख भोगने के स्थान पर अन्न, वस्त्र, निवास आदि की कठोर समस्याओं का ही सामना अधिक करना पड़ा है। अतः स्वतन्त्रता के एक वर्ष के हिसाब-किताब का 'बैलेन्स' यह निकलता है कि हम अपने मन में तो यह सोच कर अवश्य प्रसन्न हो लिये कि हमारा देश स्वतन्त्र हो गया, परन्तु अपने जीवन में उस परिवर्तन का प्रत्यक्ष अनुभव हम अभी तक नहीं कर सके।

देश के स्वतंत्र होते ही विभाजन के कारण हिं... मुस्लिम विरोध की जो तीव्र लहर फैली, देश... सर्वप्रिय नेता म० गांधी तक उसका शिकार हो गये... उस लहर को रोकने के लिये देश के राजनीतिक नेता... ने साम्प्रदायिकता को दबाने का जो आन्दोलन किया,... से राष्ट्रीय चेतनता तो अभीष्ट मात्रा में हुई नहीं,... की भावनायें अन्य अनेक प्रकार की ऐसी संकीर्णता... में विभक्त होकर प्रकट होने लगीं जो सब राष्ट्री... की साम्प्रदायिकता से कम विघातक नहीं हैं। हि... उर्दू और हिन्दुस्तानी का विवाद; अकालियों की ... का पृथक् पंजाबी-भाषी प्रान्त बनाने की मांग; ... के आधार पर बिहार-बंगाल की नयीं सीमा का निर्... और पृथक् आन्ध्र, कन्नड और महाराष्ट्र प्रान्तों... रचना; हरिजन नाम से कुछ जातियों की विशे... कारों की चाहना; किसानों, कारखानों के मज़... व्यापारियों और व्यवसायियों के केवल अपनी ... हित-रक्षा के आन्दोलन इत्यादि सब के सब ... साम्प्रदायिकता के ही प्रच्छन्न रूप हैं। ये सभी ... नायें संकीर्ण हैं और राष्ट्रीयता की विघातक हैं।... दायिकता की निन्दा की लहर चलने के पश्चात्... सब संकीर्ण भावनाओं को देश में विशेष बल ... हैं। यदि ये सब इसी प्रकार पनपती चली गयीं... देश के स्वतन्त्र रह सकने में, उन्नति के मार्ग पर ... सर होने में और अन्न-वस्त्र आदि की आर्थिक सम... के हल में अनेक नवीन अदृष्टपूर्व बाधायें ... जायंगी। इस दृष्टि से स्वाधीनता के एक वर्ष में हमारे ... की जनता की प्रगति अभीष्ट दिशा में नहीं हुई...

जनता के अतिरिक्त, यदि हम अपनी स्व... सरकार के कार्य-कलाप की परीक्षा करें तो ... सामने सफलता-असफलता का मिला जुला एक चित्र ... उपस्थित होता है। इस चित्र में सबसे अधिक ... और अतएव सर्वाधिक ध्यान आकृष्ट करने वाला ... हमारी सरकार के रियासती सचिवालय की ...

[शेष...

एक वर्ष हो गया—परन्तु....

लेखक—
श्री रामगोपाल विद्यालङ्कार

देश स्वतन्त्र होने से तत्काल पूर्व के क्षण में राजनीति के पण्डितों को भारत की विस्तृत भूमि पर जगह जगह बिखरी हुई लगभग ७०० छोटी-बड़ी रियासतें भावी भारत की विकटतम समस्या के रूप में दीख पड़ती थीं। परन्तु उस समय सब से अधिक कठिन लगने वाली यह समस्या सब से पहले और बहुत सरलता से सुलझ गयी। प्रायः सभी राजाओं ने अपनी रियासतों को भारत का अंग बना दिया और अपनी स्वतन्त्रता का स्वयं त्याग कर दिया। इस अकल्पित-पूर्व सफलता का श्रेय रियासती-सचिवालय के मन्त्री सरदार वल्लभभाई पटेल और उनके सहकारियों की दक्षता और नीति-कुशलता को है। अब हैदराबाद और काश्मीर को छोड़ कर भारत में एक भी रियासत ऐसी नहीं रही है, जिसके कारण देश के आन्तरिक शासन में कोई राजनीतिक उलझन खड़ी होने की सम्भावना हो। हैदराबाद की उलझन अभी सुलझी नहीं है, परन्तु उसका सुलझ जाना निश्चित तथा असन्दिग्ध है। हां, काश्मीर का प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय उलझनों में फंस गया है, इस कारण उसका भविष्य अनिश्चित है।

स्वतन्त्र सरकार की सफलताओं में द्वितीय स्थान दिया जायगा विदेश-विभाग के काम को। इसके अध्यक्ष हैं प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू। उन्होंने अनुभवी राजदूतों आदि का सर्वथा अभाव होते हुए भी संसार के अधिकतर बड़े देशों के साथ राजदूतों के आदान-प्रदान में सफलता प्राप्त कर ली है। आज संसार का प्रायः कोई महत्वपूर्ण देश ऐसा नहीं है, जिसके साथ भारत के मैत्री-पूर्ण राजनीतिक सम्बन्ध न हों। आज की पेचीदा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में रूस, अमेरिका आदि महाशक्तियों की उलझनों से बचते हुए अपने लिये स्वतन्त्र मार्ग बना कर उस पर केवल एक वर्ष में इतना अग्रसर हो जाना कि हमारी गणना अग्रगामी राष्ट्रों में होने लगे, असाधारण सफलता नहीं है।

स्वाधीनता के एक वर्ष की सफलताओं के चित्र में विदेश-विभाग के पश्चात् किसी भी दर्शक का ध्यान रक्षा-विभाग की ओर जायगा, जिसे कि देश के विभाजन से उत्पन्न हुई अनेक समस्याओं के हल में सहायता करने के लिये अकस्मात् ही दौड़ कर जाना पड़ा। पश्चिमी पंजाब और सीमा-प्रान्त से मुस्लिमों द्वारा निर्वासित जनता को भारत तक पहुँचाने में, यहां उनके लिये कैम्पों की व्यवस्था में, दिल्ली आदि के साम्प्रदायिक उपद्रवों को शान्त करने में, और पाकिस्तान में अपहृत स्त्रियों व बालकों को खोजने आदि में भारतीय सेना ने बहुत मूल्यवान भाग लिया। काश्मीर की पाकिस्तानी आक्रान्ताओं से रक्षा के लिये भी स्वतन्त्र भारत की सेना को अकस्मात् ही जाना पड़ा और उस दुर्गम पहाड़ी प्रदेश में हमारे सिपाही अनेक नये मार्ग बना बना कर आक्रान्ताओं को रियासत से निकालने में सफलता प्राप्त कर रहे हैं। केवल भारतीयों के नेतृत्व में भारतीय स्थल और वायु-सेनायें क्या कुछ कर सकती हैं, इसकी काश्मीर में अच्छी परीक्षा हो रही है।

स्वतन्त्र-सरकार के अर्थ, रसद, निर्माण, व्यापार, खाद्य, कृषि, श्रम, शिक्षा, यातायात और पुनर्वासादि विभाग भी स्वाधीनता के प्रथम वर्ष में निश्चेष्ट नहीं रहे।

स्वाधीनता के प्रथम वर्ष में हम चाहे बहुत आगे न बढ़े हों और अपने नित्य के जीवन में स्वाधीनता के सुख का सीधा अनुभव न कर सके हों, तो भी जिन कठिन परिस्थितियों में हमें यह दुर्लभ वस्तु उपलब्ध हुई, जिन विवशताओं के कारण ब्रिटिश शासकों को हमें स्वतन्त्र कर देने का निश्चय करना पड़ा, महायुद्ध समाप्त हुए तीन वर्ष बीत जाने पर भी बड़े बड़े देश जिन आर्थिक व सामाजिक संकटों में से गुजर रहे हैं, और संसार के अन्य देशों को स्वतन्त्र होकर उन्नति के पथ पर अग्रसर होने में जितना समय लगा—उन सब को देखते हुए हमें निराश या हतोत्साह होने की आवश्यकता नहीं है। हम अन्यों के साथ अपनी तुलना करके अनेक दृष्टियों से अपने भूत तथा वर्तमान के विषय में आत्म-सन्तोष और भविष्य के विषय में आशा और विश्वास का अनुभव कर सकते हैं। हम पूर्ण सफल नहीं हुए, परन्तु असफल भी नहीं रहे। भविष्य में हम अवश्य सफल होंगे।
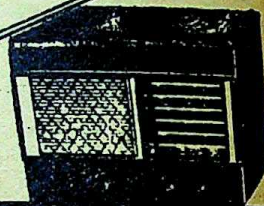
संगीत की तान उठती हुई झूम रही थी, जिससे उस सजी हुई दूकान में एक करुण वातावरण छा रहा था। लेकिन लोगों के चेहरों पर उस संगीत की आत्मा का कोई प्रभाव नहीं दिखाई दे रहा था। सब जैसे अपने अपने में मग्न थे।

दूकान में एक सिख बैठा था। वह कोई बड़ा अफसर था। उसके फौजी कपड़ों में कर्रा कलफ था। वह गोरा आदमी था। उसकी दाढ़ी, उसका डील-डौल–सब कुछ में एक बनावटीपन था।

उसके साथ उसकी गोरी-गोरी पत्नी थी, जो निहायत नाजुक थी और अपने बालों के उसने बेहतरीन नुमाइशी छल्ले सामने की तरफ उठाये हुए थे। उसके सुन्दर रूप में लावण्य नहीं था, क्योंकि हर तरफ उपेक्षा से देखती हुई वह अपनी भौं तान लेती और कभी-कभी जब मुस्कराती, तब लगता वह कोई अहसान कर रही हो। उसके होठों पर इस कदर लाली थी, जैसे कोई चुकन्दर काट कर रख दिया गया हो।

दूकानदार काश्मीरी था, श्यामनाथ दर। ऐसा होगा करीब तेंतीस-चौंतीस साल का गठीला आदमी जो झकाझक कमीज और पतलून पहने था। उसके हाथों पर घने बाल थे और उनमें से एक पर प्लैटिनम की चमकदार जंजीर में सफेद चमचमाती घड़ी बंधी थी। वह अपनी घनी भवें ? उठा कर मुस्कराता।

उसने कहा, "यह सेट ले जाइये। इसके वाल्व बहुत अच्छे हैं। मैं आपको—" और उसकी नजर घूम गई, "इससे भी अच्छी चीज दिखा सकता हूँ।"

चुस्त रेशमी कपड़ों में ढंकी स्त्री हंसी, बहुत अच्छी लगी; पर वह हँसी बनावटी थी। तभी रेडियो पर खबरें आने लगीं। जहां पहले 'आदाब अर्ज' होती थी, वहां अब 'जय हिंद' से काम शुरू हुआ। सिख अफसर कुछ सोचने लगा। स्त्री अब भी मुस्करा रही थी और दर उसको छिपी आंखों से देख रहा था।

सब खामोश होकर रेडियो सुनने लगे। खबरें अब विस्तार से सुनाई जा रही थीं।

"अच्छा," सिख ने लंबा कदम आगे बढ़ा कर कहा—"मैं फिर आऊंगा।"

और वे चले गये। दर निराशा से मुस्कराया। वह उस स्त्री को तब तक देखता रहा, जब तक वह दिखाई देती रही।

तभी शुक्ला ने प्रवेश करते हुए कहा, "जनाब के मिजाज तो अच्छे हैं? अब तो बड़े बड़े आयकेदार गाहक आने लगे......!"

वह स्वयं एक रेडियो हो चुका था। कितना विराट प्रसार है इस जीवन का! कितने विविध हैं इसके कार्य-व्यापार! कितना अद्भुत है इसका असामञ्जस्य……!

"चुप रहो, बको मत!" गुप्ता चिल्लाया, जो अंदर की कुर्सी पर टांगें ऊपर रखे रेडियो की खबरें सुन रहा था।

सड़क पर सात-आठ मोटरें अपना भोंपू बजाती हुई गुजर रही थीं। शुक्ला ने सिर हिला कर कहा—"अये मियां, सुन रहे हो?"

उसकी बात सुन कर दर चौंक उठा। वह अपने दिमाग में इस वक्त कल्पना कर रहा था—रेडियो बिकेगा। फिर वह उनके घर आने जाने लगेगा। औरत तो मुश्किल नहीं। ये औरतें उसकी नजर में ढीली औरतें थीं। लेकिन दर के सामने वह हट्टा-कट्टा सुंघ सिख आ खड़ा हुआ। वह उसकी पिस्तौल की नली घूर रहा था कि शुक्ला ने उसके विचारों को तोड़ दिया। उसने इशारे से शुक्ला को चुप रहने को कहा।

जब खबरें खत्म हो गईं, गुप्ता ने लंबी सांस लेकर कहा, "अब क्या किया जाये? उधर फिलस्तीन, इधर अमरीका और रूस, चीन की लड़ाई, हैदराबाद की अकड़, काश्मीर की लड़ाई—और भी जाने कितनी परेशानियां हैं? मंहगाई भी वही है। सरकार खुद परेशान है कि ब्लैक-मार्केट दबाये नहीं दबता। जिसे देखो, पैसे के लिये कुत्ता बना बैठा है।"

"बड़ी खुशी की बात है," शुक्ला ने ताना मारते हुए कहा, "अब आपको क्या मिल गया?"

सवाल बड़ा बेतुका था। मिलने को क्या था? कुछ नहीं। आदमी का काम है दुनियां की हलचलों को समझना, हर चीज की जानकारी रखना।

"आपकी कोई राय लेता है?" शुक्ला ने फिर पूछा।

सदर की चौड़ी सड़क पर उस समय शाम का अंधियाला होने लगा था। सड़क की बिजलियां जलने लगी थीं। सब कुछ साफ सुथरा था। काली सड़क अपना चौड़ा वक्षस्थल फैलाये पड़ी थी। सड़क पर अब अनेक लोग चल रहे थे और सबके कपड़े अत्यंत सुन्दर थे।

एक पंजाबिन को देख कर शुक्ला ने डट कर अंगड़ाई ली और कहा, "कौन कहेगा यह शरणार्थी है? इसके रेशमी सैटिन के चमकदार कपड़े और कहां हमारे……।"

उसने निराशा से सिर हिला, अपनी अमरीकी ढंग से कटी मूंछों की जगह को हिलाया, फिर उसने अपनी नाक सिकोड़ ली और दोनों हाथ फैला दिये, मानों अब शब्द नहीं रहे—क्या कहे, क्या न कहे………।

सामने से फौजी गुजर रहे थे। इस समय वे शाम को टहलने के लिये निकले थे। ऊंचे-बड़े सभी किस्म के अफसर थे। आदमी कितना भी मजबूत हो, कठोर हो, वह पानी के नल की तरह होता है; पर फौज में पहुँचने पर उस पर खाकी रेते के दो चार रंदे लगे नहीं कि फिर उसमें राइफल की नली जैसा गुताव और चमक आ जाती है, वह ज्यादा खतरनाक दिखाई देता है। हां, तो उन फौजियों की चाल में मस्ती थी। वे अपने को आजाद महसूस करते थे, क्योंकि दो-चार अंग्रेज जब मिलते, तब बराबरी से, बड़प्पन से नहीं।

गुप्ता को यह सब पसन्द नहीं आया। उसने अपने गांव की नाइन का जिक्र छेड़ दिया। जमींदार आदमी था। उसके पास ऐसे झूठे-सच्चे किस्सों की भरमार थी। अपने में मस्त रहता था। अक्सर किताबों में जो पढ़ता, उसमें अपने आपको रखकर कहानी सुना देता। अबकी बार एक नया किस्सा शुरू हुआ था। तथ्य और तत्त्व इस सात सौ पैंसठवें किस्से का वही था, जो आज तक सब सुन चुके थे।

"क्या हुआ? क्या हुआ?" शुक्ला पूछ बैठा। उसको गम था कि वह शहरों की छोटी-बड़ी जिन्दगी

देख चुका है, लेकिन गांवों के बारे में उसे कुछ भी ज्ञान न है—और हिन्दुस्तान की सारी जिन्दगी गांवों में ही है। लेकिन अभी तक उसके 'जिन्दगी' शब्द का अर्थ 'स्त्री' था, क्योंकि वह कुछ और अपनी बात के लायक ही न समझता था। अब वह किस्सा सुनने लगा। गुप्ता अब चमक रहे थे। पतली कमर शेर की-सी थी, लेकिन सीना उनका अपना था, उसमें कोई शेर-पन नहीं था। गोरे आदमी थे। कभी जब मंसूरी गये थे, दिन में दो बार हजामत बनाते थे, इससे मूंछों की चौड़ी जगह तथा कहीं कहीं उगी दाढ़ी की जगह काली पड़ गई थी, और चूंकि वे गोरे थे, इसलिए जैसे उनके गोरेपन ने उनकी बाकी बद-शक्लियत को छिपा लिया था। यह कालापन भी हल्का-सलेटी सा दिखाई देता था। बहरकैफ, काफी दूर से देखने पर वे सुन्दर लगते थे और इसी से उजाले में करीब आने के दुश्मन थे।

बात बढ़ती जा रही थी। सुनने वाले ऊब चले थे। पर वह अपना मलमल का कुर्ता, जिसके भीतर से चमकती जालीदार बनियान, सफेद ढीला लट्ठे का पाजामा पहने बैठा था। उसकी बला से, क्या कुछ हो, बस हाथ की घड़ी चलती रहे। इससे बढ़ कर कुछ नहीं चाहिये, क्योंकि जिन्दगी चली जा रही है, चली जा रही है, बस ठीक है···

उसकी बात ऐसी थी जैसे बच्चे के हाथ में पेंसिल पड़ गई हो और पहले तो उसने उसे घुमा फिरा कर देखा; फिर कागज पर लकीरें खींचना शुरू किया, तो गोले बने, और एक के भीतर एक, एक को काट कर दूसरा ··परिणाम में कोई चित्र नहीं बना, बस काटा-फाटा, उलझन। या नाई का लड़का अब किसी दूसरे की हजामत बना रहा था। अभी उसका हाथ सधा नहीं था और दूसरे आदमी की खाल जगह जगह से कट रही थी, जैसे उस्तरे और हाथ का कसूर नहीं, वह तो खाल ही बतख की तरह पतली है, जिसके भीतर कोई तनाव नहीं, मरियल, फुसफुसी······

आखिर तंग आकर शुक्ला ने कहा, "नहीं सुनेंगे। कोई किस्सा है! हम समझे कि खत्म होने वाला है, पर वह है कि 'खैर साहब' कह कर बढ़ रहे हैं, और किस्सा नतीजे में अभी शुरू ही नहीं हुआ। मेरा रूमाल साफ था। क्यों साफ था? वह धोबी ने धोया था" क्यों कि रूमाल सूती है, भट्टी पर चढ़ सकता है, हिश! यह कोई गांव है। ठीक से बात करो। देहाती! दहकानी·····!"

मुंह फाड़े गुप्ता देख रहा था। दर अब हँसा, जिससे नवाबी जिस्म वाला गुप्ता खिसिया गया। उसने कहा, "तुम सुनोगे, सौ दफा सुनोगे। कोई बात है! ऐसा लुत्फंदाज, ऐसा तीर-सा चुभने वाला किस्सा है कि तुम सुन कर कह उठोगे·····"

किन्तु उसकी बात रुक गई।

'अक्खा' करके दर उठा; पर गुप्ता फिर अब शुक्ला का कंधा पकड़ कर किस्से की जगह अपनी नाइन की खूबसूरती की तारीफ करने लगे। शुक्ला ऐसे ताज्जुब से देख रहे थे जैसे उन्हें सोने का अंडा देने वाली मुर्गी मिल गई थी, जिस पर विश्वास करना कठिन था।

सामने मिस्टर करमरकर खड़े थे। पतले-दुबले आदमी थे। काले-काले से, पर चेहरे पर किरमिच के जूते की-सी चमक थी—यानी कि वे क्रीम और स्नो का प्रयोग करते थे। अभी तक अंग्रेजी बोलने के शौकीन थे। वे चश्मे में से मुस्कराये और जान-बूझ कर कुछ उन्होंने गलत हिन्दी में कहा, क्योंकि वे अभी तक अपने को ठीक नहीं कर सके थे। वे टैकनिकल इंजीनियर थे और किसी कच्चे-मच्चे नहीं, फौलादी ब्लैक मार्केट करने वाले मिल-मालिक के यहां इञ्जीनियर के पद पर नियुक्त थे।

गुप्ता ने देखा तो बात बंद की, जैसे रेडियो बंद कर दिया, या पहले वह कोई किताब पढ़ रहा था, जिसके पन्ने हवा से उड़ गये।

उंगलियां चटकाते हुए दर ने कहा—"वाह, क्या कहने हैं, करमरकर साहब आये हैं! मिस्त्री!"

मिस्त्री भीतर से निकल कर आया। उसके हाथ में अब भी कोई औजार था। शायद वह बीड़ी पी रहा था; आवाज सुन कर फौरन उसे उठा लाया कि काम में लगा था, जैसे बड़े भाई के आवाज देने पर छोटा भाई झट मुंह में रोटी रख कर भरे-मुंह कह उठता है—'आया भाई सा'ब, खाना खा रहा

हूँ!' मतलब यह कि खुद काम कर लो। मिस्त्री और करमरकर भीतर चले गये!

वे सब हंसे। करमरकर अपने आपको जोश में कभी कभी 'कारमेकर' कह जाते, यानी मोटर बनाने वाला और जब सब उन पर प्रसन्न होते, वे कल्पना में अपने को फोर्ड जैसे अमरीकी करोड़पतियों की गणना में देखने लगते।

गुप्ता गीत सुनने लगा।

अब रात होने लगी थी। सड़क पर अंधेरा हवा के झोंकों पर बहने लगा था—वे झोंके जो स्त्रियों के शरीर, केश में लगे चूर्ण और द्रव्यों की गंध से भारी हो गये थे, जो पुरुषों के भारी जूतों की पगध्वनि सुन कर ऊपर ही ऊपर कांपते और भागती मोटरों से छितर-छितर कर फिर किनारों पर फैल जाते।

पड़ोस के जीने पर कुछ खिलखिलाहट की आवाज आई। गुप्ता ने शुक्ला का पांव दाबा, यानी सुनो। तीनों जानते थे। तभी करमरकर लौट आये। दर ने कुछ पूछा, जिसके जवाब में एक अस्फुट ध्वनि 'ट्' जैसी मुंह से निकली। वह उनका महाराष्ट्री नकार था। फिर 'हां' करने में दोनों तरफ सिर हिलाया, जैसे लेफ्ट, राइट·····।

"अबे, अब हिंदुस्तान आजाद हो गया है," शुक्ला ने कहा। उसका मतलब करमरकर से नहीं था, बल्कि उस खिलखिलाहट के प्रति इशारा था। वह एक पुरानी जानी-पहचानी जगह थी। वहां ऐंग्लो-इंडियन लड़कियां रहती थीं, पेशेवर·····।

तभी मिस्त्री ने बीच का पर्दा हटा दिया। अंदर अनेक रेडियो रखे थे; इनकी टेक्नीशियन लोग मरम्मतें कर रहे थे। बहुत बड़ी दूकान थी। करमरकर ने जो भीतर राय दी थी, उसी के विषय में दर से बातचीत हो रही थी। दोस्त थे, कभी कभी राय देते थे। बाहर से दिखाई दिया।

टेक्नीशियन कादिरी भीतर बैठा पुर्जों से दिमाग लड़ा रहा था। वह काला था—चिकना काला था। उसकी खाल ऐसी लगती थी, जैसे वह सारी कलौंच एक शीशे के पीछे हिल रही हो। इस समय किसी रेडियो के अंजर-पंजर ढीले किये उस पर जुट रहा था। करमरकर चले गये थे। कादिरी ने थक कर

ऐंग्लो-इण्डियन लड़की को लड़खड़ाते हुए भीतर आते देख दर चौंका।

अपनी नीली पतलून से हाथ पोंछे और कुहनियों के ऊपर लिपटी चढ़ी कमीज की आस्तीन से माथा। उसके दांत चमकने लगे। उसने बढ़ कर पर्दा गिरा दिया, पर असलियत यह थी कि बीड़ी पीने में दिक्कत हो रही थी।

गुप्ता बोले—"यही हरामखोरी किसानों में आ गई है। जमाना है!"

वे 'यही' का अर्थ समझे। दर ने धीरे से कहा—"देखा, कितना चालाक है? वैसे इसने जाहिर किया है कि दूकान का 'शो' खराब हो रहा है, और मैं कुछ कह भी नहीं सकता। आजादी क्या मिली, हर राह चलता बराबर हो गया, और नहीं हुआ तो होना चाहता है। जिसे देखो अखबार पढ़ता है!"

बाहर पल्लेदार आ बैठे थे। एक कह रहा था, "सैंया भये कुतवाल अब डर काहे का। दरोगा जी तो बस श्रोलम टीटी, घर में जाय गवैया पीटी·····!"

उसके शिकवे लंबे थे।

शर्मा थका-मांदा भीतर घुसा। उसने आते ही अपनी बात छेड़ दी। वह परेशान था—"कचहरी में फंस गया था। एक कारखाना खोलना चाहता था। एक बुड्ढे माली की थोड़ी-सी जमीन थी; साला देने से इन्कार करता है। देसी आदमी कभी कौम के लिये कुर्बानी नहीं दे सकता। कहता है, खाऊंगा क्या? मैंने भी एक ही चाल चली है। दरोगा को मिला कर पकड़वा दिया उसे। वह हैं न लाला खुशखतराय, बस लीडर आदमी हैं। उनकी सिफारिश है। दुनिया चिल्ला रही है, पैदावार बढ़ाओ; पर यह लोग सुनते हैं? लेकिन एक चोट हो गई।"

"क्या हुआ?" गुप्ता ने कहा—"अब वह जमाने नहीं रहे, बड़े भाई; वर्ना मजाल थी। हां, क्या हुआ?"

"यार," शर्मा ने अपनी रेशमी अचकन की जेब में से रूमाल निकालते हुए कहा, "खुशखतराय साला तीन हजार रुपया खा गया। नेता आदमी है, भाई। तपस्या का फल पा रहा है। अमां, हम तो डरते हैं, उसने मजदूरों पर अपने कारखाने में लाठी चलवा दी। समझे? जेल जाता था, जनाब……!"

शर्मा बहुत कुछ कहना चाहता था।

"कसम से!" शुक्ला चिल्लाया, "वाह मेरी सरकार! धीरे धीरे सब हो जायगा।" और वह गुन-गुनाने लगा—"साजन का थाना·· बलम धीरे बोल, कोई सुन लेगा।" फिर हंसा, कह उठा, "प्यारेलाल, पूत के पांव पालने में दिखाई देते हैं··।"

वह कहते कहते रुक गया। सड़क पर सिपाही खड़ा था, पूत का पांव दिखाई दे रहा था·····

गुप्ता भी मुस्कराया। कहा, "बस?"

लेकिन दर उस वक्त किसी अफसर की बड़ी मोटी रकम की गाड़ी देख रहा था, जो चमक रही थी।

"बेहतरीन!" दर ने कहा, "वाह, क्या चीज है!"

तभी अफसर की बजाय सिर पर झकाझक गांधी टोपी लगाये एक सेठ उतरे, अकड़ते हुए, गम्भीर। टोपी को देख कर सब चौंके और चुप हो गये, जैसे सिर पर मशीनगन रखी थी।

जब वे सामने के अंग्रेजी ढंग के रेस्तूां में घुस गये, यहां अब फिर कांग्रेस का जिक्र होने लगा। शर्मा सुनाने लगा, "कचहरी में अब 'जय हिन्द' का इस्तेमाल होता है। पहले 'आदाब अर्ज' होती थी, अब 'जय हिन्द' कह कर रिश्वत ली जाती है। तुम्हारा भाई छूट गया? क्यों गुप्ता? आर० एस० एस० के बहुत से लोगों की कांग्रेसी सिफारिश कर रहे हैं, किसी से करवा लो। क्या मुश्किल है?"

फिर बहस छिड़ गई। अब आन्दोलन क्यों होते हैं? गरीब अब भी गरीब है।

"जनाब," शुक्ला ने काट कर कहा, "हाथी बहुत बड़ा जानवर होता है, पर उसको चलाने के लिए छोटा-सा अंकुश काफी होता है। ऊंट उससे छोटा होता है, उसके लिये नकेल काफी होती है। घोड़ा और छोटा होता है, तो उसके मुंह में लोहा अड़ा देते हैं; पर कुत्ता सब से छोटा होता है। उसके लोहे की जंजीर गले में बांधी जाती है। क्यों? जितना छोटा हो, उसे उतना ही दबाओ। यही जमाने की रीत है। बड़ी दूकानों में कभी सौदा होता है? फल वाले से, तांगे वाले से हमेशा बहस होती है। ये लोग हमेशा मुंह फाड़ते हैं। सफेद कपड़े देखे और चाहते हैं, बस, निगल जायें। मजदूर, मजदूर···"

"लेकिन अब कोई खतरा नहीं। अपना राज है," शर्मा ने कहा—"सालों को कुचल कर धर देंगे, चटनी करके धर देंगे···।"

पर यह कहते कहते वह हिचका, कुछ डरा, जैसे उसे स्वयं विश्वास नहीं हुआ।

सब लोग हंसने लगे। गुप्ता ने कहा, "देखा, इस पूंजी वाले को? और लोग कहते हैं कि जमींदार बुरे हैं। कभी गांव गये हो? कोई सुनता है हमारी? सरकार लगान नहीं लेगी? अरे, हम वैसे ही पिसे जा रहे हैं। वह प्रेमचन्द की सूंठें पढ़ लीं और कहने लगे जमींदारी मिटा दो···"

"वह तो ठीक है," शर्मा ने कहा, "मगर देश को इस वक्त पैदावार की जरूरत है, ऐसे कि हिन्दुस्तान खुद सब माल बनाने लगे···"

"तो क्या जरूरी है कि," गुप्ता ने कहा।

(शेष पृष्ठ ५३ पर)

सावन चीर भिगोता आया !

श्री 'शेष'

आम तले भूलों की शोभा,
या मुखरित फूलों की शोभा,
यौवन के स्वागत में रसपति
मुक्ता-हार पिरोता आया !
सावन चीर भिगोता आया !

क्षण में भू पर, नभ पर क्षण में,
चपलाएं-सी श्यामल घन में,
जीवन का उल्लास हृदय में
सुरभित सोम समोता आया !
सावन चीर भिगोता आया !

मन की मौजों का यह मेला,
देख सुहानी सुख की बेला,
एक निराश दूर का पंथी
पथ से हो कर रोता आया !
सावन चीर भिगोता आया !

इस रूखे सूखे जीवन में,
प्यासे औ' भूखे जीवन में,
कोई तो आकर कह देता—
'वह अमृत का सोता आया !'
सावन चीर भिगोता आया !

साहित्यिक संस्मरण

पत्रकारिता का उद्योग-पर्व

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

इस लेख में मैं अपनी कुछ साहित्यिक आपबीती सुनाऊंगा। बचपन से पत्रकारिता और साहित्य-सेवा की ओर मेरी जो प्रवृत्ति थी, वह किन-किन मंजिलों में से होकर गुजरी और किन-किन रूपों में प्रकट हुई, इसका वृत्तान्त संक्षिप्त रूप में सुना कर मैं पाठकों से प्रार्थना करूंगा कि उनमें से जो साहित्य की ओर अभिरुचि रखते हैं, वे अपनी अनुभूतियों के साथ मेरी अनुभूतियों की तुलना करें। यदि इससे कोई लाभ न होगा, तो मनोरंजन तो होगा ही!

मेरे बड़े भाई हरिश्चन्द्र जी मुझ से दो वर्ष बड़े थे। अभी हम जालंधर में ही थे, गुरुकुल नहीं गये थे। पिता जी वकालत करते थे और साथ ही 'सद्धर्म प्रचारक' नाम का साप्ताहिक पत्र निकालते थे। हरिश्चन्द्र जी की आयु नौ वर्ष की थी और मेरी सात वर्ष की। हमारी बड़ी बहिनों के पढ़ने के लिये घर में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका आया करती थी। वह हम लोगों के हाथ भी लग जाती थी। घर से एक साप्ताहिक-पत्र निकलता ही था, 'सरस्वती' के पढ़ने से मनोभावों में कुछ और जागृति उत्पन्न हुई, जिससे प्रेरित होकर हम दोनों भाइयों ने निश्चय किया कि हम भी हाथों से लिख कर एक अखबार निकालें। पत्र का नाम क्या रक्खा, यह अच्छी तरह याद नहीं। ध्यान में आता है कि शायद 'सत्य-प्रकाशक' या 'सत्य-विचारक' ऐसा कुछ नाम रक्खा था। दोनों भाई मिल कर उसे लिखते थे और दोनों ही पढ़ लेते थे। हमारे उस षड्यन्त्र में और कोई शामिल नहीं था। इस डर से कि कहीं रुकावट न डाल दी जाय, हमने अपनी बहिनों को भी पत्र के विषय में कोई सूचना नहीं दी।

दोनों भाइयों का यह उद्योग बहुत समय तक नहीं चल सका। हम दोनों गुरुकुल शिक्षा प्राप्त करने के लिये गुजरांवाले भेज दिये गये, जहां वातावरण और शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन के कारण पुराने सब सिलसिले और शौक टूट गये। गुरुकुल में हम दोनों संस्कृत-वाङ्मय में डुबकी लगाने लगे।

★

लगभग सात वर्ष कठोर विद्याध्ययन में व्यतीत हो गये। उन वर्षों में हम दोनों भाइयों का साहित्यिक विकास लगभग एक ही ढंग पर होता रहा। प्रारंभिक चार वर्ष केवल संस्कृत ग्रन्थों के अध्ययन में व्यतीत किये। उन वर्षों के साहित्यिक अवशेष मेरे पास संस्कृत श्लोकों के रूप में विद्यमान हैं। पुराने कागजों, कापियों और फाइलों को सम्हाल कर रखने की मेरे अन्दर स्वाभाविक प्रवृत्ति है। संस्कृत-अध्ययन के उन प्रारंभिक वर्षों में मैंने और भाई हरिश्चन्द्र जी ने जो संस्कृत श्लोक बनाये, वे प्रायः सभी मेरे पास सुरक्षित हैं। उनका काफी बड़ा बस्ता बन गया है। उनमें से बहुत से श्लोक छपे भी थे, शेष अनछपे पड़े हैं। वे छपने लायक हैं भी नहीं, क्योंकि उन्हें पढ़ेगा कौन? बस, मैं ही कभी-कभी पढ़ लेता हूं और आनन्द ले लेता हूं।

पांच वर्ष की निरंतर संस्कृत-शिक्षा के पश्चात् हम लोगों ने आधुनिक विषयों का अध्ययन प्रारंभ किया। गणित, अंगरेजी, इतिहास और विज्ञान सभी विषयों की शिक्षा मिलने लगी। उससे हमारे नये साहित्यिक जीवन का उद्भव हुआ। जब हम दोनों भाई गुरुकुल की नवीं श्रेणी में पढ़ते थे, तब हमारे

अन्दर वही पुरानी पत्रकारिता की भावना फिर से उत्पन्न हो गई। हम दोनों अलग-अलग हस्तलिखित मासिक पत्र निकालने लगे। कार्य तो एक-सा ही था, परन्तु शायद आयु बढ़ जाने का यह प्रभाव हुआ कि इस बार सहोद्योग-समिति नहीं बन सकी। उनके पत्र में मैं लिखता था और मेरे पत्र में वे; पर निकालते थे दो पत्र। गुरुकुल से अब भी अनेक हस्तलिखित मासिक पत्रिकायें प्रकाशित होती हैं। उनका रूप रंग और लेखों का धरातल भी बहुत उत्तम है। हमारी हस्तलिखित पत्रिकाओं की यही विशेषता थी कि वे गुरुकुल के जीवन में अपने ढंग की पहली पत्रिकायें थीं। यह स्वाभाविक भी था; क्योंकि हम दोनों भाई गुरुकुल के सब से पहले छात्र थे।

★

"कुछ वर्ष और व्यतीत हो गये। पिता जी ने 'सद्धर्म प्रचारक' को उर्दू से हिन्दी में परिवर्तित कर दिया। पहले वह जालन्धर से निकलता था, अब गुरुकुल कांगड़ी से निकलने लगा। यह पत्र उस समय आर्य समाज का मुख्य प्रचारक माना जाता था। इसमें अग्रलेख प्रायः पिताजी की लेखनी से निकले हुए होते थे, जो आर्य-समाजियों के लिये पथ-प्रदर्शन का काम देते थे।

जिन दिनों की बात मैं सुनाने लगा हूँ, उन दिनों पं० ब्रह्मानन्द जी (वर्त्तमान स्वामी ब्रह्मानन्द जी) 'सद्धर्म प्रचारक' के सहायक संपादक थे। पिता जी कहीं बाहर गये हुए थे। सम्पादन का कार्य मुख्य रूप से पं० ब्रह्मानन्द जी ही करते थे। आर्य-समाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं० शिवशंकर जी काव्यतीर्थ ने वैदिक साहित्य पर कुछ अन्वेषणात्मक ग्रन्थ लिखे थे। काव्यतीर्थ जी हमारे अध्यापक भी थे। उनके ग्रन्थों को पढ़ कर मेरे मन में, न जाने क्यों, कुछ विद्रोह-सा पैदा हुआ। उस समय मैं शायद गुरुकुल की तेरहवीं श्रेणी में पढ़ता था। एक दिन जोश जो आया तो काव्यतीर्थ जी के ग्रन्थों की आलोचना में एक लम्बा लेख लिख डाला; यद्यपि इसका कोई विशेष कारण नहीं था कि उस लेख में काव्यतीर्थ जी के और उनके ग्रन्थों के सम्बन्ध में इतने व्यंगों और तीखे उपहास का प्रयोग किया जाता। पर संभवतः उस समय की हिन्दी समालोचना-प्रणाली का मेरे युवक-हृदय पर ऐसा असर हुआ

इस लेख के विद्वान् लेखक

कि उस लेख में तीव्रता के साथ रोचकता आ गई। वह लेख लेकर मैं उप-सम्पादक जी के पास पहुंचा और निवेदन किया कि आप लेख को 'सद्धर्म प्रचारक' में प्रकाशित कर दीजिए। वे द्विधा में पड़ गये। लेख उन्हें पसन्द आया, पर उसे छापें कैसे? गुरुकुल के एक छात्र का लिखा हुआ लेख और वह भी एक अध्यापक के ग्रन्थों की आलोचना! लेकिन उप-सम्पादक जी को लेख पसन्द आ चुका था। अतः परामर्श के पश्चात् यह निश्चय हुआ कि लेख तो प्रकाशित किया जाये, परन्तु उसमें मेरा नाम न रहे। साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि यह बात सर्वथा गुप्त रखी जाय कि लेख किसका है। प्रेस वालों को सर्वथा सावधान कर दिया जाय कि वे रहस्योद्भेद न होने दें। मैंने अपना उपनाम उस लेख के लिये 'द' रखा।

★

लेख प्रकाशित हो गया, तो आर्य जगत् में बहुत हलचल मच गई। काव्यतीर्थ जी आर्य-समाज के प्रमुख विद्वान् थे। उनके ग्रन्थों की तीव्र आलोचना से आर्य लोग असमंजस में पड़ गये और सोचने लगे कि क्या सचमुच काव्यतीर्थ जी ने सिद्धान्त-विरुद्ध बातें लिखी हैं? गुरुकुल में तो रात-दिन चर्चा ही उस लेख की

होती थी। काव्यतीर्थ जी वहीं रहते थे और वेद पढ़ाते थे। चर्चा का विशेष विषय यह था कि लेख का लेखक कौन है? पढ़ाई के समय श्रेणी-चर्चा चली, तो काव्यतीर्थ जी ने स्वाभाविक रोष भरे शब्दों में कहा, "वह बड़ा धूर्त है, जिसने अपना नाम छिपा लिया है। वह नास्तिक मालूम होता है।"

सब लोगों ने 'त्र' के बारे में अपनी अपनी कल्पना की। आर्य समाज में ऐसे विद्वान् तो अनेक थे, जो सर्वथा कट्टरपन्थी होने के कारण उस लेख के छिपे लेखक समझे जा सकते थे, परन्तु वे संस्कृत के विद्वान् नहीं थे और जो संस्कृत के विद्वान् थे, वे नवीन शैली की हिन्दी के लेखक नहीं थे। लोग इसी चक्कर में पड़ कर यह न समझ सके कि 'त्र' के आवरण में छिपा हुआ कौन व्यक्ति है।

काव्यतीर्थ जी ने 'त्र' के लेख का लम्बा और युक्तिपूर्ण उत्तर लिख कर 'सद्धर्म प्रचारक' के उपसम्पादक को भेज दिया। अगले सप्ताह वह भी छप गया। अब मेरे सामने यह प्रश्न उठा कि उस लेख का उत्तर दिया जाय या नहीं? दूरदर्शिता कहती थी कि न दिया जाय और इस वाग्-विलास को समाप्त किया जाय, परन्तु बचपन का उत्साह उकसाता था कि प्रपत्ती के लेख का उत्तर अवश्य दिया जाय। अन्त में बचपन की जीत हुई और मैंने काव्यतीर्थ जी के लेख का उत्तर दूसरे ही सप्ताह 'सद्धर्म प्रचारक' में प्रकाशित करा दिया। उस लेख की भाषा पहले लेख की भाषा की अपेक्षा भी अधिक तीखी और व्यंग्य-पूर्ण था। उससे काव्यतीर्थ जी बहुत विचलित हो गये और यह खोज लगाने के लिये कि लेखक कौन है, लाहौर चले गये। वहां पांच-चार दिन रह कर बहुत छान-बीन की, परन्तु कुछ हाथ न लगा। गुरुकुल वापस आकर उन्होंने दूसरे लेख का उत्तर भी प्रकाशित कराया। दूसरे लेखमें काव्यतीर्थ जी ने अपना रोष काफी उग्र शब्दों में प्रकट करते हुए लेखक के लिये 'कायर' आदि अनेक विशेषणों का प्रयोग किया।

मैं अब समझता हूँ कि मुझे तीसरा लेख बिल्कुल नहीं लिखना चाहिए था, पर उस समय लेखनी की खुजली को मैं न रोक सका और उस विवाद का तीसरा लेख लिख कर प्रकाशित करा दिया। उस लेख के प्रकाशित होने के पश्चात् मुझे स्वयं बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि काव्यतीर्थ जी बहुत दुखी हो गये। उन्हें दुख देना मुझे अभीष्ट नहीं था। मैंने तो केवल वाग्-विलास समझ कर लिखना आरम्भ किया था; उससे काव्यतीर्थ जी खिन्न होकर रोगी हो जायेंगे, यह मुझे पता नहीं था। काव्यतीर्थ जी सुस्त और रोगी हो गये और वह लेख-सान्मुख्य समाप्त होगया।

ये तीन लेख पत्रकारिता के क्षेत्र में मेरे पहले पत्र थे। उनकी स्थायी उपयोगिता कुछ भी नहीं थी; तो भी मुझे यह अनुभव करके कुछ सन्तोष-सा हुआ कि पाठकों ने उनकी स्तुति या निन्दा जो कुछ भी की, खूब जोर से की। मैंने समझा कि और कुछ बनूं या न बनूं, मैं लेखक अवश्य बन सकूंगा।

★

मेरी पत्रकारिता की ओर प्रवृत्ति और लेखक बनने की महत्वाकांक्षा को पुष्टि देने का अवसर शीघ्र ही आ गया। इंगलैंड के राजा, भारत के सम्राट्, भारतवासियों के हृदयों में राजभक्ति को जाग्रत करने के लिये भारतवर्ष में आये और दिल्ली में उनका दरबार हुआ। उस अवसर पर मेरे अत्यन्त आग्रह पर पिता जी ने निश्चय किया कि कुछ दिनों के लिये 'सद्धर्म प्रचारक' का दैनिक संस्करण निकाला जाय। मैं अभी विद्यार्थी ही था, स्नातक नहीं बना था। दैनिक के सम्पादन का कार्य मैंने अपने जिम्मे लिया। गुरुकुल का प्रेस तो काफी बड़ा था; परन्तु गंगा के पार उस वनस्थली में दैनिक पत्र के लिये सामग्री कहां से मिलती। तो भी बहुत प्रयत्न करके कुछ दिनों तक—शायद १० दिन तक—'सद्धर्म प्रचारक' का दैनिक संस्करण निकाला गया। आर्थिक दृष्टि से तो वह पूरी तरह घाटे का सौदा था—न स्थानीय बिक्री थी और न एजेंसियों का प्रबन्ध। बस इतनी ही सन्तोष की बात समझिये कि दैनिक संस्करण निकालने के कारण 'सद्धर्म प्रचारक' की ख्याति में वृद्धि हो गई और मैं यह अनुभव करने लगा कि मैं दैनिक पत्र निकाल सकता हूं।

इसे आप मेरे पत्रकार-जीवन का उद्योग-पर्व समझ सकते हैं। प्रतीत होता है कि पत्रकारिता की ओर मेरी प्रवृत्ति तो पैतृक और बचपनके संस्कारों का परिणाम था। उसके पश्चात् गुरुकुल की शिक्षा और 'सद्धर्म प्रचारक' पत्र की समीपता ने मेरी उस प्रवृत्ति का पोषण किया।

अद्भुत संसार

श्री रतनलाल बंसल

वर्तमान युग भौतिकवादी विज्ञान का युग कहा जाता है। 'दैवी चमत्कार,' 'भूत-प्रेत,' 'भाग्य,' 'होननहार' आदि शब्द अब कुछ अर्थ नहीं रखते। अब तो प्रत्येक घटना, प्रत्येक बात और प्रत्येक वस्तु का कार्य-कारण का सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिये वैज्ञानिक की प्रयोगशाला मौजूद है, जहां वैज्ञानिक अपने विविध यंत्रों के सहारे उसके अणु और परमाणु तक का रहस्य आप को बतला देगा। फिर भी इस विचित्र संसार में कुछ न कुछ ऐसी घटनाएं होती ही रहती हैं, जिन को देख-सुन कर वैज्ञानिक भी मुंह बाए रह जाता है और जिनके रहस्य को उद्घाटित करने में विज्ञान अपने को असमर्थ पाता है। ऐसी ही विज्ञान को चुनौती देने वाली कुछ अद्भुत बातों का यहां हम उल्लेख करते हैं।

खून के आंसू बहाने वाला शाही तख्त

बंगाल का राज्य अंग्रेजों ने कैसे कैसे घृणित षडयंत्रों द्वारा हथियाया था, यह आज कोई छिपी हुई बात नहीं है। बंगाल के सूबेदार अलीवर्दीखां, फिर उसके उत्तराधिकारी सिराजुद्दौला, मीर कासिम और मीर जाफर से बंगाल की मसनद छीनने के लिये अंग्रेजों ने जो छल-प्रपंच खेले और अनेकानेक गोपनीय और प्रकट हत्याएं कराईं, उनका इतिहास आज भी किसी भारतीय को रुला देने के लिये काफी है। पर आश्चर्य की बात तो यह है कि संगमूसा के जिस बहुमूल्य सिंहासन पर ये शासकगण बैठे, वह भी अभी तक उन दिनों को याद करके कभी कभी खून के आंसू रोता रहता है। यह सिंहासन अभी तक कलकत्ते के 'विक्टोरिआ मेमोरियल' में एक ऐतिहासिक स्मारक के रूप में सुरक्षित है। 'मेमोरियल' के सूचीपत्र में पृष्ठ चालीस पर इस तख्त का विवरण देते हुए यह लिखा है कि कभी कभी खून के-से रंग की लाल बूंदें इस तख्त से अनायास ही टपकने लगती हैं। समस्त बंगाल में यह बात प्रसिद्ध है कि इस प्रकार यह तख्त अपने स्वर्गीय मालिकों की याद में प्रायः खून के आंसू बहाया करता है।

विज्ञान और वैज्ञानिक आज तक इस तख्त से टपकने वाली इन लाल बूंदों का रहस्य नहीं बता सके हैं। अतः इस तथाकथित विज्ञान के युग में यह विश्वास करने के लिये विवश होना ही पड़ता है कि पत्थर में

भी हृदय और विवेक होता है और उसे भी किसी की स्मृति रुला सकती है।

अभिशाप द्वारा समाधि की रक्षा

आज के वैज्ञानिक को यदि रामायण का यह प्रसंग सुनाया जाय कि वन में आर्त्तनाद सुन कर स्वर्णमृग के पीछे गये हुए राम की सहायतार्थ जाते हुए लक्ष्मण सीता जी को एक रेखा खींच कर कुटिया में सुरक्षित कर गये थे, तो वह इसे गप्प बताएगा। किन्तु सन् १६३४-३५ में जब मिश्री इतिहास तथा पुरातत्व के यशस्वी विद्वान् सर अरनेस्ट वालिस का देहान्त मिश्र की सुप्रसिद्ध 'तुतनखामेन समाधि' की यात्रा के कुछ ही दिनों पश्चात् आकस्मिक रूप से हो गया, तो बड़े बड़े वैज्ञानिकों के मन में भी यह सन्देह उत्पन्न होने लगा कि कहीं सचमुच ही शाप-अभिशापों में कोई यथार्थ शक्ति न होती हो।

तुतनखामेन लगभग चार हजार वर्ष पूर्व मिश्र के थीविस वंश का सुप्रसिद्ध राजा हो गया है, जो केवल पांच वर्ष राज्य करने के पश्चात् युवावस्था में ही मृत्यु की भेंट हो गया था। उसकी मृत्यु के पश्चात् मिश्र की तत्कालीन प्रथा के अनुसार उसके शव को 'ममी' के रूप में सुरक्षित करके दरें अलवहरी की ऊंची चोटियों के पिछले भाग में बड़ी साज-सज्जा के साथ दफना दिया गया था और समाधि-स्तूप को बहुमूल्य कलापूर्ण वस्तुओं से सुसज्जित कर दिया गया था। इसके साथ ही यह भी प्रसिद्ध हो गया कि तुतनखामेन के शव के साथ एक बहुत बड़े खजाने को भी इसी समाधिस्थल में दफन कर दिया गया है।

बहुत दिनों तक इस समाधि का पता नहीं लग सका, किन्तु आज से लगभग सात सौ वर्ष पूर्व सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता आर्थर विगल ने इस समाधि को खोज निकाला। कहा जाता है कि समाधि-निर्माण के पश्चात् वही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने लगभग तेतीस सौ वर्ष पश्चात् इस समाधि को पहिले-पहिल स्पर्श किया था। किन्तु वह समाधि को खुलवाने का प्रबन्ध कर ही रहे थे कि अत्यन्त ही आकस्मिक रूप से उनकी मृत्यु हो गई। उस समय उनकी अवस्था केवल ५३ वर्ष की थी।

सन् १६२२ के नवम्बर मास में मिस्टर हावार्ड कार्टर नामक एक दूसरे पुरातत्त्ववेत्ता ने लार्ड कार्नबान के साथ इस समाधि के मुख्यद्वार को खोलने में सफलता प्राप्त की। किन्तु वे दोनों सज्जन जैसे ही अन्दर घुसे, वैसे ही उनकी दृष्टि एक शिलालेख पर पड़ी, जिसमें लिखा हुआ था—

"जो कोई इस समाधि को हाथ लगायेगा, उसका हाथ सूख जायेगा। जो लोग मेरी समाधि की भित्ति, मेरी प्रतिमूर्ति या मेरी समाधि से सम्बन्धित किसी वस्तु का स्पर्श करेंगे, वे नष्ट हो जायेंगे।"

इस निषेधात्मक समाधि-लेख को पढ़ कर दोनों वैज्ञानिक मुस्करा उठे। इसके पश्चात् घटनास्थल पर उपस्थित मि० टामटेरिस नामक एक अंग्रेज लेखक के कथनानुसार लार्ड कार्नबान वहीं रक्खे हुए एक फूलदान की ओर बढ़े और अपनी चुरट सुलगा कर उस फूलदान को, देखने लगे। इतने ही में उन्होंने एक सूराख में हाथ डाल दिया। किन्तु एक ही क्षण के पश्चात् कुछ विस्मयसूचक शब्द के साथ उन्होंने हाथ बाहर खींच लिया। देखने से प्रतीत हुआ कि उनकी एक उंगली के अग्रभाग पर खून झलक आया है, जैसे किसी ने पिन चुभो दी हो। इसके ठीक तीन सप्ताह पश्चात् लार्ड कार्नबान की मृत्यु हो गई।

मि० हावार्ड कार्टर ने इस पर भी अपने साहस को नहीं खोया और उन्होंने तुतनखामेन के शव का 'एक्सरे' कराने के लिये सर आर्चीवाल्ड डगलस नामक वैज्ञानिक का सहयोग प्राप्त कर लिया। किन्तु डगलस महोदय 'एक्सरे' करने से पूर्व ही स्विट्जरलैंड में आकस्मिक रूप से परलोक सिधार गये। इसके पश्चात् एक दूसरा अंग्रेज विशेषज्ञ इस कार्य के लिये नियुक्त हुआ; पर वह भी कार्य में हाथ लगाने से पूर्व ही मृत्यु की भेंट हो गया। और फिर एक के बाद एक ऐसे उन्नीस व्यक्ति मृत्यु के ग्रास बने, जो समाधि के खोज सम्बन्धी कार्य में किसी प्रकार की भी सहायता कर रहे थे।

एक अन्य सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान् ने, जो खुदाई का कार्य कराने पर नियुक्त था, पिस्तौल से आत्महत्या कर ली। मि० हावार्ड कार्टर के सेक्रेटरी कैप्टिन रिचार्ड बैवल सन् १९३० में लन्दन के एक क्लब में मरे हुए पाये गये और उनकी मृत्यु के तीन साल पश्चात् कैप्टिन बैवल के पिता अपने मकान की खिड़की से कूद कर मर गये। इस सम्बन्ध में सब से अन्तिम आहुति सर अरनेस्ट वालेस की थी।

इस प्रकार उस समाधि के सम्बन्ध में जिसने थोड़ी-सी भी दिलचस्पी दिखाई, वही किसी न किसी प्रकार कुछ ही दिनों में नष्ट हो गया। इसलिये मानना ही पड़ा कि समाधि-मंदिर में लगे हुए शिलालेख में जो अभिशाप उल्लिखित है, आज चार सहस्र वर्ष पश्चात् भी वह अपना वैसा ही प्रभाव रखता है।

मानव शरीर से प्रकाश की किरणें

और मानव शरीर से प्रकाश की किरणें फूटना भी क्या कुछ कम आश्चर्य की बात है? अभी कुछ वर्ष पूर्व इटली में एमामनेरा नामक एक ऐसी स्त्री थी, जिसका शरीर कभी कभी अद्भुत रूप से ज्यतिर्मय हो उठता था। प्रारम्भ में जब एक दो बार ऐसा हुआ, तब तो किसी ने ध्यान नहीं दिया; किन्तु जब बहुधा ऐसा होने लगा, तो समाचार-पत्रों में इस की चर्चा चली और फिर शनैः शनैः उस चर्चा ने इतना जोर पकड़ा कि बड़े बड़े वैज्ञानिक उस महिला को देखने के लिये इटली पहुंचे।

उक्त महिला बयालीस बर्ष की एक धर्म-परायण ईसाई स्त्री थी, जो प्रायः उपवास आदि करती रहती थी और विशेष तल्लीनता के साथ ईश्वर-प्रार्थना के लिये प्रसिद्ध थी। जब इटली के वैज्ञानिकों के एक दल के साथ वेनिस की सुप्रसिद्ध विज्ञान-संस्था 'नेशनल रिसर्च कौंसिस' के प्रख्यात अध्यापक डाक्टर मियाली इस स्त्री की परीक्षा के लिये पहुंचे, तो उन्होंने सन्देहशील मन से पहिले उस के आभूषणों, वस्त्रों, बिछावन तथा आस-पास रक्खी चीजों की भली प्रकार जांच की। इसके पश्चात् उस स्त्री को तन्द्रा सी आनी आरम्भ हुई और त्यों ही उसके शरीर से आलोक प्रस्फुटित होने लगा। वैज्ञानिकों ने उसकी इस अवस्था के कैमरे से कुछ चित्र भी लिये। उन चित्रों से यह ज्ञात हुआ कि उसके शरीर का आलोक उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है और कुछ देर पश्चात् वह आलोक शनैः शनैः क्षीण होता हुआ समाप्त भी हो जाता है।

पता नहीं आज वह महिला जीवित है या नहीं, पर एक दिन तो उसके शरीर की इस रहस्यमयी विशेषता ने विज्ञान को भी 'चमत्कार' पर विश्वास करने के लिये विवश कर ही दिया था।

भविष्य बताने वाली झील

इसी प्रकार किसी झील के सम्बन्ध में यह सोचना भी कोरा वहम ही माना जायेगा कि वह भविष्य में होने वाली किसी घटना का संकेत कर सकती है। पर समस्त यूरोप में यह बात प्रसिद्ध है कि इंग्लैंड के डेवन नामक नगर में एक ऐसी झील है, जिस में जल का बढ़ना इस बात का सूचक है कि इंग्लैंड के राजपरिवार में शीघ्र ही कोई अनिष्टकारी घटना होने वाली है। राजकुमार कानसार्ट की मृत्यु होने से ठीक पहिले झील का जल बढ़ा था। ड्यूक आफ क्लारेंस और महारानी विक्टोरिया की मृत्यु से पूर्व भी झील ने इसी प्रकार संकेत कर दिया था। हाल ही में सम्राट जार्ज पंचम की मृत्यु से तीन सप्ताह पूर्व जब झील में जल बढ़ने लगा था, तो उक्त नगर के निवासी यह समझ गये थे कि सम्राट इस बीमारी से उठ नहीं सकेंगे।

किसी ऐसी घटना के होने से कुछ ही दिन पूर्व झील में अकस्मात् ही कहां से पानी आ जाता है और घटना होते ही पानी पुरानी सतह तक कैसे पहुंच जाता है, यह बात अभी तक रहस्यमय ही बनी हुई है और सदैव रहस्यमय ही बनी रहेगी।

प्रेतों के जहाज

इस युग में यदि कभी आप अपनी मित्र-मण्डली में बैठकर भूत-प्रेतों के अस्तित्व पर विश्वास प्रकट करें, तो समझा जायेगा कि आप समय से पिछड़े हुए हैं और अंधविश्वासी हैं। पर जब यही बात किसी जहाज का कोई बड़ा अफसर कहता है, तो उस पर

यह आक्षेप नहीं किया जा सकता। क्यों ?.

अभी कुछ वर्ष पहले कई जहाजों के कप्तानों ने यह बताया था कि प्रशान्त महासागर की यात्रा करते समय जब वे उस स्थान पर पहुँचे, जहां 'टाइटेनिक' नामक जहाज डूबा था, तो वहां पहले रोने और चीखने की आवाजें स्वयं उन्होंने और जहाज के अन्य यात्रियों ने सुनीं और फिर नीले-से प्रकाश की एक रेखा शनैः शनैः जल से उठी और आकाश में विलीन हो गई। इसे देख कर उनका शरीर भय से ठंडा पड़ गया था।

इससे भी अधिक आश्चर्य की एक और घटना है। एक बार 'ओलन्दाज' ढंग का एक जहाज, जिसका पाल बहुत बड़ा था, तीव्र गति से अमेरिका की ओर जाता हुआ देखा गया। उस समय समुद्र में भयानक तूफान उठ रहा था, पर वह जहाज ऐसे स्थिर रूप से चला जा रहा था, जैसे शान्त समुद्र में यात्रा कर रहा हो। यह जहाज जब हडसन तट के पास पहुँचा, तो प्रहरियों ने उसे रुकने का संकेत किया; किन्तु जब वह नहीं रुका, तो उस पर तोप दागी गई। सब ने देखा कि तोप का गोला जहाज पर गिरा तो है, पर वह जहाज को कुछ भी क्षति नहीं पहुँचा सका है और वह जहाज पूर्ववत् आगे बढ़ रहा है। अब कुछ जहाज उसका पीछा करने के लिये भेजे गये; पर जैसे ही वे उस जहाज के निकट पहुंचे, वह लुप्त हो गया और उसका पता नहीं लगा।

इस घटना के प्रकाशित होते ही समस्त नाविक जगत् में यह किंवदन्ति फैल गई कि यह वह 'प्लाइङ्ग डचमैन' जहाज है, जिसके कप्तान ने सत्रहवीं शताब्दी में हर्न अन्तरीप को पार करने की शपथ ली थी और जो किसी स्थान पर डूब गया था। कहा जाता है कि आज तक अमेरिका के जल-मार्ग में वह जहाज इसी प्रकार छाया रूप में घूमता रहता है और जहाज के कप्तान की प्रेतात्मा ही यह सब खेल दिखाती रहती है।

एक दूसरा कभी जलमग्न हुआ 'सान्टा मार्गरिटा' नामक जहाज भी इसी प्रकार कई बार समुद्र में घूमता और अदृश्य होता देखा गया है। कहा जाता है कि यह जहाज टसकनी प्रदेश के आर्चड्यूक जान सालबेटर और उनकी सुन्दर नवविवाहिता पत्नी को ले जा रहा था कि रास्ते में मल्लाहों ने इस दम्पति की धन के लोभ से हत्या कर डाली और हत्या को छिपाने के लिये समुद्र-तट से कुछ ही दूर जहाज को डुबो दिया। इस घटना के कुछ ही दिन बाद जब 'स्पीडिया' नामक जहाज के नाविकों और यात्रियों ने अकस्मात् ही एक दिन 'मार्गरिटा' को अपनी ओर बढ़ते देखा, तो वे भय से चीत्कार कर उठे। 'मार्गरिटा' ठीक 'स्पीडिया' की ओर आ रहा था, जैसे वह उससे टकराने के लिये ही उद्यत हो। उस समय 'मार्गरिटा' से गाने-बजाने की आवाजें आ रही थीं। 'स्पीडिया' ने खतरे की घंटी बजाई, किन्तु तब तक 'मार्गरिटा' 'स्पीडिया' से टकरा गया; पर 'स्पीडिया' के किसी यात्री ने एक हल्का-सा धक्का तक अनुभव नहीं किया। एक छाया के समान 'मार्गरिटा' 'स्पीडिया' के पास से निकल गया।

'अमिलिया' नामक एक और जहाज भी इसी प्रकार कई बार समुद्र में देखा गया है। इस जहाज को एक बार जलदस्युओं ने लूट लिया था और इसके समस्त यात्रियों और नाविकों की क्रूरतापूर्वक हत्या कर डाली थी। इस जहाज की एक यात्रिणी लेडी कोपलैंड की हत्या बहुत ही बर्बरतापूर्वक की गई थी। नाविकों का कहना है कि जब कभी 'अमिलिया' का छाया-जहाज दिखाई देता है, उस पर एक महिला को वे देखते हैं, जो कभी रोती और विलाप करती है और कभी हंसने-गाने लगती है।

इसी प्रकार न जाने कितने जहाजों और न जाने कितने प्रसिद्ध कप्तानों और यात्रियों को, जो समुद्र-यात्रा में अकाल मृत्यु को प्राप्त हुए, देखे जाने की प्रामाणिक घटनाएँ विश्वसनीय और प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा बताई गई हैं। कौन जानता है कि यह सब क्या है ! पर इतना तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि केवल भौतिक विज्ञान के सहारे ही हम अपनी सभी जिज्ञासाओं का समाधान नहीं कर सकते।

कौन वहाँ ?

श्री चिरंजीत

बरस रही रस-धार कि गाये कौन वहां ?

मधु झंकार चहूं दिशि गमकी,
गगन-अटारी पर नीलम की—
वीणा को स्वरकार बजाये कौन वहां ?
बरस रही रस-धार कि गाये कौन वहां ?

बार बार मुस्काये कोई,
झलक दिखा छिप जाये कोई,
छिप-छिप कर यों प्यार लुटाये कौन वहां ?
बरस रही रस-धार कि गाये कौन वहां ?

इसी नाद का मैं दीवाना,
भटक रहा, उद्गम ना जाना,
मेघों के उस पार बुलाये कौन वहां ?
बरस रही रस-धार कि गाये कौन वहां ?

नीलम-गृह में बजे नगारा,
पल-पल ज्योतित मधु अँधियारा,
आज मिलन-त्योहार मनाये कौन वहां ?
बरस रही रस-धार कि गाये कौन वहां ?

कहानी

औरत

श्र बंसीलाल यादव

आज की नारी सामाजिक व आर्थिक परतंत्रता एवं हीनभावना से मुक्त हो कर स्वावलंबिनी बनना चाहती है। लेकिन आर्थिक रूप से स्वतंत्र और स्वावलंबिनी होने का क्या यह अर्थ है कि वह पत्नी और मां की जिम्मेदारियों को भूल जाये ?

"वह सब ठीक है, लेकिन तुम औरत हो, तुम बंदी हो—उन्मुक्त बन्दी। और तुम्हारे पैरों में ये बेड़ियां हम पुरुषों ने नहीं डालीं, प्रकृति ने डाली हैं। पुरुष ने नारी को निष्क्रिय नहीं बनाया, प्रकृति ने बनाया। इसलिये प्रकृति का जो तकाजा है, वह तुम्हें कैसे भी पूरा करना होगा—कैसे भी, क्योंकि तुम औरत हो, औरत !"

औरत ! औरत ! औरत ! वही चिरपरिचित हीनता-सूचक, अपमानजनक शब्द, जिनके द्वारा मृणाल एक युग से—नहीं नहीं, छुटपन से संबोधित होती आई थी। आज जब वे शब्द सहसा उसी के पति मि० अम्बालाल सिविल-सर्जन के मुंह से निकले, तो मृणाल अपने पति को तड़पती-सी देखती रह गई। विष में बुझे तीरों की तरह ये हीनता-सूचक शब्द उसके हृदय के पार हो गये। और जब आंतरिक तौर पर कोई मुंहतोड़ जवाब देने की प्रबल इच्छा रखते हुए भी उसके मुंह से कोई बोल न निकला, तो वह मृणाल—सरकारी अस्पताल की यशस्विनी लेडी-डॉक्टर—उस विक्षिप्त अवस्था में सिवा फूट-फूट कर रो पड़ने के और कुछ न कर सकी !

लेडी डाक्टर बनने के बाद से वह भूले हुए थी कि वह निष्क्रिय है, बंदी है और यह कि वह औरत है। लेकिन आज फिर से जबर्दस्ती जान बूझ कर उसे उसका 'औरतपन' याद दिला दिया गया था। आज उसने फिर से जाना कि वह औरत है—परतंत्र और पुरुष के अधीनस्थ रहने वाली औरत ! औरत !

उसे अपना बचपन याद आया—

वह अपनी मां की पांचवीं लड़की थी। माता-पिता ने लड़के की उम्मीद की थी, किन्तु लड़के के स्थान पर जब मृणाल को पाया तो उनका सारा उत्साह बुझ गया। वे जी मसोस कर रह गये। बड़ा दुःख लगा। पुरुष निर्माता होता है, लेकिन नारी निर्माण का साधन मात्र। और फिर वैसे भी कुल का नाम आगे चलाने में पुरुष अनिवार्य है। पर वहां लड़का कोई नहीं था और इस बार भी हुई तो लड़की—यह मृणाल ! नतीजा यह हुआ कि मृणाल माता-पिता की उतनी प्रिय न बन सकी, जितनी वह 'लड़का' बन कर हो सकती थी। और तभी से वह अपनी अनुभूति में एक आत्महीनता-सी अनुभव करने लगी—एक हल्कापन-सा। उसका ज्ञान उसके एक स्त्री होने पर, उसकी कल्पना को कटु बनाता रहता। जब कभी वह जीवन में कुछ 'बनने' की अथवा 'करने' की अपनी अभिलाषा माता-पिता पर प्रकट करती तो उसे सदा एक-सा उत्तर मिलता—"मृणाल, वह सब ठीक है, बेटा, लेकिन तुम लड़की जो हो !"

यह उत्तर उसके लिये एक सुदृढ़ लौहभित्ति की भांति होता, जिसके आगे उसे कोई रास्ता न मिलता और तब वह अपना सिर धुन कर रह जाती। उसका औरत होना उसे अभिशाप जान पड़ता और उसकी आत्मा विद्रोह करती—वह लड़की क्यों हुई ?

वह तेरह वर्ष की हो चुकी थी। बचपन से ही उसकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी। साधारण उत्तर उसकी जिज्ञासाओं का समाधान करने में असमर्थ थे। शिल्पियों के काम में उसकी बड़ी दिलचस्पी थी और अब तक उसने विज्ञान के चमत्कारों पर कई किताबें भी पढ़ डाली थीं। किताबों ने उसमें नया बल, नई प्रेरणा और एक अदम्य उत्साह भर दिया था। उसके जीवन में कोई असाधारण-सा काम कर डालने की एक अभिलाषा हिलोरें मारती रहती थी। एक दिन, जोश

ही जोश में भरी वह अपने पिता से बोली--"जानते हैं पिता जी, बड़ी होकर मैं क्या बनूंगी ?"

मृणाल अब बची नहीं रही थी, बड़ी हो गई थी--तेरह साल की, कदाचित् उससे भी ज्यादा की, और अपनी बढ़ती हुई पुत्री मृणाल की अभिलाषा पर भी गौर करना अब उनके पितृ-धर्म का एक आवश्यक अङ्ग बन चला था। तो अब मृणाल ने ही स्वयं इस प्रकार आकर अपनी 'पसंद' को प्रकट करना चाहा तो उन्होंने भी उसकी इच्छा जानने में कोई कम उत्सुकता और तत्परता न दिखाई।

पिता सस्नेह बोले--"ऊं-हूं, हम तो नहीं जानते भई कुछ भी! भला, बताओ तो बेटा !"

मृणाल आंखें नचाती हुई उसी उत्साह में बोली--"देखिये पिता जी, या तो मुझे कोई वैज्ञानिक होना चाहिये, या कोई मैकेनिक, या इन्जीनियर, या फिर कोई डाक्टर, या फिर·····, या फिर·····! पर देख लेना पिता जी आप भी, मैं जरूर कुछ होकर रहूँगी, कुछ करके दिखाऊंगी··ऐसा, ऐसा कि·····!"

वह आगे के शब्दों के लिये छटपटाती रही।

"ऐसा-ऐसा कि हमारे समय के प्रतिभाशाली से प्रतिभाशाली व्यक्ति ने भी आज तक करके न दिखाया हो! ऐसी ख्याति होगी--ऐसी वाह-वाह होगी कि पूछो मत! क्यों न बिटिया मृणाल ?"--कुछ प्रसन्नता से भरे और कुछ कटाक्षपूर्ण ढंग में पिता ने मानों मृणाल के बाल्य-सुलभ कोमल रंगीन स्वप्नों को पूरा कर दिया!

"हां, ऐसा ही--बिल्कुल ऐसा ही, पिता जी! ठीक ऐसा ही!" एक प्रकार के दृढ़ निश्चय से मृणाल का स्वर बुलन्द हो गया था। उसकी सहज बुद्धि उस समय पिता के स्वर में व्यंग का आभास पाने में असमर्थ ही रही।

पिता ने तब उसकी सरलता और सच्ची लगन देख उसे समझाया--"यह तो सब ठीक है, बेटा मृणाल, पर तुम लड़की हो; तुम्हारे बनने के लिये और ही बहुत-सी चीजें हैं।"

और तब वह भावों के अंधड़ में लाल-पीली होती

"मेरी तुम चिंता न करो तो कोई बात नहीं, लेकिन संजीव की तो तुम्हें कुछ फिक्र होनी चाहिये।"

हुई इतना ही बोल पाई थी--"लड़की हूँ तो क्या हुआ, पिता जी ?"

और इससे आगे जब वह अपने हृदय की क्षुब्ध उद्वेलित भावनाओं को किसी और सुन्दर ढंग से प्रकट करने में असमर्थ हो गई तो निर्वाक् रह गई। लड़की! लड़की! लड़की! हीनता की प्रथम अनुभूति! प्रथम प्रहार!

उसे फिर अपनी जवानी याद हो आई--उसके सपने सच्चे हो गये थे और उसकी कल्पना साकार। वह अब सरकारी अस्पताल की लेडी डाक्टर थी--एक कुशल सर्जन। हजारों कराहते हुए पीड़ित मानवों के उपचार में उसका विद्रोह और नारी की हीनता सम्बन्धी दुःख कुछ हल्का पड़ गया था। उसका सम्पूर्ण नारीत्व मानों एक ही ओर प्रवाहित हो उठा था--एक ही ओर, मानवता की कातरतापूर्ण चीत्कारों और दर्द से भरी आहों की ओर! पीप से भरे

घावों और नासूरों की शल्य-क्रिया में वह अपने को 'दांते' की 'बीयट्रिस' अनुभव करती और सिसकते बच्चों के उपचार में वह मातृत्व के गौरव से भर उठती। बुखार से तप्त और रोगों से पीड़ित जर्जर हृदयों को उसकी उज्ज्वल मुस्कराहट में जीवन-दान मिलने लगा।

पैसे की उसे भूख नहीं थी, इसीलिये वह जल्दी ही चमक गई। चीर-फाड़ के काम में कुशल उसकी उँगलियों की प्रशंसा की जाने लगी। डाक्टरों के 'सर्कल' में उसकी खूब चर्चा होने लगी। शादी के बारे में वह कभी सोचती भी न थी। उम्र भी कोई अधिक न थी—कुल पचीस वर्ष की उम्र। और फिर आकर्षक भी वह कम न थी—छरहरा बदन, पतली गर्दन, खुला २ रंग, नीली आंखें, सुघड़ चेहरा। और फिर सब से ऊपर एक मानी हुई डाक्टर, एक कुशल सर्जन, जिसकी आय की कोई सीमा ही नहीं। प्रकृति की हंसमुख, नम्र, मधुर, परन्तु अल्प-भाषिणी। भला 'वरों' की कोई कमी हो सकती थी? पर वह स्वयं नहीं चाहती थी कि उसकी शादी हो। न जाने क्यों उसे शादी के नाम से ही घृणा हो गई थी। पुरुष के सन्मुख उसमें एक विचित्र सा अहंकार भर उठता, उसमें एक झूठे दर्प का उदय होता और वह अप्रकट रूप से अपने में जलन अनुभव करने लगती। उसका संपूर्ण व्यक्तित्व प्रतिशोध के लिए तड़प उठता और कभी २ तो उसकी अनुभूति में उसकी वह हीन-भावना की प्रतिक्रिया इतनी प्रबल हो उठती कि उसे लगता जैसे उसने अपने 'नारीत्व' को ही खो दिया है।

इसीलिये सब कुछ भुला, वह अपने काम में व्यस्त रहती। अपने इस पवित्र पेशे में ही वह सुखी थी, संतुष्ट थी। इसी प्रकार दिन गुजर रहे थे कि एक दिन सहसा उसका परिचय रेलवे अस्पताल के सिविल सर्जन मिस्टर अम्बालाल से हो गया।

मिस्टर अम्बालाल आयु में तीस से अधिक के न होंगे। बहुत ही मिलनसार और अच्छी प्रकृति के आदमी थे। तबियत के बहुत ही जिन्दा-दिल और अपने पेशे में सुविख्यात। यदि डाक्टरों के 'सर्कल' में मृणाल किसी की योग्यता से प्रभावित थी, तो बस वह मिस्टर अम्बालाल की ही थी। और जब से उसने मिस्टर अम्बालाल का वह रेलवे स्टेशन मास्टर मिस्टर एन्डरसन वाला 'ब्रोकेड-वेनिटी' केस देख लिया था, तभी से उन में उसकी श्रद्धा और अधिक बढ़ गई थी। वे जब कभी मृणाल के यहां आते तो खूब खुल कर बातें करते, जैसी कि उनकी प्रकृति थी—स्वच्छन्द! एक बार बातों ही बातों में मृणाल से उन्होंने कहा था—"जीवन का अर्थ विशुद्ध कर्त्तव्य ही नहीं है, हालांकि वह कर्त्तव्य ही है, जो जीवन को उद्देश्य प्रदान करता है, फिर भी जीवन का मकसद कुछ न कुछ करते रहने में ही नहीं है। जीवन के समस्त सौंदर्य को अनुभव करना और पुञ्जीभूत अनुभवों का उद्घाटन करने पर जीवन को विवश कर देना ही जीना है। कार्य की अधिकता कभी २ घातक सिद्ध होती है, क्योंकि वहां फिर अन्य प्राकृतिक मार्गों का दमन हो जाता है।"

और मृणाल इन शब्दों से बहुत ही प्रभावित हुई थी। मिस्टर अम्बालाल तो चले गये थे, किन्तु उनके ये शब्द उसके हृदय पर यों के यों अंकित हो गये थे, जिन्हें वह कभी न भुला सकी। उन शब्दों का अर्थ तभी से उसके हृदय पर गहरा पैठ गया, इस रूप में कि—सौंदर्य का स्थान दर्शक के नेत्र ही हैं!

और तभी से मृणाल जान पाई थी जीवन का रहस्य—जीवन का अर्थ! मिस्टर अम्बालाल ने जैसे उसे कंटीली और जंगली झाड़ियों से निकाल किसी सुन्दर उपवन में लाकर खड़ा कर दिया था, जहां उसने उसे नये २ फूल दिखाये—रंग-बिरंगे, सुवास से भरे और मस्ती से फूलते हुए फूल! हरी २ क्यारियां, अद्भुत छटा, शोभा, महक, सौंदर्य! सौंदर्य! उसकी भावनायें रंगीन होती चली गईं, नशा उस पर छाता चला गया! सूखे हुए पत्तों पर मानों फिर से बसंत आ गया! उसके मन की सुप्त नारी यौवन से भरी अंगड़ाइयां लेने लगी। उसका सपूर्ण व्यक्तित्व फिर से तृषित हो उठा!

उसे होश नहीं, कब वह चुपके से मिस्टर अम्बालाल की होकर रह गई। उनके सम्मुख वह जितनी

(शेष पृष्ठ ४५ पर)

ओ पपीहे !

श्री रामकुमार चतुर्वेदी

ओ पपीहे ! आज आधी रात क्यों 'पी' को पुकारा ?

मौन अम्बर में घिरी हैं मौन में डूबी घटाएं,
मौन है तंद्रिल पवन भी, मौन में डूबी दिशाएं,
मौन धरती, मौन पर्वत, मौन सरिता का किनारा !
ओ पपीहे ! आज आधी रात क्यों 'पी' को पुकारा ?

सो रहा संसार सारा आंख में सपने बसाये,
गम नहीं, सोते हुए यदि स्वप्न कोई टूट जाये;
जागरण में तोड़ता तू आंख का सपना हमारा !
ओ पपीहे ! आज आधी रात क्यों 'पी' को पुकारा ?

मूर्च्छना से जाग सहसा फिर बहीं ठंडी हवाएं,
ले, बुझने को तृषा तेरी बरसती हैं घटाएं;
किन्तु हम तृष्णा बुझाने का करें किसको इशारा ?
ओ पपीहे ! आज आधी रात क्यों 'पी' को पुकारा ?

जाग कर कल विश्व देखेगा सजल भू की छटाएं,
सब कहेंगे एक स्वर से—'रात बरसी थीं घटाएं;'
पर, बतादे कौन देखेगा हमारी अश्रु-धारा ?
ओ पपीहे ! आज आधी रात क्यों 'पी' को पुकारा ?

श्री रामचन्द्र तिवारी
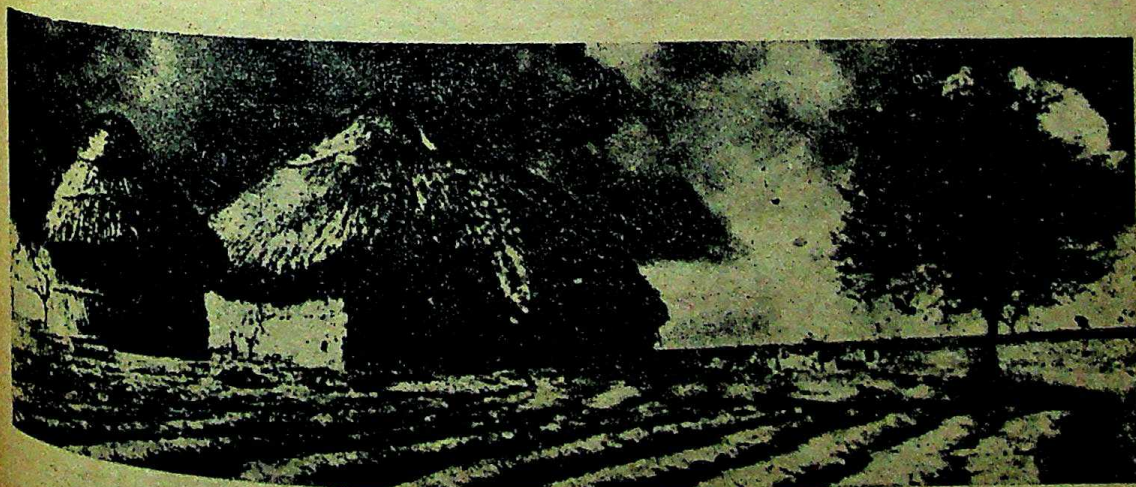
जीवन की ऊंचाई

(अर्थशास्त्र के प्रोफेसर नवीन की बैठक। समय प्रातः। नवीन की अवस्था लगभग ३५ वर्ष। एक गोल मेज, उस पर चाय का सामान, चारों ओर चार कुर्सियां। नवीन खड़ा सामान को सजा रहा है। नौकर टी-पॉट में चाय रख जाता है और फिर खाने का कुछ सामान लाने चला जाता है। बगल के कमरे से साहित्य की प्रोफेसर कुमारी ललिता का प्रवेश। अवस्था ३३-३४ वर्ष।)

नवीन—(मुस्कराकर) कहिये, आपको यहां किसी प्रकार की असुविधा तो नहीं हुई। मैं जो कुछ हूँ, आपके सम्मुख हूँ।

ललिता—(खिलते हुए) सब अत्यन्त सुन्दर है, नवीन जी! आपके यहां किसी प्रकार की असुविधा! और वह भी मुझे? भला बताइये तो यहां कौन-सी वस्तु है जिस पर आपका अधिकार है?

नवीन—(ललिता की ओर बढ़ कर बीच में रुकते हुए) इस कमरे में इस समय जो कुछ है, मैं दावा करता हूँ कि वह सब मेरा है। आप कीजिये इसका प्रतिवाद!

ललिता—शांत, नवयुवक, शांत! इतनी शीघ्रता नहीं। (दोनों हंसते हैं। नौकर का कुछ सामान लेकर प्रवेश और रखकर जाना। ललिता कुर्सी पर बैठते हुए) कहिये, आपके मित्र-बंधु अभी तक नहीं पधारे?

नवीन—आपको मित्रों की चिंता क्यों है, मिस ललिता? क्या मैं कम रोचक हूं?

ललिता—क्षमा कीजियेगा, नवीन जी, मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं था।

नवीन—आप एक पहेली हैं। मेरे एक परम विद्वान् मित्र कहा करते हैं कि नारी के विषय में सोचना मूर्खता है। वह उपयोगी है, बस यही उसका परिचय है।

ललिता—(चैतन्य होकर) क्या आप भी उनके विचारों से सहमत हैं? तब तो हमें आगामी वर्षों से विशेष आशा न करनी चाहिये!

नवीन—मेरी रानी, निराश न होइये। निराशावादिता काव्य-क्षेत्र में सुन्दर हो सकती है, पर जीवन में मुझे उससे भय लगता है। आप मुझ पर दया कीजिये; उसे मुझसे दूर रखिये।

ललिता—(गंभीरता से) जी!

(शीला और इन्द्रनाथ का प्रवेश)

शीला-इन्द्रनाथ—नमस्ते, नमस्ते!

नवीन—आइये, आइये! नमस्ते जी, नमस्ते!

इन्द्रनाथ—(ललिता की ओर निहारते हुए) जी!

नवीन—हां, सर्वप्रथम आप लोगों का परिचय। ये हैं इन्द्रनाथ.........।

शीला—मुझे आपत्ति है, महोदय, लेडीज फर्स्ट!

नवीन—क्षमा कीजियेगा। आप भी क्षमा कीजियेगा, इन्द्रनाथ जी। (शीला की ओर संकेत करते हुए) ये हैं हमारी साथिन कुमारी शीला।

ललिता—आपकी साथिन? क्या मतलब?

नवीन—मेरा मतलब है कामरेड मिस शीला।

ललिता—ओः, क्षमा कीजियेगा।

(दोनों हाथ मिलाती हैं)

नवीन—(इन्द्रनाथ की ओर संकेत करते हुए) और आप हैं श्री इन्द्रनाथ, इंजीनियर। आप ने देश के उत्थान के लिये एक अत्यंत विशद योजना बनाई है। (ललिता की ओर संकेत करते हुए) और आप हैं प्रोफेसर—अभी कुमारी—ललिता।

शीला—ओ, आपकी भावी पत्नी! (ललिता से) बड़ी प्रसन्नता हुई आप से मिल कर। (दोनों फिर हाथ

आजकल देश के जीवन-स्तर को ऊंचा करने की खूब चर्चा है। लेकिन जीवन का ऊंचा स्तर है क्या? क्या पार्थिव सुविधायें अधिक प्राप्त हो जाने से ही जीवन-स्तर ऊंचा हो जाता है? क्या जीवन में सिद्धांत ही सब कुछ हैं? इन प्रश्नों का उत्तर इस एकांकी में मिलेगा।

मिलाती हैं) कब पधारीं आप?

ललिता—मैं कल आई। आप लोगों से भेंट का सौभाग्य! (ललिता चाय बनाने के लिये हाथ बढ़ाती है) यह मेरा अधिकार है।

शीला—अभी नहीं, प्रोफेसर ललिता। लाइये, इधर दीजिये टी-पॉट। (चाय उंडेलते हुए) कहिये, आप की यात्रा तो सानन्द.........?

ललिता—यात्रा! और वह भी रेल की यात्रा! बस, कुछ न पूछिये। इतना केन्द्रीभूत कष्ट मैंने कहीं नहीं देखा। हमारी अवस्था निःसन्देह दयनीय है। कई बार तो देशवासियों की पीड़ा और विवशता का अनुभव कर मेरे आंसू निकल पड़ते हैं।

शीला—बड़ा कोमल हृदय है आपका! देश की समस्या सरल नहीं है, अत्यंत जटिल है। मेरे विचार से आंसुओं से उसका समाधान नहीं होगा।

ललिता—दुर्बल साधनहीन मानव और कर ही क्या सकता है!

नवीन—(शीला से) साथिन, बात लौट-फिर कर जहाज के पंछी की भांति वहीं आ जाती है। जब तक हम लोग अपने जीवन को ऊंचे स्तर पर उठा कर नहीं ले जाते, देश की कोई समस्या हल होने की नहीं।

शीला—आप ठीक कहते हैं, प्रोफेसर। देश का हिमालय जितना ऊंचा है, हमारा जन-जीवन उतना ही नीचा है। चाय को ही लीजिये। हम संसार में, कहा जा सकता है कि सब से अधिक चाय उत्पन्न करते हैं; फिर भी कठिनता से सब देशवासी उसे पी पाते हैं; जब कि इंगलैंड में वह दिन में चार-चार पांच-पांच बार पी जाती है।

इन्द्रनाथ—(प्याला मुख से हटा कर) भई, जीवन की ऊंचाई कोयले के धुएं और लोहे के शहतीरों पर ही टिक सकती है, और वह कार्य इंजीनियर का है।

शीला—जीवन का स्तर क्या खाक ऊंचा उठेगा, मेज पर बीयर तक तो है नहीं।

इन्द्रनाथ—मिस शीला, मेरे कल्पित भारत में तो प्रत्येक पांचवें व्यक्ति के पास एक मोटर होगी। उसे पूर्ण करने के लिये सरकार की ओर से इन्जीनियर को सब प्रकार का प्रोत्साहन मिलना चाहिये।

शीला—मैं आशा करती हूं कि मेरा नम्बर पांचवां अवश्य होगा। पार्टी के काम के लिये किराये में बहुत पैसा गंवाना पड़ता है, कष्ट होता है सो अलग। पर प्रश्न यह है कि मोटर का होना प्रारम्भ कैसे हो?

नवीन—प्रिय साथिन, अर्थशास्त्री की हैसियत से मैं आपके प्रश्न का अपनी सम्पूर्ण शक्ति से समर्थन करता हूँ। मोटरें हों भी तो चलेंगी कैसे? देश में पेट्रोल है कहां? सच पूछिये तो कभी कभी मुझे बड़ी झुंझलाहट होती है कि मैं ऐसे देश में उत्पन्न क्यों हुआ, जिसमें पेट्रोल और मिट्टी का तेल तक नहीं है।

शीला—तभी तो मैं कहती हूँ कि हमें प्रगतिशील सरकार चाहिये। जो सरकार देश की उन्नति चाहेगी, वह पेट्रोल का प्रबंध करे बिना कैसे रहेगी? हां प्रोफेसर ललिता, आप मौन क्यों हैं?

ललिता—(सिर को संभाल कर सीधा करते हुए) मैं सोच रही थी।

इन्द्रनाथ—काम तो बुरा नहीं है!

शीला—क्या सोच रही थी आप?

ललिता—कुछ नहीं, ऐसे ही एक विचार आ गया था।

इन्द्रनाथ—आप ठहरीं साहित्य की प्रोफेसर, आप का विचार निःसन्देह महत्वपूर्ण होगा। आप हमें उससे लाभ उठाने का अवसर दीजिये।

ललिता—इन्जीनियर महोदय, वह विचार आप लोगों के स्तर का नहीं है—न विचार ही महत्वपूर्ण है और न वह व्यक्ति जिससे वह सम्बद्ध है। जो महत्व-

पूर्ण नहीं, उस पर हम लोगों को समय न लगाना चाहिये। मैं समय को भी इन्वेस्टमेंट समझती हूँ।

शीला—हम आपका विचार अवश्य सुनना······।

नवीन—सकुचाइये नहीं, कह डालिये !

इन्द्रनाथ—मेरी प्रार्थना है········।

ललिता—मैं अपने मामा के विषय में सोचने लगी थी। जब कोई जीवन के विषय में बात करता है तो मुझे उनका ध्यान अवश्य आ जाता है।

शीला—किस आफिस में काम करते हैं वे ?

इंद्रनाथ—आप जैसी विदुषी के मामा सा'ब को अत्यन्त विचारवान् पुरुष होना चाहिये। मैं शर्त लगाता हूं कि वे एक महान् कलाकार या इंजीनियर हैं।

ललिता—मैं·····।

नवीन—सकुचाइये नहीं।

ललिता—मित्रो, मेरे मामा आफिस में भी काम कर सकते थे, इंजीनियर भी हो सकते थे; पर वे दोनों में से एक भी नहीं हैं। जाने दीजिये इस विषय को। आप जैसे उन्नत स्तर के व्यक्तियों के योग्य यह नहीं है।

शीला—मैं कहती हूँ कि आपके मामा जमींदार हैं। यह ठीक है कि ये भूमिपति किसानों का रक्त-पान कर गुलछर्रे उड़ाते हैं और उनके प्रति मेरी तनिक भी सहानुभूति नहीं; पर मैं न व्यक्ति से घृणा करती हूँ, न समाज के साधनों से। हां, आप बताइये कि आपका विचार·····।

ललिता—मेरे मामा शोषक-वर्ग के नहीं, शोषित समुदाय के सदस्य हैं। वे साधारण लघु किसान हैं। मैं उन्हीं की जीवन-ऊंचाई का अनुमान लगा रही थी।

नवीन—क्षमा कीजियेगा, कुमारी ललिता, हमारे गांव के लोग—मैं मूर्ख तो नहीं कहूँगा, परन्तु बुद्धि के सम्पर्क से एक शब्द बनता है 'बुद्धू', वही वे लोग हैं। प्रोफेसर साहिबा, हम यदि जीवन को एक सिद्धांत के अनुसार जीना प्रारम्भ कर दें तो सब कठिनाइयां दूर हो जाती हैं। हमें जीवन की कुछ फिलासफी को समझ लेना चाहिये। सिद्धांत कहता है कि जीवन के स्तर को ऊंचा उठाने के लिये हमें अपनी आवश्यकतायें बढ़ानी चाहियें। आवश्यकताओं में वृद्धि होते ही दूसरा सिद्धांत क्षेत्र में आ जाता है—'आवश्यकता आविष्कार की जननी है।' आवश्यकता बढ़ाइये, आविष्कार हो जायेंगे, आप खटाखट जीवन के स्तर को ऊंचा उठाते जायेंगे।

ललिता—एक किसान को विद्वानों की इस महान सभा में प्रविष्ट करा के मैंने अपराध अवश्य किया है। पर मैं अब समझती हूँ कि यह जानना आवश्यक हो गया है कि जीवन-स्तर का अर्थ क्या है ? मैं जब अपने मामा के विषय में सोचती हूँ तो अनुभव करती हूँ कि उन्हें वस्त्रों की आवश्यकता है, औषधियों की आवश्यकता है, अधिक न सही पर थोड़े विश्राम की भी आवश्यकता है। हमारी तरह क्रीम-पाउडर की आवश्यकता यद्यपि उन्हें अभी नहीं अनुभव हुई है, फिर भी मैं देखती हूँ कि इतनी आवश्यकतायें होते हुए भी उनके जीवन का स्तर ऊंचा नहीं उठा। उन्होंने कोई आविष्कार भी नहीं किया। वे जहां थे, वहीं हैं—कदाचित् कुछ नीचे और गिर गये हैं।

शीला—यह तो आप ऐसी बात कह रही हैं, जिस पर विश्वास सरलता से नहीं किया जा सकता। सन् १८८० में हमारी औसत आय २०) थी, आज वह १००) है। कुछ वस्तुयें जो पहिले व्यसन थीं, आज आवश्यकतायें बन गई हैं। भारत का जीवन-स्तर ऊंचा उठा है, इस में सन्देह नहीं।

इंद्रनाथ—क्या मार्के की बात कही है साथिन ने ! हमें तथ्यों को पकड़ना चाहिये, तथ्यों को, प्रोफेसर साहिबा ! नवीन होते हुए भी आप अपने को पुरातन के चंगुल से मुक्त नहीं कर पाई हैं।

ललिता—नवीन और प्राचीन शब्दों की झिलमिलाहट में मैं अपने नयन मूंदना नहीं चाहती। मैं आपको एक तथ्य देती हूँ—एक व्यक्ति है, जिसके पास सिद्धांत के अनुसार बहुत-सी अपूर्ण आवश्यकतायें हैं। उसका जीवन-स्तर ऊंचा क्यों नहीं होता ?

शीला—यह तो हमारी जीर्ण सामंती और पूंजीवादी व्यवस्था का दोष है।

ललिता—क्षमा कीजिये, मैं अपने प्रश्न का सीधा उत्तर चाहती हूं।

शीला--वही तो, जीवन के साधनों का अनुचित [वि]तरण ही उसका कारण है।

ललिता - तब तो, जहां तक मैं समझती हूँ, [केवल] आवश्यकताओं को बढ़ा कर ही जिंदगी ऊंचे [नहीं] उठेगी। उसके साथ कुछ और भी चाहिये। कदा-[चित्] यह भी चाहिये कि अपने जीवन की आवश्यक-[ताओं] को बहुत कुछ कम करें।

नवीन—मैंने कहा था, आवश्यकता होगी तो [उत्]पादन होगा; उत्पादन होगा तो वितरण होगा ही; [उससे] जीवन का धरातल उठेगा।

ललिता—कागज पर सिद्धांत सही हो सकता है, [व्यव]हार में भी सत्य हो सकता है। परन्तु यह भी आपने कभी [सो]चा कि आवश्यकता के अनुभव होने और उसकी [पू]र्ति होने में समय का व्यवधान है। मेरे मामा के [वि]षय में यह तत्व अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मैं पिछले [प]च्चीस-तीस वर्ष से उनकी आवश्यकताओं को वैसी [की] वैसी अचल देख रही हूँ। मैं पूछना चाहती हूं, [क्या] आपकी इच्छा है कि मैं आज नवीन आवश्यकता [अपना] आगामी जीवन में उसकी पूर्त्ति की आशा करूं?

शीला—मिस ललिता, आप की बातें पराजय-[वा]दी की बातें हैं। हमें जीवन से जूझना चाहिये। आवश्यकता और उसकी पूर्त्ति में समय का अन्तर वास्तव में अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस काल में मनुष्य के भीतर दैवी असन्तोष का उदय होता है। यह दैवी असन्तोष उसे अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने और आवश्यकतायें पूर्ण करने के लिये प्रेरित करता है। [ह]में इससे घबराना नहीं चाहिये।

नवीन—हमारे जीवन के सिद्धांत को मरदाना [ब]नना होगा, मरदाना।

इंद्रनाथ—आप ठीक कहते हैं, प्रोफेसर।

ललिता—आप लोग मानेंगे नहीं। आप के दैवी असन्तोष का दानवी नर्त्तन बीसवीं शती अपने बालपन से देखती आई है और नयन मूंदने तक देखती रहेगी। आप यह न भूल जाइये कि अति पूजन से देवता [दा]नव बन जाता है। अपढ़ लोग इस बात को अधिक अच्छी तरह समझते जान पड़ते हैं। इसीलिये वे देव और दानव का प्रयोग एक ही अर्थ में करते हैं।

नवीन—क्षमा कीजियेगा, आप अर्थ-शास्त्र के सिद्धांत से बहक रही हैं।

ललिता—मैं सम्पूर्ण जीवन की बात कर रही हूँ। जीवन से कट कर किसी भी शास्त्र का कोई महत्व नहीं है। अध्ययन की सुविधा के लिये ही उनका बिलगाव आवश्यक है; पर जब वे जीवन में योग दें तो सब का संयोग होना चाहिये। अर्थ-शास्त्र जीवन की सम्पूर्णता नहीं है, यद्यपि वह उसके बहुत बड़े दृश्य भाग का शासन करता है।

नवीन—(मेज पर झुक कर) तो फिर आप जीवन-स्तर की ऊंचाई नापने के लिये कौन-सा पैमाना प्रयोग करना चाहती हैं?

ललिता—हमें विचारना दूसरी ओर से प्रारम्भ करना होगा। हम सब सहमत होंगे कि प्रत्येक व्यक्ति जीवन में सुख उपार्जन करना चाहता है और प्रत्येक समाज सुखी समाज होने की निरन्तर चेष्टा कर रहा है।

शीला—जी अच्छा, आप आगे कहिये। मैं जानती हूँ कि आप जीवन में पुरातन मूल्यों की बात उठायेंगी और नवीन प्रगति के मार्ग में दीवार खड़ी करना चाहेंगी।

ललिता—मैं पहिले आपकी इसी शंका का शमन कर लूं, तब अपनी बात को आगे बढ़ाऊंगी।

शीला—हुँ, कहिये।

ललिता—इतिहास का अध्ययन, यदि उसका कुछ अर्थ हो, तो बताता है कि मनुष्य शक्ति का उपासक है। वह अधिकाधिक सत्ता चाहता है। जिस युग में जो ज्ञान उसे प्राप्त था, उसने उसे सदैव शक्ति में रूपान्तरित कर डाला है। उसकी इस प्रवृत्ति को कोई रोक नहीं सकता। यदि आज हम उस ज्ञान से उपार्जित उत्पादन के साधनों की ओर पीठ मोड़ना चाहें, तो वह मुड़ी नहीं रहेगी, मुड़ ही नहीं सकेगी। यह बात विध्वंस के साधनों के विषय में भी है। जिसे आप प्रगति कहती हैं, यदि उसका अर्थ नवीनतम उत्पादन-साधनों का उपयोग है तो मैं उसका विरोध कर ही नहीं सकती।

इंद्रनाथ—किन्तु, प्रोफेसर साहिबा, आपकी भांति जो बातें करते हैं, वे कभी पूर्ण हृदय से नवीन प्रगति का साथ नहीं दे सकते।

शीला—हां, मिस ललिता, आप पुरातनवादिता को नवीनता का चोला पहिना कर जीवित रखना चाहती हैं। यह असम्भव है। युग बदल गया है, मूल्य बदल गये हैं। वायुयान के इस युग में आप तो कछुवे की बात कहती हैं।

ललिता—शीला बहिन, इसका……।

शीला—बहिन नहीं, साथिन कहिये।

ललिता—ओः हां, मैं तो भूल ही गई, आप तो……खैर, मैं कहती हूँ कि यदि वायुयान से भी वेगवान वाहन मनुष्य के हाथ आ जाये तो वह उसका उपयोग अवश्य करेगा। वह यदि स्वयं अपने को नहीं रोकेगा तो उसे कौन रोकेगा? पर यह भी सच है कि वायुयान के जन्म से कछुवे का वंश निर्मूल नहीं हो गया है। वायुयान के नीचे वह भी सदैव भूमि पर रेंगता रहेगा।

नवीन—फिर आप……।

ललिता—ठहरिये। मैं कहना चाह रही थी कि मुख्य प्रश्न यह है कि हम उन साधनों का प्रयोग किस ध्येय से करें। यहां जब ध्येय की बात उठती है तो यह बात भी उठती है कि हम सब के जीवन का ध्येय क्या है? मैं न धर्मोपार्जन पर विश्वास करती हूँ और न पुरातन परिभाषित मोक्ष को ही मनुष्य के जीवन का ध्येय मानती हूं। मैं पूछती हूँ कि मानव-जीवन का सीधा-सादा ध्येय क्या है?

नवीन—वह अपना जीवन आनन्द से बिताना चाहता है।

ललित—यदि मैं कहूं कि वह जीवन में सुख चाहता है तो आपको आपत्ति तो न होगी?

शीला—कहिये, कहिये। आप दकियानूसियत का समर्थन बड़ी योग्यता के साथ कर रही हैं। पर मैं आप को विश्वास दिलाती हूँ कि हम लोगों ने इन थोथे तर्कों के महल को चकनाचूर कर दिया है।

ललिता—मैं……।

इंद्रनाथ—हां, कहिये, कहिये।

ललिता—मैं निवेदन करना चाहती थी कि यदि हम मान लें कि सुख ही जीवन का लक्ष्य है, तो यह सरलता से कहा जा सकता है कि जिस देश की जन-संख्या का सब से अधिक भाग सुखी है, उसी का जीवन-स्तर सब से ऊंचा है।

शीला—(सव्यंग्य) वाह, क्या बात कही है! इस के पश्चात् आप कहेंगी कि सुख की जड़ संतोष है और देश में संतोष की खानि है, इसलिये पुरातन पुण्यभूमि भारत का जीवन-स्तर संसार के सब देशों से ऊंचा है। क्यों न इन्जीनियर?

इंद्रनाथ—प्रोफेसर ललिता की बातों में इस प्रकार की आशंका छिपी तो है।

ललिता—जब मैं रोग-शोक को अपने चारों ओर उमड़ता देखती हूं तो कैसे कह सकती हूँ कि देश सुखी है और जब देश में सुख नहीं है तो उसका जीवन-स्तर नीचा होगा ही।

नवीन—(शीला से) प्रिय साथिन, मैं समझता हूं कि मिस ललिता से हमें विशेष आशंका नहीं करनी चाहिये। हां ललिता जी, आप……।

ललिता—हम इस विषय को छोड़ें तो अच्छा?

इंद्रनाथ—क्षमा कीजियेगा, आप हम लोगों को ठीक समझ नहीं पाईं। अरे भई नवीन, थोड़ी चाय और मंगवाओ।

शीला—हां, खूब याद दिलाया; हम लोग देश की समस्या के महान समाधान में जुटे हुये हैं, नवीन जी। आप देश के अर्थ-शास्त्र के प्रोफेसर हैं। चाय पिलाइये, यह हमारी मांग है। आपको पूरी करनी होगी।

नवीन—नहीं तो?

इंद्रनाथ—नहीं तो हम लोग हड़ताल कर देंगे और यह समस्या आपकी बैठक में अकेली खड़ी रह जायेगी। क्यों प्रोफेसर ललिता, इस विषय में हम सब कर्मियों को मिल कर रहना चाहिये।

ललिता—मैं तो दुर्बल व्यक्ति हूँ, इसलिये सदैव बहुमत के साथ हूँ।

नवीन—लड़के, लड़के!

लड़का—जी! (प्रवेश)

नवीन—चाय !

लड़का—जो आज्ञा । (प्रस्थान)

नवीन—मिस ललिता, आप जीवन में सुख चाहती हैं, पर चाय के अभाव में वह प्राप्त नहीं । और यह निःसन्देह अर्थ-शास्त्र से शासित है ।

ललिता—प्रोफेसर, मैंने यह तो नहीं कहा कि सुख पार्थिव सुविधाओं के अभाव में सम्भव है । पार्थिव सुविधायें सुख की बहुत बड़ी साधन हैं, दृश्य के बहुत बड़े भाग को वे ढंक लेती हैं; पर सुख को सम्पूर्णता से नहीं ।

इंद्रनाथ—यह मैं मानता हूँ कि सुख में सामाजिकता-जन्य अन्य कितने ही तत्व सम्मिलित हो जाते हैं। सुख पेशियों का नहीं, स्नायविक अनुभव है। मस्तिष्क को उसका बोध होता है ।

शीला—इंजीनियर महाशय, आप भी फिसलने लगे।

(लड़का चाय रख जाता है ।)

इंद्रनाथ—नहीं साथिन, यह फिसलने की बात नहीं है। मैं अपने जीवन को देखता हूँ। अर्थ विशेष में मेरे जीवन का स्तर लाखों क्या करोड़ों से ऊंचा है, पर मैं सुखी नहीं हूँ। मुझ से कम योग्यता और परिश्रम का फल एक अन्य व्यक्ति को मुझ से अधिक मिलता है और ऐसी विषमता मुझे रह रह कर कुरेदती रहती है।

नवीन—कभी कभी मुझे भी लगता है कि यह सब एक जंजाल है । पढ़ाना क्या ? क्लास में भाषण देकर मैं कौन बड़ा काम करता हूँ ? यह झक-झक क्यों ? पर यह विचार कभी कभी ही आता है और तब मैं सिद्धांत का आश्रय लेता हूँ। मैं कहता हूँ कि यह विचार अशुद्ध है। संसार से भागना कायरता है। कभी कभी लगता है कि मैं अपने में से कुछ दे डालूं, पर समझ में नहीं आता कि क्या है जो मुझे तज जाने के लिये लालायित हो उठता है। जीवन में कितनी ही अस्पष्ट भावनायें हैं, पर उनकी छाया से हमें अपने आदर्शों को धुंधुला न होने देना चाहिये। जीवन की टेढ़ी पगडण्डी पर चलने के लिये हमें सिद्धांत को पकड़े रहना होगा।

शीला—मैं देखती हूँ कि दुर्बल-हृदयता आप लोगों में उभरती आ रही है । सावधान ! आप लोगों के हाथ में देश और समाज का भविष्य है, सिद्धांतों की प्रतिष्ठा है, उनके साथ विश्वास-घात न कीजिये ।

ललिता—सीधी-सी बात यह है कि व्यक्ति के जीवन में राईभर दीखने वाला मनोवैज्ञानिक तत्व सुमेरु-से आर्थिक तत्व को किसी भी क्षण निगल जा सकता है। आर्थिक तत्व मानसिक तत्व के हाथ में साधन है, वह साध्य नहीं। सुविधायें साधन हैं; साध्य वही है, जिसे हम सुख कहते हैं ।

शीला—आपका तात्पर्य क्या है ? हम जहां हैं क्या वहीं पड़े पड़े सुख-संतोष की कल्पना करें ?

ललिता—कदापि नहीं । तात्पर्य यही है कि जब हम जीवन-स्तर की ऊंचाई नापने चलें तो पार्थिव सुविधाओं के अंकों में नहीं, वरन् सुख के अंकों में नापें ! यदि एक समाज के व्यक्ति रोग-शोक-रहित सुखी हैं तो पार्थिव सुविधायें चाहे कुछ कम भी हों, मैं मानूंगी कि उसका जीवन-स्तर उस समाज से ऊंचा है, जिसमें पार्थिव सुविधाओं की तो भरमार है, पर मानवीय तत्वों के विकास के लिये कहीं गुंजाइश नहीं रह गई है, मनुष्य मशीन बन गया है। जीवन-स्तर मनुष्य का होता है, मशीन का नहीं।

इंद्रनाथ—मिस ललिता, मैं आपके कथन को एकदम असत्य नहीं कहता। मेरा अनुभव है कि निरंतर मशीन पर काम करने वाला मशीन बन जाता है। उसकी आत्म-निर्भरता जाती रहती है। वह किसान की भांति मुसीबतों से टक्कर नहीं ले सकता। किसान को जीवन का जो अनुभव होता है, वह मजदूर को प्राप्य नहीं।

ललिता—आप सत्य कहते हैं, इंजीनियर। किसान की पार्थिव सुविधायें दिशा विशेष में कम हो सकती हैं, पर सुख उसके पास पर्याप्त होता है। उसका जीवन आपेक्षिक रूप से कहीं अधिक सम्पूर्ण होता है। उसके मनुष्य में पशु का मिश्रण हो सकता है, पर हृदयहीन लौह-मशीन का नहीं।

शीला—(सव्यंग्य) आप चाहती हैं कि सब लोग किसान बन जायें ?

ललिता—यह तो मैंने नहीं कहा; यद्यपि वह आदर्श समाज होगा, जहां खेती और उद्योग जीवन में संतुलित हो साथ-साथ चलते हों।

शीला--यह तो मैं पहिले ही जानती थी कि अंत में वही दकियानूसी बात निकलेगी।

ललिता--मैं आप से एक सीधा प्रश्न पूछती हूं। क्या आप चाहती हैं कि प्रोफेसर नवीन के मकान पर बम बरसें ?

शीला--आपका प्रश्न विषय से बाहिर है।

ललिता—नहीं साथिन, वह विषय के अंतर्गत ही है। क्या आप चाहती हैं कि हम बीस वर्ष जितना रचनात्मक कार्य करें, इक्कीसवें वर्ष परमाणु बम उसकी धज्जियां उड़ा दे, अथवा कीटाणु बम उसके भोगने वालों का सम्पूर्ण संहार कर डाले ? अपनी चाल से यूरोप ने यही पाया है। क्या हम वही अनुभव प्राप्त करने के लिये इतने लालायित हैं ?

नवीन--हुँ !

ललिता—हम एक प्राचीन संस्कृति के उत्तराधिकारी हैं। अंधों की भांति हमें भागना नहीं है। हमने कृष्ण, बुद्ध, अशोक और गांधी को जन्म दिया है। हमारा दायित्व महान है। हमारे ऊपर मानवता के पंचमांश का दायित्व है। हमें गंभीरता से अपने कंधे उसके नीचे लगाने चाहियें। एशिया के बहुत से देश हमारी जीवन-नीति को उत्सुकतापूर्वक देख रहे हैं। आज पाश्चात्य जगत् में विश्लेषित सिद्धांतों का अनथक संघर्ष हो रहा है। पूर्वी एशिया में संश्लिष्ट मानवता डगमगा कर पुनः स्थिर होने की चेष्टा कर रही है। हम सिद्धांतों का उपयोग जीवन को अधिक संतुलित और सौंदर्यवान् बनाने में करें; जीवन को उनकी चरम सीमा पर खींच ले जाने के प्रयत्न में खण्ड खण्ड न कर डालें।

शीला—आप प्रोफेसर हैं और अपनी योग्यता के अनुरूप ही आपने बड़े सुन्दर शब्दों का प्रयोग किया है, पर यह आप स्वयं जानती हैं कि ये सब बातें निरर्थक हैं। आप······।

इंद्रनाथ—(बात काट कर) मेरा आप से मतभेद है, साथिन।

ललिता—आप मेरी बात को पूरी तरह समझी नहीं हैं, साथिन। मेरा अभिप्राय यह है कि हमारे पास जितनी सुविधायें हैं, उनका वितरण ऐसा हो कि देश-काल के अनुसार वे सब को उचित मात्रा में प्राप्त हो जायें, अधिक सुविधायें बनें और वितरित हों। उनको लेकर व्यक्ति व्यक्ति में ऐसा भेद न उत्पन्न होने पाये कि वह दुःख की सृष्टि करे और हमारे जीवन-स्तर को नीचे गिराये। यह वितरण की क्रिया भी इस प्रकार सम्पादित होनी चाहिये कि उसमें कम से कम दुःख उत्पन्न हो।

शीला—आपकी बात कहने सुनने में अच्छी लगती है। पर जब आप विशेष अधिकार भोगने वाले व्यक्ति से उन अधिकारों को छीनियेगा, तो क्या उसे दुःख नहीं होगा ?

ललिता—शीला साथिन, आप भूल रही हैं कि दुःख पार्थिव नहीं, मानसिक तत्त्व है। व्यक्ति हंसते-हंसते सूली पर चढ़े हैं, जीवित अग्नि में जले हैं, पिटे हैं, यातनायें सही हैं और चेहरे पर मुस्कान रही है। साथिन, मुस्कान पेशियों की भंगिमा मात्र नहीं है।

इंद्रनाथ--आपका तात्पर्य क्या है ? क्या आप······।

ललिता--तात्पर्य यह है कि हम अपने कार्यों में जो सामाजिक-मानसिक हैं, आर्थिक-राजनीतिक साधनों से कभी सफल नहीं होंगे। पर यदि समाज-शास्त्र और जीवन-कला के मार्ग से आर्थिक-राजनीतिक ध्येयों की ओर बढ़ेंगे तो हमें जितनी सफलता मिलेगी, वह एक दृढ़ आधार पर स्थापित होगी।

शीला—आपका मंतव्य स्पष्ट नहीं, न वह हो ही सकता है, क्योंकि आपने कभी जीवन के विश्लेषणात्मक अध्ययन की ओर ध्यान ही दिया नहीं जान पड़ता।

ललिता—मैं समस्या को समझने की ही दृष्टि से विश्लेषण को महत्व देती हूँ, उससे आगे नहीं। प्यास न विश्लेषित हृद्रजन से बुझती है और न विश्लेषित ओषजन से; उसे तो दोनों का संयुक्त तत्व जल ही बुझाता है। हमारे जीवन में हृदय सो गया है। हमें उसे जगाना होगा। संयम को लाना होगा। बलिदान को लाना होगा। एक दूसरे के लिये सहना होगा। तभी हम जीवन के उच्च स्तर के अधिकारी होंगे। मेरी साथिन, आपके पंगु सिद्धांत जो नारे कहते रहें, तथ्य यह है कि संसार में उसी देश का जीवन-स्तर आज भी ऊंचा है, जिसके निवासी एक

दूसरे के लिये अधिकाधिक बलिदान कर सकें हैं।

शीला—मैं.....।

इंद्रनाथ—पर प्रोफेसर ललिता, समाज में आप यह अवस्था उत्पन्न कैसे कर सकती हैं ?

ललिता—प्रचार द्वारा। यदि हिटलर और उसके वंशज प्रचार के माध्यम से काले को सफेद बना सकते थे, तो हम भी वैज्ञानिक प्रचार के बल से अपने देश के जीवन-स्तर को ऊंचा उठा सकते हैं। लोकमत विषमताओं के निराकरण का सब से अच्छा साधन है।

नवीन—पर यह तो अत्यन्त व्ययसाध्य होगा।

ललिता—यही मुझे खेद है। हम व्यसनों पर व्यय कर सकते हैं, एक दूसरों को गाली देने पर व्यय कर सकते हैं, घूंस और जुआ-चोरी पर व्यय कर सकते हैं, व्यर्थ के शस्त्रास्त्रों पर व्यय कर सकते हैं; पर जो सब का ध्येय है और जिसके औचित्य को सब मानते हैं, उस पर व्यय नहीं करना चाहते।

नवीन—मैं पूर्णतया आप से सहमत नहीं हो सकता। सिद्धान्त को इस प्रकार...

इन्द्रनाथ—हमें चिन्तित न होना चाहिये। हमने अपना काम पूरा कर दिया। अकबर ने कहा है—'लीडर को रंज है, मगर आराम के साथ।' आराम भई, सब से प्रथम वस्तु है।

ललिता—(नवीन से) क्या आप वास्तव में सिद्धान्तों के इतने भक्त हैं ?

नवीन—प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य सिद्धान्तों का भक्त होगा। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि सिद्धान्तों को निर्ममतापूर्वक लागू करके ही मनुष्य की अवस्था सुधारी जा सकती है।

शीला—नवीनजी, छोड़िये भी अब इस विवाद को। असल बात तो रह ही गई। मिस ललिता और आप दोनों इस समय यहां उपस्थित हैं; बताइये दावत कब होगी ?

नवीन—(ललिता से) बताइये आप, मैजिस्ट्रेट को सूचना देनी होगी। मेरा विचार है कि उसे घर पर ही बुलाया जाये।

इन्द्रनाथ—यही उचित है।

नवीन—(ललिता से) बोलिये, बोलिये न !

ललिता—मैं यहां विवाह का निश्चय करके अवश्य आई थी, पर अब मेरा निश्चय हिल गया है। मैं थोड़ा और समय चाहती हूं।

नवीन—(घबरा कर) क्यों ?

ललिता—आपके और मेरे विचारों में जो अन्तर अभी अभिव्यक्त हुआ है, उससे मुझे सोचना पड़ेगा।

नवीन—कोई विशेष अन्तर तो नहीं है।

ललिता—अन्तर है और गम्भीर है। मैं हृदयवादिनी हूँ, आप सिद्धान्तवादी हैं; मैं संयोग में विश्वास करती हूँ, आप विश्लेषण में; मेरे लिये संयम और बलिदान जीवन के प्रासाद की आधार-शिलायें हैं, आपके लिये...

शीला—यह तो अत्यन्त मौलिक अन्तर है, प्रोफेसर ! आपको भी सोचना चाहिये। विवाह का दायित्व बड़ा होता है।

नवीन—ललिता, मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि मेरे तुम्हारे विचारों में कोई अन्तर नहीं है।

ललिता—प्रोफेसर, मैं इसी प्रचार-कार्य के लिये अपनी नौकरी से त्यागपत्र देने का निश्चय कर चुकी हूँ। मैं नहीं चाहती कि आप...

नवीन—मैं उस प्रचार-कार्य में तुम्हारा साथ दूंगा, ललिता। इससे बड़ा सौभाग्य मेरा और क्या होगा !

ललिता—पर आपके सिद्धान्त ?

नवीन—सिद्धान्त ? भाड़ में जायें सिद्धान्त। मैं सिद्धान्तों के लिये नहीं जीता। मैं उनका बन्धन नहीं मानता। मैं तुम्हारे साथ जीना चाहता हूँ। बोलो, किस दिन ? इन मित्रों को निमन्त्रण देना है न हम दोनों ने...

(आंखों में मनुहार और याचना भरे ललिता की ओर देखता है। कुछ क्षण बाद ललिता के चेहरे की दृढ़ता स्वीकृति-सूचक मुसकान में बदल जाती है।)

शीला—(जोश में आकर खड़ी हो जाती है) देखिये प्रोफेसर, आप सिद्धान्तों के साथ खिलवाड़ न कीजिये। उनका अपमान करने से वे आपके जीवन का विनाश कर डालेंगे। मैं समझती थी कि आप में दृढ़ता है, पौरुष है, बल है; पर आज ज्ञात हो गया है कि इस विशाल काया के पीछे निराश, पराजित, दुर्बल मानव छिपा है, जो नारी के लिये अपनी आत्मा के रक्त से चिर पूजित देवताओं तक को ठुकराने को तैयार है। प्रोफेसर......

(ललिता और नवीन एक दूसरे का हाथ पकड़े मुस्कराते हैं।)

पर्दा गिरता है।

अपनी ममता

श्री 'शलभ'

श्यामल रजनी, घन-श्याम गगन,
झरतीं बूंदें ले चंचलता !

उत्ताप उष्णता से आकुल
लघु जीवन की भावुक चुलबुल
जितनी असंख्य
उतनी बूंदें
भरती उर-सागर निश्छलता !
झरतीं बूँदें ले चंचलता !

मिट्टी फिर से जीवित होती,
ये बिखर रहे उस पर मोती
मानस-नीरद के
सजल, सरल
मृन्मय सीपी की सुंदरता !
झरतीं बूंदें ले चंचलता !

घन-तड़ित लास गर्जन करता,
चुपचाप हृदय मेरा डरता,
खलते मुझको
केवल ये दो—
एकाकी पल, यह नीरवता !
झरतीं बूंदें ले चंचलता !

धुलती कलियों की रूप-गंध,
मेरे लोचन के शिथिल बंध,
बह चली यमुन
सुधि मधुर उमड़—
जग को देने अपनी ममता !
झरतीं बूंदें ले चंचलता !

कहानी

रधिया

सुश्री शांति गुप्ता बी० ए०, बी० टी०

रधिया घास खोदती जाती थी और थोड़ी-थोड़ी देर के अन्तर से तनिक आराम करती जाती थी। थी बेचारी तीन दिन से ज्वर-पीड़ित और उस पर निराहार। ये तीन दिन उसने कितनी कठिनाई से व्यतीत किये, वही जानती थी। बच्चे अलग भूख के मारे बिलबिला रहे थे। आज जब उसके ज्वर का वेग तनिक कम हुआ तो उससे न रहा गया। कब तक बच्चों की दुर्दशा को देख सकती थी? और वह घास की तलाश में घर से निकल पड़ी। कितनी विवशता है उसके जीवन में! बीमारी में भी तो एक-आध दिन चैन से नहीं पड़ सकती। भगवान की इच्छा!

खुरपी घास में उलझी हुई थी और मन अतीत के चित्रों में। युगों पहले का बचपन फिर उसके सन्मुख आ खड़ा हुआ :

वह स्वतन्त्र प्रकृति की एक चंचल बालिका है जो काम करने में, बात करने में और शैतानी करने में गांव के बच्चों में सब से आगे है। मां की आंख बची और वह अपनी टोली में। बाल-सखाओं में उसकी सब से अधिक मोहन से पटती थी। दोपहर को जंगल में जब बच्चे वृक्षों की छाया में सोते या गोली खेलते, वह और मोहन आस-पास के बागों में वृक्षों पर आक्रमण किया करते। मोहन ऊपर चढ़ जाता और पके-पके आम, अमरूद, जामुन आदि नीचे खड़ी रधिया की झोली में गिराने लगता। कितने सुखद थे वे दिन; किन्तु कितने अल्प-जीवी! सब एक दिन रजवाहे पर नहाने गए। पानी में खूब ऊधम मचा रहे थे कि यकायक उसका पैर फिसल गया और वह बह चली बहाव के साथ। तब मोहन ने कितनी फुर्ती के साथ उसे बचाया था!

चित्र आगे बढ़ा और एक दिन वह आ गया कि रधिया बहू बन कर मोहन के घर जा रही है—कितनी आशाएं साथ ले कर! आज उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं। आज उसका स्वप्न जो सत्य हो रहा है। आज मोहन सदैव के लिए उसका मोहन हो गया है। उसके जीवन में मधु ओत-प्रोत है और मोहन भी प्रसन्न है। वह कितना भाग्यवान् है। उसके साथी उसके भाग्य की प्रशंसा करते और उससे ईर्ष्या भी।

किन्तु यह सुख भी अधिक दिन न देखा गया भगवान से। मोहन उससे रूठ गया—उसने अपना पथ बदला और चल दिया अनन्त-यात्रा को! रधिया की सेवा, प्रार्थना, व्रत कुछ भी न काम आये। आह! वह बीच धार में बिना पतवार के रह गई। वह उसके साथ भी न जा सकी, बच्चों का उत्तरदायित्व जो था उसके ऊपर। आंधी आई, वह लड़खड़ा गई, उसकी बुद्धि लोप होने लगी। किन्तु उसके पश्चात् आकाश नीला था, शान्त था—हां, उसमें कलरव करने वाले खग न थे। मोहन की स्मृति उसके जीवन का आधार थी, उसके जीवन-पथ का आलोक थी। वह सोचती कि इससे मोहन को शान्ति मिलेगी। नाना प्रकार के प्रलोभन आये, किन्तु वह विचलित न हुई। मोहन को

[पृष्ठ ५८]

अपनी धरोहर मेरे पास रख गया है, उसे बड़े यत्न पूर्वक रखना है, यह सोच कर वह बच्चों को बड़े प्यार से रखती। जब ये बड़े होंगे तो बुढ़ापे में मुझे सहारा मिलेगा। और एक सन्तोष की सांस उसके मुंह से निकल पड़ती। अचानक उसका बड़ा लड़का किसन जो मोहन की प्रतिमूर्त्ति था, शीतला में जाता रहा। आह! कितनी साधों से उसे पाला था! उसी के ऊपर उसे सब से अधिक आशाएं थीं, और वही चल बसा...... ।

चित्र रुक गया। वह रोने लगी। कभी वह आंसू पोंछती और कभी फिर खुरपी चलाने लगती—कांपते हाथों से। पगली कब तक रोएगी? और उसके लिए जिसका तूने कुछ भी सुख न देखा था? केवल तू सोचती ही तो थी कि वह तुझे सहारा देगा। किन्तु यदि नालायक निकलता तो तू क्या करती? जब वही तेरे पास से चला गया जिससे तेरा संसार बना था। जब उसके जाने पर तूने हृदय पर पत्थर रख कर सब कुछ सहा, तो अब क्यों अधीर होती है? वही किसन क्या तुझे निहाल कर देता? देखती नहीं, सब्बो ने अपने इकलौते पुत्र राधे को कितने लाड़-चाव से, किन-किन आशाओं पर पाल-पोस कर बड़ा किया और अब वही ब्याह हो जाने पर उस पतुरिया के कहे पर नाचता है। मां का तनिक ध्यान भी नहीं करता। कभी कभी तो मरम्मत की बारी भी आ जाती है। बेचारी इतनी दुखी है वह कि इससे तो निपूती ही भली थी......। यह ध्यान में आते ही रधिया का दुःख हल्का हो गया; वह फिर खुरपी चलाने लगी।

अब वह अपनी वर्त्तमान परिस्थिति सोचने में मग्न थी—वह घास बेचेगी। जो कुछ पैसे मिलेंगे, उनसे उसकी और उसके बच्चों की क्षुधा शान्त होगी। रामू और लच्छो को एक एक पैसा देगी। महीनों से वे जिद कर रहे हैं; किन्तु वह अभी तक न दे पाई। दे ही कहां से? वह कमा ही कितना पाती है? मुश्किल से पेट भरता है। कभी कभी तो उपवास ही करना पड़ता है। कितने अच्छे हैं मेरे बच्चे! बेचारे रोज मान जाते हैं। गरीबी सन्तोष की पाठशाला है। यदि आज के दिन मोहन जिन्दा होता तो क्या मुझे इस दशा में भी जंगल में घास के लिए आना पड़ता...?

इन विचारों में वह इतनी मग्न थी कि उसे यह भी ध्यान न रहा कि कितनी घास काट चुकी है वह, जब कि खुरपी के आघात ने उसे एक बार फिर वास्तविकता के संसार में ला घसीटा। उसने देखा, घास आवश्यकता से भी अधिक कट चुकी है। उसने हिम्मत बटोर कर गठरी बांधी और हाट की ओर चली। एक पग मानों एक-एक पहाड़-सा हो उठा था। आस पास की वस्तुयें उसके सम्मुख घूम रही थीं। बच्चों की भूख का ध्यान उसके शरीर में शक्ति और पैरों में गति भर रहा था।

बेचारी भगवान् का नाम लेते-लेते जैसे-तैसे हाट तक पहुँची। एक कोने में वह बैठ गई। आज उसमें इतनी शक्ति न थी कि गठरी खोल कर अपनी घास के औरों से अच्छी होने का प्रदर्शन करती या किसी ग्राहक को आवाज लगा कर अपने पास बुलाती और घास का सौदा करती। वह सोच रही थी कि जाने कब बिकेगी यह घास कि सहसा एक आदमी उसको बड़े अच्छे दामों पर ले गया। वह प्रसन्न हो उठी इतने पैसे पाकर। झटपट अपने आंचल ही में पैसे बांध कर घर की ओर चली। अनुमान लगाती जाती थी—बच्चे हर्ष से नाच उठेंगे पैसा पा कर। वे कितनी व्यग्रता से मेरी राह देखते होंगे। क्या जाने भूख के मारे सो गये हों या पड़ोस के बच्चों के साथ खेलते हों...। इतने में उसकी झोंपड़ी आ गई और उसने पुकारा—"रामू, ओ रामू! अरी लच्छो!"

और बच्चे एक सांस में मां को घेर कर खड़े हो गये। अपनी थकान उतारने को वह जमीन पर बैठ गई और अपने आंचल के छोर में से पैसे निकालने के लिए गांठ टटोलने लगी। किन्तु यह क्या? गांठ खुली हुई थी। शायद दूसरी छोर में बंधे हों। जल्दी-जल्दी कांपते हाथों से सशंकित मन से उसे भी देखा; किन्तु पैसों का नाम नहीं है। कहां गए? खड़ी होकर लहंगा झाड़ने लगी। किन्तु पैसे? वे तो पर लगा कर उसके दुःख के कोष में जा छिपे थे।

वह धम से नीचे बैठ गई। चेतना-रहित आंखें निर्निमेष संसार को देख रही थीं। रामू और लच्छो पास में ही खड़े थे। उनकी आंखें जैसे मां से प्रश्न कर रही थीं और मां की आंखें भगवान् से!

पिता-पुत्र का सम्बन्ध

सुश्री लाज विरमानी एम० ए०

सहज तथा परम्परागत प्रवृत्तियों एवं परिस्थितियों के कारण मानव मन में बहुत-सी उलझनें पैदा हो जाती हैं जो जीवन को राहु की भांति लीलती रहती हैं। मनोविज्ञान की सहायता से ये मानसिक उलझनें सुलझाई जा सकती हैं और जीवन को निरापद बनाया जा सकता है।

यूनानी भाषा में एक प्रसिद्ध नाटक है, जिसके नायक का नाम है ईडिपस। ईडिपस यूनान का राजकुमार था। उसके जन्म पर डेल्फी से आकाशवाणी हुई कि वह बड़ा हो कर अपने पिता का वध करेगा और अपनी मां से विवाह करेगा। इस दुर्भाग्यपूर्ण कलंक से वंश को बचाने के लिए राजकुमार को जंगल में फिंकवा दिया गया, ताकि उसे कोई जंगली जानवर खा जाय। परन्तु ईडिपस बच गया और युवावस्था को प्राप्त हुआ। एक दिन उसकी अपने पिता से अचानक भेंट हो गई और अनजाने में उसने अपने पिता को मार दिया। घूमता-घूमता ईडिपस अपने शहर में पहुंचा, जहां प्रजा ने उसे राजा बना दिया। राजा बनने की एक शर्त यह थी कि वह विधवा रानी से विवाह करे। कुछ दिनों बाद डेल्फी से फिर आवाज आई कि उसकी भविष्यवाणी सच्ची हो गई; ईडिपस ने अपने पिता को मार कर अपनी मां से विवाह कर लिया है। यह सुन कर ईडिपस को बहुत ग्लानि हुई।

यह तो एक कहानी है; किन्तु आधुनिक मनोविज्ञान ने इसे मानसिक तथ्य के रूप में स्वीकार किया है। मनोवैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि पिता-पुत्र में स्वाभाविक वैर होता है। जब पहले-पहल इस बात का उल्लेख किया गया तो यह बात लोगों को बहुत अप्रिय लगी; क्योंकि सभी धर्मग्रन्थों में पुत्र को पिता की आज्ञा पालन करने का आदेश दिया गया है। हमारे साहित्य तथा धर्मग्रन्थों में उन्हीं लोगों को श्रेष्ठ समझा गया है जिन्होंने पिता की खातिर अपना सब कुछ बलिदान कर दिया। राम के गुण आज तक हम गाते हैं। लेकिन यह तो एक आदर्श है और आदर्श वास्तविकता से भिन्न भी हो सकता है।

स्नान की गरिमा ३

ग्रंथि बंधित स्नान

आर्य संस्कृति एवम् पातित धर्म की प्रबल प्रतीक भारतीय महिलायें जन्मान्तर में भी अपने वर्त्तमान पति प्राप्ति की कामना से सहस्त्रों की संख्या में विशेष कर पर्व के दिन तीर्थ स्थानों में इस बीसवीं सदी में भी ग्रन्थि बंधित स्नान करती दिखाई पड़ती हैं। इस प्रकार का स्नान उनके वांछित फल प्राप्ति में कहां तक सहायक होता है, यह तो उनके विश्वास का विषय है, पर स्नान का महत्ता सर्वथा निर्विवाद है और विशेषकर जब स्नान "प्रीफेक्ट साबुन" से किया जाता है, जो शरीर को न केवल स्वच्छ एवम् शान्त बनाता है वरन अपनी स्निग्ध सुवास में त्वचा के प्रफुल्लित तथा स्नान के बाद भी सुवासित रखता है।

प्रिफेक्ट
टॉयलेट सोप
विशुद्ध वनस्पति तैलों से निर्मित

मोदी सोप वर्क्स, मोदीनगर, यू॰पी॰

स्थानीय डिपो—मेसर्स मोदी इण्डस्ट्रीज डिपो, दरयागंज दिल्ली।

हाल ही में आस्ट्रेलिया, अफरीका और दक्षिणी अमेरिका की आदिम जातियों के जीवन का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया है। उन में एक अद्भुत प्रथा प्रचलित है और वह यह कि प्रत्येक वंश किसी एक पशु को पूज्य मानता है। ऐसे पूजनीय पशु को वे 'टोटम' कहते हैं और उसको पितृत्व का प्रतीक मानते हैं। लेकिन उसको मारना महापाप समझा जाता है। वहां का कोई व्यक्ति यदि उसे मारे, तो उसे भारी दण्ड दिया जाता है। उस के वध का निषेध करने से उनका वास्तविक अभिप्राय पिता-विरोधी भावनाओं को रोकना है। पर इस निषेध के रहते भी बहुधा देखा जाता है कि वे लोग 'टोटम' को मारते हैं। उनके मन में 'टोटम' को मारने की एक प्रबल इच्छा रहती है। इन जातियों के रीति-रिवाज और रहन-सहन के ढंग से पता चला है कि पिता और पुत्र में सहज प्रतिद्वन्द्वता की भावना विद्यमान है।

जो बात इन आदिम जातियों के बारे में सत्य है, वही बात, सभ्यासभ्य के थोड़े-बहुत भेद से, समूची मानव-सृष्टि के बारे में भी सत्य है, क्योंकि मूल प्रवृत्तियां तो आखिर समान ही हैं। मनोविश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि सामान्य व्यक्ति पिता-विरोधी भाव रखता है। कई बार हम पिता की मृत्यु का स्वप्न देखते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे स्वप्नों का विश्लेषण किया है और इस से ज्ञात हुआ है कि हम सभ्य कहलाने वाले लोग नैतिक और सामाजिक नियमों और विधि-निषेधों के कारण जिन पिता-विरोधी भावों को अपने अवचेतन में दबाते हैं, वही भाव स्वप्नों में प्रकट होते हैं। कई बार ये भाव मनोविकार का रूप धारण कर लेते हैं। कभी २ इन से मनुष्य में शारीरिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। पिता और पुत्र के आपसी मनोमालिन्य के मिट जाने से ये विकार प्रायः दूर हो जाते हैं।

मनोविश्लेषण-पद्धति के जन्मदाता फ्रायड ने पिता-पुत्र के सम्बन्ध पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला है। उसके विचारों का प्रभाव औषध-विज्ञान, समाजशास्त्र, शिक्षा, धर्म और जीवन के अन्य सभी पहलुओं पर पड़ा है। फ्रायड के मनोविश्लेषण के सिद्धांत का मूल आधार शैशवकाल की यौन-प्रवृत्ति है। उसने अपने अनुसन्धानों और अध्ययन से यह सिद्ध किया है कि यौन-प्रवृत्ति मनुष्य में प्रमुख और प्रबल है और यह जन्म से ही विद्यमान होती है। पहले पहल बालक का स्नेह-सम्बन्ध मां से होता है, किन्तु दूध छुड़ाने पर वह पिता की ओर झुकता है। कुछ बड़ा होने पर उसके मन में सहज ही यह आकांक्षा जाग्रत होती है कि मां का उसे वैसा ही प्रेम मिले जैसा कि उसके पिता को मिलता है। इस आकांक्षा के उदित होते ही बच्चा एक तरह से पिता को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझने लगता है। मनोवैज्ञानिक भाषा में इस मानसिक प्रवृत्ति का नाम 'ईडिपस काम्पलैक्स' है। यह नामकरण सम्भवतः आरम्भ में दी गई यूनानी राजकुमार की कहानी के ही आधार पर हुआ है।

यहां यह समझ लेना आवश्यक है कि यौन प्रवृत्ति का तात्पर्य यहां साधारण काम-वासना नहीं है। इसका सम्बन्ध उस वृत्ति से है जो मानव-जाति को जीवित रखने का कारण है। फ्रायड के मतानुसार 'ईडिपस काम्पलैक्स' एक स्वाभाविक मानसिक ग्रन्थि है। इसको दूर करने की अपेक्षा इसे स्वीकार करने से इसका प्रवाह उचित दिशा में होने लगता है और बच्चा पुरुषत्व की उपलब्धि करता है।

पिता-पुत्र की प्रतिद्वन्द्वता उचित शिक्षण से लाभदायक भी हो सकती है। पुत्र अपने पिता के सद्गुणों को ग्रहण करेगा और इस तरह उसकी त्रुटियों व दोषों से बच जायगा। उचित शिक्षण उसे यह सिखायेगा कि वह पिता का विरोध किए बिना भी माता का स्नेह प्राप्त कर सकता है।

फ्रॉयड का यह दावा है कि यदि मनोवैज्ञानिक तत्वों, 'ईडिपस काम्पलैक्स' जिन में से एक है, की ओर प्रज्ञा की दृष्टि से देखें और मानसिक ग्रन्थियों का दमन करने की बजाये उनका मुकाबला करने की चेष्टा करें, तो न केवल पिता-पुत्र के झगड़े समाप्त हो जायेंगे, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य को चैन और शान्ति मिलेगी; उसका जीवन अधिक सुगम और आनन्दमय हो जायगा।

★

हास-परिहास

"मुझे तो आश्चर्य होता है कि आपने इतना बड़ा और प्रामाणिक शब्द-कोष इतनी जल्दी कैसे तैयार कर दिया !"

"इसमें आश्चर्य की क्या बात ! शब्द-कोष तैयार करने का काम ऐसा ही है जैसा कि पत्नी के साथ झगड़ना—एक के बाद दूसरा शब्द अपने आप सूझता जाता है !"

* * *

थर्ड क्लास का डब्बा मुसाफिरों से काफी भरा हुआ था। एक मोटे आदमी ने उसी डब्बे में घुसने की कोशिश की। भीतर से एक मुसाफिर बोला—"जगह नहीं है।"

मोटे आदमी ने कहा—"मुझे तो केवल खड़े रहने की ही जगह चाहिये।"

अन्दर से आवाज आई—"तो आप फिर प्लेटफार्म पर ही खड़े रहिये !"

* * *

सावन का महीना था। बड़े जोर से पानी बरस रहा था। गृहस्वामी कोठी के बरामदे में खड़े अपने बगीचे की बहार देख रहे थे। एकाएक कुछ ख्याल आया और उन्होंने माली को बुला कर पूछा—"आज पौदों को पानी दिया था ?"

"नहीं, सरकार।"

"क्यों नहीं दिया ?"

"सरकार, वर्षा जो हो रही है।"

"वर्षा हो रही है तो क्या हुआ; छाता लेकर पानी दे दिया होता !"

* * *

उस दिन गंगा के तट पर मेला था। पति महोदय पानी में तैर रहे थे और पत्नी लड़के के साथ तट पर बैठी थीं। एकाएक लड़का बोला—"मां, मैं भी गंगा में तैरूंगा।"

मां बोली—"नहीं बेटा, पानी बहुत गहरा है और धारा भी आज तेज है।"

लड़का—"फिर पिताजी क्यों तैर रहे हैं ?"

मां—"उनकी बात अलग है। उन्होंने अपना बीमा करवा रखा है।"

* * *

कुछ संभ्रांत तथा सुशिक्षित महिलायें दाम्पत्य जीवन के सम्बन्ध में परस्पर बातचीत कर रही थीं। एक बोली—"घर में पहली लड़ाई के बाद जब मेरी और मेरे पति की फिर से सुलह हुई, तो इस खुशी के स्मारक के रूप में तथा इस अभिप्राय से कि भविष्य में हमें एक दूसरे के प्रति अधिक सहिष्णु बने रहने का ध्यान रहे, हमने अपने आंगन में एक वृक्ष लगाया था।"

दूसरी गद्गद् होकर बोली—"यह तो बड़ी अच्छी सूझ है। हम सब को इस पर अमल करना चाहिये।"

तीसरी ने तुरन्त ही आपत्ति की— "मुझे तो यह बात पसंद नहीं है। मेरा आंगन तो एक अच्छा-खासा जंगल बन जायेगा !"

* * *

श्रीमती जी एक पत्रिका पढ़ने में तल्लीन थीं। पति महोदय पास ही बैठे थे। एकाएक श्रीमती जी बोलीं— "देखिये, यहां यह लिखा है कि किसी को आत्म-हत्या से रोकने का सब से अच्छा तरीका विवाह है।"

"और विवाह से बचने का सब से अच्छा तरीका है आत्महत्या !" पति महोदय ने मुंह फुलाये हुए कहा।

* * *

अमरीका के फिल्म-निर्माण-केन्द्र हालीवुड में सातवीं पत्नी का सातवां पति होना शुभ माना जाता है !

नारी का स्वस्थ रूप कहाँ ?

श्रीमती रामेश्वरी शर्मा

स्वतंत्र भारत में एक नई आवाज उठी है—नारी को पुरुषों के समान अधिकार मिलने चाहियें। और उसी आवाज की यह सफलता है कि आज नारी के अधिकार बहुत अधिक विस्तृत कर दिये गये हैं। वह सम्पत्ति में आधे की हकदार हो सकेगी, पति को तलाक देने की सुविधा भी उसे प्राप्त हो जायेगी। राज्य-शासन में राजदूत और गवर्नर के पद से लेकर पुलिस कमिश्नर और कलक्टर भी वह बन सकती है।

देखने में यह बड़े सुन्दर अधिकार हैं। स्त्री-जाति को बहुत बड़ा महत्त्व दे दिया गया है। पुरुष के समान प्रत्येक क्षेत्र में अग्रवर्तीर्ण होने की सुविधा देकर पुरुष-जाति ने मानों बड़ा अहसान महिला-जाति पर किया है!

लेकिन वस्तुस्थिति को पैनी दृष्टि से देखने पर हम पायेंगे कि नारी स्वयं ही एक स्तर नीचे पहुंच गई है। वह समानाधिकार मांगने चली है उसी पुरुष से जिसकी वह जननी है। जगज्जननी और ममता की मूर्ति नारी आज अपने समस्त सन्मान को त्याग मानों अपनी ही कृति से विद्वेष करने आई है, उससे मोर्चा लेने आई है। सच तो यह कि गृहलक्ष्मी और माता के पद को त्याग व्यर्थ का आकर्षण रखने वाले स्थानों को जब नारी सुशोभित करने लगेगी, तो पुरुष जाति के दिल में उसके लिए कोई स्थान न रहेगा—वहां श्रद्धा का स्थान प्रतियोगिता ले बैठेगी। और इससे भी बड़ी यह विडम्बना की बात रहेगी कि घर में जो नारी पति का अनुशासन तनिक भी सहन करने को तैयार नहीं, वह बाहर एक के स्थान पर अनेक अपने से ऊंचे आफिसरों का अनुशासन कैसे मानेगी? अपने से निम्न-स्तर वाले पुरुष के आगे माथा झुकाते क्या उसके आत्म-सम्मान को ठेस न पहुंचेगी? पुलिस और फौज में कार्य करते हुए भी क्या वह अपनी स्त्रियोचित कोमलता और मृदुलता को सुरक्षित रख सकेगी? क्या वह कलक्टर या पुलिस-कमाण्डर होने के साथ ही साथ पूर्ण वात्सल्य और उचित साधनों से भविष्य के लिए देश को योग्य नागरिक भी प्रदान कर सकेगी?

मेरा तो विचार है कि इन सब क्षेत्रों में स्त्री-जाति का प्रवेश इस बात का द्योतक है कि नारी की मां बनने की विरक्ति और भी अधिक प्रबल हो उठे और असमय ही राष्ट्र का अवसान हो जाये। रोम का प्राचीन इतिहास इस बात का साक्षी है कि उस का पतन केवल इसलिए हुआ था कि वहां मां बनने वाली स्त्री हेय समझी जाने लगी थी।

जज की कुर्सी पर बैठने वाली नारी या तो अपने को नारी ही कहना छोड़ देगी या जब तक उसमें तनिक

भी नारीत्व रहेगा, तब तक उसकी कोमल प्रवृत्ति और भावुकता उसे उचित न्याय नहीं करने देगी।

मेरा यह सब लिखने का यह तात्पर्य नहीं कि मैं स्त्री-जाति के अधिकारों और विकास की हामी नहीं; लेकिन समस्या तो यह है कि जो अधिकार उसे दिये जा रहे हैं, उसके सन्मान की दृष्टि से वे हेय हैं। पुरुष उसका सेवक है, वह लक्ष्मी है। पुरुष को कोई अधिकार नहीं कि वह उसे पिंजरे में बंद कर दे और आज़ादी की सांस भी न लेने दे। नारी ममता और त्याग की प्रतीक है। प्रत्येक राष्ट्र नारी के बल पर स्थित है।

लेकिन आजकल नारी जैसे नागरिक जीवन को अपना रही है, वह भी उचित नहीं है। निम्न श्रेणी के कहे जाने वाले ग्रामीण समाज पर जरा दृष्टिपात कीजिये। कितना ऊंचा और स्वस्थ रूप नारी का वहां पाया जाता है! सवेरे ही पुरुष उठ कर बच्चों को लेकर खेत पर पहुंच
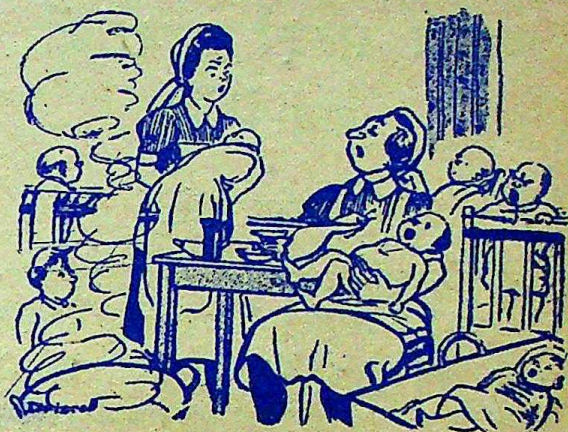
"मेरे सामने दो विकल्प थे—या तो विवाह करके पुरुष की दासी बनूं और या अविवाहित रह कर स्वावलंबिनी बनूं। मुझे दूसरा विकल्प ही पसंद आया!"

जायगा। पीछे से महिलायें खाना तैयार कर के पहुँच जायेंगी। बिना किसी हिचक और पसोपेश के दोनों वर्ग एक स्थान पर बैठ कर भोजन कर लेंगे। वैधव्य के प्रहार से पीड़ित नारी को कोई भी पुरुष सहर्ष स्वीकार कर लेगा, कोई चर्चा न होगी। जब पति-पत्नी में नहीं पटी, तो पत्नी दूसरा 'घर' सहज भाव से कर लेगी। ग्रामीण महिलाओं का स्वास्थ्य सदैव निखरा हुआ मिलेगा। वह प्रत्येक हाट में जाकर मन-पसंद वस्तुयें भी खरीद लायेंगी। उस समाज में कभी एक दूसरे को कोई छोटा ही नहीं समझता। उन महिलाओं से कहिये—"कलक्टर बनोगी?" तो उत्तर मिलेगा—"हमें तो अपनी कलक्टरी भली है; किसी की हुकूमत नहीं। और चार बात घर वाले को ही सुना लेते हैं। बच्चे आराम से पल कर कलक्टर बन जायें, तो हम तो कलक्टर क्या, कलक्टर की मां बन जायेंगे।"

श्रीमती कौशल्या पाहवा
जो हाल ही में दिल्ली में मजिस्ट्रेट नियुक्त हुई हैं।

कितनी उच्च भावना और आदर्श है! नारी का नारीत्व इसी में है। वह शासक है; शासिता क्यों बने? अपनी ही सृष्टि से विद्रोह क्यों करे? अपने ऊंचे स्थान से नीचे क्यों उतरे? उसका स्वरूप रूप तो रानी बनने में है, सेविका बनने में नहीं। आशा है इस पहलू पर भी महिला-समाज विचार करेगा।

आपका सौन्दर्य त्वचा और बालों में है

श्री वेदप्रताप शर्मा

अपनी सांवली त्वचा में ही आप इतना आकर्षण पैदा कर सकती हैं कि आप की सहेलियां ईर्ष्या करें। परन्तु इसके लिए त्वचा को सुन्दर बनाने के उपायों का ज्ञान और उनका पालन आवश्यक है।

तेज धूप, खुश्क हवा और कठोर सर्दी त्वचा को क्षति पहुँचाती हैं, इस लिए उसकी रक्षा के लिए उस पर स्नो, क्रीम व ग्लिसरीन का लेप करना चाहिए।

प्रातः सायं त्वचा को साफ करने के लिए बढ़िया साबुन का प्रयोग करना चाहिए। त्वचा के स्वास्थ्य के लिए छिद्रों (रोमकूपों) की शुद्धि जरूरी है, ताकि पसीना आदि मल बाहिर निकल सके।

मुख का आकर्षण बहुत कुछ गर्दन की सुन्दरता पर भी निर्भर करता है। गर्दन पर काली पसीने की रेखायें बहुत ही बुरी लगती हैं। गर्दन को साबुन से धोना चाहिए और बाद में खुरदरे तौलिये से अच्छी तरह रगड़ना चाहिए।

हाथों व अंगुलियों की कोमलता भी आकर्षण का आवश्यक अंग है। दूध की क्रीम के एक कप में नींबू निचोड़ कर इसे कोमल स्पंज से हल्के-हल्के अंगुलियों पर मलना चाहिए।

सुर्खी, पाउडर का प्रयोग त्वचा को हानि पहुंचाता है। जो स्त्रियां इनका अधिक इस्तेमाल करती हैं, उनकी त्वचा की चिकनाई व चमक प्रायः नष्ट हो जाती है।

त्वचा तथा शरीर की सफाई के लिए गुनगुने जल से स्नान आवश्यक है। गुनगुने जल का स्नान त्वचा का मल और पसीना बाहिर फेंकने वाली तथा त्वचा को स्निग्ध करने वाली ग्रन्थियों के छिद्रों में जमे खुश्क मल को साफ कर देता है। यदि स्नान सांझ को किया जाए तो और भी अच्छा है। सप्ताह में कम से कम एक बार तो गुनगुने पानी से स्नान करना जरूरी है।

मुख के काले धब्बे तथा झाइयां मिटाने तथा रंग को उज्ज्वल बनाने के लिए निम्नलिखित प्रयोग बहुत लाभदायक है—

एक बर्तन में गरम जल लें और दूसरे बर्तन में ठण्डा जल। मुख को साबुन से धो, छोटा-सा तौलिया गरम जल में भिगो कर और निचोड़ कर मुख पर रखें। कुछ सैकण्ड रख कर अब इसी प्रकार ठण्डे जल का तौलिया रखें। यह प्रक्रिया ५-६ मिनट तक करनी चाहिए। यह ध्यान रखें कि इसकी समाप्ति गरम जल से करें। बाद में 'मरकोलाइज्ड वेक्स' मुंह पर लगाएँ।

बालों की रक्षा

शेम्पू, लोशन, तेल आदि का कोई फायदा नहीं, यदि इनके लगाने से सिर का रक्त-संचार न बढ़े। अंगुलियों से सिर की खूब मालिश करनी चाहिए। बालों की जड़ों में स्निग्धता पैदा करने वाली ग्रन्थियां होती हैं, जो बालों को चमकदार और कोमल रखती हैं। यदि यह प्राकृतिक तेल पर्याप्त मात्रा में हो तो कंघी करने से सारे बालों में फैल जाता है और दूसरा तेल लगाने की जरूरत नहीं पड़ती।

बाल धोने के दो उद्देश्य हैं—एक तो बालों व सिर की सफाई और दूसरे सिर की त्वचा में रक्त-संचार। सप्ताह में बाल कितनी बार धोएँ, इस के बारे में कोई नियम नहीं। यदि धूल-धुएँ वाले वायुमण्डल में काम करना पड़ता हो, पसीना अधिक आता हो तो, सप्ताह में दो बार बालों को धोना चाहिए। बाल धोने के लिए उत्तम नुस्खा यह है—गुनगुने पानी में नीबू का रस व सिरका डाल कर बाल धोएँ। अगर बाल बहुत रूखे व खुश्क हो जाते हों, तो यह नुस्खा बरतें—क्लोराइड हाइड्रेट १ भाग, अरण्डी तेल १ भाग, पानी २० भाग। बाल धोने के बाद उन्हें सुखाना चाहिए। बिना सुखाए तेल लगाने से बाल झड़ते हैं और विविध रोग हो जाते हैं। बालों को बैठाने के लिए तेल के बाद पानी का इस्तेमाल नुकसान नहीं पहुँचाता। बालों के लिए अरण्डी का तेल बहुत लाभदायक है।

औरत

(पृष्ठ २४ का शेष)

ही कोशिश गंभीर और सुदृढ़ बनने की करती, उतनी ही उसकी कमजोरी और प्रकट होती; जितना ही वह अपने में झूँठा तनाव भरने का अभिनय करती, उतना ही छुली जाती। और यह सब कुछ मिस्टर अम्बालाल से छिपा न रह सका। मृणाल को पूर्ण विश्वास था कि अम्बालाल भी उससे प्रेम करते हैं; फिर भी वह कभी व्यर्थ की चिन्ताओं को लेकर दुविधा में फँस जाती। कभी २ मिस्टर अम्बालाल का आचरण उसे संदेहाभिभूत और चिन्तित बना देता और तब वह घंटों परेशान रहती। अब उसकी वह 'औरत' होने की हीन-भावना इतनी प्रबल न रह पाई थी। उसका स्थान विवाह की सुखद कल्पनाओं ने ले लिया था। अब उसका तृषित मन किसी पुरुष के सामीप्य के लिये छटपटाता था। यह सब कुछ तो ठीक था, पर फिर उसके डाक्टरी पेशे का क्या होगा? यह आजादी जो उसने इतने कठिन परिश्रम के बाद प्राप्त की थी, क्या यों आसानी से खो देने की वस्तु है? उसने सोचा—वही पेशा, जिसके लिए उसने अपना खून-पसीना एक कर दिया, जिसके कारण वह आज सगर्व पुरुष समाज का मुकाबला कर सकती है, जिसके कारण वह आज अपने सम्मानित, वयस्क और समाज का आवश्यक अङ्ग होने का परिचय दे सकती है, जिसके बल पर उसने नारी की चिरंतन आत्महीनता भुलाकर संतोष और सुख पाया है, क्या यों आसानी से खतरे में डाल देने की वस्तु है? माना कि डाक्टर अम्बालाल एक आधुनिक तथा सुसंस्कृत व्यक्ति हैं, जिनका हृदय भी बड़ा विशाल है; पर क्या यथार्थता की कसौटी पर अपने व्यक्तिगत जीवन में वे वैसे ही उतरेंगे, जैसे वे बाह्य-रूप से नजर आते हैं? क्या उन्हें मेरी इतनी स्वच्छंदता सह्य होगी? क्या उन्हें मेरे इस पेशे में कोई आपत्ति नहीं होगी? वे इसका विरोध तो नहीं करेंगे?

उसका नारी-हृदय कई दिनों तक भ्रम-विभ्रम, आशा और आशंका के अंधड़ में डांवाडोल सा रहा! किन्तु अन्त में एक दिन उसने निश्चय कर लिया कि वह शादी कर लेगी। उसके उन्मत्त हृदय में विवाह का जो अर्थ उस समय आ सका, वह यही था कि विवाह दो हृदयों का एक पवित्र गठ-बंधन है, जिसमें देना ही देना होता है—नहीं तो देना भी और लेना भी—पर हड़पना या अधिकृत ढंग से छीनना वहां वर्जित है। विवाह में एक दूसरे के व्यवसाय-धंधों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। वहां तो होता है प्रेम का एक अनवरत स्रोत जो गृहस्थी को सरसता, आकर्षण और सौंदर्य प्रदान करता रहता है। जहां फुर्सत होती है, विचार-विनिमय होते हैं, नई बातें जानी और सीखी जाती हैं, अनुभवों का दान - प्रतिदान होता रहता है.....

और जब डाक्टर अम्बालाल ने विवाह का प्रस्ताव उसके सम्मुख रखा तो मृणाल ने धीमे से 'हां' कर दी। बिना किसी रोक-टोक के दोनों की शादी हो गई। दोनों विवाह-सूत्र में बंध गये।

कुछ दिन तक तो दोनों का डाक्टरी का काम निर्विघ्न रूप से चलता रहा; लेकिन कुछ वर्ष पश्चात् खिचाव-सा उत्पन्न होने लगा। दोनों के लिए अपना २ पेशा महत्वपूर्ण था, जिनका अपना २ मकसद था और जिनमें दोनों को ही व्यस्त रहना पड़ता और फुर्सत बहुत कम निकल पाती। और जब कार्य बढ़ने लगा और उनके दाम्पत्य जीवन के सुख पर आघात होने लगा, तो डाक्टर अम्बालाल के लिये यह सब असह्य हो चला। पुरुष होने के नाते उनका अहं विशेष रूप से विद्रोह कर उठा। उन्होंने अपने को अपने अधिकारों से वंचित अनुभव किया। मृणाल अब मां बन चुकी थी—राजीव की मां। अब मि० अंबालाल की यह धारणा हो गई कि आदमी के लिये ही जीवन सम्बन्धी कोई पेशा एक उपयुक्त और महत्वपूर्ण चीज है और औरत का प्राथमिक कर्त्तव्य तो घर-गृहस्थी को चलाना ही है; वृत्ति तो उसके लिए एक 'गौण' चीज है। मिस्टर अम्बालाल का यही रुख मृणाल को

चिढ़ाने और भड़काने के लिए पर्याप्त था। रोज छोटी २ बातों पर झगड़े होने लगे - जैसा अभी उसी दिन हो गया।

मिस्टर अम्बालाल ने कहा—"तुम औरत हो, तुम्हें और दूसरी चीजों से ज्यादा घर की फ़िक्र होनी चाहिए। जो भी बात घर के विरुद्ध पड़ती हों, उसे तुम्हें छोड़ देना चाहिए। स्त्री के कर्त्तव्यों को तुम नहीं भुला सकतीं।"

मृणाल झल्ला कर बोली—"तो फिर आप ही मुझे राय दीजिये ना, मुझे क्या करना चाहिए? डाक्टरी छोड़ देने की उम्मीद आप मुझ से निःसंदेह कर नहीं सकते।"

"उम्मीद की कहती हो?" जैसे मिस्टर अंबालाल के आत्माभिमान को जोर की ठेस पहुंची हो, "मैं कहता हूं, यदि इससे हमारे सुख में किसी प्रकार की बाधा पड़ती है तो मैं जबर्दस्ती तुम्हें रोक सकता हूं।"

'जबर्दस्ती' शब्द पर उन्होंने जैसे अपना सम्पूर्ण बल लगा दिया।

"जबर्दस्ती?" मुंह को बिगाड़ती हुई मृणाल बोली, "यही तो पुरुष कर सकता है—और क्या? वैसे तो वह अपने ऊँचे ध्येय, ऊंचे विचारों का स्वांग भरे शराफत का पुतला बना फिरा करता है; किन्तु ज्यों ही स्वार्थ पूरा हुआ कि बस,सब को तिलाञ्जलि दी और फिर से वही पुराना पचड़ा शुरू हो जाता है—स्त्री-धर्म, घर की देख-रेख, यह··· वह··· जैसे हम औरतें कोई लद्दू जानवर हों·····।"

"मेरी तुम चिन्ता न करो तो कोई बात नहीं, हालांकि करना तुम्हारा धर्म है," मिस्टर अम्बालाल ने कटाक्ष किया, "लेकिन राजीव की तो तुम्हें कुछ फिक्र होनी चाहिए। वह तो अभी बच्चा ही है। क्या उसे माता के स्नेह और देख-भाल की जरूरत नहीं? आया और नर्स चाहे कितनी ही उपयोगी क्यों न हों, बच्चे की मां को तो नहीं पा सकतीं!"

यहां मृणाल क्षण भर ठिठकी, क्योंकि तर्क में कुछ सत्यता थी और कुछ सार भी। किन्तु तत्काल ही अपनी कमजोरी छिपाते हुए वह और भी क्रोधित होकर बोली—"जी हां, जैसे तो सभी बच्चों के मां होती है। और जैसे जिनके मां नहीं होती वे तो मर जाते होंगे! मैं इस दलील को मानने के लिये प्रस्तुत नहीं हूं कि बच्चे के पालन के लिए मां का स्नेह अनिवार्य है। मैं तो यह जानती हूँ कि बच्चे के लिए जितनी जरूरत मां की है, उतनी ही बाप की भी है। राजीव को लेकर जितनी जिम्मेदारी मेरी है, उतनी ही आपकी भी। आप भी तो उसके पिता हैं। फिर मैं ही अकेली क्यों अपने पेशे की कुर्बानी करूं?"

"क्योंकि तुम औरत हो!" बिना कुछ सोचे समझे जैसे मिस्टर अम्बालाल कह गये।

"यह कोई दलील नहीं हुई, कोई तर्क नहीं हुआ, केवल पुरुषों का एक बहाना मात्र है। आप पुरुषों ने ही चीजों को इस तरकीब से जमाया है कि औरत ही नुकसान में रही है।" आवेश में मृणाल कांपने लगी थी। "तुमने तो उसे बंदी बनाकर छोड़ दिया है।"

"वह सब ठीक है; लेकिन तुम औरत हो!" मिस्टर अम्बालाल ने इस बार जोर से डांटते हुए कहा, "बन्दी हो—उन्मुक्त बन्दी। और तुम्हारे पैरों में यह बेड़ियां हम पुरुषों ने नहीं डालीं, प्रकृति ने डाली हैं। पुरुष ने नारी को निष्क्रिय नहीं बनाया, प्रकृति ने बनाया है। इसलिये प्रकृति का तकाजा है, जो तुम्हें कैसे भी पूरा करना होगा— कैसे भी, क्योंकि तुम औरत हो—औरत!"

और जब आज पति के मुंह से ये शब्द निकले तो वह तड़पती-सी देखती रह गई। जो शब्द अब तक तीखे और अपमानजनक थे, वही आज विष में बुझे तीरों की तरह उसके हृदय के पार हो गये। और जब आन्तरिक तौर पर कोई मुंह तोड़ जवाब देने की प्रबल इच्छा रखते हुए भी उसके मुंह से कोई बोल न निकला, तो मृणाल—सरकारी अस्पताल की यशस्विनी लेडी डाक्टर, उस विक्षिप्त अवस्था में सिवा फूट २ कर रो पड़ने के और कुछ न कर सकी। आज जैसे जबर्दस्ती जानबूझ कर उसे उसका औरत होना याद दिला दिया गया था और आज उसने फिर से जाना

कि वह औरत है—परतन्त्र और पुरुष के अधीनस्थ रहने वाली औरत! औरत! औरत! औरत!...

नतीजा अच्छा नहीं हुआ। मामला दिनों-दिन तूल पकड़ता गया। मृणाल जिद्दी, ढीठ बनती गई और मिस्टर अंबालाल चिड़चिड़े और ईर्ष्यालु। दोनों अपने पक्ष पर डटे हुए थे और दोनों एक दूसरे को एक दूसरे के लिए खोते जा रहे थे। और उधर वह सात-एक वर्ष का राजीव भी वैसे तो होशियार था, किन्तु अपनी मित्र-मण्डली में उतनी प्रसिद्धि न पा सका। उसके साथी उसमें की उस जड़ता को बहुत अप्रिय समझते और उसको मुंह न लगाते। अपने दोस्तों की शरारतों और मजाकों का विनिमय देने में वह एकदम असमर्थ था। जैसे उनकी समझ में वह बुद्धू, गूंगा, गोबर-गणेश था, उसी प्रकार मास्टरों की नजरों में वह 'डंस', 'डफर', 'डलार्ड' था! सहपाठियों की तटस्थता और तिरस्कार; मास्टरों की उपेक्षा और अनवरत डांट-फटकार से उसके कोमल हृदय पर आघात पहुंचे बिना न रह सका। वह निपट अकेला रहने लगा और उसके एकाकी रहने ने उसे और बिगाड़ दिया। वह विद्रोही होगया। किसी का अनुशासन स्वीकार नहीं करता था। मास्टरों के लिये उसे काबू में रखना दुष्कर होगया। दंड ने भी उसमें कोई विशेष सुधार नहीं दिखाया। जब उसके अपराध गम्भीर और अक्षम्य हो चले तो स्कूल के हैडमास्टर ने एक दिन लम्बी रिपोर्ट में डाक्टर अम्बालाल को राय दी कि अच्छा होगा यदि राजीव को स्कूल से हटवा कर किसी अच्छी 'सुधारक संस्था' में भर्ती करा दिया जाय, क्योंकि अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है, लड़का सुधारा जा सकता है......

हैडमास्टर साहब की रिपोर्ट देख डा० अंबालाल आग बबूला हो गये। कैसी भद्दी रिपोर्ट थी राजीव की—उनके लड़के की। उनके क्रोध की कोई सीमा न रही। एक अभिभावक के नाते यह उन पर भी धब्बा था। उन्हें हैडमास्टर की राय में वाकई सार और एक शुभ चिन्ता सी जान पड़ी। माना कि राजीव उनसे बहुत डरता था, किन्तु उसका वह डर एक दिन घृणा में बदल जायगा जो आगे चल कर इस प्रकार घातक सिद्ध होगा—इस की उन्होंने कभी स्वप्न में भी कल्पना न की थी। खैर, जो हो गया सो हो गया, अब तो भला इसी में है कि राजीव को 'सुधारक संस्था' में डलवा दिया जाय, जहां कम से कम उसकी आंखें तो खुल जायंगी; जहां की सतत निगरानी लड़के के निर्माण में सहायक तो सिद्ध होगी। और फिर उनके पास तो इतना समय भी कहां है जो राजीव को कुछ बनाने में लगा सकें। यदि समय ही होता तो आज यह नौबत ही क्यों आती?—और यही सब निश्चय कर मिस्टर अंबालाल ने वही तर्क मृणाल के सम्मुख रखा।

किन्तु रिपोर्ट देख कर मृणाल और भी झल्लाती हुई बोली—"सुधारक-संस्था मचा रखी है सब ने! हमारे राजीव के लिये क्या ऐसी संस्था उपयुक्त जगह होगी? क्या वह आज इतना गया गुजरा है? मैं सब जानती हूँ इन सुधारक-संस्थाओं की पोल। वहां बनना तो दूर रहा, और घेले का हो जायगा। निकम्मे लड़कों के साथ रह कर क्या कोई कभी सुधरा भी है?"

"तो फिर आखिर क्या हो मृणाल? तुम्हीं बताओ ना, और क्या उपाय है? राजीव को बिगड़ते हुए हम हरगिज नहीं देख सकते।"

पति के शब्दों में एक विचित्र प्रकार की करुणा-सी थी, एक विचित्र-सी नम्रता जिसने मृणाल को एक अकाट्य से अकाट्य तर्क से भी अधिक प्रभावित कर दिया। वह अवाक् पति के मुंह की ओर देखती रह गई। क्या यह उसी के पति का स्वर है—इतना परिवर्तित और इतना प्रभावोत्पादक, विकम्पित और गंभीर?

तो मृणाल ने जैसे राजीव के हृदय के सारे तत्वों का विश्लेषण किया—आखिर लड़का अनुशासन-हीन क्यों हो गया? उसको हमेशा सब से अच्छा खाना, सब से अच्छे कपड़े और दूसरी सब चीजें वक्त पर मिलती रही हैं। क्या उसकी ओर से कसर रह गई है जो उसके बिगाड़ने के लिये जिम्मेदार है? क्या उसने उसका ध्यान रखने में कोई कमी की है? हां, उसने उसका भली प्रकार खयाल रखा ही कब है! लड़के ने अपने को उपेक्षित, तिरस्कृत, एकाकी और मातृ-स्नेह

से अपने को वंचित अनुभव किया है और···और उसी अकेलेपन की अनुभूति ने उसकी आत्मा को आहत किया है, उसका दिल घायल होकर टूट गया है। और वही उसके लिये जिम्मेदार है, और कोई नहीं··केवल वही! तो फिर यह जान कर भी कि लड़के के सर्वनाश का कारण वही है, वे क्यों नहीं उसे दंड देते? वे उसे क्यों नहीं झिड़कते, क्यों नहीं गालियां देते, जिससे वह उनसे नाराज तो हो सके? चुप क्यों हैं? क्यों उसे क्षमा कर दिया गया है?—क्यों? आखिर क्यों? पति के इस विचित्र प्रकार से दंड देने के तरीके से मृणाल बेहद उद्विग्न हो गई थी और जमीन में गड़ी-सी जा रही थी।

"नहीं, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है।" कुछ क्षण पश्चात् वह बोली, ऐसे स्वर में जो स्पष्ट नहीं था, मानों अत्यन्त दुर्बल था, मानों वह आंसुओं को पीती हुई बोल रही हो—"मैं अपने राजीव को सुधार लूंगी, देख लेना! मैं अपनी डाक्टरी-वाक्टरी सब छोड़ दूंगी और सिर्फ राजीव पर लग जाऊंगी—सिर्फ राजीव पर···!"

स्वर आगे जैसे डूब गया था और वहां आंसुओं के भीतर से जैसे मृणाल हंस रही थी—एक उज्ज्वल मुस्कान—"मैं उसकी मां हूँ! शायद जो डर नहीं कर सकता, वह प्रेम कर दिखाये!"

मिस्टर अंबालाल हतप्रभ-से मृणाल को देखते रह गये। कई बार जब उन्होंने उससे उसके डाक्टरी पेशे की कुर्बानी मांगी थी तो उसने सदैव विरोध किया और आज जब उसने अपनी ओर से आगे होकर वह कुर्बानी देने की बात चलाई तो मिस्टर अंबालाल की समझ में नहीं आया और वे हतप्रभ-से रह गये। आज मृणाल कैसे रूढ़िग्रस्त नारी होने जा रही है? घर की देख-रेख, बच्चों की देख-रेख—यह सब क्या? फिर कुछ क्षण पश्चात् परिहास करते हुए बोले—"नहीं नहीं, तुम डाक्टरी कैसे छोड़ सकती हो; वह तो तुम्हारे लिये बड़ी कीमती चीज है!"

मृणाल विचित्र-सी हंसी हंसती हुई बोली—"हां है, पर राजीव हमारे लिये उससे भी कीमती है। वैसे राजीव और अस्पताल में यदि 'चायस' हो तो मैं एक स्त्री और मां दोनों हूं—अपने बेटे की कुर्बानी हंसते २ दे दूंगी!"

"ओह मृणाल रानी!" और दूसरे क्षण मृणाल अपने पति की गोद में थी।
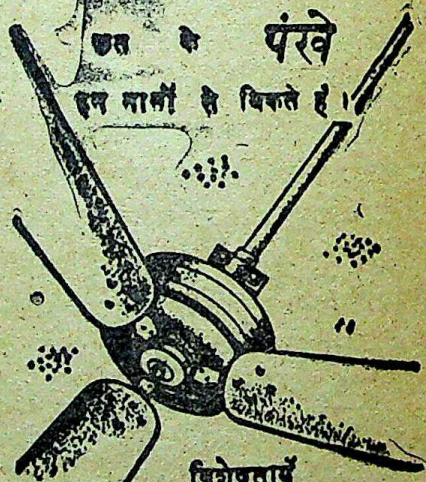
सम्पादक के नाम

इस स्तम्भ में प्रति मास संपादक के नाम आये पाठकों के कुछ चुने हुए पत्र प्रकाशित किये जाते हैं और सर्वोत्कृष्ट पत्र पर पांच रुपये का पुरस्कार दिया जाता है। पत्र सार्वजनिक हित व रुचि के किसी भी विषय को लेकर लिखा जा सकता है।

पत्र संक्षिप्त, स्पष्ट और सुरुचिपूर्ण होना चाहिये और उसके साथ 'मनोरंजन-पत्र-प्रतियोगिता कूपन' आना चाहिये।

साहित्यकार सफल पति ?

जरा-सी बात, और दोनों उलझ पड़े; चों चों का मुरब्बा बना कर रख दिया श्री शंकरदेव जी विद्यालंकार और महेन्द्र जी ने ('मनोरंजन' के अप्रैल और मई के अङ्कों में प्रकाशित लेखों में)। एक तो वैसे ही किसी की जोरू के बारे में कुछ बात करना 'असभ्यता' है और दूसरे तब जब कि जमाना हर रंगीन बात पर 'हाय दिल' कह बैठता है!

सच तो यह है कि दोनों के ही मत गलत हैं। न तो डिकेन्स के उदाहरण से साहित्यकार को असफल पति सिद्ध किया जा सकता है और न प्रेमचन्द अथवा 'अश्क' के जीवन-संस्मरणों से उन्हें सफल पति सिद्ध किया जा सकता है।

पुरस्कृत पत्र

जीवन के यथार्थ से ही साहित्यकार की असफलता सिद्ध होती है और यह यथार्थ है उसकी पत्नी, उसके बच्चे और उसका अपना जीवन। साहित्य एक दूसरी शराब है, जिसके नशे में वह यथार्थ पर दृष्टि नहीं जमा पाता। जो इसका यथोचित 'डोज' लेते हैं, वे स्वस्थ रहते हैं और सफल पति बन सकते हैं और जो इसमें सराबोर होकर 'विदेह' बन जाते हैं, उनके लिये पत्नी और बच्चे ही नहीं, वरन् सारे विश्व भर की चिन्ता धरी है। ऐसी हालत में यदि पत्नी हर बात में संतुष्ट रहने वाली और पति के गुणों की कद्र करने वाली है, तो वह साहित्यकार सफल पति है; अन्यथा डिकेन्स या टाल्सटाय के समान असफल, निराश, सताया हुआ—'डाइवोर्स्ड'! सिर्फ एड़ी-चोटी का पसीना एक कर साहित्यकार एक सफल पति कभी नहीं बनना चाहता। कल्पना की शीतल जल-राशि में रहने वाली मछली यथार्थ की कठोर सूखी भूमि पर कब तक जिन्दा रहेगी? पश्चिमी-रमणी की तरह चेहरा पोते हुए, बैरागियों जैसे लम्बे बाल लहराए हुए, आंखों पर सुनहरी फ्रेम का चश्मा चढ़ाए हुए, औरतों जैसी झिझक और आवाज में रचना पढ़ते हुए ये साहित्यकार-क्षय, गठिया, संग्रहणी जैसे घातक रोगों के ठेकेदार—कितने सफल पति सिद्ध होंगे, यह उनकी पत्नी की आंखों में पढ़िये। प्रायः देखा गया है कि या तो साहित्यकार के कारण पत्नी ने आत्महत्या की, अथवा घुल घुल कर मरी, अथवा......

नारी कल्पना भी है, यथार्थ भी। पर यथार्थ ही साहित्यकार के लिये है, कल्पना नारी के लिए, जिसमें डूब कर वह सुखमय जीवन के रंगीन महल खड़े करती है और पति को 'सफल पति' बनने में मदद देती है। अपनी कमजोरियों को वह पुरुष के दृढ़ पुरुषार्थ पर टिका कर निश्चिंत हो जाती है। वह देखना चाहती है, उसका पति इतना कमाए कि किसी वस्तु का अभाव न खटके, वह किसी के आगे हाथ न फैलाये और किसी के मानसिक सुख को देख उसे अभाव महसूस न हो। स्वस्थ मन और स्वस्थ शरीर उसके जीवन में आधार हैं, जिन्हें वह पति में देखना चाहती है। इस दृष्टि से तो संयोगवश ही साहित्यकार का जीवन सफल हो पाता है। यदि शराबी, भंगेड़ी, गंजेड़ी, दमबाज साहित्यकार को कोई 'छैल छबीली' नारी प्राप्त हुई, तो दाम्पत्य सुख कहां होगा?

संस्कृति और सभ्यता भी तो हमारे दाम्पत्य जीवन

में अपना अक्षुण्ण प्रभाव रखती है। पश्चिमीय सभ्यता 'पुरुषोचित कठोरता' के लिए कोई महत्व नहीं देती। प्रत्येक स्वतन्त्रता उसका ध्येय है और जरा-सा आघात भी वे सहने को तैयार नहीं। नतीजा यह कि सवेरे शादी, दोपहर को तलाक! ग्यारह संतानों के बाद भी तलाक! बुढ़िया हो जायगी, मगर विलास-प्रवृत्ति कम न होगी। ऐसी नारी-जाति की साधें, इच्छायें, प्यार—सभी दूषित और छिछले होंगे। फिर साहित्यकार डिकेन्स का क्या दोष? भारतीय सभ्यता में यही स्वतन्त्रतायें परस्पर बंधनों पर विकसित हुई हैं। पत्नी भूखी रहेगी, मार खा लेगी, फटा पुराना पहन लेगी, घृणा सह लेगी और पति का नाम-संकीर्तन करते हुए मर जायगी! त्याग उसकी विशेषता है, जिसके प्रभाव से पशु साहित्यकार भी 'देवता' बन जाता है!

पर दो विभिन्न योग एक साथ नहीं हो सकते। साहित्यकार भावयोगी है और पति कर्मयोगी। पति होकर वह पत्नी का जीवन ही सुखमय बना सकता है और जब यथार्थ को अपनायेगा तो 'जोरू का गुलाम' होकर ही रह जायगा, और भावुकता जैसी वस्तु कभी-कभार ही उसकी साहित्यक-वृत्ति को उकसा पायेगी। उधर वायु की तरह विश्व में व्याप्त सच्चे साहित्यकार के लिये इतनी फ़ुरसत कहां कि एक नारी की इच्छाओं का मान करने के लिए ठहर जाये!

साहित्यकार के लिए दो ही मार्ग हैं। या तो वह सच्चा योगी हो ले, अथवा पूर्ण भोगी बन ले। महान साहित्यकार देवता है और औसत साहित्यकार पशु। बीच वाले त्रिशंकु हैं, जिनकी कहीं भी गति नहीं है। यानी 'त्रिशंकु' टाइप ही सफल पति बन सकते हैं, बस!

कानूनगो मोहल्ला,
बीना।

—शिवशंकर सहाय माथुर

राष्ट्र-निर्माण में युवक-वर्ग

प्रत्येक देश की वास्तविक जन-शक्ति उस देश का युवक-समुदाय है। शक्ति जीवनमयी होती है और जीवन अपनी सर्व कलाओं तथा सम्पूर्ण वेग के साथ यौवन-काल में ही प्रस्फुटित होता है। शिशु अबोध है; वृद्ध अशक्त। राष्ट्र को लौकिक वैभव प्राप्त कराने में युवक ही समर्थ है, एक मात्र युवक! परन्तु हमारे देश में लगभग १०० वर्षों से इस तथ्य की अवहेलना की जाती रही है। ब्रिटिश शासन-काल में युवक को पेट की चिन्ता से ही मुक्ति न मिली। आज यद्यपि भारत स्वतंत्र है, पर वही समस्या अब भी सामने है। फलतः युवक-वर्ग क्रमशः आलस्य व अकर्मण्यता की ओर अग्रसर होता दिखाई दे रहा है।

हमारे यहां की समाज-व्यवस्था बुरी है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। पर उसको युवक ही सुधार सकता है। पर युवक को सुधार-पथ पर चलाने के लिए भी तो कोई चाहिए। यह काम केवल राष्ट्रीय-सरकार ही कर सकती है।

दूसरे, हम देखते हैं कि आज काश्मीर अथवा हैदराबाद जैसी छोटी २ समस्यायें हमारे राष्ट्र की प्रगति में बाधक हो सकती हैं। कारण स्पष्ट है और वह है—देशभक्ति-भाव-पूर्ण युवकों का राष्ट्रीय सेना में अभाव। अधिकतर वे ही सैनिक जो पहले ब्रिटिश अधिकारियों की अध्यक्षता में कार्य कर चुके हैं, आज भी सेना में उपस्थित हैं। यद्यपि युवकों में सैनिक-भावना भरने के लिए प्रांतीय-रक्षक-दलों आदि की व्यवस्था की गई है, पर वह नितान्त अधूरी है। बीसियों लोगों से पूछने पर ज्ञात हुआ है कि इन दलों के शिविरों में चरित्र-निर्माण का कार्य तो बिल्कुल ही नहीं हुआ।

अन्य कोई मार्ग न रहने के कारण देश के युवकों ने भिन्न २ संस्थाओं, पार्टियों में भाग लेकर अपने यौवन को सफल बनाने का निश्चय कर लिया है। इस में उनका कोई दोष नहीं, या है तो बहुत कम। अब भी यदि समाज के कर्णधार इधर ध्यान दें तो राष्ट्र को भावी विपत्तियों से अछूता रखा जा सकता है और यही राष्ट्र-निर्माण की सब से सफल कुंजी है।

जौरा भौरा कुंआ,
अलीगढ़।

—कुंजबिहारी लाल

★

'सौन्दर्य-सम्राज्ञी'

कुमारी शैल बाला ने उपर्युक्त शीर्षक से जुलाई मास के 'मनोरंजन' में एक प्रस्ताव उपस्थित करके दो तर्कों का उत्तर दिया है; परन्तु देखा जाय तो उनका भय मिथ्या है। वह समय गया जब स्त्रियों को ताले में बन्द रक्खा जा सकता था।

परन्तु जब लेखिका "पाश्चात्य देशों में····भी परिपाटी है" आदि लिख कर अपने देश में भी वैसा ही होने का सुझाव पेश कर के कहती हैं कि "मुझ पर पश्चिम के अनुकरण का आरोप लगायेंगे," तब उनकी वास्तविकता प्रत्यक्ष हो जाती है। मैं मानता हूँ कि अनुकरण दोष नहीं है, पर अनुकरणीय का ही अनुकरण करना चाहिये। यह 'सौन्दर्य-प्रतियोगिता' कहां तक अनुकरणीय है, यह पाश्चात्यों की 'सौन्दर्य-सम्राज्ञियों' के अनुभवों से ही प्रत्यक्ष है!

लेखिका आगे कहती हैं—"··सौन्दर्य-चर्या तथा शृंगार-प्रियता को स्त्रियों की दुर्बलता व पराधीनता का द्योतक मानती हैं।" मैं उनकी इस बात से कि सुन्दरता स्त्री का सहज व उत्तम गुण है, सहमत हूँ; परन्तु सौन्दर्य-चर्या का अर्थ सौन्दर्य-प्रदर्शन नहीं है।

उन्होंने सौन्दर्य व स्वास्थ्य को साथ २ रक्खा है, जो एकपक्षीय बात है। कभी २ असुन्दर भी स्वस्थ निकल आते हैं। और अगर आजकल की सुन्दरियों का मुंह धुलवा कर खड़ा कर दो तो पचास प्रतिशत से अधिक के मुंह (रक्तहीनता के कारण) काले या पीले और होंठ नीले निकल आवेंगे।

अन्त में लेखिका ने स्वतन्त्रता की दुहाई देकर अपने आन्दोलन को प्रोत्साहन देने की बात कही है। यह उनका दोष नहीं, आजकल हर बात में स्वतन्त्रता की दुहाई देना एक फैशन-सा हो गया है। कांग्रेस स्वतन्त्रता के नाम पर वोट मांगती है। समाजवादी स्वतन्त्रता के नाम पर वोट मांगते हैं। होटलों पर, बाल्टियों पर, बीड़ियों पर नेताओं के चित्र रहते हैं। यह जमाने का दोष है, लेखिका का नहीं। मेरी क्षुद्र सम्मति में लेखिका का 'सौन्दर्य-सम्राज्ञी' सम्बन्धी प्रस्ताव विशेष हितकर नहीं होगा।

साहूकारा गंज, बरेली

—कैलाश कुमार

'मनोरंजन' का आकर्षण

'मनोरंजन' की प्रतीक्षा हमारे यहां बहुत ही की जाती है—आपने उसे इतना नवीन, आकर्षक तथा मनोरंजक बना दिया है। सम्पादन-कौशल के सब कायल हैं।

लखनऊ

—गिरिजा कुमार माथुर

कूपन

मनोरंजन-पत्र-प्रतियोगिता

नं० ५

पेट्रोल की रिफाइनरी
बनस्पति
खाद
स्पिरिट का डिस्टिलेशन
सूती कपड़े
स्टोरेज बैटरीज़
एनेमल के बर्तन
कोयले का डिस्टिलेशन
चमड़ा फैक्ट्री
गन्धक का तेज़ाब
औद्योगिक प्रयोग के लिये

रेडियो की दूकान

(पृष्ठ १२ का शेष)

"आपका रोजा तोड़ने के लिये बकरी की मां कुर्बान की जाये ?"

"यार हम तो दर से कह चुके हैं," शुक्ला ने कहा, "किसी सिंधी को दूकान बेच और ठाठ से कोई नया काम शुरू कर। वह देखो, एक एक कर सब मुंह मांगे बोल पा रहे हैं। इन शरणार्थी सिंधियों के पास, बाप रे, कितना रुपया है! पगड़ी दे दे कर दूकान खरीदते हैं। अपनी तो यार किसी ऐसी से शादी हो जाती, जो मजे से खिलाती-पिलाती, पालती "तब मजा आता······"

सब ठठा कर हंसे।

"एक बात है," शुक्ला ने फिर कहा, "ये शरणार्थी हैं अंग्रेज। यहां भी कुछ दिन में 'अनारकली' हो जायेगा।"

"छोड़ो भी शुक्ला," शर्मा ने कहा—"बेचारे मुसीबतजदा हैं। कुछ दुनियां को आंख खोल कर देखो।"

इसके बाद हर तरह की बातें होने लगीं, जिनमें मनुष्य की अतृप्ति, वेदना और अपने भीतर हाहाकार का दाह, सब टुकड़े टुकड़े होकर बाहर बिखरने लगीं, जो दूसरों को जलाना चाहती थीं; किन्तु उनका कोई आधार न था। वे स्वार्थ की कठिन झाड़ियों में उलझे ईमान के वस्त्र थे, जो कदम-कदम पर फटते थे और हर जगह वही बे-हिसाब दिली गुरबत और बेहतमीनानी थी कि उनको लगा, वे सब व्यर्थ हैं।

और अन्त में पैसा बोलने लगा।

सब चले गये थे। दूकान में बस रेडियो बजने की आवाज आ रही थी। कोई विलायती ऑर्केस्ट्रा बज रहा था, जिसमें करुण-ध्वनि नहीं, जीवन की धड़कन थी, जो यौवन की शिराओं में वासना का उद्रेक करती है। दर सुनता रहा। उसने एक सिगरेट सुलगाई। दूकान के भीतर से मिस्त्री चले गये हैं। वह अकेला है। रात का पहला 'शो' खत्म हो चुका है। अभी अभी भीड़ गुजर गई है। यह हिस्सा हिन्दुस्तान में घुसी विलायत की लाश है, जो अभी तक इस पुराने मकान में सड़ रही है, गल रही है······

दर चौंक उठा। उसने देखा, द्वार पर एक आकृति दिखाई दी। और एक ऐंग्लो-इण्डियन लड़की लड़खड़ाती-सी आकर कुर्सी पर बैठ गई। वह सुन्दर थी, युवती थी। वह शराब पिये हुई थी। उसकी आंखों में अब गुलाबी छा गई थी। कभी-कभी उसके होठों के कोने अपने आप मुड़ जाते थे।

लड़की बकने लगी। उसकी आवाज सुस्थिर नहीं थी। स्पष्ट ही वह नशे में थी। वह आज का किस्सा सुना रही थी। वह दफ्तर में कहीं टाइपिस्ट है। और सिनेमा से आ रही है। वह शराब नहीं पिये है, ईमानदार लड़की है, शादी करना चाहती है, दर उससे विवाह क्यों नहीं कर लेता·····?

दर देखता रहा, सुनता रहा। जिन्दगी में जब बहुत जोर लगाया, तब वह टाइपिस्ट बनी; किन्तु थी वह लाइसैंस रखने वाली तवायफ, जैसे कोई बन्दूक हो, या मोटर। इस समय उसकी झूंठ सुन कर दर को नफरत हुई। वह तवायफ है। सामने बैठी है। और सड़क के उस पार कुछ बड़ी बड़ी मोटरें खड़ी हैं, चमकदार, रौबदार, जिनके मालिक 'बार' में बैठ कर पी रहे होंगे·· दर और कुछ नहीं सोच सका। साल भर पहले यह दोगली लड़की हिन्दुस्तानियों से नफरत करती थी·····

गीत उमड़ रहा था। वही विदेशी स्फूर्ति वाला ऑर्केस्ट्रा, और लड़की अब उस पर झूम रही थी, जैसे उसके अन्तर के तार बज रहे थे, निरन्तर हाहाकार करता निर्धूम ज्वलन अब सिसक कर झुक गया था, कुत्ते की जीभ की तरह आग की लपट कांप रही थी··

दर स्वयं एक रेडियो हो चुका था। कितना विराट प्रसार है इस जीवन का, कितने विविध हैं इसके कार्य-व्यापार, कितना अद्भुत है इसका अस-

मंजस्य ! फिर भी अनवरत एक चक्र-सा घूम रहा है— और वह लड़की उसकी आंख में ऐसे अटक गई, जैसे आटे की गोली के लिये लपकती मछली के गले में कांटा अटक गया हो''''''। दर सहम उठा।

उसने सहारा देकर लड़की को उठाया और उसको जीने की ओर ले चला। वह चुपचाप चलती रही। ऊपर उसकी साथिनें रहती हैं। दर उससे फूटना चाहता था।

किन्तु भीतर कोई था, क्योंकि भीतर से ही चिटखनी चढ़ी थी। द्वार बन्द था। लड़की ने धीरे से कहा—'चलो, गार्डन चलें !"

दर विक्षुब्ध हो गया। यह लड़की क्या समझती है ? क्या वह उसे मामूली आदमी समझती है''''''? तवायफ ! और यह क्या समझ सकती है ? जिन्दगी इसने अभी पांच-दस रुपये की समझी है। लुत्फ''' आग''जलन''मशाल की-सी फहर''और कुछ नहीं''!

फिर रेडियो पर खबरें आ रही थीं – फिलस्तीन''' हैदराबाद'''काश्मीर''मजदूर''किसान''रूस''अमरीका'''गरीबी''अमीरी''मौत''जिन्दगी''''''

दूकान खाली पड़ी थी। और, अब खबरों के बीच में वही संगीत की द्रिम-द्रिम करती ध्वनि, जो घूंसा बन कर सीने पर बज उठी। दर कांप उठा। कोई कुछ उठा कर न ले जाये। उसने लड़की से कहा, "चलो, नीचे बैठेंगे। दरवाजा खुलने पर लौट आयेंगे।"

लड़की हंस रही थी। दर ने देखा, वह होश में नहीं थी। उसको देख कर दर को एक भीषण साम्राज्य की समाप्ति का करुण दृश्य दिखा, जैसे यह एक अमारत थी। लेकिन शराब के नशे में झूमती लड़की ने उसे पकड़ रखा था। ★

चित्र लोक

बंकिमचन्द्र के दो उपन्यासों के चित्र

★ चन्द्रशेखर ★ वसीयतनामा ★

श्री कलाधर

पश्चिम के हॉलीवुड जैसे फिल्म-निर्माण-केन्द्रों से बन कर आने वाले श्रेष्ठतम चित्र प्रायः वहां के प्राचीन तथा अर्वाचीन ख्यातिप्राप्त लेखकों की कृतियों के रूपान्तर होते हैं। भारत में आरंभ से ही ऐसी प्रवृत्ति कम रही है। बम्बई के अधिकांश फिल्म-निर्माता विज्ञापन में कहानीकार के रूप में अपना नाम देना अधिक पसंद करते हैं। झूठे आत्मविज्ञापन की प्रवृत्ति का भारत में यदि कहीं अपवाद पाया जाता है, तो वह है बंगाल का फिल्म-निर्माण-केन्द्र। बंगाल ने भारत को विश्व-ख्याति के तीन उपन्यासकार दिये हैं—बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय, कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर और शरचन्द्र। इन तीनों उपन्यास-सम्राटों की कृतियों के उल्लेखनीय—कभी-कभी प्रशंसनीय भी—फिल्म-रूपान्तर तैयार करने का श्रेय बंगाली फिल्म-निर्माताओं व निर्देशकों को है। पुराने चित्रों में से 'देवदास', 'मंजिल', 'कपाल कुण्डला', 'मिलन' इत्यादि के नाम गिनाये जा सकते हैं। अब श्री बंकिम चन्द्र के दो प्रसिद्ध उपन्यासों—'चन्द्रशेखर' और 'वसीयत नामा' के फिल्म-रूपान्तर हमारे सामने उपस्थित हैं। पहले के निर्माता पायोनिअर पिक्चर्ज लि० और निर्देशक श्री देवकी बोस हैं, और दूसरे के निर्माता न्यू थियेटर्ज लि० और निर्देशक सौमेन मुकर्जी हैं। पहला चित्र उत्कृष्ट है और दूसरा सामान्य।

दोनों ही फिल्म-रूपान्तरों के बारे में उल्लेखनीय बात यह है कि ये असल उपन्यासों से थोड़े-बहुत भिन्न हैं। देवकी बोस ने तो 'चन्द्रशेखर' में उपन्यास के कथानक का एक तरह से पुनर्निर्माण-सा कर दिया है और सौमेन मुकर्जी ने 'वासीयतनामा' में उपन्यास का कथानक तो इतना नहीं बदला, परन्तु इसकी आधारभूत प्रेरणा और आत्मा बदल डाली है।

श्री बंकिमचन्द्र ने अपने उपन्यास 'चन्द्रशेखर' में उस समय के बंगाल के राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन का सविस्तार चित्रण किया है, जब कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी उस प्रांत में व्यापार की आड़ में ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें जमाने को प्रारम्भिक चेष्टायें कर रही थी। उस समय बंगाल में मीर कासिम का शासन था। इस उपन्यास का कथानक जहां अधिकांशतः ऐतिहासिक सत्य पर आधारित है, वहां विषय के अनुसार ही बहुसूत्री भी है। मीर कासिम और अंग्रेजों के बीच चलने वाले कूटनीतिक संघर्ष के साथ २ इसमें गांव की एक शैवालिनो नामक सुन्दरी और जमींदार के लड़के प्रतापराय की प्रेम-कथा अंकित है। देवकी बोस ने इसी प्रेम-कथा को अपने चित्र में मुख्यतः चित्रित किया है और राजनैतिक तथा ऐतिहासिक घटनाओं का प्रयोग महज पृष्ठ-भूमि के तौर पर किया है। इस प्रक्रिया में उपन्यास की बहुत-सी घटनायें या तो छूट गई हैं और या बदल गई हैं। चित्र के कथानक में तारतम्य और रोचकता लाने के लिये कुछ नई घटनायें जोड़ भी दी गई हैं।

सरसरी दृष्टि से तो लगता है कि देवकी बोस ने यों कथानक का पुनर्निर्माण करके एक बहुत बड़ा अपराध किया है। परन्तु सचाई यह है कि जहां बंकिम चन्द्र का कथानक ऐतिहासिक सत्य पर आधारित है, वहां देवकी बोस का कथानक मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित है। यदि हम चित्र को यह भूल कर कि यह बंकिम चन्द्र के उपन्यास 'चन्द्रशेखर' का रूपान्तर है,

देखें, तो हम उसके कथानक के विकास और पात्रों के चरित्र-चित्रण में कोई त्रुटि नहीं पायेंगे। प्रेम का जो उदात्त स्वरूप चित्र में मिलता है, वह उपन्यास में नहीं। प्रेमास्पद के दाम्पत्य जीवन को सुखी और मंगलमय देखने के लिये प्रेमी अपना सब कुछ—यहां तक कि अपने प्राण भी—न्योछावर कर देता है। और फिर प्रतापराय के घोड़े वाली घटना जैसी अन्य नई घटनाओं के समावेश से चित्र की रोचकता और कहानी की प्रभावोत्पादकता बढ़ी ही है, घटी नहीं। बंकिम चन्द्र जहां एक असाधारण प्रतिभा का लेखक था, तो देवकी बोस भी असाधारण प्रतिभा का फिल्म-निर्देशक है, जिसका प्रमाण स्वयं यही चित्र है। हां, देवकी बोस ने एक गलती अवश्य की है—जो किसी हद तक अक्षम्य भी है—और वह यह कि उसने चित्र का नाम भी वही रखा है जो कि उपन्यास का है। उपन्यास का नायक चन्द्रशेखर इस चित्र में नायक नहीं रहता। चित्र का नायक और प्राण तो प्रताप राय है। चित्र का कथानक संक्षेप में यों है—

शैवालिनी और प्रताप राय बचपन के मित्र थे। सगोत्र होने के कारण उनका आपस में विवाह नहीं होता। शैवालिनी का विवाह चन्द्रशेखर नाम के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी से होता है। प्रेम में निराश हो कर प्रताप राय नवाब मीर कासिम की सेना में नायक बन जाता है। उधर ईस्ट इण्डिया कम्पनी का एक अंग्रेज अफसर शैवालिनी के रूप पर मुग्ध होकर उसे बलात् उठा ले जाता है। प्रताप राय उसे जा कर छुड़ाने में सफल तो हो जाता है, परन्तु स्वयं अंग्रेजों के चंगुल में फंस जाता है और लड़ाई में मारा जाता है। प्रताप राय का आत्म-बलिदान शैवालिनी और चन्द्रशेखर को फिर से मिलाता है।

चित्र का निर्देशन देवकी बोस ने अपनी ख्याति के अनुरूप ही उत्तम किया है। चित्र के सैटिंग बहुत अच्छे हैं और ऐतिहासिक वातावरण के अनुकूल हैं। यह चित्र देवकी बोस का एक सफल चित्र कहा जा सकता है हां, संस्कृत के नाटकों के ढंग पर कहानी में 'विदूषक' को डालने का देवकी बोस का मोह कुछ खटकता है।

अभिनय की दृष्टि से अशोक कुमार और कानन ने अच्छा काम किया है, परन्तु दोनों की कायिक स्थूलता के नीचे उनका अभिनय-कौशल दब-सा गया है। अधिक दबने से 'प्राणांत' भी हो सकता है!

संगीत इतना अच्छा नहीं, जितना कि कमलदास गुप्त और कानन से प्रत्याशित था। लगता है कि कमलदास गुप्त ने अपनी शैली को (जिसके लिये वह प्रसिद्ध है) छोड़ कर बम्बई के नौशाद आदि की नकल करने की कोशिश की है और नकल तो आखिर नकल ही रहेगी। चित्र का ध्वनि-लेखन भी त्रुटिपूर्ण है।

तो भी 'चन्द्रशेखर' देवकी बोस का एक सफल चित्र है और दर्शनीय है।

इसकी तुलना में, सौमेन मुकर्जी का 'वसीयतनामा' एक सफल और उत्कृष्ट चित्र नहीं कहा जा सकता। इसका निर्देशन तो कमजोर है ही, सबसे बड़ा दोष यह है कि उपन्यास की आत्मा इसमें अक्षुण्ण नहीं रह सकी। वैसे तो कहानी एक बूढ़े जमींदार के वसीयतनामे के इर्द-गिर्द घूमती है; परन्तु इसका मुख्य विषय विधवा-समस्या है। भारतीय रजत-पट पर आने वाला कदाचित् यह पहला चित्र है, जिसमें विधवा का चित्रण सहानुभूतिपूर्ण नहीं हुआ। विधवा रोहिणी को इस चित्र में दूसरों के दाम्पत्य-जीवन को नष्ट करने वाली और पुरुषों को फांसने और लूटने वाली विलासिनी के रूप में चित्रित किया गया है। रोहिणी पुनर्विवाह के लोभ से जमींदार के आवारा लड़के हरिलाल के लिये जमींदार के सेफ से वसीयतनामा चुराती है। जब हरिलाल अपने वचन से फिर जाता है, तो वह जमींदार की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी गोविन्दलाल को, जो कि विवाहित है, अपने जाल में फंसाती है और उसके साथ भाग कर उसके पास रखेल के रूप में रहती है। बाद में एक अपरिचित के साथ भागने की चाल चलती है। उसके इस आचरण से क्रुद्ध होकर गोविंदलाल उस की हत्या कर देता है। कहां 'सिंदूर' की विधवा और कहां यह 'वसीयतनामा' की विधवा!

'चन्द्रशेखर' से एक बात में 'वसीयतनामा' श्रेष्ठ है और वह है इसका संगीत। सच तो यह है कि इसके संगीत-निर्देशक श्री बोरल ने ही इसे बना लिया है और इसी कारण यह दर्शनीय है।

कलाकारों में से अहिन चौधरी, भारती और सुमित्रा का अभिनय अच्छा है।

रेडियो के लिये लिखना भी एक कला है (२)

नाटक

श्री कलाधर

जहां तक वस्तु-विधान तथा नाटकीयता का प्रश्न है, रेडियो-नाटक तथा रंग-मंचीय या सिनेमा नाटक में कोई भेद नहीं है। रेडियो-नाटक एकांकी की तरह छोटा भी हो सकता है और बड़ा भी। सारी घटना अथवा भाव का चित्रण विषयानुसार एक 'दृश्य' में भी हो सकता है और एक से अधिक 'दृश्यों' में भी। एकांकी की भांति वस्तु व विषय का ऐक्य तो अनिवार्य है, परन्तु स्थान और काल की एकता का निर्वाह अनिवार्य नहीं है। इस विषय में रेडियो-नाटक सिनेमा-नाटक से अधिक मिलता है। स्वाभाविकता तथा यथार्थता लाने के लिये सिनेमा-नाटक की तरह ही 'दृश्यों' का विन्यास—केवल ध्वनि द्वारा—ऐसा भी किया जा सकता है जो रंग-मंच पर संभव नहीं है। इस दृष्टि से रेडियो-नाटक रंगमंचीय नाटक से श्रेष्ठ है। वैसे भी रेडियो नाटक की सामान्य टैकनीक सिनेमा-नाटक से अधिक मिलती है।

रेडियो-नाटक के सम्बन्ध में मोटी—और सबसे आवश्यक—बात यह है कि वह रंग-मंच तथा सिनेमा के नाटक की तरह एक साथ श्रव्य एवं दृश्य नहीं, केवल श्रव्य है—केवल सुना जा सकता है। समयानुकूल वातावरण, परिस्थिति अथवा नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने के लिये रंगमंचीय अथवा चित्र-पटीय दृश्यावलि, पात्रों की वेशभूषा, मुख-मुद्रा, कायिक हाव-भाव तथा चेष्टायें, प्रकाश-योजना, यवनिका पतन इत्यादि कोई भी दृश्य उपकरण अथवा साधन रेडियो-नाटक में सहायक नहीं हो सकता। इसमें तो कथानक का आरंभ-विकास-अन्त, समयानुकूल वातावरण और परिस्थिति, समय और स्थान, पात्रों का आना-जाना, रूप-रंग, भावोद्रेक इत्यादि सब का आभास केवल शब्द द्वारा ही, या यों कहिये कि ध्वनि द्वारा ही कराया जा सकता है। पात्रों के बोलने के अलावा इसमें कृत्रिम साधनों से भी काम लिया जाता है। उदाहरण के लिये रेल का चलना, घोड़े का दौड़ना, आंधी, तूफान, पानी का बरसना, बहना, गली-बाजार की चहल-पहल, बादल की गर्ज इत्यादि इन सब का आभास वैसी ही ध्वनि के रिकार्ड बजाकर कराया जाता है। रेडियो में आवाज को यंत्र द्वारा घटाने बढ़ाने, पृष्ठ भूमि में संगीत मिलाने के भी साधन होते हैं। रेडियो-नाटक-लेखक को इन सब बातों का ध्यान रखना चाहिए और उनका यथा स्थान निर्देश करना चाहिये। रेडियो-नाटक किस तरह प्रसारित होता है, रेडियो स्टेशन में उसके लिये क्या क्या साधन तथा उपकरण हैं, इनका ज्ञान भी लेखक को होना चाहिये। रेडियो-नाटक में निम्न लिखित बातों का निर्वाह आवश्यक है—

१. पात्रों का परिचय, नाटक के विकास में किसी नये पात्र के प्रवेश अथवा प्रस्थान की सूचना, स्थान, समय तथा दृश्य विशेष की सूचना—ये सब पात्रों अथवा सूत्रधार की बातचीत द्वारा प्रकट किये जाने चाहियें।

२. नाटक का आरम्भ तथा अंत प्रभानोत्पादक ढंग से होना चाहिये।

३. संवादों अथवा सूत्रधार द्वारा दिये गये कथा-संकेतों में वर्णनात्मकता तथा चित्रमयता होनी चाहिये।

४. रेडियो-नाटक में कम से कम पात्र होने चाहियें। क्योंकि श्रोता पात्रों को केवल उनके स्वर से ही चीन्हता है, अतः यदि अधिक पात्र होंगे तो अधिक स्वर होंगे, जिससे श्रोता पहचान नहीं सकेगा कि कौन क्या कहता है। थोड़े पात्र होने से रेडियो वालों को पहचानी जा सकने वाली भिन्न-भिन्न आवाजों वाले कलाकार चुनने में आसानी रहती है।

५. रेडियो नाटक में अनावश्यक प्रसंग अथवा संवाद नहीं होने चाहियें। इनसे श्रोता का ध्यान मुख्य विषय से हट जाता है और रसानुभूति नहीं हो पाती।

६. रेडियो नाटक में निःशब्दता का भी उतना ही महत्व है जितना कि शब्द का। (क्रमशः)

नव प्रकाशन

आलोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक और पत्र-पत्रिका की दो प्रतियां आनी चाहियें।
—सं०

गृह-युद्ध (उपन्यास) लेखक—श्री मन्मथनाथ गुप्त; प्रकाशक—किताब महल, इलाहाबाद; मूल्य ३)।

काकोरी-केस के प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री मन्मथनाथ गुप्त की गणना हिंदी के उन लब्धप्रतिष्ठ तथा गिने-चुने लेखकों में होती है, जिन्होंने अपनी कृतियों द्वारा नई क्रांतिकारी सामाजिक चेतना तथा सच्ची प्रगतिशीलता की प्रामाणिक अभिव्यंजना की है। अब तक उनके कई उपन्यास, साहित्य-आलोचना, समाजशास्त्र तथा भारतीय क्रांति सम्बन्धी कई पुस्तकें छप चुकी हैं। अस्तु।

प्रस्तुत पुस्तक एक समस्यामूलक उपन्यास है, जिसमें मानवता के उच्चादर्शों की सत्यता सिद्ध की गई है। इसकी मुख्य समस्या यह है कि क्या हिन्दू और मुसलमान दो जातियां हैं या नहीं? उपन्यास के अन्त में यह निष्कर्ष निकलता है कि हिन्दू-मुसलमान दो जातियां नहीं हैं। मजहब एक दलबन्दी है, अफीम है जिससे आम जनता को हतचेतन करके अमीर लोग अपना उल्लू सीधा करते हैं। साम्प्रदायिक दंगों से गरीबों का नहीं, बल्कि राज्य करने वालों तथा उच्च वर्ग के लोगों का ही हित होता है। आज से छः-सात महीने पहिले उपन्यास की इस स्थापना को कई लोग 'चैलेंज' करते; परन्तु अब जब कि लोगों की बुद्धि पर से भ्रांतियों का कुहरा हटता जा रहा है, इस स्थापना की सचाई से बहुत कम लोग इन्कार करेंगे।

इस उपन्यास की एक और भी विशेषता है और वह यह कि समस्यामूलक होते हुए भी यह कहीं भी नीरस तथा अरोचक नहीं हुआ। इसमें घटनायें इतनी अधिक हैं और उनकी गति इतनी तेज और रोमांचकारी है कि पढ़ते हुए जासूसी उपन्यास का-सा मजा आता है। एक मुसलमान युवती और एक हिन्दू युवक के प्रणय-प्रसंग ने उपन्यास की रोचकता को और भी बढ़ाया है। प्रत्येक दृष्टि से उपन्यास पठनीय है।

उन्मीलिका (कविता-संग्रह) रचयिता—श्री शम्भुनाथ 'शेष'; प्रकाशक—मानव-धर्म कार्यालय, पीपल महादेव, दिल्ली; मूल्य २)।

दिल्ली के सुप्रसिद्ध कवि श्री 'शेष' का पुस्तक के रूप में यह प्रथम 'उन्मीलन' आल्हादकारी है, अतः अभिनन्दनीय है। इसमें 'शेष' जी के ४६ गीत, ११ रुबाइयां, ४ कवितायें और १७ गजलें संग्रहीत हैं। वैसे तो सभी में कवि की चमत्कारी प्रतिभा, ऊंची कल्पना-शक्ति और गहरी अनुभूति का परिचय मिलता है, परन्तु गजलों में कवि की उस वैयक्तिक शैली का प्रस्फुटन हुआ है जो उसे अन्य समकालीन तरुण कवियों में विशिष्टता प्रदान करती है। गजल उर्दू और फारसी की चीज है। स्फुट भाव-प्रकाशन व चित्रांकन की दृष्टि से यह विशेष आकर्षण रखती है। इधर हमारे कई कवियों ने हिन्दी में गजल लिखने का प्रयास किया है; लेकिन यह कहना अत्युक्ति न होगी कि इस प्रयास में 'शेष' जितनी सफलता बहुत कम को मिली है। इन १७ गजलों में चित्रमयी कल्पना और मार्मिक अनुभूति का अनुपम समन्वय हुआ है। कवि सौंदर्योपासक है और उसकी सौन्दर्योपासना कभी कभी रहस्यवाद तथा अध्यात्मवाद की कोटि में आ जाती है। कहीं कवि मानवीय प्रणय का गायक है, कहीं प्रकृति के दिव्य रूप का चितेरा है, कहीं सच्चे कलाकार की अहम्मन्यता के साथ वह स्रष्टा तक को ललकारता है और कहीं वह अपने अभावग्रस्त तथा अतृप्त हृदय के भावों की मार्मिक अभिव्यंजना करता है।

'शेष' जी कविता को हृदय की बात हृदय तक पहुंचाने का साधन मानते हैं। हमारी प्रार्थना है कि उनका यह साधन सफलीभूत हो!

पुस्तक की छपाई और गेट-अप आकर्षक है। प्रत्येक काव्य प्रेमी के लिये यह पठनीय भी है और संग्रहणीय भी।

—चिरंजीत

फुलझड़ियां

इस १५ अगस्त को हम राष्ट्रीय पर्व के रूप में स्वाधीनता की पहली वर्षगांठ मना रहे हैं। १५ अगस्त हमारे इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण दिवस है। परन्तु,पता नहीं क्यों, इस वर्ष 'जनता जनार्दन' के मन में इस दिन के प्रति उतना उत्साह नहीं है, जितना कि गत वर्ष था!

इस उत्साह-हीनता का कारण शायद यह है कि जनता को स्वाधीनता के प्रथम वर्ष में निर्वासित अन्न-वस्त्र तथाजीवन-निर्वाह सम्बन्धी भारी कष्ट झेलने पड़े हैं। विभाजन के पश्चात् हुए सामूहिक तथा पाशविक हत्याकाण्डों में जो मर गये, वे तो सही अर्थों में मुक्त हुए और जो जीवित बचे वे उजड़-उखड़ कर यहां-वहां कैम्पों में तथा सड़कों व फुटपाथों पर निः-सहाय-निरुपाय पड़े पछता रहे हैं कि वे क्यों जीवित बचे!

* * *

लेकिन अपने कष्टों को ध्यान में रख कर जनता स्वाधीनता-दिवस के प्रति उत्साह न दिखाये, यह तो एक दम राष्ट्रविरोधी भावना है। और नहीं तो जनता कम से कम उनकी खुशी और समृद्धि का तो खयाल करे, जिन्होंने स्वाधीनता के प्रथमवर्ष के उपलक्ष्य में सत्ता का अनुचित लाभ उठाया, शासन-व्यवस्था में भ्रष्टाचार फैलाया, अयोग्य सम्बन्धियों और मित्रों को 'योग्य' पदों पर आरूढ़ कराया, घूंसखोरी, चोरबाजारी और मुनाफाखोरी द्वारा अपने लोक और परलोक को सुधारा, रक्षा-कवच के रूप में गांधी-टोपी की अमोघता सिद्ध की, व्यक्तिगत स्वार्थों के लिये साम्प्रदायिकता, प्रांतीयता और जातीयता का विष फैलाया।

* * *

ज्ञात हुआ है कि गतवर्ष कपड़े पर से कण्ट्रोल हटने के बाद से मिल-मालिकों और व्यापारियों ने ७५ करोड़ रुपये का अनुचित मुनाफा खाया। आशा है, वे मिल-मालिक और व्यापारी अधिक उत्साह से स्वाधीनता दिवस मनायेंगे!

* * *

ज्ञात हुआ है कि काश्मीर-कमीशन के सामने पाकिस्तानी सरकार ने यह स्वीकार कर लिया है कि उसकी सेनायें काश्मीर में जा कर लड़ रही हैं। तो हमारे ५५ करोड़ रुपये का 'सदुपयोग' ही हुआ!

* * *

चूंकि बरसात के कारण कैम्पों में और सड़कों पर खुले आकाश के नीचे रहना कठिन हो गया है, शायद इसीलिये आजकल शरणार्थी लोग यहां-वहां प्रद-र्शन करके गिरफ्तार हो रहे हैं। यदि जेलों में सपरिवार रहने का प्रबन्ध हो जाये तो क्या कहने!

* * *

पता नहीं हमारे किसी कवि अथवा कहानीकार ने हैदराबाद पर कोई रचना क्यों नहीं लिखी!

* * *

इधर असेम्बली का अधिवेशन शुरू हुआ और उधर पुराण-पंथियों ने 'हिन्दू-कोड-बिल' के विरुद्ध आन्दोलन शुरू कर दिया। आन्दोलन होना ही चाहिये। भारत की स्वतन्त्रता का अर्थ यह थोड़ा ही है कि स्त्रियां भी स्वतन्त्र हो जायें! और फिर, यदि यह बिल पास हो गया तो बड़े लोगों की 'गोशालाओं' में वार्षिक वृद्धि कैसे हो सकेगी?

* * *

इस अंक में प्रकाशित श्री रांगेय राघव की कहानी 'रेडियो की दूकान' का आल इण्डिया रेडियो से कोई सम्बन्ध नहीं है। रेडियो-सेट तो प्रोग्राम ब्राडकास्ट करने का केवल साधन ही होता है!

* * *

विजय-पुस्तक भण्डार की सामयिक पुस्तकें

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित

स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा

इस पुस्तक में लेखक ने भारत एक और अखण्ड रहेगा, भारतीय विधान का आधार भारतीय संस्कृति पर होगा, इत्यादि विषयों का प्रतिपादन किया है। मूल्य १॥) रुपया।

जीवन में विजय प्राप्त करने के लिये
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित

'जीवन संग्राम'

का

संशोधित दूसरा संस्करण पढ़िये। इस पुस्तक में जीवन का सन्देश और विजय ललकार एक ही साथ हैं पुस्तक हिन्दी भाषियों के लिये मनन और संग्रह के योग्य हैं। मूल्य १) डाक व्यय ।-)

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति की

'जीवन की झांकियां'

प्रथम खण्ड—दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन, मूल्य ॥)

द्वितीय खण्ड—मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला ? मूल्य ॥)

दोनों खण्ड एक साथ लेने पर मूल्य ।॥)

सामाजिक उपन्यास

सरला की भाभी

[ले०—श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति]

इस उपन्यास की अधिकाधिक मांग होने के कारण पुस्तक प्रायः समाप्त होने को है। आप अपनी कापियें अभी से मंगा लें, अन्यथा इसके पुनः मुद्रण तक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।

मूल्य २)

हिन्दू संगठन हौआ नहीं है
अपितु
जनता के उद्बोधन का मार्ग है।
इसलिये

हिन्दू-संगठन

[लेखक—स्वामी श्रद्धानन्द संन्यासी]

पुस्तक अवश्य पढ़ें। आज भी हिन्दुओं को मोहनिद्रा से जगाने की आवश्यकता बनी हुई है, भारत में बसने वाली प्रमुख जाति का शक्ति सम्पन्न होना राष्ट्र की शक्ति को बढ़ाने के लिये नितान्त आवश्यक है। इसी उद्देश्य से पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। मूल्य २)।

पं० मदनमोहन मालवीय

[श्री रामगोविन्द मिश्र]

महामना मालवीय जी का क्रमबद्ध जीवन-वृत्तान्त। उनके मन का और विचारों का सजीव चित्रण। मूल्य १॥) डाक व्यय ।=)

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस

नेता जी जन्मकाल से सन् १९४५ तक, आजाद हिन्द सरकार की स्थापना, आजाद हिन्द फौज का संचालन आदि समस्त कार्यों का विवरण। मूल्य १) डाक व्यय ।=)

पण्डित जवाहरलाल नेहरु

[श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति]

जवाहरलाल क्या हैं ? वे कैसे बने ? वे क्या चाहते हैं और क्या करते हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर इस पुस्तक में आपको मिलेगा।

मूल्य १) डाक व्यय ।=)

प्राप्ति स्थान—विजय पुस्तक भण्डार, श्रद्धानंद बाजार, दिल्ली

बाल-मनोरंजन

सुन लो धुन !

गुन गुन, गुन गुन, सुन लो धुन !

फूलों को हंसने की धुन,
कलियों को सकुचाने की।
चिड़ियों को गाने की धुन,
भौंरों का मँडराने की।
झरने को झरने की धुन,
नदियों को लहराने की।
बिजली को चमकन की धुन,
मेघों को बरसाने की।
पर्वत को अकड़न की धुन,
सागर को उफनाने की।
गुन गुन, गुन गुन,
सुन लो धुन !

मुन्ने को रोने की धुन,
अम्मा को बहलाने की।
भैय्या को लड़ने की धुन,
चाची को पिटवाने की।
बाबू को पढ़ने की धुन,
दादा को सो जाने की।
रन्नो को खाने की धुन,
दीदी को इतराने की।
बिट्टन को हँसने की धुन.
दादी को दुलराने की।
गुन गुन, गुन गुन !
सुन लो धुन !

भूतों का कमरा

'भैया'

उन दिनों मैं आठवीं श्रेणी में पढ़ता था। मेरे पिता जंगल-विभाग में नये-नये उच्चाधिकारी नियुक्त हुए थे। जब वे पहले दौरे पर जाने लगे, तो मैंने भी उनके साथ चलने का आग्रह किया। ग्रीष्म की छुट्टियों के कारण स्कूल बंद था, इसलिये पिता जी के साथ मोटर में सैर-सपाटे के लोभ को मैं रोक न सका। पिता जी मुझे साथ ले जाने को राजी हो गये। साथ में रामू चाचा भी चले। रामू चाचा के बारे में विशेष बात यह है कि वे अपने आपको बहुत बहादुर समझते हैं और शिकार खेलने के बहुत शौकीन हैं।

हम तीनों के अतिरिक्त हमारे साथ एक-दो नौकर-अर्दली भी चले।

कार नहर के किनारे की सड़क पर चली जा रही थी। रात होने में अभी तीन-चार घंटे थे कि एकाएक बड़े जोर की आंधी चलने लगी और कार का आगे जाना कठिन हो गया। सौभाग्यवश पास ही एक सरकारी डाक-बंगला था। सारी पार्टी वहां पहुँची। डाक-बंगले के चौकीदार ने पिता जी का स्वागत किया। चूंकि आंधी का जोर बढ़ता जा रहा था; इसलिये रात इसी डाक-बंगले में बिताने का निश्चय हुआ। चौकीदार ने सिवाय एक कमरे के बाकी सब कमरे खोल दिये। जब उससे उस एक कमरे के न खोलने के बारे में पूछा गया, तो उसने कहा—"सरकार, यह भूतों का कमरा है।"

"भूतों का कमरा?" रामू चाचा ने अविश्वास के स्वर में कहा।

"जी हां, यह भूतों का कमरा है," चौकीदार ने ऐसे कहा जैसे कि उसके सामने सचमुच ही कोई भूत खड़ा हो। "लगभग एक वर्ष हुआ, इसमें एक बड़े अफसर आकर ठहरे थे। आज की तरह उस दिन भी बड़े जोर की आंधी चल रही थी। रात को बिजली बुझाकर वे आराम से सो गये। एकाएक आधी रात के समय उनकी आंख खुली। देखते क्या हैं कि बिजली ज्यों की त्यों जल रही है। इधर-उधर ढूंढा गया, पूछ-ताछ की गई, परन्तु कमरे के अन्दर या बाहर कोई भी गैर आदमी न था, जिसने रात को उनके कमरे की बिजली जलाई हो। और फिर सिवाय रोशनदान के कमरे के सब दरवाजे और खिड़कियां अन्दर से बन्द थीं। इस विचित्र घटना का कारण न मालूम हुआ। खैर, आंधी का जोर कम नहीं हुआ था। दरवाजे और खिड़कियां अच्छी तरह बन्द करके, बिजली बुझा कर वे अफसर फिर इसी कमरे में सो गये। कोई दो-तीन घंटे बाद फिर उनकी आंख खुली। देखते हैं कि बिजली जल रही है और वे भय से कांपते हुए कमरे से बाहर निकल आये। सब को यह विश्वास हो गया कि इस कमरे में भूत रहते हैं। उसी दिन से यह कमरा बन्द पड़ा है।"

हम सब ने चौकीदार की इस कथा पर विश्वास कर लिया; परन्तु रामू चाचा ने इस पर विश्वास नहीं किया, बोले—"यह सब वहम है। भूत-प्रेत नाम की कोई चीज नहीं। तुम इस कमरे को खोलो। आज रात मैं इसी कमरे में सोऊंगा।"

पिता जी ने और मैंने रामू चाचा को बहुत समझाया, पर वे नहीं माने। चौकीदार से चाबियां ले कर उन्होंने स्वयं वह कमरा खोला। नौकरों से उसे साफ कराया और अपना बिस्तर उसमें बिछवा लिया। खाना खाने के बाद जब रामू चाचा उसमें सोने के लिये गये, तो साथ में अपनी बंदूक भी लेते गये। आंधी वैसे ही जोर से चल रही थी। रामू चाचा ने अच्छी तरह देख-भाल कर अन्दर से दरवाजे और खिड़कियां बंद कर लीं और निश्चिन्त हो कर सो गये।

रात के बारह बजे होंगे कि भीतर से रामू चाचा के 'भूत-भूत' चिल्लाने की आवाज आई। हम सब उठ बैठे। दरवाजे की दरार से भीतर देखा कि बिजली जल रही है और रामू चाचा एक कोने में खड़े, भय

(शेष पृष्ठ ६४ पर)

शिकारी

श्री 'अशोक' बी० ए०
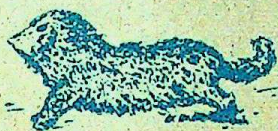
मोहन भैया बड़े शिकारी,
कभी नहीं है हिम्मत हारी।
छाना करते जंगल-जंगल,
जंगल में हैं करते मंगल।

सिर पर हैट, बगल में सोंटा,
लिए साथ में 'टॉमी' छोटा,
पहिन शिकारी का सब बाना,
भैया करते हैं मनमाना।

उनका 'टॉमी' सबसे न्यारा,
भैया की आंखों का तारा।
हर शिकार पर वह है जाता,
इसमें उसे मजा है आता।

छोटी-सी बन्दूक निराली,
कहते भैया जिसे 'दुनाली'।
वे शिकार पर जब जब जाते,
उसे पीठ पर हैं लटकाते।

कभी मार कर तीतर लाते,
छोटे हिरन कभी ले आते।
पास शेर के कभी न जाते,
डरते नहीं, किन्तु शरमाते!

कहें शेर की अगर कहानी,
डर से मरती उनकी नानी।
घर पर करें बड़ाई भारी,
ऐसे भैया वीर शिकारी!

बिना शुल्क

बाल-पहेली नं० १०

१५ अगस्त १९४८ तक सही उत्तर

आने पर पांच रुपये नकद पुरस्कार

दायें से बायें

१. यह पहेली ऐसी है। ३. यह समय पर ही अच्छा लगता है। ५. ऐसी लड़की का सब मजाक उड़ाते हैं। ६. एक बाजा! ८. गणित-विद्या की विद्वान् एक इतिहास-प्रसिद्ध लड़की। १०. कई बच्चे इससे भी नहीं डरते। १२. बड़े बड़े नगरों में इस पर जाने का रिवाज नहीं।

ऊपर से नीचे

१. संसार के ऊपर फैला हुआ नीला चँदोवा। २. छोटे बच्चों को भला इसकी क्या चिन्ता! ३. इसे सब चाहते हैं। ४. 'राशन' के उलट-पुलट अक्षर। ७. यह बहुत हल्का होता है। ८. उलटने से एक ऐसे स्थान का नाम बन जाता है, जिसमें कुत्ता भी शेर होता है। ९. दूकानदार को इसका भी खयाल रखना चाहिये। १०. कई पठान इसके लिये भी खून कर देते हैं। ११. "उसने मेरा काम ···· से कर दिया।"

बाल-पहेली नं० ९ का पुरस्कार

जुलाई १९४८ के 'मनोरंजन' में प्रकाशित 'बाल-पहेली नं० ९' का सही उत्तर मेरठ से कुमारी प्रेमलता श्रीवास्तव और करौलबाग, दिल्ली से श्री नरेश चन्द्र ने भेजा है। इन दोनों को पांच-पांच रुपये पुरस्कार दिया गया है। सही उत्तर निम्नलिखित है—

दायें से बायें—१. झूला, ३. झुलाना, ६. मलबा, ७. खर, ८. रच, ९. आंच, ११. नाना, १३. कसबा, १५. परमा।

ऊपर से नीचे—१. झूमर, २. लालच, ४. लाख, ५. नारद, १०. चकमा, १२. नाप, १४. बर्फ

पहेली के नियम

१. केवल १४ वर्ष की आयु तक के लड़के-लड़कियां ही इस प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं। आयु के सम्बन्ध में माता-पिता अथवा स्कूल के अध्यापक का प्रमाण-पत्र भी उत्तर के साथ आना चाहिये।

२. उत्तर 'मनोरंजन' में छपे खाके को काट कर और भर कर भेजना चाहिए। किसी और कागज पर अलग से भेजे गये उत्तर पर विचार नहीं किया जायेगा। एक व्यक्ति एक से अधिक पूर्तियां भी भेज सकता है।

३. खानों को स्याही से सुस्पष्ट लिखे अक्षरों से भरना चाहिये। कटे-छंटे या पैंसिल आदि से लिखे अक्षर को सही नहीं माना जायेगा।

४. उत्तर २५ अगस्त १९४८ को शाम तक 'मनोरंजन' कार्यालय, श्री श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली में पहुंच जाना चाहिये।

५. सम्पादक का निर्णय अन्तिम होगा।

पुरस्कार-विजेता का फोटो

'बाल-पहेली नं० ९' के पुरस्कार-विजेता श्री रमेश कुमार गुप्ता, बारां (कोटा स्टेट) ने अपना फोटो नहीं भेजा बाल-बन्धुओं से फिर प्रार्थना है कि जिस किसी को भी बाल-पहेली का पुरस्कार मिले, वह तुरंत अपना फोटो हमें भेज दें।

—सम्पादक

(पृष्ठ ६२ का शेष)

से कांपते हुए चिल्ला रहे हैं। मुझे डर भी लगा और उन पर हंसी भी आई। अपने आपको तीसमारखां समझा करते थे!

दरवाजा भीतर से बंद था, अतः उसे तोड़ कर रामू चाचा को बाहर निकाला गया। वे बेहोश हो चुके थे।

इस घटना से मैं और पिता जी बहुत डर गये। एकाएक मेरे मन में एक विचार आया। मैंने चौकीदार से पूछा—"क्या यह बिजली जलने की घटना केवल उसी रात को होती है, जब आंधी चलती है?"

उसने सोच कर कहा—"जी हां, केवल आंधी वाली रात को ही।"

मैं तुरन्त उठ कर उस कमरे में चला गया। बिजली के 'स्विच' को ऊपर नीचे करके देखा तो उसे बहुत ढीला पाया—इतना ढीला कि जरा छूने से ही वह नीचे हो जाता था। अब सारी बात मेरी समझ में आ गई। वहां भूत-वूत कोई न था। सामने के रोशनदान से जब बाहर से हवा के प्रबल झोंके उस 'स्विच' पर पड़ते, तो वह अपने आप नीचे हो जाता। मैंने पिता जी को यह बात बतलाई। वे मेरी इस खोज से बहुत प्रसन्न हुए। चौकीदार को बुला कर उन्होंने कहा—'इस कमरे में भूत-प्रेत कुछ नहीं है। सवेरे इस कमरे का स्विच ठीक कराओ!"

रामू चाचा भी तब तक होश में आ गये थे। असल बात जान कर वे अपनी कायरता पर बहुत लज्जित हुए।

★

प्रिंटर पब्लिशर श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा द्वारा, अर्जुन प्रेस देहली से छप कर प्रकाशित।

प्रथम वर्ष
संख्या १२

सितम्बर १९४८

दिल्ली

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

सम्पादक
श्री चिरंजीत

इस अंक में

मूल्य आठ आने

वार्षिक मूल्य ५॥)

'निराला' के प्रति

श्री विनोद शर्मा

हे मुक्तकेशी !
हे अस्तव्यस्त - वेशी !
वज्रघोष से हे प्रचण्ड !
आतंक जमाने वाले !
कविता - कामिनि को
कठपुतली का-सा नाच नचाने वाले !

हे निर्बन्ध !
छंद - स्वच्छन्द—
भावों की गुड्डी की डोर है तुमने दी ढील,
हे कलाकार !
फिर भी तुम्हारी कृति के हैं दुरुस्त
सब कांटे और कील।

हे उद्दाम !
जब चली वेगवती धार
कविता की तुम्हारी,
तब,
छन्दों के किनारों को
तुकों की कगारों को
प्लावित कर,
तोड़ कर पर्वत छन्द-शास्त्र के
निकली कविता की प्रचण्ड धार
नए नए प्रान्त में।
तब नवीन दृश्य
और नूतन वनस्पति
नए नए पुष्प और
नई नई लतिकाएं
चित्रित लगी करने वह तूलिका तुम्हारी
जो थी श्री के पाणिपल्लव में

कुशल कलाकार के,
हो गई धन्य
पा तुम-सा न अन्य !

छोड़ दी कगार
और छोड़ा था किनारा भी,
किन्तु धरती तो वही थी न बूढ़े भारत की !
जल भी पुनीत वही
जो कि संस्कृत शिव-शैल की हिम की चट्टानों के
गलने से बना था।
इससे ही काव्य के भगीरथ !
तुम हिन्दी को दे सके—
'राम की शक्ति - पूजा'
'यमुना के प्रति'
और
अनुपम वह 'तुलसीदास'
तथा अन्य कितने गीत भी !

किन्तु निर्बन्ध !
जब हुई तुम्हारी स्वच्छन्दता और भी स्वच्छन्द,
और पुण्यतोया धार में
तुम ने मिलाया गंदा नाला हिन्दुस्तानी का,
तब से
तुम हुए हो महान
'कुकुरमुत्ता' समान !

झकोला चारपाई

लेखक—
श्री वृंदावनलाल वर्मा

रामदयाल—कविता में उनका उपनाम 'दयालु' था—चारपाई पर जमे हुए उस दिन और उस समय भी लिखते ही चले जा रहे थे।

उनकी श्रीमती जी ने आकर विचारधारा को खंडित कर दिया। आव देखा न ताव, बोलीं, "घसीटे जाओ कलम और करे जाओ स्याही-कागज खतम। कल के लिए अनाज नहीं है और बच्चे को तो दो दिन से दूध ही नहीं मिला।"

"ठहरो भी," रामदयाल ने विचारधारा को अखंडित बनाए रखने की धुन में कहा, "यह कल्पना यदि दिमाग से खिसक गई तो फिर हाथ नहीं लगने की।"

रामदयाल ने हठपूर्वक कलम का प्रयोग करने का प्रयास किया, परन्तु कल्पना ने विद्रोह कर दिया और न जाने कहां खिसक गई।

रामदयाल ने झल्लाहट को दबा कर कलम को हाथ में थामा और बरबस मुस्कराते हुए पूछा, "क्या एक दिन आगे के लिए भी नहीं है?"

उत्तर मिला, "बिलकुल नहीं, एक दाना भी नहीं।"

माथे पर कलम को फेरते हुए लेखक ने श्रीमती जी से कहा, "चिन्ता मत करो, मेरी कहानियों और कविताओं का संग्रह छप चुका है, रुपया आता ही होगा। प्रकाशक की चिट्ठी आ गई है।"

"कई दिन से तो कह रहे हो इस बात को।"

"आज निश्चयात्मक कहता हूँ। चिट्ठी आ गई है। अब जरा लिखूंगा, ऐसा कि जिससे लक्ष्मी जी का माथा खुजलाने लगे!"

रामदयाल ने अपनी पत्नी को हंसाने के लिए अपनी कला का करिश्मा पेश किया था, परन्तु वैसा कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह मुंह बनाए ओठ बिरबिराती हुई चली गईं, मानो कहना चाहती हों—भाड़ में जाय तुम्हारा साहित्य और चूल्हे में पड़ें लक्ष्मी जी।

रामदयाल ने फिर ध्यान साधा, और कलम चलाने लगे।

दिन भर के थके-मांदे और दूसरे दिन की चिन्ता को कल्पना द्वारा दबा देने वाले रामदयाल ने अपनी चारपाई पर शरीर को अंगड़ाइयों के साथ

फैलाया। कल्पना की टक्कर ने नींद को कुछ समय तक दूर रखा। मन में एक विचार जागा—'यदि सरकार लेखकों के आमोद-प्रमोद के लिए किसी वन-वेष्टित, सजल, ऊंचे स्थान पर निवास इत्यादि बनवा दे, जैसे उसने अपने लिए शिमला, नैनीताल, पचमढ़ी, दार्जिलिंग इत्यादि में बनवा रखे हैं, तो बड़ा ही अच्छा हो—और कुछ रुपये का भी प्रबन्ध कर दे।' नींद तो कल्पना के भय के मारे आ ही नहीं रही थी, उचट कर बैठ गए। चारपाई झकोला थी; उसमें रामदयाल लगभग तीन-चौथाई दिखलाई पड़ रहे थे। पत्नी को इस आकस्मिक प्रयोग पर कुछ शंका हुई।

पूछा, "क्या है जी? क्या बात है?"

प्रसन्न स्वर में रामदयाल ने उत्तर दिया, "एक बड़ी बढ़िया सूझ मन में उठी है। उस पर कल ही कुछ लिखूंगा।"

पत्नी के मुंह से निकला, "ओह!"

रामदयाल ने अपनी कल्पना और योजना प्रकट की। पत्नी को हंसी आई—उसको, जिसने दिन में मुस्कराने से भी नाहीं कर दी थी। रामदयाल ने अपनी बात को और आगे नहीं बढ़ाया। मन को थोड़ा-सा मार कर उसकी हंसी पी गए और फिर लेट गये। थोड़ी देर में नींद आ गई।

सुन्दर सुहावना पहाड़, ऊंचा; उसके पास की श्रेणियां और भी ऊंची होती चली गई थीं। दूरी पर नीची पर्वत-मालाएं, जिनसे बादल मचल-मचल कर टकरा-टकरा जाते थे। सुनहली रवि-रश्मियां उद्यान के रंग-बिरंगे फूलों के साथ अठ-खेलियां कर रही थीं। पवन-विडोलित वृक्षों की हरी-भरी पत्तियां प्रकाश और छाया के निरंतर क्रम में प्रकृति को प्राण दे रही थीं। रामदयाल ने देखा, वसन्त या वसन्त का कोई प्रसिद्ध या अप्रसिद्ध सखा यहां सदा बना रहता है। कल्पना ने कविता को हिलोड़ दी और रामदयाल ने मुखरित होने की ठानी। परन्तु, जैसे हर पल और प्रत्येक पग पर टोका जाना भाग्य में लिखा कर चले हों, किसी ने पुकारा, "दयालु जी! दयालुजी!!"

मुड़ कर देखा तो 'सुन्दर निवास' से एक मित्र पुस्तक हाथ में लिए चले आ रहे थे।

"दयालु जी, यह पुस्तक छपकर आ गई। एक बढ़िया आलोचना भी साथ में है," मित्र बोले।

पुस्तक पर लिखा था 'कहानी-संग्रह'।

पुस्तक को हाथ में लेकर 'दयालु जी' ने कहा, "मेरा कहानी-संग्रह भी छप कर आज ही आया है। तुम को दिखला नहीं पाया। कविता-संग्रह भी कल आता होगा, और रुपये भी।"

"अजी रुपए आवें या न आवें। यहां रंग-बिरंगे फूल हैं; और भी ऐसा कुछ है, जिससे फिर किसी पदार्थ की कमी नहीं रहती। कुछ फूल तोड़ कर चलो घूमें।" मित्र ने प्रस्ताव किया।

दयालु जी ने अस्वीकृत किया, "इन सुन्दर फूलों को तोड़ कर, सूंघ कर, फिर धराशायी कर दोगे न? प्रकृति के ये वरदान कविता-कामिनी के शृंगार हैं। इनको तोड़ना नहीं चाहिए। वह तुम्हारा 'ऐसा कुछ है यहां कि जिससे किसी पदार्थ की कमी नहीं रहती,' कहां है? वहीं चलो।"

वे दोनों आगे बढ़ गये। देखा कि एक पेड़ पर अशर्फियां, रुपये, नोट लगे हुए हैं।

"यह है वह कुछ ऐसा, जो मैंने कहा था," मित्र ने बतलाया।

उसको देखते ही वे दोनों बेतहाशा दौड़ पड़े। परन्तु केवल वे ही नहीं दौड़े। उनको एक ओर से एक भीड़ और भी आती हुई दिखलाई पड़ी, जो इसी पेड़ की ओर दौड़ी आ रही थी। उस भीड़ के हाथों में भी पुस्तकें थीं।

दयालु जी के मुंह से निकला, "इतनी बड़ी भीड़! इस पेड़ की छाल भी नहीं बचेगी!"

वह सबसे पहले पहुँचने के लिए आगे बढ़े। एक ठोकर खाई और हाथ के बल गिर पड़े।

* * *

आंख खुल पड़ी। झकोला चारपाई की पाटी पर हाथ गिरा हुआ रखा था। रामदयाल ने इधर उधर देखा। वहां न सरकार का बनवाया हुआ कोई निवास-स्थान था और न कोई उद्यान। थी केवल झकोला चारपाई। लम्बी 'हूं' करके रामदयाल ने आंखें मूंद लीं।

काश्मीर और यू. एन. ओ. कमीशन

★

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालङ्कार

★

कोरिया, फिलस्तीन, बर्लिन, ग्रीस, डार्डेनल्ज, और ईरान के समान काश्मीर भी अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष का एक केन्द्र है और कोरिया व फिलस्तीन के समान काश्मीर की समस्या को हल करने और काश्मीर-संग्राम को शान्त करने के लिए संयुक्तराष्ट्र-संघ का एक कमीशन भारत आया हुआ है।

आरम्भ

पाकिस्तान के जन्म के साथ काश्मीर-समस्या का उद्भव हुआ। कायदे-आजम जिन्ना ने पाकिस्तान पाने से पहले वचन दिया था कि पाकिस्तान कम से कम बीस साल ब्रिटिश कामनवेल्थ में बना रहेगा। काश्मीर के बिना पाकिस्तान की यह सहायता अत्यधिक मूल्यवान नहीं है, क्योंकि सामरिक दृष्टि और रूस के चारों ओर लौह-दीवार के समान घेरा डालने, सोवियत रूस के अन्तरीय प्रदेश में स्थित कल-कारखानों पर बम गिराने, और ईरान और बाकू के तेल-क्षेत्रों पर बमबारी करने के लिए काश्मीर से और अधिक अच्छा अड्डा उपयुक्त नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त, काश्मीर का नैसर्गिक सौंदर्य और उसकी प्राकृतिक और भूगर्भ-सम्पत्ति अनायास ब्रिटिश और अमरीकी पूंजी को अपनी ओर आकर्षित करती है। इसलिए काश्मीर रहित पाकिस्तान एंग्लो-अमरीकी गुट के लिए मूल्यवान साथी नहीं हो सकता।

'क्वीन एलिजाबेथ' के लेखक बीसले ने लिखा है कि १६ वीं सदी में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का एक विचित्र सिद्धान्त था कि एक देश के प्रति युद्ध सदृश कार्य करना उस देश के साथ लड़ाई करने से सर्वथा भिन्न है। पाकिस्तान इसमें सम्भवतः विश्वास करता हुआ प्रतीत होता है। अन्यथा काश्मीर को बीच में करके भारत से लड़ने का उसके पास कोई कारण नहीं है।

कारण

काश्मीर में लड़ाई छिड़ने के और भी कई कारण हैं; यथा—

काश्मीर के अभाव में पाकिस्तान समृद्ध होने की आशा नहीं कर सकता। लेकिन पाकिस्तान काश्मीर को वैधानिक रीति से नहीं पा सका, इसलिए उसने लुटेरे कबीलों को सारी सहायता देकर काश्मीर पर हमला करने के लिए भेजा। इसमें उसका उद्देश्य
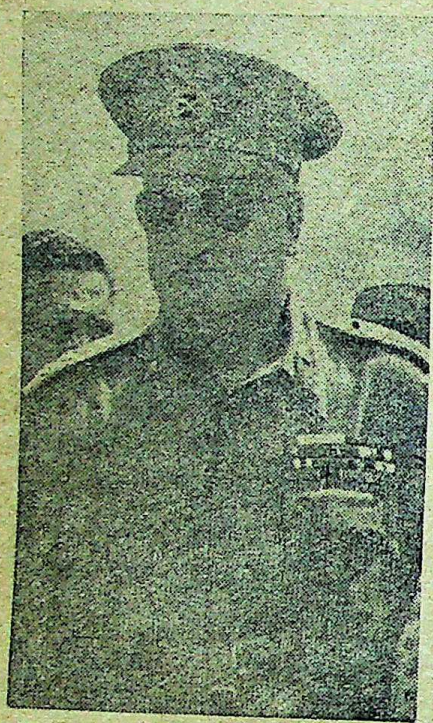
काश्मीर-नरेश

था कि यदि पठान कबीलों का हमला सफल हुआ तो काश्मीर को पाकिस्तान में मिला लिया जावेगा और यदि वे विफल हुए तो कह देंगे कि इससे पाकिस्तान का कोई सम्बन्ध नहीं, और पठानों पर उसका कोई वश नहीं है।

पिछले सौ साल से पठानों की शक्ति बराबर कुचली जा रही है। अंग्रेजों ने उनको निर्बल, निःशस्त्र और साधनहीन बनाने में कुछ उठा नहीं रखा था। उनको आपस ही में सदा लड़ाए रखने के लिए कोई सम्भव उपाय उन्होंने नहीं छोड़ा। इसलिए सीमान्त के पठान अंग्रेजों के भारत छोड़ते ही काश्मीर पर हमला करने की नहीं सोच सकते थे। पाकिस्तान की सहायता और प्रेरणा के बिना यह सम्भव नहीं था। इसका कारण क्या था?

पठानों को सीमान्त में शान्ति रखने के लिए दिल्ली के खजाने से प्रतिवर्ष ४ करोड़ रु० दिया जाता था। गरीब पाकिस्तान उनको यह कीमत देने में समर्थ नहीं था। इसलिए उपद्रवी और विद्रोही पठानों को लूट का लोभ देकर काश्मीर पर हमला करने के लिए भेजा गया।

एक ओर तो शान्ति का बुर्का ओढ़ कर पाकिस्तान अपनी सीमा पर लड़ाई की प्रचण्ड तैयारी कर रहा है। और इधर अब यह निर्विवाद रूप से प्रमाणित हो चुका है कि काश्मीर में उसकी पल्टनें आधुनिकतम शस्त्रास्त्रों से लैस होकर लड़ रही हैं। कमीशन के सामने पाकिस्तान की सरकार ने इस बात को अब स्वीकार भी कर लिया है।

ब्रिटेन व अमरीका का पाकिस्तान मित्र है, इसलिए वह भारत में इस प्रकार की आतंकपूर्ण स्थिति बनाये रखना चाहता है, जिससे भारत ब्रिटिश साम्राज्य से अलग होने का कभी विचार न करे।

काश्मीर यदि भारतीय यूनियन में रहता है तो भारत की उत्तरीय सीमा सोवियत रूस के साथ छूएगी। काश्मीर की राह हिन्द-महासागर में जाने का मार्ग सोवियत रूस के लिए भारत की सहायता से खुल जायगा। हिन्द-महासागर इस समय एंग्लो-अमरीकी गुट का सुरक्षा-प्रदेश है। इस अवस्था में भारत रूस और एंग्लो-अमरीकी गुट दोनों से अपने अनुकूल शर्तें पा सकता है और शक्तिशाली समुद्री और हवाई सेना न होने पर भी हिन्द-महासागर का स्वामी हो सकता है। पर काश्मीर यदि पाकिस्तान का भाग हो गया तो भारत, हिंद-महासागर पर एंग्लो-अमरीकी गुट का प्रभाव रहते हुए, तटस्थ परराष्ट्र-नीति का अवलम्बन नहीं कर सकता और न एंग्लो-अमरीकी गुट को सहायता देने या तटस्थ रहने के लिए उनसे मनचाही शर्तें पा सकता है।

काश्मीर-संग्राम का प्रश्न भावी विश्वव्यापी महायुद्ध से जुड़ा हुआ है। यही कारण है कि जब सुरक्षा-कौंसिल के समक्ष काश्मीर-संग्राम का प्रश्न भारत की ओर से रखा गया, तब उसका उचित निर्णय नहीं हुआ और मुख्य प्रश्न को छोड़ कर अवान्तर प्रश्नों पर चर्चा होती रही।

सुरक्षा-कौंसिल में

१ जनवरी को सुरक्षा-कौंसिल के सामने काश्मीर का प्रश्न आया। ६ जनवरी से ३ जून तक ३३ बैठकों में सुरक्षा-कौंसिल ने काश्मीर की स्थिति

...पर विचार किया। कौंसिल की बैठकों और निजू परामर्शों में समझौते का ऐसा आधार ढूंढने का प्रयत्न किया गया जो दोनों पक्षों को मान्य हो।

२१ अप्रैल को बेल्जियम, कनाडा, चीन, कोलम्बिया, संयुक्तराष्ट्र अमरीका और ग्रेट-ब्रिटेन द्वारा संयुक्त राय से पेश किया गया प्रस्ताव भारत और पाकिस्तान द्वारा विरोध करने पर भी पास किया गया।
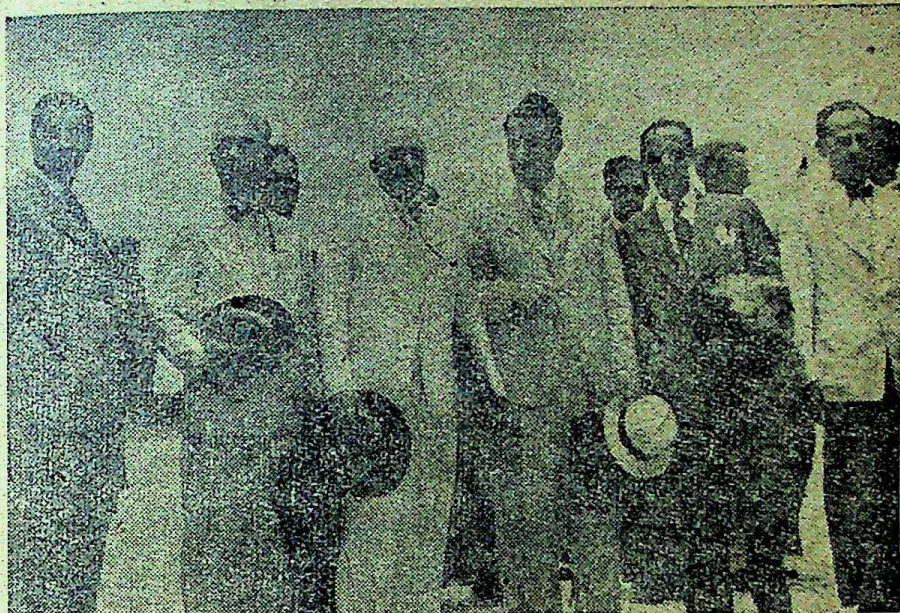
यू० एन० ओ० कमीशन के सदस्य

शांति के लिये खतरा

प्रस्ताव में कहा गया था कि जम्मू और काश्मीर की स्थिति से अन्तर्राष्ट्रीय-शान्ति और सुरक्षा को खतरा है। इसलिए युद्ध बन्द करने और इस विषय पर जनमत लेने के लिए कि काश्मीर भारत में प्रविष्ट हो या पाकिस्तान में, उपयुक्त स्थिति उत्पन्न करने के लिए कौंसिल ने दोनों सरकारों को कुछ उपाय सुझाये। इन उपायों को अमल में लाने में सहायता देने के लिए 'भारत-पाकिस्तान कमीशन' को तुरन्त भारत रवाना होने का आदेश दिया।
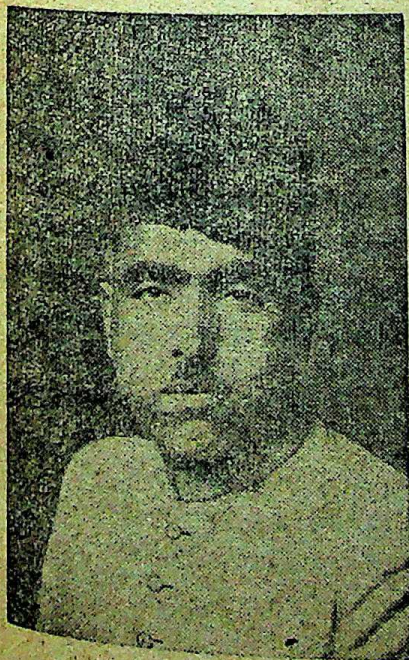
काश्मीर के प्रधान-मन्त्री शेख अब्दुल्ला

कमीशन का जांच का कार्य चार्टर की ३४ वीं धारा के अन्तर्गत है। इस धारा में कहा गया है—सुरक्षा कौंसिल किसी भी झगड़े या किसी भी स्थिति की, जो कि अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष या झगड़े को उत्पन्न होने का कारण हो, जांच करेगी और इस बात का निश्चय करेगी कि इस झगड़े या स्थिति के जारी रहने से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा का कायम रहना खतरे में तो नहीं पड़ जायगा।

३ जून को कौंसिल ने कमीशन को झगड़े के स्थान में अविलम्ब जाने के लिए आदेश दिया और तय किया कि कमीशन पहले जम्मू और काश्मीर जावेगा और बाद में उपयुक्त समय और अवस्था होने पर कमीशन अन्य बातों पर विचार करेगा। अन्य बातें हैं—जूनागढ़, मुसलमानों का सामूहिक वध और विभाजन से उत्पन्न

समस्यायें। यह प्रस्ताव ८ वोटों से पास हुआ था। चीन यूक्रेन, सोवियत रूस और अमरीका तटस्थ रहे।

५ जून को पं० जवाहरलाल नेहरू ने कौंसिल के प्रेजीडेण्ट को लिखा कि वे कमीशन का विचार और कार्यक्षेत्र बढ़ाने से सहमत नहीं हो सकते, जैसा कि ३ जून के प्रस्ताव में कहा गया है। कौंसिल के प्रेजीडेण्ट फेरिस एल-खूरी ने जवाब दिया कि गुणावगुण पर कौंसिल ने कोई राय नहीं दी है।

कमीशन के सदस्य जेनीवा में इकट्ठे हुए और प्रारम्भिक बातें उन्होंने वहां तय कीं। जुलाई के दूसरे सप्ताह में भारत आए और बारी २ दोनों सरकारों के उच्चाधिकारियों से लम्बी चर्चायें करने के बाद १३ अगस्त को उन्होंने भारत और पाकिस्तान के सामने युद्ध बन्द करने का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव को भारत ने तो स्वीकार कर लिया है, पर पाकिस्तान ने कुछ ऐसी शर्तें पेश की हैं, जिनके कारण, कमीशन की ६ सितम्बर की घोषणा के अनुसार, उस प्रस्ताव के अविलम्ब अमल में आने की सम्भावना नहीं है।

मूल प्रश्न की उपेक्षा

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सुरक्षा कौंसिल ने पंच और न्यायाधीश का कार्य नहीं किया और प्रारम्भ से ही मूल प्रश्न की उपेक्षा की। भारत का कहना था कि काश्मीर में पाकिस्तान अप्रत्यक्ष रूप से लड़ रहा है; वह अड्डे, मार्ग, रसद और शस्त्रास्त्र के द्वारा आक्रान्ताओं को सहायता दे रहा है; अतः उसको इस कार्य से रोका जाय। काश्मीर की लड़ाई अन्तर्राष्ट्रीय-शान्ति, सुरक्षा और भारत-पाकिस्तान के मैत्री-सम्बन्ध को बिगाड़ने का कारण हो सकती है, अतः पाकिस्तान को आदेश दिया जाय कि वह आक्रान्ताओं को मदद न दे। पर कौंसिल ने यह सीधा मार्ग नहीं पकड़ा, बल्कि उसने चक्करदार मार्ग पकड़ा। निस्सन्देह इसमें भारत सरकार ने भी अपना पक्ष रखने में गलती की। काश्मीर को उसने प्रारम्भ से अपना अविभाज्य और पूर्ण अंग नहीं माना। जनमत का प्रश्न घरेलू है और इसका सुरक्षा-कौंसिल से कोई सम्बन्ध नहीं है, यह भुला दिया गया। भारत सरकार की इस भूल का ब्रिटेन, अमरीका और पाकिस्तान ने लाभ उठाया, और उन्होंने प्रारम्भ से जनमत लिए जाने के लिए उपयुक्त स्थिति उत्पन्न करने के उपायों पर विचार आरम्भ किया और मूल प्रश्न को छोड़ दिया।

कौंसिल के प्रस्ताव से सहमत न होते हुए भी भारत सरकार ने कमीशन को अपने देश में आने दिया। भारत सरकार ने यदि सुरक्षा कौंसिल से काश्मीर के प्रश्न को पहले नहीं हटा लिया था, तो अब कमीशन को भारत आने से रोक देना चाहिए था और कमीशन के किसी कार्य में उसको सहयोग नहीं देना चाहिए था। भारत की इस दृढ़ता और आदर्शों और सिद्धान्तों से समझौता न करने की भावना का अन्तर्राष्ट्रीय-जगत पर अद्‌भुत प्रभाव पड़ता। पर उसने यह सीधा मार्ग न पकड़ कर कमीशन को यह जानते हुए भी आने दिया कि प्रारम्भ से ही कौंसिल और कमीशन का रवैया पाकिस्तान की ओर है और काश्मीर के युद्ध को छोड़ा करने लिए कौंसिल की ओर से कोई प्रयत्न नहीं किया गया है। पर अन्तर्राष्ट्रीय-जगत की शुभेच्छा प्राप्त करने के मोह ने यह सीधा और सरल मार्ग भारत को अंगीकार करने से रोक दिया।

डूबती हुई सावित्री को किनारा मिला और मदन व शान्ति को सेवा का अवसर !

★

नित्य की भांति ही जब लाला बशेशरनाथ ने अखबार का चौथा पृष्ठ पलटा, जिस पर शरणार्थियों के सम्बन्ध में समाचार रहते थे, तो रेखांकित 'अपहृत महिलाओं की वापसी' के नीचे लिखे मोटे शीर्षक 'कल एक जत्था दिल्ली और पहुंच रहा है' ने उनकी दृष्टि को बरबस अपनी ओर खींच लिया। समाचार का पूरा विवरण समाप्त करते उन्हें मुश्किल से पांच सैकण्ड भी न लगे होंगे और पढ़ते ही वे विचार-मग्न हो गए। अखबार की पंक्तियां धुंधली पड़ गईं; सारा पृष्ठ एक काली पुती हुई सलेट के सदृश आंखों के सामने ठहर गया और उसमें उन्होंने देखा सोहनदई को—मदन की मां को····। काली सलेट पर धीरे-धीरे श्वेत रेखाएं एक गति के साथ अंकित होती गईं, उभरीं और नेत्रों के सामने सोहनदई थी—उनसे केवल तीन वर्ष छोटी श्वेतकेशी सोहनदई, चेचक के दागों से जिस का काला पड़ा चेहरा तब भय के कारण और भी स्याह पड़ गया था। आंखें—मौत को साकार देख कर दया, जीवन और रक्षा के सबल आश्रय की याचना करने वाली आंखें, जिनके दोनों कोनों में पानी रुका रह गया था, जो सहायता के लिए बिलख रही थीं। ओठ, जो प्राणों को संकट में देख छटपटाते कपोत की तरह फड़क-फड़क कर रह जाते थे····चीत्कारों और हाहाकार की हृदय विदारक ध्वनि····और अंत में जो नर-पिशाचों के क्रूर अट्टहास की सुदृढ़ दीवार के बीच अपने को असहाय और आबद्ध देख कर मां धरा के वक्ष पर गिर पड़ी थी···। वही सोहनदई अखबार के पन्ने की काली सलेट पर सफेद रेखा बन कर मूर्त्त हो उठी थी। शरीर मानों जड़ हो गया बशेशरनाथ का।

अपहृत महिलाओं का एक और जत्था कल राजधानी आ रहा है—अखबार की पंक्तियां चमक उठीं। बशेशरनाथ ने उस समाचार को फिर पढ़ा, एक बार और पढ़ा।

सोहनदई लौट कर नहीं आई। कितने जत्थे आ चुके, पर उसका कोई पता न लगा। बशेशरनाथ ने सारे शरणार्थी शिविरों के प्रबंधकों को पत्र लिखे, केन्द्रीय कार्यालय के शरणार्थी विभाग के सौ-सौ चक्कर लगाये; पर सोहनदई की कोई सूचना न मिली। तब बशेशरनाथ हृदय मसोस कर रह गए। अपहृत महिलाओं की वापसी का कार्य जब प्रारम्भ हुआ तो बशेशरनाथ ने उसकी आशा की जो उन्हें असम्भव जान पड़ता था। मन में विश्वास होता कि सोहनदई लौट

आयेगी। उनका मन कहता था कि आततायियों ने उस के प्राण नहीं लिए।

"लेकिन धर्म-परिवर्तन ?" अंतर ने पूछा।

"नहीं! नहीं!" विश्वास अडिग सिद्ध होता। सोहनदई का दृढ़ स्वर बशेशरनाथ के कानों में गूंज जाता—'चाहे तुमसे बिछुड़ कर गुण्डों के पाले पड़ जाऊं, पर धर्म-कर्म नहीं छोड़ूंगी। गले में फंदा भी न लगा सकी तो किसी मरे का छुरा ही छीन कर अपनी छाती में भोंक लूंगी। एक हफ्ते में मकान बेच लो, तब तक कोई आपत्ति नहीं आयेगी जी; मेरे ठाकुर जी ने मुझे सुझा दिया है।'

लेकिन धार्मिक-अंधविश्वास के आधार पर खड़ी सोहनदई की वह बुनियादें कितनी कच्ची निकलीं—विश्वासघातिनी! ओह उसके ठाकुर जी ही उसे न बचा सके!

जीने से नीचे आती शान्ति मदन की वह मर्माहत मुद्रा देख सहम गई।

और मदन की बहू सावित्री ? बशेशरनाथ का रक्ताभाव के कारण पीला पड़ा शरीर एकदम जैसे ठंडा-सा पड़ गया। नवविवाहिता पुत्रवधू तीन मास भी सुख से न रह सकी। क्या विधाता को यही अन्तर्वेदना देकर भारतभूमि में मुझे भेजना था ? उसका जाने क्या हाल हुआ होगा ? हाय, अपनी सास के कहने पर ही वह जीने की कुछत्ती में बंद रह गई।

बशेशरनाथ की आंखों के सामने मारपीट व लूटपाट का वह भयानक चित्र घूम गया। अग्नि की लाल-लाल धधकती ज्वालाएं जैसे बशेशरनाथ के चारों ओर लहरा उठीं, सब कुछ जलने लगा, मकान धराशायी होने लगे और इस सब के बीच भागते हुए हिंदुओं को छुरे व गोलियों की घातक मार से तड़पते, भूलुण्ठित होते देख, घसीट कर ले जाई जाती असहाय स्त्रियों और बच्चियों का हृदय-विदारक चीत्कार सुन भयविकम्पित बशेशरनाथ के मुंह से एक हलकी चीख निकल गई। अखबार कुर्सी से नीचे वह अर्ध-चेतनावस्था में पड़े थे।

...के हाथों से निकल कर दूर उड़ गया था। तभी ऊपर के कमरे से दौड़ कर आ गया मदन।

"पिता जी, क्या हुआ आपको यह?" वह चिंतित था। घबड़ा कर उसने अपनी पत्नी को पुकारा, "शान्ति! शान्ति! थोड़ा पानी तो लाओ।"

धूप के आघात से मुरझाया पौदा जैसे पानी छूते ही लहलहा उठता है, बशेशरनाथ ने भी मुंह पर जलबिन्दु पड़ते ही करवट ली। कांटे पड़ी हुई जीभ ओठों पर एक बार फिर गई। गरदन को दायें हाथ का सहारा देकर पिता को उठाते हुए मदन ने अत्यन्त दीन स्वर में कहा, "आपको समझा-समझा कर हार गया, आप अकेले न बैठा करें; पर आप हैं कि बैठक छोड़ते नहीं।"

बशेशरनाथ का कंठ जैसे इस ममत्व की वर्षा से कुछ गीला हो गया "पानी ला, बेटा!" मुंह से निकला

और शान्ति के हाथ से गिलास लेकर मदन ने पिता को पानी पिलाया। थोड़ा जल गले से नीचे उतरा तो मुंह से बोल निकला, "क्या करूं, बेटा! तेरी मां की याद भुलाए नहीं भूलती! कितने चाव से तेरा ब्याह किया था उसने, पर तीन मास भी सावित्री......।"

मदन के पास ही शान्ति को खड़ा देख बशेशरनाथ की वाणी रुक गई। सिर को जैसे एक बार फिर गहरा धक्का लगा, नेत्र झपझपाए और हाथ पानी के गिलास की ओर बढ़ गया। देख कर शांति वहां खड़ी न रह सकी; पैरों में मानों स्वयं ही गति आ गई। तेजी से रसोई में आ वह अन्यमनस्क अपने काम में लग गई।

शान्ति को वहां से हटते देख बशेशरनाथ की वाणी पुनः सजीव हो उठी। अवरुद्ध कंठ से एक क्षीण आवाज निकली, "कुछ पता लगा बेटा, तेरी मां का और...? लेकिन बहू के लौटने की अब क्या आशा! उस बेचारी की तो गुण्डों ने मेरे सामने ही बोटी-बोटी नोच डाली थी...हाय...!"

उत्तर में मौन मदन का मस्तक कुछ और नीचे झुक गया और वह अपने पिता के मुख के परिवर्तित भाव को लक्ष्य न कर सका। उन के मुख पर अब वेदना के स्थान पर भय की छाप थी, जैसे वे कोई अपराध करते हुए पकड़े गये हों।

एक क्षण तक निःशब्द रहने के बाद मदन बोला, "चलिए, पिता जी, खाना तैयार है। फिर आप दुकान भी जायेंगे न!"

"हां!" यंत्रवत बशेशरनाथ बोले, "तुम खाओ, मेरी रुचि कुछ है नहीं, बेटा!"

"थोड़ा चावल ही ले लीजिए। मैं यहीं ला दूं?"

पर बशेशरनाथ वहां से न हिले।

मदन फिर रसोई में आया। और तब रोटी बेलते-बेलते शांति ने प्रश्न किया—"तो अभी तक उन्हें माता जी की याद आती है?"

एक हल्की मुसकान से मदन बोला, "जी हां, तीस साल के साथी थे!"

"और आप तीन मास के!" शान्ति ने मदन

के पहले विवाह को लक्ष्य कर व्यंग्य किया। उसे बताया गया था कि सावित्री से विवाह हुए अभी तीन मास ही हुए थे कि नगर में भयंकर रक्तकाण्ड मच गया। जो स्त्रियां उड़ाई गईं, उनमें मदन की मां सोहनदई और पहली पत्नी सावित्री भी थी। सावित्री को गुण्डों ने वहीं मार डाला था···इत्यादि।

शांति ने तो केवल परिहास के लिये व्यंग्य किया था, परन्तु मदन मर्माहत हो उठा। सावित्री से उसे कितना प्रेम था! निमिष भर में उसके सामने सावित्री का सुन्दर मुखड़ा और विवाहित जीवन के वे रँगीले तीन मास घूम गये। परन्तु वह अपनी इस नई पत्नी से अपने हृदय का यह घाव छिपाना चाहता था। शांति की ठोड़ी को ऊपर उठा कर मुस्कराने की चेष्टा करते हुए उसने कहा—"नहीं! अब तीस दिन के साथी!"

शांति से विवाह हुए अभी एक ही मास हुआ था। मदन और शांति के नेत्र परस्पर भूल उठे। और उसी हंसी के बाद शांति ने तनिक गम्भीर बन कर पूछा, "क्यों जी, अगर माता जी लौट आईं तो क्या पिता जी उन्हें रख लेंगे?"

"हां, हां, क्यों नहीं? जो कुछ उनके साथ हुआ उस में उनका क्या दोष। लाखों-हजारों के साथ भी वही हुआ है।"

"लेकिन···समाज?" प्रश्नसूचक दृष्टि मदन को देख रही थी।

"हुँ, समाज! अरे, समाज तो मेरे-तुम्हारे बनाए बना है। यह तो हिम्मत का खेल है, हिम्मत का!"

थाली परोसते हुए शांति बोली, "आप समझिए तो बात को। इसी थाली में किसी की झूठी रोटी परोस दूं आपको, तो क्या आप मुंह लगायेंगे?"

मदन निरुत्तर हो गया। शांति विजय से मुस्करा उठी। अपनी झेंप मिटाने के लिए मदन बोला, "अम्मा जी तो अब बुड्ढी-ठेड़ी हुईं, उनका वहां क्या बिगड़ा होगा। लौट भी आईं तो कौन अंगुली उठायेगा उन पर? तुम्हीं कहो, क्या उनके पैरों न पड़ोगी तुम?"

इस बार जैसे बाजी मदन के हाथ रही। उसने उत्तर की प्रतीक्षा में गर्व से अपनी नव-विवाहिता पत्नी की ओर देखा।

शान्ति अप्रतिभ नहीं होने वाली थी। संभल कर बोली, "खैर, वह समय यदि आया तो देखा जायेगा। लेकिन यदि, मान लीजिये कि आपकी पहली स्त्री भी जीवित हो, तो क्या उसके आने पर उसे भी आप स्वीकार कर लेंगे? वह तो बुड्ढी-ठेड़ी नहीं थीं·····।"

पहली पत्नी का जिक्र आते ही मदन फिर मर्माहत हो उठा। आर्द्र कण्ठ से बोला, "शांति, उसकी बात न करो। उसकी तो तभी मृत्यु हो गई थी। परलोक से लौट कर भला कौन आया है!"

तभी नीचे बड़े दरवाजे पर 'खट् खट्' आवाज हुई और साथ ही बशेशरनाथ का 'कौन?' भी सुन पड़ा। मदन बोला, "देखूं कौन आया इस वक्त!"

वह थाली छोड़ उठने लगा तो शांति ने रोका, "नीचे बैठक में पिता जी हैं तो, सुन लेंगे!"

पर मदन न माना। उठा तो शांति ने हंसते हुए आटे से सने हाथों से ही उसका कुरता पकड़ लिया, "बीच में खाना छोड़ कर नहीं जाने दूंगी!"

"मानो, छोड़ो तो!" इस समय पता नहीं क्यों मदन को नवोढ़ा पत्नी की यह चुहलबाजी पसन्द न आई। वह कुरते का छोर छुड़ाकर भागा। जीना उतरते-उतरते उसने सुना बशेशरनाथ का कड़ा स्वर—"लौट आईं तो जाए कुएं में! हमारी यह कुछ नहीं लगती! बिरादरी में नाक कटायेंगे हम। जाइए-जाइए, कांग्रेस में भरती करवाइये। सरकार को शरणार्थी बसाने के लिए कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता है। अखबार नहीं पढ़ते आप···?"

जोर के धमाके के साथ द्वार बन्द हो गया। और उसका धमाका 'खट्' से मदन के धड़कते हुए हृदय से आ टकराया। मुद्रा पर एक क्षण में आश्चर्यभाव फैल गया। नेत्र जैसे हवा भरने से विस्फारित हो गए। हृदय उद्वेलित हो उठा। शांत गहन कुएं की छाती भारी पत्थर की चोट से मानो विकम्पित हो उठी।

"कौन आ गया? कौन आ गया?" चिल्लाता हुआ वह बशेशरनाथ के सामने आ खड़ा हुआ, "कौन आ

(शेष पृष्ठ ५३ पर)

दलित-उत्पीड़ित मनुज, सुन ले जरा !

श्री 'अंचल'

दलित-उत्पीड़ित मनुज, सुन ले जरा !
राज-पथ की धूलि में बिखरे पड़े ये गान,
ओ निराशा से पराजित स्वप्नदर्शी सुन !
देख अपना ही बँटा खण्डित हृदय
जोड़ सकता हूं जिसे मैं
एक कर देंगे जिसे ये गीत मिट्टी के अजस्र अजेय।
आ, चला आ साथ इस गतिशील युग के !
है यही वह मार्ग तू अब जान ले !
कर अडिग विश्वास अणु-अणु से इसे पहचान ले !
है हमें चलना कि जिस पर—
हमें ही क्यों ?
विश्व को, इतिहास को, भवितव्य की नव शक्तियों को
है यही वह मार्ग जो जन-एकता की पारदर्शी ज्यति देता।
देखता तू आग—भीषण यह दवाग,
जल रही धरती युगों की संस्कृति की,
कण्ठ सूखा—कर रही चीत्कार मानवता,
जल रहा जिसका तृषित कण-कण।
आग यह वैसी नहीं जो ध्वंस कर दे शोषणों को,
चीर दे जो युग-युगों की कालिमा को—अनय शिखरों को,
आग यह मनुष्यत्व को ही जो दहन करती,
सभ्यता के प्राण हरती।
आ ! चला आ ! भावना हो क्षुद्र या कि विराट,
है बुझाना यह लपट—यह दाह का विभ्राट।
यह निराशा और जड़ता झूठ है माया,
सत्य केवल एक जीवन का—प्रबल आशा, सतत दुर्भेद्य साहस।
बँटा खण्डित हृदय ही तेरा तुझे निर्बल बनाता;
जोड़ दे तू खण्ड दोनों दूर थे जो आज तक,
एक हों दो स्रोत बल-विश्वास के।
विजय निश्चित है हमारी,
सर्वनाशी आग यह जल से न, शोणित से बुझेगी !
सुन अभागे औ अभाव-ग्रसित मनुज सुन ले !
देख अपना ही कटा खण्डित हृदय ! ले देख !

फ़िल्मी कहानी

श्री 'नलिन'

कम नहीं, एम० ए०। दो-तीन कहानी-संग्रह भी निकल चुके। प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में शान से नाम भी आता रहता। साल-दो-साल सम्पादकीय कुर्सी पर बैठ कलम भी घिसी और जो लिखा चमका भी। नई बात पैदा करने की आशा भी की जाने लगी। पर यह न समझिये, इसी दिन मुझे 'राधा-फिल्म्स' में रख लिया गया, बल्कि इसलिये कि मेरे सगे चाचा सेठ दत्तामल के हेड-मुनीम हैं। का रुख सूँघने में चाचा जी बाजार भर को चुनौती देते हैं। सेठ दत्तामल की बाजारों में ही नहीं, तिजौरियों में भी चाचा जी की समझदारी की चमक है।

मुंशी 'कलेजा' साहब पहले से ही कंपनी के कहानी, संवाद और गीत विभाग के मुखिया थे। उनकी कई पिक्चर निकल भी चुकी थीं। एक-दो गीत 'हिट्' भी हो चुके थे और 'घघरिया झूमर-सी बल खाय' को तो वह अभी तक फिल्मी-गोष्ठियों में गुनगुनाया करते थे। मुझे 'कलेजा' साहब का असिस्टेएट बना दिया गया। एक पिक्चर वह लिख रहे थे, उसी के सिलसिले में 'कलेजा' साहब मुझे फिल्म टेकनीक की ट्रेनिंग देने लगे। सेठ जी का इरादा था, बच्चे को आगे बढ़ाया जाय। ट्रेनिंग लेने और फिल्म की पूरी पूरी लेखन-टेकनिक सीखने के लिये दो-तीन महीने का समय भी मुझे दिया गया।

अगली पिक्चर मैं ही लिखूंगा, यह भी मुंशी जी ने मुझे बता दिया। मुंशी जी ने तीन महीने में अपनी पिक्चर लिख डाली। अब मुझे आशा हुई कि दूसरी पिक्चर के लिए कहानी लिखूं। सिर में तो चक्कर था ही, साथ ही देख आया 'एमिलजोला'—फ्रेंच ग्रंथकार का प्रसिद्ध जीवन-चित्र। मन में आया, ऐसी ही एक कहानी किसी हिन्दी-लेखक के जीवन को लेकर लिखनी चाहिये। जोश में आ उपन्यास-सम्राट प्रेमचंद की जीवन-कहानी लिख डाली। कहानी सुनने और उस पर फिल्मी बहस करने के लिये सेठ जी ने दिन भी तय कर दिया।

सब लोग सेठ जी के घर पर ही जमा हुए। चारों तरफ फिल्मी फरिश्तों का जमघट देखा, तो कलेजा धक्-धक् करने लगा। सेठ जी ने 'बेटा' कह कहानी सुनाने का संकेत किया। मैं नींबू चूसने का ध्यान करते हुए फाइल खोलने लगा, तो सहसा 'आइये-आइये' की फुलझड़ियां छूट पड़ीं। देखा, सेठानी जी लजाती-सकुचाती-सी भीतर आने का अभ्यास-सा कर रही हैं।

"अरे, आओ न!" सेठ जी ने वहीं बैठे बैठे कहा और मुन्शी 'कलेजा' फुर्ती से उछल कर दरवाजे पर।

"आइये न माजी''वाह-खूब, मैं तो''''!" 'कलेजा' साहब ने दसों उंगलियों से कमरे की तरफ संकेत किया।

सेठानी जी दायें हाथ की दो उंगलियों से ओढनी का किनारा एक गाल की तरफ ताने मुसका-सकुचा कर रह गईं। उनकी लाजभरी झिझक देख सेठ जी उठे और उन्हें अन्दर लाते हुये बोले, "अरे, चलो न!"

"हमें तो शरम लगे है," सेठानी जी फिर लाजभरी गुदगुदी से फुदकती-सी बोलीं।

"वाह, माजी, ये सब तो आप के बच्चे हैं!" 'कलेजा' साहब ने बताया।

"और यह तो अपना ही छोकरा है—मुनीम जी का भतीजा'''।" सेठ जी कहते हुये उनकी कमर पर हाथ रख, उन्हें भीतर ले आये। वह लजाती-मुसकाती, पुतलियां नचाती भीतर आईं। कमरे में नमस्ते, प्रणाम, हीं-हीं, हैं-हैं-हैं, माजी आदि के ढेर लग गये।

हमारी हिन्दुस्तानी फिल्मों का कलात्मक स्तर क्यों ऊंचा नहीं होता? क्यों सस्ते मनोरंजन व नाच-गानों से भरी हुई ही घटिया फिल्में बन कर आती हैं? हमारे अच्छे लेखक और कवि क्यों फिल्म-जगत से भाग आते हैं? ऐसे सभी प्रश्नों का उत्तर इस कहानी में मिलेगा।

सेठानी जी अपनी अठारह वर्षीया लड़की 'बेबी' के पास, रिजर्व सीट पर, फस्स से बैठ गई। सेठ जी ने फिर मेरी तरफ देखा और कहा, "हां, अब शुरू करो।"

मैं कहानी सुनाने के लिये मुंह पूरी तरह खोल भी न पाया कि डायरेक्टर घोष बोल उठे, "लेकिन कास्ट के बारे में भी कुछ तय किया?"

"अशोक और लीला चिटनिस की टीम ठीक रहेगी," प्रोडक्शन-इंचार्ज ने राय दी।

"ये लोग बड़े भारी पड़ जाते हैं। हाई कास्ट रख कर पिक्चर की कौस्ट बढ़ाना...।" सेठ जी ने असहमति प्रकट की।

"माजी, आप की राय में कौन-कौन आर्टिस्ट लिया जाय?" 'कलेजा' साहब ने सेठानी जी से पूछा।

"हमें तो घोरी-दीक्षित की जोड़ी अच्छी लगे है।" सेठानी जी ने भी अपनी अमूल्य सम्मति दे डाली।

"ना-ना, अम्मा, स्वर्णलता को रखना हीरोइन। 'रतन' में कितना अच्छा गाती है—अंखियां मिला कै, जिया भरमा कै...हो...हो...।" बेबी जी ने राग अलापना भी शुरू कर दिया; पर सेठानी जी ने आंखों से बरजा। आह, बेबी जी के अरमान दिल में ही घुट कर रह गये!

कहानी सुनी नहीं, कास्ट पर बहस! मैं बुद्धू-सा सब सुनता रहा—एकाकी-सा देखता रहा।

म्युजिक डाइरेक्टर मि० नाशाद ने भी मुंह खोला, "राइटर साहब से भी तो पूछ लीजिए, किस-किस आर्टिस्ट को ध्यान में रखकर स्टोरी लिखी है।"

"कहानी के लिये आर्टिस्ट तलाश किये जाते हैं या आर्टिस्टों के लिये कहानी लिखी जाती है?" मैंने मधुर वाणी में पूछा।

"हीरो-हीरोइन का ध्यान रख कर लिखा जाय तो तलाश करने में तकलीफ नहीं होती।" 'कलेजा' साहब ने नयी टैकनीक बताई।

"अभी बच्चे हैं राइटर साहब, हैं-हैं-हैं-हैं!" प्रोडक्शन-इंचार्ज ने व्यंग्य किया।

"अभी इण्डस्ट्री में घुसे हुए दिन ही कितने हुए!" घोष बाबू ने भी कह कर दांत दिखाये।

"फिर भी कहानी तो सुन लीजिये," मैं बोला।

"हां—हां, कहानी तो पहले ठीक हो जाय," सेठ जी ने कह कर मेरी ओर देखा।

"यह कहानी हिन्दी के बहुत बड़े उपन्यासकार बाबू प्रेमचन्द के जीवन की है। 'एमिलजोला' पिक्चर तो आपने देखी ही होगी—वैसी ही यह.......। भारत भर में प्रेमचन्द का बड़ा नाम है। उनकी बहुत-सी रचनाएं अंग्रेजी और दूसरी भाषाओं में भी....." मैंने इतना कह सांस ली।

"हां, तो कहानी शुरू करो न," सेठ जी ने संकेत किया।

मैंने पढ़ना शुरू किया, "दूर तक जंगल ही जंगल—बियाबान सुनसान। ऊंची-नीची पतली नागिन-सी टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डी। झाड़ियां ही झाड़ियां। खेत ही खेत। बरसात का मौसम और हरियाली। अचानक भीषण तूफान आता है। आसमान से तेज झड़ी लग जाती है, मूसलाधार वर्षा होने लगती है। बिजली कड़कने लगती है, ओले पड़ने लगते हैं। चारों तरफ पानी ही पानी। इन डरावनी घड़ियों में, इस तूफानी समय, कलेजा कंपाने वाले काल में, बादलों की छाया में ओले और वर्षा के नीचे से गुजरता हुआ एक गरीब विद्यार्थी पैदल चल कर दूर बहुत दूर,

यानी ५-६ मील दूर से शहर में पढ़ने को आता है। कट टु—

"बनारस का एक हाई स्कूल। लड़के शोर मचा रहे हैं। वह विद्यार्थी भीगे कपड़ों में लिपटा कांपता हुआ स्कूल में पहुँचता है। आज फीस नहीं दे पाता। क्लास-टीचर उसे क्लास से बाहर निकाल देता है। उधर सर्दी से कड़कड़ी बंधी है और इधर यह व्यवहार! और यही है हमारा हीरो प्रेमचन्द।" मैंने जरा सांस ली और सहमी नजर से सेठ जी की तरफ देखा।

"ओपनिंग तो बुरा नहीं," सेठ जी ने प्रोत्साहित किया।

"लौंग—शॉट, शानदार चीज है!" कैमरा-मैन बोला।

"क्या मुन्शी 'कलेजा' इतना भी न लिखा पाते। आखिर तीन महीने तक...।" 'कलेजा' साहब पान की पीक मुंह में ही संभालते हुए बोले।

"हां, इसके बाद?" मि० घोष ने पूछा।

"इस के बाद हीरो का मुरझाया चेहरा उसकी मां के मुंह में 'डिजॉल्व' होता है। और..." मैंने कहा और प्रोडक्शन-इंचार्ज कनखियों से जरा मुसकाया।

इस के बाद कट टु, डिजॉल्व, फेड-इन, फेड-आउट, यह सीन और वह सीन करके पन्द्रह मिनट में ही मैंने कहानी पूरी पढ़ सुनाई। बोझ सा उतार सब के मुखों पर आने वाले भावों-अनुभावों को पढ़ने लगा।

"कैसी रही?" 'कलेजा' साहब ने सब की राय ली।

"क्या चलेगा यह शाला स्टोरी! न रोमांस, न शाला कोई विलेन! न कोई सस्पेंस, न इसमें कोई ग्रिप। बस गरीब हीरो पढ़ता है, नौकरी करता है, जोश में नौकरी छोड़ देता है। बहुत बड़ा राइटर बन जाता है—बहुत-सा नाव्हिल्स लिखता है। यह भी शाला कोई स्टोरी हुआ!" मि० घोष ने कहानी की अलोचना कर डाली।

"और क्लाइमेक्स का कहीं पता तक नहीं, सारी स्टोरी पढ़ गये...एण्ड नो स्ट्रगल एटॉल," प्रोडक्शन-इंचार्ज ने कहा।

"ना-ना, यह तो एक ढांचा है। आप लोग अदल-बदल कर ठीक बना लें। पहली चीज है और लड़के को इण्डस्ट्री में आये दिन ही कितने हुए हैं," सेठ जी ने समझाया।

'और क्या, मेरे तो बाल पक गये इण्डस्ट्री में। लेकिन आप जानते हैं, शूटिंग शुरू होने से पहले सेठ जी क्या गजब की तब्दीलियां कर देते हैं। हां, यह बात तो है ही, स्टोरी में रोमांस न आया तो... और साथ ही सस्पेन्स तो स्टोरी की जान है। राइटर की काबलियत का पता तो बढ़िया क्लाइमेक्स से लगता है।" कलेजा साहब ने एक ही वार में सब को पछाड़ दिया।

"पहला तीन चार-सीन तो बिल्कुल ठीक। हीरो जब कालेज में पढ़ता है तो किसी से उस का प्रेम जरूर होना चाहिए," मि० घोष ने सुझाया।

"प्रेम न किया तो हीरो किस काम का!" कैमरा-मैन बोल उठा।

"और उस लड़की यानी हीरोइन को एक लड़का पहले ही प्रेम करता है। यही बन जायगा विलेन," मि० घोष ने तय कर दिया।

"खूब खूब! प्रेम करने का मौका और होगा ही कहां? और क्या बुड्ढा होकर मुहब्बत करेगा किसी छोकरी से?" प्रोडक्शन-इंचार्ज बोला।

"और अब नाम की भी खास वजह हो गई। इसी प्रेम-काण्ड के कारण ही हीरो ने अपना नाम प्रेमचन्द रख लिया, वरना असल नाम तो धनपतराय है।" 'कलेजा' साहब चमकती पुतलियों से बोले। उनकी चमत्कारी अक्ल पर चारों तरफ 'वाहव्वा-वाहव्वा' का शोर मच गया। सेठ जी भी प्रसन्न। सेठानी भी भ्रू-अवगुंठन से मुसकादीं। 'बेबी' तो उछल पड़ी। मैं बावले की तरह हक्का-बक्का सा देखता रह गया।

"यहां मनमाना रोमांस दिखा सकते हैं। जी भर मुहब्बत की चाशनी चखा सकते हैं। पूनो की उजियाली चांदी-सी रात। गंगा की नशीली रपटती लहरों में हीरो-हीरोइन बैठे जीवन के सपने बटोर रहे हैं। नौका-बिहार, प्लेग्राउण्ड में लुका-छिपी, चम्पा के कुंजों में आंख-मिचौली, एण्ड सो मनी थिंग्स। गीतों के लिये भी

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

★
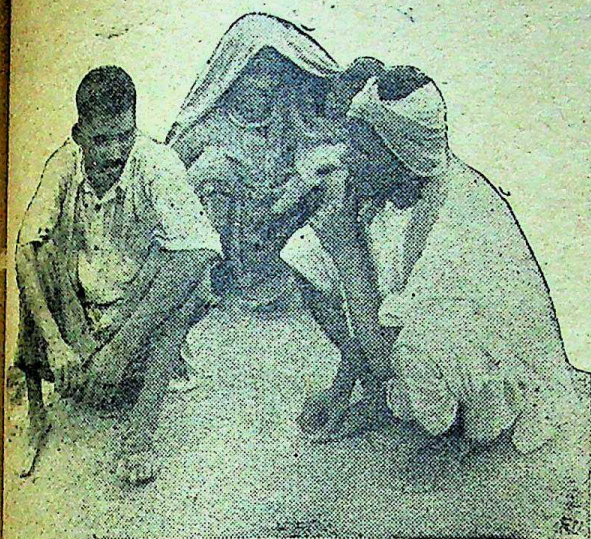
महंगाई के कारण आज जन-साधारण चिन्तित व परेशान है। प्रस्तुत लेख में विद्वान् लेखक ने महंगाई के कारणों और उसे दूर करने के उपायों पर निष्पक्ष और प्रामाणिक ढंग से विचार किया है। लेख उपयोगी भी है और ज्ञानवर्द्धक भी।

★

[म]हंगाई की उलझन भरी पहेली

लेखक—
श्री कृष्णचन्द्र विद्यालङ्कार

आज भारत जहां अनेक प्रकार की बाह्य व आन्तरिक राजनैतिक उलझनों में उलझा हुआ [है] वहां देश की आर्थिक समस्या भी लगातार विषम [हो]ती जा रही है। इस दुर्दशा का स्पष्ट रूप है पदार्थों [के] मूल्यों में लगातार वृद्धि। युद्ध-समाप्ति [के] बाद लोग आशा करने लगे थे कि महंगाई कम [हो]गी; परन्तु वह आशा पूर्ण नहीं हुई। उसके बाद [ज]ब अन्तरिम सरकार बनी, तब यह आशा की जाने [लगी] कि अपनी सरकार आने पर पदार्थों के दाम कम [हों]गे। यह आशा भी असफल हुई और अपने स्वराज्य-[प्राप्ति] के बाद महंगाई-संकट की समाप्ति के स्वप्न लिये [थे]। यह आशा भी न केवल व्यर्थ गई, बल्कि इसके [विप]रीत पदार्थों के मूल्य और भी तेजी से बढ़ गये। [पदार्थ]ों की इंडैक्स-सूची को यहां उद्धृत करने की आवश्य-[कता] नहीं क्योंकि 'मनोरंजन' के सभी पाठक अपने [प्रति]दिन के जीवन में निरंतर बढ़ती हुई महंगाई [का] अनुभव कर रहे होंगे। समस्त देश अन्न-वस्त्र की [कमी] और महंगाई से परेशान है। २५-२६) रु० और [...]) रु० तक प्रति मन गेहूँ मिल रहा है। चावल की [कीमत] ३५-४०) रु० मन तक बढ़ गई हैं। कपड़ा [पिछ]ले कुछ महीनों में दुगने से भी अधिक महंगा हो गया है। दूध, घी, लकड़ी, कोयला व चीनी सभी लगातार महंगे हो गये हैं और होते जा रहे हैं। साधारण आय वालों का जीवन दूभर हो गया है। मकान-किराया, मजदूरी इत्यादि में भी तिगुनी चौगुनी वृद्धि हुई है। बोझ सहनशक्ति की सीमा पार करना चाहता है और ऐसा मालूम होता है, मानों सभी की आमदनी पहले से आधी तिहाई रह गई है।

आखिर इसका कारण क्या है? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसने समस्त भारत के अर्थशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों तथा सरकारी अधिकारियों को परेशान कर रखा है। इसी प्रश्न पर हम संक्षेप से इन पंक्तियों में विचार करना चाहते हैं।

कागजी नोट

अर्थशास्त्रियों की परिभाषा में यह महंगाई मुद्रा-प्रसार का परिणाम है। मुद्रा-प्रसार का अर्थ यह है कि जब बाजार में आवश्यकता से अधिक रुपया कागजी मुद्रा के रूप में प्रचलित हो। साधारणतः सभी देशों में सोने या चांदी का सिक्का चलता है और उसका मूल्य सोने-चांदी के बाजारी भाव के साथ बदलता रहता है। जब सरकार किसी सिक्के का मूल्य सोने-चांदी के बाजार-भाव की उपेक्षा करके नियत कर देती

है, तब वही उसका मूल्य हो जाता है। किन्तु यह मूल्य तभी तक नियत रहता है, जब तक कि प्रजा को सरकार में विश्वास हो। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी। चांदी के एक रुपये में ।।) की चांदी थी, किन्तु उसका मूल्य एक रुपया था और इसी मूल्य में उसका चलन था। लेकिन यह इसी लिए कि लोगों को विश्वास था कि वह चांदी का सिक्का १) रु० की चांदी खरीदने की सामर्थ्य रखता है। सरकार उस कम कीमत वाले सिक्के के बदले में भी एक रुपये की चांदी देने को तैयार थी। कागजी नोट की कीमत भी जनता इसी लिए लगाती है कि उसे यह विश्वस होता है कि जब हम चाहेंगे, सरकार इसके बदले में रुपया दे देगी।

प्रत्येक सरकार कागजी नोट निकालती है। कागजी-मुद्रा की पुश्त पर उसे एक नियत अनुपात में सोना-चांदी अवश्य रखना पड़ता है, ताकि वह समय-असमय पर लोगों की कागजी नोटों के बदले सोने-चांदी की मांग को पूरा कर सके। और वस्तुतः यही कारण है कि जनता सरकार पर विश्वास करती है और उसके कागजी नोट, जिनकी असली कीमत १ पाई भी नहीं होती, असल रुपये समझ कर खुशी से स्वीकार कर लेती है।

मुद्रा-प्रसार

लेकिन एक ऐसा समय भी आता है, जब सरकार अपनी आवश्यकता से विवश हो कर उस अनुपात की उपेक्षा कर देती है और अपने कोश में संचित सोने-चांदी की अपेक्षा बहुत भारी मात्रा में कागजी नोट निकाल देती है। तब बाजार में नोट की कीमत कम हो जाती है। कीमत कम होने का अर्थ यह नहीं कि वह एक रुपये का नहीं रहता, बल्कि यह कि यदि उसमें पहले ८ सेर गेहूं खरीदने की शक्ति थी, तो अब उस एक रुपये के ६ सेर गेहूँ ही आते हैं। ज्यों ज्यों कागजी नोट बाजार में ज्यादा आते जावेंगे, त्यों त्यों उसकी क्रयशक्ति कम होती जावेगी, अर्थात् चीजें महंगी होती जावेंगी।

हम यह जानते हैं कि बाजार में जो चीज अधिक सुलभ होती है, उसके दाम कम होते हैं और दुर्लभ चीज के दाम ज्यादा हो जाते हैं। दुर्लभता-सुलभता का यह नियम मुद्रा पर भी लागू होता है। बाजार में जितने अधिक नोट निकलेंगे, उतनी ही उनकी कीमत कम होगी, अर्थात् वे बहुत कम चीज खरीद सकेंगे। बस, यही मुद्रा-प्रसार है, जिसे अंग्रेजी में 'इनफ्लेशन' कहते हैं। इसे ही मुद्रास्फीति कहते हैं।

विदेशों में

आज यही मुद्रा-प्रसार भयंकर रूप में भारत में दृष्टिगोचर हो रहा है। लेकिन हमें मालूम होना चाहिए कि यह आकस्मिक नहीं है। अन्य देशों में भी युद्धोपरान्त समय-समय पर मुद्राप्रसार होता है और कल्पना की सीमा तक को पार कर जाता है। १९१४ वाले महायुद्ध के बाद जर्मनी की यही दशा थी। सरकार धड़ाधड़ नोट निकालती जाती थी और चीजों के दाम उससे भी ज्यादा वेग से बढ़ते जाते थे। एक एक रोटी की कीमत २००००० (दो लाख) मार्क तक जा पहुँची थी। एक भारतीय ने एक जर्मन व्यापारी से २५००० मार्क (१५ हजार रु०) लेना था। जब उसने तकाजा किया तो उस जर्मन व्यापारी ने लिखा कि "तुमने २५००० मार्क लेने हैं, किंतु मैं जिस लिफाफे में तुम्हें पत्र भेज रहा हूँ, उसी की कीमत अढ़ाई लाख मार्क है।" बाजार में एक जूता खरीदने के लिए नोटों की थैली भर कर ले जानी पड़ती थी। कहते हैं कि आस्ट्रिया के दो भाइयों को उनका पिता २५-२५ हजार क्राउन दे कर मरा। एक भाई ने तो रुपया बैंक में जमा करा दिया, किन्तु दूसरे ने शराब में सब रुपया उड़ा दिया। मुद्राप्रसार के दिनों में मितव्ययी भाई के २५००० क्राउन तो कौड़ी के हो गये, किन्तु शराबी भाई की खाली बोतलें, जो एक कमरे में फेंक दी जाती थीं, लाखों क्राउन में बिकीं। यह मुद्राप्रसार की करामात है।

जो स्थिति पिछले महायुद्ध के बाद जर्मनी में हुई, वही आज चीन में हो रही है। वहां एक जोड़ी जूता ६० लाख डालर का और अखबार की एक प्रति ८ लाख डालर में बिक रही है। मध्यपूर्व के देशों में भी मुद्रा-प्रसार की बहुत शिकायत रही। वहां भी एक दियासलाई की डिबिया की कीमत कई रुपयों तक जा पहुँची थी।

भारत में मुद्रा-प्रसार के कारण

वही मुद्रा-प्रसार आज भारत में है, यद्यपि जर्मनी व चीन की अपेक्षा बहुत कम मात्रा में। लेकिन प्रश्न यह है कि भारत में मुद्राप्रसार हुआ क्यों? इस महायुद्ध से

भारत सरकार ने २ अरब ५० करोड़ रु० के नोट जारी हुए थे। किन्तु युद्ध में सरकार को अनापशनाप करने पड़े। प्रतिदिन ३-४ करोड़ रु० तक का सरकार को युद्ध पर करना पड़ा। इतना खर्च के लिए पहले लोगों से कर्ज मांगा गया और उससे पूरा न पड़ा, तब 'छापाखाने' का आश्रय गया। ज्ञात हुआ है कि युद्ध के कारण २५ अरब करोड़ रु० तक के नोट सरकार को निकालने पड़े। की पुश्त पर न सोना था और न चांदी। ब्रिटेन से ने ८ अरब रुपया कर्ज ले रखा था—८ अरब रु० भारत के सिर पर जबर्दस्ती मढ़ा गया था, यह हा ही अधिक उपयुक्त होगा। वह रुपया ब्रिटेन ने कदम वसूल कर लिया। जो जो सामग्री ब्रिटेन को दी , उसका मूल्य उसने कर्ज में से काटने को कह या; लेकिन वह सामग्री जिससे खरीदी गई, उसे कार ने नोट देकर काम निकाल लिया। केवल पना कर्ज आठ अरब रुपया ही वसूल नहीं किया, ब्रिटेन धींगा-धींगी करके और भी ६-७ अरब रुपया का माल लिया और उसके बदले देश में ७ अरब रु० के टों की और बाढ़ आ गई। और, हम ऊपर देख चुके हैं कि जितने कागजी नोट बाजार में निकलते हैं, तनी ही पदार्थों की कीमतें बढ़ जाती हैं।

मूल्यवृद्धि और मुद्राप्रसार एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित भी हैं। जितनी कीमतें बढ़ेंगी, उतना ही मजदूरों, किसानों और सर्वसाधारण जनता का कष्ट बढ़ेगा और इसके साथ बढ़ेगी वेतन-वृद्धि की आवाज। वैतनिक कर्मचारी तनखा बढ़ाने के लिए आन्दोलन करेंगे, किसान अपने अनाज का दाम बढ़ावेंगे, मजदूर अपनी मजदूरी बढ़ावेंगे, दुकानदार नफे की मात्रा बढ़ा देंगे, चीजें और महंगी होंगी और सरकारी नोटों से काम चलेगा। बढ़े हुए खर्चों को पूरा करने के लिए और ज्यादा नोट निकलेंगे, वेतन और ज्यादा होंगे, मजदूरी और भी अधिक बढ़ेगी। इससे जहां उनकी आमदनी बढ़ेगी, वहां उनकी क्रयशक्ति भी बढ़ेगी और वे पैसे की बजाय चार पैसे में रोटी खरीद सकेंगे। लोगों के पास जितना पैसा अधिक आवेगा, उतना ही व्यय बढ़ेगा और परिणामस्वरूप चीजें और महंगी होंगी। इस तरह महंगाई और कागजी मुद्रावृद्धि का चक्र एक दूसरे पर प्रभाव डालता हुआ लगातार आगे बढ़ता जायगा। यही भारत में हुआ। ज्यों ज्यों नोट बढ़े, महंगाई बढ़ी और उसे पूरा करने के लिए फिर नोट छापे गये।

यदि कागजी मुद्रा के साथ साथ पदार्थों का उत्पादन भी बढ़ता जाता, तो इतनी अधिक महंगाई न होती। उस अवस्था में पदार्थों व नोटों की दुर्लभता या सुलभता में इतना अधिक अन्तर न आता; फलतः पदार्थों के दाम बहुत अधिक न बढ़ते। लेकिन युद्ध-काल में जो उत्पादन हुआ, उसका अधिकांश युद्धकार्यों में चला गया, साधारण जनता के लिए उसका उपयोग नहीं हो सका। अगर चीजों की पैदावार भी लगातर बढ़ती जाती तो उनके दाम इतने न बढ़ते और जनता का संकट सीमा पार न करता। संभव है युद्ध के बाद उत्पादन बढ़ जाता, किन्तु समय समय पर होने वाले उपद्रवों, मजदूर-नेताओं की प्रेरणा से की गई हड़तालों तथा रेलवे-अव्यवस्था के कारण पैदावार नहीं बढ़ सकी।

भारतवर्ष के आर्थिक चक्र का आधार कृषि है। यद्यपि मजदूरों व मिल-मालिकों का देश में अधिक जोर है, तथापि मिल-मजदूर सारे भारत में ३५ लाख से अधिक नहीं हैं। कृषिजन्य पदार्थों की सुलभता या दुर्लभता समस्त व्यापार पर प्रभाव डलती है। युद्ध के दिनों में विदेशी अन्न के न आने तथा सेना के लिए अन्न की अत्यधिक मांग से भारतीय अन्न महंगा हो गया। इसका एक बड़ा परिणाम यह हुआ कि किसान खुशहाल हो गया। वह पहले अन्न उत्पन्न होते ही बेच देता था, किन्तु अब इसकी उसे आवश्यकता न थी। वह स्वयं भर पेट खाने लगा और इसका एक परिणाम यह हुआ कि अन्न का बाजार में आना कम हो गया। इसके परिणामस्वरूप अन्न की महंगाई और बढ़ी और अन्न को छिपाने का प्रलोभन भी ज्यादा बढ़ा। उन दिनों किसानों को कम्युनिस्टों ने भी अन्न न बेचने का उपदेश दिया। अन्न की मंहगाई जीवन-व्यय को बढ़ाती है और उसे पूर्ण करने के लिए लोगों ने अपनी मजदूरी बढ़ाई। कपड़े की कीमतें बढ़ीं, लोहार ने हल की कीमत बढ़ा दी। किसान ने यह बढ़े हुए खर्च अन्न की कीमत और बढ़ा कर पूरे किये। बस यह चक्र चलने लगा।

पदार्थों के दुर्लभ हो जाने के कारण व्यापारियों में नफाखोरी व चोरबाजारी बहुत बढ़ गई। उन्हें अपनी चोरी छिपाने के लिए रिश्वत आदि में जो रुपया खर्च करना पड़ा, वह ग्राहकों से ही वसूल करने के लिए पदार्थों के दाम और अधिक बढ़ा देने पड़े।

युद्ध समाप्त होने और स्वराज्य-प्राप्ति के बाद यह आशा की जा रही थी कि अब खर्च घटेंगे और कल-कारखाने बढ़ेंगे। लेकिन ये दोनों काम नहीं हुए। देश-विभाजन के परिणामस्वरूप शरणार्थियों की संख्या पर करोड़ों रुपया खर्च करना पड़ा। यों भी केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों में अंग्रेजों के जाने के बावजूद भी खर्च अंधाधुन्ध बढ़ गये। सरकारी अफसरों के वेतनों, भत्तों, मोटरों व शानदार कोठियों पर इतना अधिक खर्च हो रहा है कि सरकार स्वयं कांप उठी है। विदेशी दूतावासों पर ही असीम राशि व्यय हो रही है।

कल-कारखानों में जो उन्नति होनी चाहिए थी, वह नहीं हो सकी। इसके एक कारण हड़तालों की चर्चा ऊपर हो चुकी है। स्टर्लिंग बैलेन्स से जो रकम आने की उम्मीद थी, वह नहीं मिली; इसके कारण कारखानों के लिये नई मशीनरी नहीं मिली।

तीसरा कारण यह है कि नई सरकार की आर्थिक नीति पूंजीवाद-विरोधी है। दस साल बाद व्यवसायों के राष्ट्रीयकरण का खतरा है। इसलिए पूंजीपति कोई नया धन्धा खोलते हुए संकोच करते हैं। यही कारण है कि मिलों के शेयरों के भाव गिरते जा रहे हैं। एक यह भी संदेह किया जा रहा है कि संपन्न-वर्ग का सहयोग सरकार को प्राप्त नहीं हो रहा। तभी तो १९४७-४८ के सरकारी कर्जों में उन्होंने रुपया नहीं दिया। और यह सब कमी सरकार को नये नोट निकाल कर पूरी करनी पड़ी।

इसी तरह से कुछ अन्य कारण भी गिनाये जा सकते हैं, किन्तु उनमें से मुख्य उपरि-लिखित ही हैं।

संकट निवारण के उपाय

इन कारणों की विवेचना के बाद संक्षेप से इस समस्या के हल करने के उपायों का उल्लेख कर लेख समाप्त करूंगा।

रोग के विभिन्न कारणों का नष्ट कर देने से ही रोग शान्त होता है। सरकार को यथासम्भव अपने खर्च कम करने चाहिएं। इसके लिए स्वयं मन्त्रिमण्डल, गवर्नर तथा अब तो गवर्नर जनरल भी अपने वेतनों व भत्तों में १५-२० फीसदी कमी करके आदर्श पेश कर सकते हैं। बहुत से अनावश्यक व्यय कम किये जा सकते हैं।

दूसरा उपाय उत्पादन-वृद्धि का है। जब तक बढ़ी हुई मुद्रा के मुकाबले में चीजों की पैदावार नहीं बढ़ेगी, तब तक चीजें सस्ती न होंगी। यों तो सभी चीजों की पैदावार बढ़ानी चाहिए, किन्तु हमारी सम्मति में कृषि-जन्य पदार्थ और उनमें भी विशेषकर अन्न-उत्पादन की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। किसान अनुचित नफाखोरी के लिए अन्न जमा न कर सकें, इसलिए श्री किशोरलाल मश्रुवाला का यह सुझाव अवश्य विचारणीय है कि किसानों से मालगुजारी नकदी की बजाय अन्न के रूप में ली जाय। मजदूरों व मिल-मालिकों दोनों पर कठोर नियन्त्रण होने चाहिएं, ताकि उत्पादन-वृद्धि में वे रुकावट न डाल सकें।

सरकार कर्ज ले और लोग बैंकों व डाकखानों में रुपया जमा करावें। इसके लिए अनेक अर्थ-शास्त्रियों ने तनखा में से ही जबर्दस्ती बचत का भी सुझाव रखा है, अर्थात् मजदूरों के बोनस उन्हें नकद न दिये जाकर बैंकों में जमा करा दिये जावें। किन्तु ऐसा कदम उठाने के लिए यह देखना आवश्यक है कि कहीं असंतोष उग्र रूप धारण न कर ले। पूंजीपतियों के असहयोग को भी कुछ समझौते द्वारा और कुछ विवश करके प्राप्त करना चाहिए। आदर्शवाद की जगह व्यावहारिकता पर अधिक ध्यान देना चाहिए और उद्योग-धन्धे बढ़ाने के लिए आकर्षक योजनाएं रखनी चाहिएं।

अपनी स्टर्लिंग-निधि की रक्षा करते हुए भी विदेशी आयात को कुछ अधिक प्रोत्साहन देना चाहिए, ताकि बाजार में अधिक चीजें आ सकें।

और अन्त में, हमें भी चीन की तरह अपनी मुद्रा का आधार फिर से सोने या चांदी को बनाने की नीति पर विचार करना चाहिए। इससे मुद्रा का मूल्य बढ़ेगा। उससे ज्यादा चीजें खरीदी जा सकेंगी।

ये कुछ उपाय हैं, जिन पर सरकार व जनता के सहयोग से ही अमल हो सकता है।

'परदेशी'

घिरती घटा तुम्हें प्रिय, मेरी याद दिलाती होगी।

उठते हैं नीले अम्बर में भीगे बादल काले,
ज्यों उठते लोचन कजरारे गीली पलकों वाले।
ये आए हैं शीतल करने हिय प्यासी धरती का,
और तुम्हारे मन में भी तो होगा ध्यान किसी का!
नयन-चमकती हुई दामिनी मन चमकाती होगी।
घिरती घटा तुम्हें प्रिय, मेरी याद दिलाती होगी।

रिमझिम बुँदियां नाच रही हैं, यह मिलने की बेला,
किन्तु प्यार के अम्बर में वह चन्दा रहा अकेला।
लहरों की ले भेंट चली सरिता सागर से मिलने,
नवल भोर की नई कली भी लगी अचानक खिलने।
काली कोयल बोल डाल पर कसक जगाती होगी।
घिरती घटा तुम्हें प्रिय, मेरी याद दिलाती होगी।

नभ में चपल मशालें जलतीं, धरती पर उजियाला,
कभी चमकती हुई ज्योतियां, कभी गहन तम काला।
खुले झरोखे, शीत पवन के झोंके आते होंगे,
और लता पर के दो पंछी डर डर जाते होंगे!
"तुम बैठो गोदी छिप जाऊं"—वह स्मृति आती होगी!
घिरती घटा तुम्हें प्रिय, मेरी याद दिलाती होगी!

आम्र-मञ्जरी-सा तन कोमल, अधर सुधा के प्याले,
आंखों में बेहोशी ले तुम फिरती होंगी बाले!
नहीं, नहीं, निज शयन-कक्ष में झिलमिल दीप सँजोये—
मौन-अचल होंगी तुम, होंगे सपने खोये खोये,
और क्षितिज के छोर दामिनी आग लगाती होगी!
घिरती घटा तुम्हें प्रिय, मेरी याद दिलाती होगी!

संध्या के सूने में धीरे टपक रही शेफाली,
तो क्या तुम भी यों ही चुप चुप रोती होगी आली?
किसी सुहागिन की गगरी सम हों न छलकती आंखें,
सोच यही सन जाती दुख में मन-मधुकर की पांखें!
इस बेला तो विहँस नवेली कजली गाती होगी!
घिरती घटा तुम्हें प्रिय, मेरी याद दिलाती होगी!

बादल-गोद बिखर कर बिजली हाय, लगी मुस्काने,
रही मुझे तरसाती सजनी, हंसी प्रलय को ढाने;
छूट मेघ-छाती से छहरी, गहरी लिए खुमारी,
और आ रही बौछारों-सी हमको याद तुम्हारी!
सखी, पूछता—तुमको भी क्या याद न आती होगी?
घिरती घटा तुम्हें प्रिय, मेरी याद दिलती होगी!
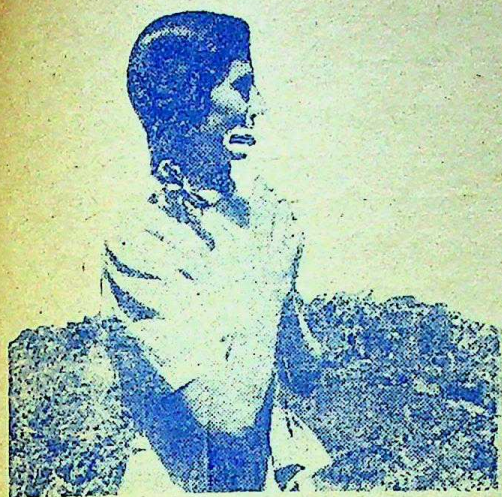
"मिम"

एक मध्यवर्गीय अमेरिकन परिवार और उसके सम्पर्क में आने वाले भारतीय विद्यार्थियों के दुःख-सुख की एक सच्ची कहानी।

"भारत को मेरी जय-हिन्द कहना !"

उस दिन प्रातःकाल पांच बजे उठने पर मैंने मिम को झाड़ू लगाते हुए देखा तो रुंठाना-सा होकर बोला, "मिम यह क्या ? इतनी सुबह-सुबह झाड़ू क्यों लगा रही हो ? मुझे जगाने तक नहीं आयी ?"

मिम तुरन्त झाड़ू नीचे रख कर हाथ जोड़ नमस्कार कर बोली, "तुमने मुझे छः बजे उठाने को कहा था, अभी तो एक घंटा बाकी है।" कुछ रुक कर आर्द्र कंठ से बोली, "आज तो तुम जा रहे हो, जगदीश ! तुम्हारे देश में बन्धुजनों के विदा होने के बाद घर में झाड़ू नहीं लगाया करते। यह अशकुन माना जाता है। इसलिए तुम्हारे जाने से पहले ही मैं घर का नित्य-कार्य पूरा कर लेना चाहती हूँ।"

पश्चिमी सभ्यता में पली इस अमेरिकन युवती की इस स्नेह-शीलता से मैं आत्मविभोर हो उठा। मिम को यह क्योंकर मालूम हुआ कि हमारे भारत में ऐसी प्रथा है और मालूम होने पर वह कितना स्मरण रखती है और नित्य-कार्यों में प्रदर्शित करती है—इससे मिम को अच्छी तरह जानने के कारण मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। मैंने स्नेह से आगे बढ़ कर मिम का झाड़ू पकड़ लिया और एक हाथ से मिम के लजीले मुख को ऊपर उठा कर कहा, "मिम, तुम देवी हो। 'देवी' शब्द के उच्चारण में जितनी पवित्र भावनाएं छिपी हैं, वे सब तुम में साक्षात् हैं। यह अमेरिका का सौभाग्य है कि यहां से लौटने से पहले मैं तुम से मिला; अन्यथा न मालूम मैं अमेरिका के बारे में कितनी दुर्भावनाएं लेकर यहां से जाता। भारत-स्थित अमेरिका के राजदूत और बड़े बड़े अमेरिकन कूटनीतिज्ञ हम भारतीयों के हृदय में अमेरिका के प्रति जो सद्भावना पैदा नहीं कर सके, वह तुम जैसी देवी ने कर दिखाई है।"

श्री जगदीशचन्द्र [illegible]

परन्तु मिम के लिए ये वाक्य अतिशयोक्तिपूर्ण थे। उसकी नम्रता बड़प्पन का इतना बड़ा बोझ संभाल नहीं सकती थी। वह बोली, "धन्यवाद, जगदीश। तुम्हारे शब्द बड़े श्रुति-मधुर हैं, परन्तु मैं इतने सम्मान के योग्य नहीं। तुम और बिन्दु यों ही मुझे सिर पर चढ़ाते हो। कारण यही है कि तुम दोनों स्वयं बहुत अच्छे हो।"

संयुक्त राज्य अमेरिका के कोलम्बिया नगर में मसूरी विश्वविद्यालय के दसों भारतीय विद्यार्थियों के लिये ही नहीं, वरन् प्रत्येक प्रवासी विद्यार्थी के लिए भी मिम एक मां, बहिन और अत्यन्त घनिष्ठ मित्र के समान है। उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका आने वाले एशियाई विद्यार्थियों को सब से बड़ी शिकायत यही रहती है कि उन्हें अमेरिका में घर का सा स्नेह, पारिवारिक प्रेम तथा निश्छल नारीत्व का दर्शन नहीं मिलता। क्षणिक

मिम अपने पति रिचर्ड मू और कैरोल व मैबल नामक अपने बच्चों के साथ।

आमोद-प्रमोद के लिये युवती-मित्रों की यहां कमी नहीं। नाच-रंग, सुरा-सुन्दरी की प्राप्ति डालर रहने पर अत्यन्त सहज है। एशियाई देशों में प्रायः सब जगह ही युवक-युवतियों को मिलने की स्वतन्त्रता नहीं है, इस कारण अमेरिका में आने पर उस स्वतन्त्रता की सहज उपलब्धि पाकर कुछ दिनों तक तो व्यक्ति खुल खेलता है; परन्तु तुरन्त ही उस रोमांचकारी जीवन की नीरसता, शुष्कता और स्वार्थ-मयी क्रूरता के कारण सुरा-सुन्दरी से घिरा रहने पर भी व्यक्ति अपने आपको नितान्त अकेला महसूस करने लगता है और अपने देश, नगर, घर, परिवार, मां-बहिन और पत्नी के लिये उदास हो जाता है। ऐसे व्यक्तियों के लिये मिम का परिवार और ६ नार्थ गार्थ का वह पीले दरवाजे का मकान रेगिस्तान में नख-लिस्तान के समान है।

साधारणतः अमेरिकन नम्र और मिलनसार होते हैं; परन्तु 'एटीकेटों' की चाशनी में लिपटी यह नम्रता अत्यन्त क्षण-भंगुर, कृत्रिम और दिखावटी होती है। अमेरिकन आम तौर पर हृदय से नहीं, जबान से बोलता है और नम्रता की वह भावना कंठ से नीचे नहीं जाती। धन्यवाद-प्रदर्शन और क्षमा-याचना पूर्णरूप से यांत्रिक हैं (हालांकि उसके भी अपने लाभ हैं) और मानव-जीवन की सरसताओं से खाली। बाहर से सब कुछ अत्यन्त सुहावना है, मनुष्य चुंधिया जाता है; परन्तु भीतर पैठने पर सब खोखला नज़र आता है।

अमेरिकनों के प्रति ऐसी भावना बन जाने का मुख्य कारण यही है कि अमेरिका आने वाले विद्यार्थियों, यात्रियों और व्यापारियों तथा राजनीतिज्ञों का अधिकतर संपर्क शहरियों, धनिकों, पदाधिकारियों, राजनीतिज्ञों, व्यापारियों तथा प्रोफेसरों से पड़ता है, जिनमें से अधिकतर प्रतिक्रियावादी होते हैं और उनका समस्त जीवन एक यान्त्रिक सांचे में ढल चुका होता है। पति सारे दिन अपने कार्य में संलग्न है। पत्नी भी या तो किसी आफिस में सेक्रेटरी और टाइपिस्ट का काम करती है या बन-ठन कर क्लबों के चक्कर लगाती है। शाम को दोनों घर पर मिलते हैं और संध्याकालीन पोशाक पहन कर बाहर निकल जाते हैं। होटल में खाना खाया, रात्रि-क्लब में नाचा, शराब पी और आधी रात बाद घर आकर सो गये।

लेकिन, इस तरह का यान्त्रिक तथा कृत्रिम-सा जीवन बिताने वाले हर देश में अल्पसंख्या में ही हैं, अतएव उनकी दिनचर्या पर किसी देश के नागरिकों का सामूहिक-चरित्र नहीं आंका जा सकता। अमेरिका में भी देहात हैं, खेत हैं; किसान और मजदूर हैं; गरीब और शोषित हैं; अशिक्षित, अपाहिज और अस्पृश्य हैं। इन गांवों और किसान-मजदूर परिवारों में ही अमेरिका का पारिवारिक जीवन बसता है।

कोलम्बिया नगर तीस हजार की आबादी वाला अच्छा-खासा नगर है। इस आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा आर्थिक दृष्टि से मध्य श्रेणी का है और यह माना हुआ सत्य है कि आचार-विचार की बुनियाद मध्यवर्गीय समाज में ही पड़ती है तथा समाज का

यहीं भाग अपने दकियानूसीपन के लिए चिर-परिचित है। एक तो मध्यवर्गी, दूसरे दक्षिणी राज्य होने के कारण कोलम्बिया निवासी दकियानूसी, कट्टरपंथी तथा आचार-विचार के 'ढकोसलों' के पाबन्द हैं, जहां मनुष्य की दिनचर्य्या नियमों-उपनियमों से बँधी होती है। यदि किसी बात की खुली छुट्टी है, तो वह है युवक-युवती के स्वतन्त्र प्रेम की; अन्यथा जीवन काफी नीरस और कृत्रिम है। कई प्रोफेसरों तथा नागरिकों के परिवारों से कोलम्बिया में मेरा परिचय था, परन्तु यह परिचय मात्र 'आइए जी आइए' वाला परिचय ही था। उनकी पत्नियों से न हम मां की तरह स्नेह कर पा सकते थे और न ही भाभियों की तरह खेल सकते थे। चार हाथ दूर की घनिष्ठता थी, समीपता अथवा आत्मीयता नहीं थी।

ऐसे नगर में मिम स्वयं एक परदेसिन थी। इसका असली नाम क्लेयर है; मैं ही इसे स्नेहवश 'मिम' पुकारता हूं। केवल तीन वर्ष पूर्व वह और उसका पति रिचर्ड मूर अमेरिका के उत्तरपूर्वी राज्य न्यू हैमसफियर से कोलम्बिया में आकर बस गये थे। रिचर्ड के पूर्वज स्काटलैंड से आये थे। स्काटिश रक्त के कारण उसका शरीर लम्बा और हड्डियां मजबूत हैं। वह कुछ दम्भी परन्तु ईमानदार और विश्वसनीय व्यक्ति है। मिम में आयरिश, डच और फ्रैंच रक्त है, परन्तु शारीरिक बनावट में मिम उपर्युक्त तीनों ही जातीय स्वरूपों से भिन्न है। भारतीय नारी की तरह उसका मुख गोल और भरा हुआ तो नहीं है, परन्तु होठों और आंखों की बनावट तथा बालों का रंग तो बिल्कुल भारतीय है। जब यह बालों को गूंध कर चुटिया बना लेती है तथा कानों में बुंदे पहन लेती है, तो बिल्कुल भारतीय लगती है। और भारतीय आत्माभिमान, स्नेह और मधुरता तो मिम में स्पष्ट रूप से है। कभी कभी वह स्वयं कहती है, "मुझे आश्चर्य है, मैं भारत में क्यों नहीं पैदा हुई!"

मिम के दो बच्चे हैं। पांच साल की सुनहले बालों वाली चपल कैरोल—जिसका स्वभाव पिता से भी अधिक दम्भी है, तथा दो वर्ष का मैकी, जो मां के समान ही लजीला और स्नेहशील है। रिचर्ड बढ़ई का काम करता है। परन्तु घर का पूरा खर्च नहीं चल पाता, इसलिये मिम रेस्टोरां में परिचारिका का काम करती है। कैरोल के बचपन में रिचर्ड की मानसिक अवस्था अच्छी नहीं थी—मानसिक अस्थिरता अमेरिकन पुरुषों में इस समय एक महामारी के समान फैली हुई है, जिसके प्रति अमेरिकन सरकार और सामाजिक-समितियां चिन्तनशील हैं—गुस्से और मारपीट ने घर को कलहमय बना दिया था। यह मिम की सेवा, स्नेह और कर्त्तव्य-भावना ही थी, जिसके कारण यह परिवार बना रहा। परन्तु चूंकि धनोपार्जन के कारण मिम भी कैरोल पर अधिक ध्यान नहीं दे सकी, इसलिए उस बालिका का स्वभाव अत्यन्त चौपट हो गया। (बालकों की अपराधी मनोवृत्ति इस समय अमेरिकन समाज, राष्ट्र और सरकार की सब से बड़ी समस्या बनी हुई है)। मिम की सेवा, धैर्य और परिश्रम-शीलता ने रिचर्ड को भी मानवता का पाठ पढ़ाया और परिवार को अपने पांव पर खड़ा किया, परन्तु इन दुःखमय अनुभवों ने जहां एक ओर मिम की यौवनकालीन इच्छाओं को भस्म कर दिया, वहां दूसरी ओर मिम को अत्यन्त कुशल, समझदार और स्नेहशील बना दिया। नम्रता-प्रदर्शन के आचार-विचारों पर अमल करते हुए भी उसके व्यवहार से कृत्रिमता नहीं टपकती; और वह अविचल,

मिम, लेखक, बिन्दु माधव, वैद्यनाथ वर्मा

निर्विकार भावना से अपना कर्त्तव्य पूरा करती चलती है।

मिम से सब से पहले मेरा परिचय उसी रेस्टोरां में डेढ़ वर्ष पहले हुआ था, जिसमें वह परिचारिका थी। मैं और ज्ञानेन्द्र एक मेज के पास बैठे थे कि मिम ने बड़े स्नेह से आकर पूछा, "क्या आप को यह अमेरिकन खाना अच्छा लगता है?"

अमेरिका में हम खाना खाने के लिये नहीं, जीने के लिए खाते थे। फीका और स्वादहीन खाना खाते जी ऊब गया था। हमारे मुंह से सत्य निकल ही गया, "अच्छा नहीं लगता, लेकिन मजबूरी है।"

मिम ने पूछा, "आप लोग कैसे साग-भाजी बनाते हैं?"

ज्ञानेन्द्र ने एक-दो तरीके बतला दिये। एक सप्ताह बाद अचानक मिम ने हमको उस रेस्टोरां में खाने पर बुलाया। मेज पर भारतीय ढंग से बनी गोभी-मटर की तरकारी तथा चावल देख कर हम आश्चर्यचकित रह गये। पेट के साथ साथ मन भी भरा। हमने खाने का बिल मांगा, तो मिम ने हाथ जोड़ कर इन्कार कर दिया। ऐसा तो था नहीं कि इस प्रकार का खाना होटल में बना हो। अवश्य ही मिम ने अपने पास से पैसे खर्चे थे। हमने दूसरी बार कहा तो उसने फिर इन्कार कर दिया। तीसरी बार कहने पर उसकी आंखें आर्द्र हो उठीं और बोली, "आप मुझे मित्र समझिये। क्या मैं इतना भी नहीं कर सकती।"

हम हार मान गये। उस मेज पर 'बख्शीश' के रूप में भी कुछ रखना हमने मिम का अपमान करना समझा और चुपचाप धन्यवाद देकर चले आए।

कुछ दिनों बाद मिम ने घर पर हमें बुलाया, हम उसके पति और बच्चों से मिले। मकान के ऊपरी हिस्से को उन्होंने विद्यार्थियों को किराये पर दे रखा था। नीचे बेसमेन्ट में स्वयं रहते थे। जगह तंग, बेढंगी और गंदी थी। यदि स्वच्छता कहीं थी, तो वह मिम के स्नेह में थी। मैंने जीवन में पहली बार कूड़े के ढेर में हीरा देखा।

सन् ४७ की गरमियों की छुट्टियों में मैं शिकागो चला गया। इस बीच दो-तीन बार मिम के घर गया था और बच्चों से हिल-मिल गया था। दो महीने बाद शिकागो से लौटने पर मैंने कोलम्बिया में एक और विद्यार्थी बिन्दुमाधव को पाया जो मिम के घर में ही रह रहा था। ब्राह्मण बिन्दुमाधव अत्यन्त स्नेहशील, विनम्र, निष्कपट और प्रभु-भक्त व्यक्ति है। उसकी अवस्था ३५ वर्ष है। गरीब होने पर भी जीवन से युद्ध करता इंगलैंड होता हुआ कृषि-शास्त्र पढ़ने अमेरिका आया है। न उसे किसी ने छात्र-वृत्ति दी है और न डालर एक्सचेंज। उसकी पत्नी बम्बई में अध्यापिका का कार्य कर जीवन यापन करती है।

भेंट के कुछ दिन बाद उसने मुझ से पचास डालर मांगे, मैंने दे दिये; परन्तु हृदय में बड़ा अभिमान माना कि मैंने बिन्दु की सहायता की और यह आशा की कि बिन्दु मेरा एहसान माने। मैंने यह पता लगाने की चेष्टा की कि बिन्दु रहता किस तरह है और जो कुछ मुझे मालूम हुआ उसे जान कर मेरा मस्तक लज्जा से गड़ गया।

दो दिन से भूखा बिन्दु एक दिन उसी रेस्टोरां में गया था और पीने को सिर्फ काफी मांगी। मिम ने पहिचाना कि वह भी भारतीय है तो तुरन्त आकर पूछा कि कुछ खाओगे नहीं? बिन्दु ने कह तो दिया 'नहीं', परन्तु चेहरे से कुछ और टपकता था। स्नेहमयी मिम भांप गयी। पास बैठ कर प्यार से पूछा तो बिन्दु फूट पड़ा। बिन्दु को खाना खिला कर मिम अपना काम छोड़ कर घर गयी। पति को साथ लेकर एक टैक्सी में बिन्दु के घर गयी, जहां वह रहता था। बिन्दु को अपने घर ले आई। तब से बिन्दु उसी घर में रहता है; वहीं खाता है। मिम ने ही पहली बार कालेज में उसकी फीस भी चुकायी। आज बिन्दु उस परिवार का अविच्छिन्न अंग है। मिम ने अपनी जबान से आज तक एहसान जताने की चेष्टा नहीं की, बल्कि बिन्दु का बड़े भाई समान आदर करती है। मिम स्वयं केवल ३० वर्षीया युवती है और साधारणतया सुन्दर और आकर्षक है।

मिम के प्रति मित्रता और स्नेह के साथ साथ मैं उसका बहुत सम्मान करने लगा और जब भी मन उदास होता उसके घर चला जाता। बच्चे भी मुझ से बहुत हिल गये और रिचर्ड भी अच्छा मित्र बन गया। मिम ने कभी भी मेरी आर्थिक सहायता को स्वीकार नहीं किया। बच्चों के बहाने ही मैं अपनी लज्जा दूर कर पाता तो कर पाता था।

मई १६४८ में मुझ पर स्वयं आर्थिक संकट आया। रिजर्व बैंक आफ इंडिया की कार्य-कुशलता की मेहरबानी थी। चार पांच महीने की देर लगाना तो साधारण बात है और तब भी जब डालर-एक्सचेंज मिलता है, तो मानों हम पर एहसान करके दिया जाता हो। यह सिर्फ मेरा ही नहीं, बल्कि सैकड़ों अन्य भारतीय विद्यार्थियों का भी रोना है, पर कोई सुनवाई नहीं। मिम मेरे चेहरे पर प्रकट चिन्ता को भांप गयी और मुझे भी विवश होकर मिम के घर में ही, कोलम्बिया से विदा होने से पहले, केवल एक महीने के लिए चले आना पड़ा। मिम के घर में सब कमरे किराये पर थे। घर के पीछे टूटा-फूटा गराज था। एक सप्ताह दिन-रात परिश्रम कर मिम ने उसे एक साफ सुथरा कमरा बना दिया। दिवाल पर रंगीन कागज लगा दिये।

मिम के साथ एक महीना रह कर जो मैंने देखा, उस पर विश्वास करना कठिन है। घर गिरवी है, स्वयं फटे हाल है; परन्तु घर एक धर्मशाला बना हुआ है। घर के दरवाजों में कभी ताला बन्द नहीं होता। रसोईघर सदा खुला रहता है। जो चाहे आकर निकाल कर खाये-पिये; कोई पूछने वाला नहीं। यदि मिम घर में है तो बिना चाय पिलाये और आमलेट खिलाये जाने नहीं देगी और इन्कार करने की गुंजायश नहीं। वह विवश भी नहीं करती। वह प्रायः कहती है, "जबरदस्ती मुझे अच्छी नहीं लगती। सबको अपनी इच्छानुसार विचार प्रकट करने और आचार करने की स्वतंत्रता है। मैं अपनी ओर से केवल पूछने की खातिर नहीं पूछती। यदि कोई तकल्लुफ करे तो मेरा क्या कसूर? यह घर तो साम्यवादी अखाड़ा है। यह कुछ सब का है। तकल्लुफ की गुंजायश नहीं।"

वह सत्य कहती है। घर में बसने वाले आठ विद्यार्थियों में से चार ने आज तक किराया नहीं दिया। मिम ने कभी मांगा नहीं। वह आठ घंटे रेस्टोरां में काम करती है, घर खाना पकाती है, बच्चों को संभालती है, कपड़े धोती है—अपने परिवार के भी और विद्यार्थियों के भी, बिना मूल्य—झाड़ू-बहारू करती है।

इसके बावजूद भी वह समाचार-पत्र पढ़ने और दर्शन, इतिहास, राजनीति, समाज-शास्त्र आदि पर वाद-विवाद करने के लिए समय निकाल लेती है। मिम बी० ए० पास है; एम० ए० की पढ़ाई पूरी करने के बावजूद भी परीक्षा नहीं दे पायी। औरतों की तरह चांव चांव नहीं करती। कहने की अपेक्षा सुनती अधिक है (हालांकि उसका एक कान कुछ खराब भी है)। जो कहेगी, गंभीरतापूर्वक शब्दों को तोल कर। विचारधारा प्रगतिशील है। और उस के ६ नार्थ गार्थ, कोलम्बिया, मिसूरी, संयुक्तराज्य अमेरिका, स्थित उस मकान में हर विचारधारा के व्यक्ति रहते हैं—चर्चिलवादी भी और स्टालिन वादी भी। उसी मकान में तीन भारतीय (एक हिन्दू, एक मुसलमान, एक ईसाई), एक चीनी, एक हंगरी निवासी, एक दक्षिण अमेरिकन और कुछ अमेरिकन रहते हैं।

मई के पहले सप्ताह में रिचर्ड तथा मिम ने घर की सफाई आदि के लिए बाहर का काम छोड़ दिया। अमेरिका में अधिकतर मध्यश्रेणी तथा निम्न-श्रेणी के परिवार स्वयं ही मकान बनाते हैं, जो अधिकतर लकड़ी के होते हैं। मरम्मत आदि भी स्वयं ही करते हैं। मिम और रिचर्ड ने मिल कर बड़ी-बड़ी सीढ़ियों पर चढ़ कर सारे मकान पर नई पालिश की। मकान के पीछे एक छोटे से भूमि के टुकड़े में आलू बोये। अमेरिकन आम तौर पर बागबानी के शौकीन होते हैं, और इस क्षेत्र में तो हर श्रेणी के नर-नारी स्वयं ही कार्य करते हैं।

और भी कई बातों में निर्धन अमेरिकन परिवार स्वावलम्बी हैं। इसका कारण अमेरिका का सबसे बड़ा यह गुण है कि अमीर से अमीर और बड़ी से बड़ी पदवी वाला अमेरिकन भी अपने हाथ से कोई काम

करने में लज्जा अनुभव नहीं करता। बाबूगिरी का यहां बिल्कुल अभाव है और हम भारतीयों को अमेरिकनों से सबसे अधिक यही गुण हासिल करना है। बी० ए० पास रिचर्ड बढ़ई स्वयं अपने हाथ से ही अपने पुत्र के बाल काटता है और महीने में दो डालर बचा लेता है। बी० ए० पास मिम झूठे बरतन मलती है, मेहनत-मजदूरी करती है, कपड़े धोती है।

कदम कदम पर मुझे मिम के भीतर पली सभ्यता के दर्शन होते थे। वह विनम्रता की चरम-सीमा थी। वह बात मुझे नहीं भूलती, जब एक दिन देवेन्द्र कमरे में आया तो कुर्सी व पलंग पर जगह न देख कर जमीन पर बैठ गया। चारपाई से उठ कर मिम तुरन्त एक कम्बल लेकर देवेन्द्र के पास पहुँची। देवेन्द्र ने तकल्लुफ दिखाया तो बजाय बार-बार उसी को दोहराने के मिम के अगले शब्द थे—"देवेन्द्र, मैं कम्बल बिछा कर यहां बैठूंगी। क्या तुम मेरे पास बैठने की कृपा कर कंबल में हिस्सा नहीं बटाओगे?"

मिम कंबल बिछा कर बैठ गयी और देवेन्द्र को पास बिठाल लिया। देवेन्द्र पर एहसान जताने के बदले उसने स्वयं इस कृपा के लिए देवेन्द्र का एहसान माना। सबके लिए इतना कुछ करती हुई भी वह किसी को एहसान का बोझा ढोने की तकलीफ नहीं देती।

जेल से ही मैं पेट की शूल-पीड़ा लेकर आया हूँ। एक बार सारी रात दर्द के मारे सो नहीं सका। विवश होकर सुबह चार बजे मिम के कमरे के बाहर आकर पुकारा। बेचारी तुरंत एक तौलिए से किसी तरह बदन ढँक कर भागी आयी और फौरन कंधे से लगा लिया। उसके बाद पांच घंटे तक उसने मेरी जो सेवा की, उसे स्मरण कर आज भी आंखों में आंसू आ जाते हैं। उस एक नारी में मैंने उस समय मां, बहिन, पत्नी और मित्र को पाया।

मैं मिम के पास एक माह ही रहा, परन्तु हम दोनों अभिन्न मित्र बन गये। मेरी पढ़ाई समाप्त हो गयी थी। चलते समय मैंने बिन्दु से कहा—"बिन्दु, तुम भाग्यवान् हो, तुम अभी दो साल यहां और रहोगे।"

मेरे चलने से तीन घंटे पहले ही वह झाड़-बुहार कर, स्नान कर, स्वच्छ कपड़े पहन बिदा देने को तैयार हो गयी। मेरी आंखों में आंसू थे, वह मुस्करा रही थी (बिन्दु ने बाद में मुझे लिखा कि वह कितना रोई)। गाड़ी पर चढ़ने से पूर्व वह प्याली में सिन्दूर घोल कर चावल के कुछ दाने डाल कर ले आयी, साथ में कुछ मीठा भी मुंह में रखने के लिए। टीका लगाते समय मैंने मिम से पूछा—"मिम, क्या हम फिर मिलेंगे?"

"आशा करती हूँ, जगदीश। भारत आने की मेरी बड़ी इच्छा है। प्रभु जाने इस जन्म में पूरी होगी या नहीं। तुम खुश रहो। भारत को मेरी जयहिंद कहना।"

हाथ जोड़े हुए मिम की प्रतिमा बड़ी दूर तक मेरे नेत्रों में नाचती रही।

दो कविताएं

श्रीमती शकुन्त गिरिजाकुमार

मधु घट

मधु से भरे हुए मणि घट को
खाली करते डर लगता है।
जिसमें पूरा सिंधु समाया
मेरे सारे जीवन भर का,
दूजे बर्त्तन में उँडेलते
एक बूंद भी छिटक न जाय,
कहीं बीच में टूट न जाय,
छूने भर से जी कंपता है।
मधु से भरे हुए मणि घट को
खाली करते डर लगता है।

इस धरिणी की प्यासी आंखें
लगीं इसी की ओर एकटक,
आई जग में सुधा कहां से ?
जल का भी तो काल पड़ा है,
प्राण बिना मिट्टी-सा यह तन,
भार उठाऊं इसका कैसे ?
छोड़ नहीं पाती फिर भी तो,
जरा उठाते जी हिलता है।
मधु से भरे हुए मणि घट को
खाली करते डर लगता है।

तन गरमाया दुख-लपटों से
धीरे-धीरे जला जा रहा,
अब भी बहुत शेष जलने को,
मन के घट में पड़ीं दरारें,
साहस आज दूर हटता है।
मधु से भरे हुए मणि घट को
खाली करते डर लगता है।

एक रंग-चित्र

हौले-हौले की पद-चाप
दबी पवन के साथ सुनाई पड़ती,
तन्द्रिल अलकों का अटकाव
सुलझना फिर फिर साफ सुनाई पड़ता।

चुप सोई इस नई चमेली के नीचे
नूपुर किसके मन्द लजीले बज उठते हैं
इतनी रात गए ?

गहरी खुशबू केसर की
बढ़ी हुई मेंहदी के नीचे फैल रही है,
पीला पड़ कर सूरज नीचे उतरा
या सहमा-सा चांद उतर कर
उलझ गया है
फूलों के झुरमुट में !

गीत

श्री घनश्याम अस्थाना

मैं किसी से याचना ही कर न पाया!

मूक हो मैंने मचलता गीत साधा,
बेबसी में प्राण का चिर दर्द बांधा,
वेदना में किन्तु स्वर ही भर न पाया!
मैं किसी से याचना ही कर न पाया!

बादलों से झांकती ऐसी उदासी,
सिंधु पीकर ज्यों अभी बनमाल प्यासी,
किन्तु उसको तृप्ति दे सागर न पाया!
मैं किसी से याचना ही कर न पाया!

शरबती-सी सांझ हँसती थी नशीली,
रह गई लेकिन क्षितिज की कोर गीली,
क्योंकि उसको हास दे अम्बर न पाया!
मैं किसी से याचना ही कर न पाया!

खुल गये भुज-पाश, लेकिन बांह सूनी,
दृग खुले पथ देखते, पर राह सूनी,
मैं किसी की छांह दृग में भर न पाया!
मैं किसी से याचना ही कर न पाया!

पहली प्रेम-कहानी

श्री 'रावी'

इस कथा का सम्बन्ध भौगोलिक इतिहास से अधिक है या युवक-युवतियों के प्रेम-व्यापार से—यह पाठक-पाठिकाओं के लिए एक विवाद-ग्रस्त बात हो सकती है, किन्तु सुना है कि देवलोक के युवक और युवतियां इसे ब्रह्माण्ड की पहली प्रेम-कहानी के रूप में ही पढ़ते हैं।

पृथ्वी अभी अपनी किशोरावस्था पार नहीं कर पाई थी। पृथ्वी पर कोई जीव-जन्तु पैदा नहीं हुआ था। लेकिन देवताओं को पृथ्वी की गोद भरी देखने की आस प्रबल लालसा के रूप में लगी हुई थी। इसी आशा में वे पृथ्वी को प्रायः उसके कोमल 'वसुमती' नाम से ही पुकारा करते थे।

उचित समय आने पर देवताओं के आयोजन के अनुसार कामदेव ने अपना धनुष सम्हाला और वायु-पथ पर चंचल बाल-सुलभ क्रीड़ा करती हुई पृथ्वी की ओर लक्ष्य साध कर एक तीर छोड़ दिया। काम-शर सम्भवतः कामदेव को कुछ असावधानी से, पृथ्वी के दक्षिणी ध्रुव पर जा लगा। पृथ्वी की स्वच्छन्द चपलता कुछ देर को रुकी और तत्पश्चात् शीघ्र ही भूतल के उस प्रदेश में पहले वसंत की हरियाली लहलहा उठी और दक्षिणी ध्रुव की उर्वरा भूमि सुन्दर वृक्षों और लताओं से ढक गई। इस नये आभार को लिये पृथ्वी अपने क्रीड़ा-पथ पर आगे बढ़ने को ही थी कि अचानक दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश में एक भयंकर विस्फोट हुआ और भूगर्भ से पिघले तरल पदार्थ की खौलती हुई धारायें पाताल की ओर फूट पड़ीं। पृथ्वी मदोन्मत्ता-सी बड़े भयंकर वेग से—पहले से हजार-लाख गुनी तीव्र गति के साथ सूर्य के इर्द-गिर्द चकराने लगी। उसकी इस गति के तूफानों से सारा ब्रह्माण्ड कांप उठा।

"भास्कर!" देवमाता अदिति ने सूर्य से कहा—वे इसी नाम से सूर्य को पुकारा करती थीं—"वसुमतीको अभी हाथ मत लगाना, वह अभी इस योग्य नहीं है।"

"मैं समझता हूं, मां," भास्कर ने मानों कुछ लजा कर उत्तर दिया, "आप मुझसे वैसी भूल की आशंका न करें।"

देवमाता अन्तर्धान हो गईं।

"भास्कर!" वसुमती ने असह्य वेग के साथ भास्कर की परिक्रमा लगाते हुए कहा, "तुम मुझे अपना शरीर छूने क्यों नहीं देते? आज मुझे यह हो क्या गया है?"

"हमारे तुम्हारे मिलन का ही यह प्रबन्ध है, वसुमती!" भास्कर ने कहा, "लेकिन तुमने तो आंखें बन्द कर रक्खी हैं। बिना आंखें खोले और अपनी गति को साधे तुम मुझे कैसे छू सकोगी?"

"मैं विवश हूं, भास्कर! पलकों का बोझ मेरी आंखें आज नहीं उठा पातीं। तुम्हारे स्पर्श के लिए आज मैं पागल हो उठी हूँ—ऐसा तो मुझे पहले कभी नहीं हुआ। आज तुम्हीं बताओ""मैं और कुछ नहीं चाहती, भास्कर, मुझे एक बार""!"

पृथ्वी की गति उसके रोके नहीं रुकी। वह सूर्य के गिर्द तब तक असाध्य वेग से घूमती रही, जब तक थक कर, लड़खड़ा कर, शक्तिहीन होकर, अन्त में मूर्च्छित हो कर वह निश्चेष्ट न हो गई। सूर्य ने अपनी उग्र ताप-किरणों की रोक लगा कर उसे अपना स्पर्श नहीं ही करने दिया।

पृथ्वी एक युग तक सूर्य के सामने मूर्च्छित पड़ी रही।

जब उसकी मूर्च्छा टूटी, तब स्वस्थ होने पर वह अपनी स्वाभाविक गति से अपने निश्चित वायु-मार्ग पर सूर्य के गिर्द चलने लगी। अब उसकी चाल में पहले वाली चपलता और अस्थिरता नहीं थी।

देवताओं के आदेशानुसार यथावसर कामदेव ने पृथ्वी की ओर अपना दूसरा बाण साधा। अब की बार वह काम-शर भूतल के मध्य भाग में विषुवत्-रेखा से कुछ ऊपर की ओर लगा।

पृथ्वी की गति कुछ समय के लिये मानों फिर सहम गई और तदनन्तर शीघ्र ही असाध्य भूकम्पों की हिलोरों से विषुवत्-रेखा के निकट उत्तरवर्ती प्रदेश में धरती के वक्ष पर उन्नत गिरि-शिखर उभर आये और पृथ्वी की अंगड़ाइयों ने उनका रूप और भी संवार दिया। पृथ्वी की परिक्रमा-गति एक बार और तीव्र हुई। पृथ्वी की इस उग्रगामी परिक्रमा से ब्रह्माण्ड एक बार फिर सिहर उठा।

"भास्कर!" देवमाता अदिति ने दूसरी बार प्रकट होकर कहा, "वसुमती को अभी हाथ मत लगाना, यह अभी इस ....।"

"मैं देख रहा हूं, मां!" भास्कर ने अब की बार भी उसी मुद्रा से देवमाता का अनुमोदन किया।

"मेरे शरीर पर उभरे हुए ये नये गिरि-शिखर किसी कठोरतर वस्तु से संघर्ष के लिए कसक रहे हैं, भास्कर! ठहरो, मेरे इस दुर्वह भार को अपना कुछ सहारा दो।" पृथ्वी ने उसी असाध्य गति से घूमते हुए एक प्रलयंकर-सी अंगड़ाई लेते हुए कहा, "न जाने आज यह मुझे कौन सा रोग लग गया है!"

"रोग नहीं, वसुमती!" भास्कर ने कहा, "और यदि यह रोग है तो तभी तक जब तक तुम आंखें खोल कर मेरी ओर नहीं देखतीं। आंखें खोलकर मेरी ओर एक बार देखो तो!"

वसुमती पृथ्वी की आंखें अब की बार भी नहीं खुल सकीं। नये उभार के मद में वह अब की बार भी असाध्य-हृदया मद-विह्वला हो रही थी।

उसके भीषण नृत्य की समाप्ति अब की बार भी उसके थक कर चूर हो जाने पर उसकी शैथिल्य-जनित मूर्च्छा ने ही की।

इस मूर्च्छा में भी एक युग बीत गया।

उसके जागने एवं गतिशील होने पर तीसरी बार कामदेव ने अपना बाण छोड़ा। अबकी बार यह पृथ्वी के उत्तरी हिमाच्छादित ध्रुव-प्रदेश पर जा कर लगा।

उत्तरी ध्रुव की शुभ्र अतरल जल-राशि पसीज उठी। इस तीसरे काम-शर के दाह से उत्तरी ध्रुव-प्रदेश के बड़े-बड़े हिम-खण्ड पिघल पड़े, सारा धरातल सागरों और सरिताओं से परिप्लावित हो उठा।

पृथ्वी अबकी बार पहले से सहस्र गुने आकर्षण के साथ सूर्य की ओर खिंची; किन्तु अपने शरीर से छहरी हुई इस नई तरलता के भार से मानों उसके पग और भी भारी पड़ गये। अपनी काया की नई यौवन-निधि—उन सागर-सरिताओं को छलकाती हुई वह अब भाग नहीं सकती थी। उसकी गति धीमी होते होते रुक गई।

"बेटी वसुमती!"

वसुमती ने सुना, देवमाता अदिति सामने प्रकट होकर कह रही थीं, "तेरा भार मैं देख रही हूँ। धीरज रख, अपने भास्कर से मैंने कह दिया है।"

दूसरी बार आंख उठाते ही वसुमती ने देखा, अदिति माता अन्तर्धान हो चुकी हैं और उनके स्थान पर भास्कर उसके सामने है।

"भास्कर!" वसुमती ने अपनी बड़ी बड़ी आंखों से स्निग्ध विवशता भास्कर की आंखों में उंडेलते हुए कहा, "क्या तुम बता सकते हो कि मुझे तुम्हारे लिए यह हो क्या गया है!"

"अवश्य बता सकता हूँ, वसुमती," भास्कर ने अपने असंख्य करों से वसुमती को आलिंगन-पाश में बांधते हुए कहा, "कामदेव का तीसरा शर अबकी बार तुम्हारी आंखों में लगा है और उसने प्रेम की सर्वोच्च और वास्तविक स्थली पर तुम्हारी प्रेम-भावना को जगा दिया है। अब तुम्हारे और मेरे बीच कोई व्यवधान नहीं रह गया है।

यह था भास्कर और वसुमती का प्रथम मिलन।

और एक दिन आया जब कि वसुमती वसुन्धरा का अंक देवों और मानवों के सुन्दर रतिसुन्दर शिशुओं से भर गया।

वर्षा के बाद

जीवन-भार
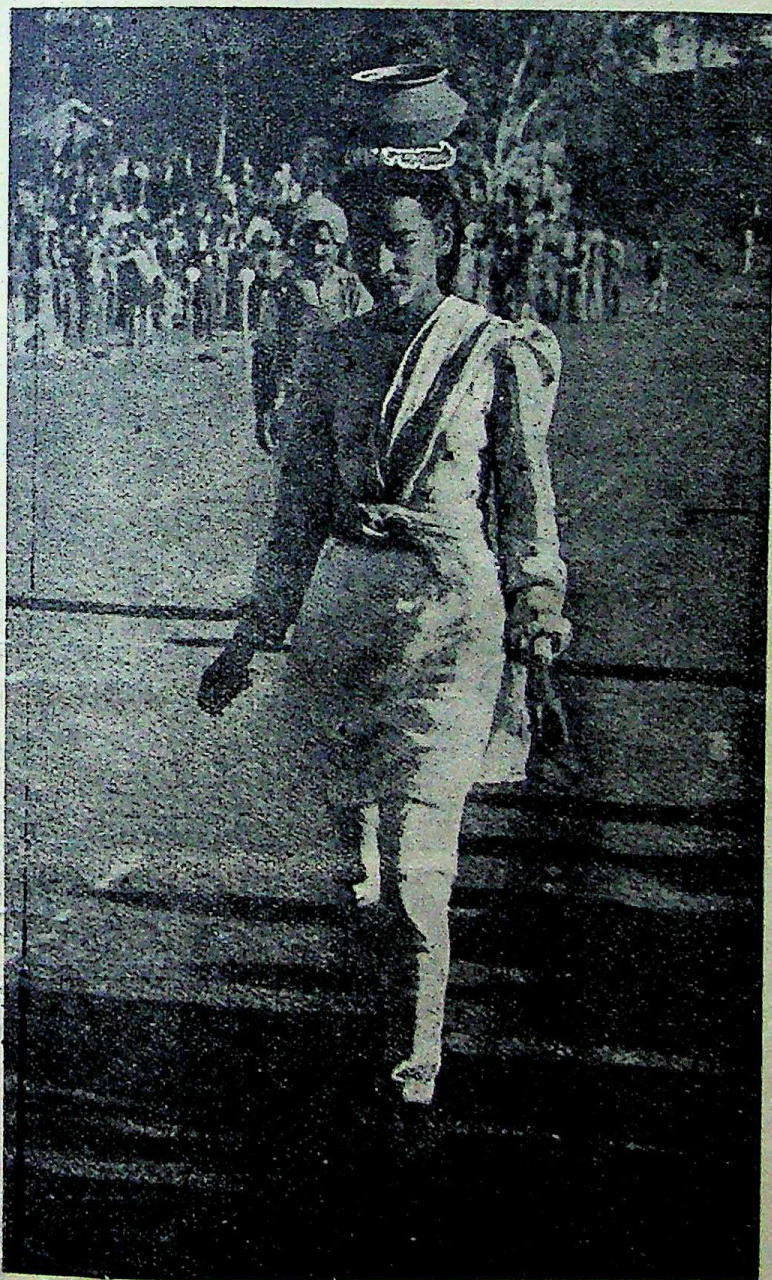
यौवन-भार

यदि डाकखाने की कोई टिकट गलत छप जाये तो उसका मूल्य असल मूल्य से कई गुना बढ़ जाता है। टिकट संग्रह करने वाले लोग इस रहस्य को जानते हैं। नीचे वाली टिकट २५०० डालर में बिकी है।
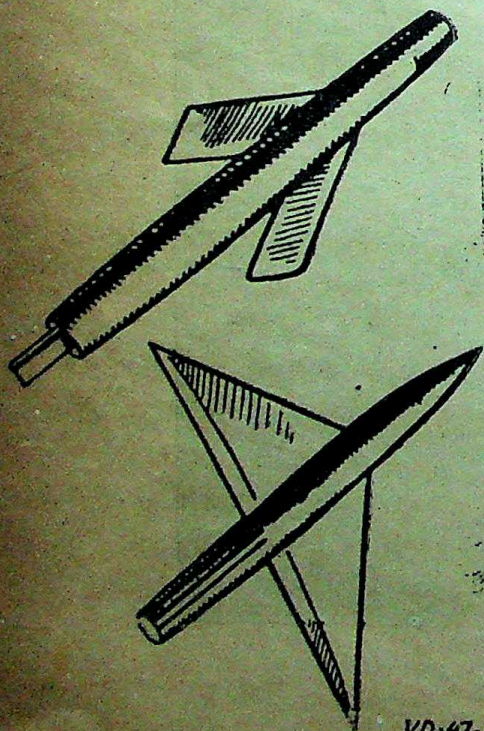
आजकल वायुयानों की गति को सैकड़ों मील प्रति मिनट करने के लिये कई परीक्षण हो रहे हैं। तेज चलने वाले वायुयान के पंख

चीनी वर्णमाला में छः हजार अक्षर हैं, अतः उसे सीखना कोई सरल काम नहीं। शायद इसीलिये चीन में बहुत कम शिक्षा है। अब अध्यापक-गण गांव-गांव में घूमते हैं और इस प्रकार का स्टाल-सा बनाकर लोगों को पढ़ाते हैं।
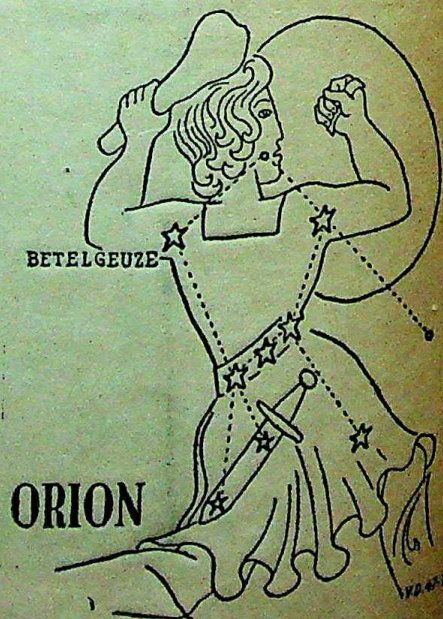
यह यूनानी पुराणों के अनुसार Orion नामक-नक्षत्र-पुञ्ज का चित्र है। इसका Betelgeuse नक्षत्र इतना बड़ा है कि इसमें सूर्य, चांद, पृथ्वी और [illegible]

एक मनोरंजक लेख

'नव-रस' नहीं, 'नए-रस'

श्री सूर्यनारायण व्यास

'सोऽहं, हंसः' की तरह ही 'रसो वैसः' की व्याख्या भी बड़ी रहस्यमय और अर्थपूर्ण है। रस और अलंकार-शास्त्र के अनेक नए और पुराने ग्रंथ इसकी व्याख्या और विवाद-विमर्श से भरे पड़े हैं। फिर भी यह विचार 'सामन्त-युग' या 'पूंजीवादी-युग' की ही देन है। आज अगर किसी वस्तु या विषय की चर्चा करना हो, तो आरंभ में हमें हर बात को इसी 'सामन्त' और 'धरती के पूत' की कसौटी पर ही कस कर देखना होगा, और यह भी देखना होगा कि इस विषय में महर्षि-मार्क्स की मन्शा क्या है। द्वंद्वात्मक-भौतिकवाद की आधार-शिला पर यदि हमारा विचारणीय विषय 'खरा' नहीं उतरा, तो मान ही लेना होगा कि उसकी जो भी दार्शनिक पृष्ठ-भूमि है, वह 'बुर्जुआ' है, अथवा सामन्त युगीन सड़ी-गली विचार-धारा पर निर्भर है।

रसों का भी यही हाल—हाल ही नहीं 'बेहाल' हुआ है। पुराने रस-साहित्य-शास्त्र का आधार सामन्त-युगीन ही होगा। श्रृंगार को रस-राज कहा गया है। जहां 'राजा' शब्द है, वहां बस उसका सामन्त कालीन होना सिद्ध हो जाता है। और फिर श्रृंगार के जितने प्रसाधन हैं, वे सामन्तों की सुविधा के हैं और ऐश्वर्य पर उनका अस्तित्व है। इस कारण उसका भला 'धरती के पूतों' से क्या सम्बन्ध हो सकता है? यदि रस का स्वाद लेने वाले रसाचार्यों ने करुणा को सर्वाधिक महत्व दिया होता, तो नव-रसों का रूप-रंग ही बदल जाता। तब यह श्रृंगार जो आज सौंदर्य और समृद्धि का सर्वस्व बन बैठा है, रोनी सूरत के गरीब-गंवारों, कृशकाय किसानों, मजदूरों, श्रमजीवियों की अश्रु-धारा से हुई श्रृंगार-साधना के वर्णनों से भरा हुआ होता। गरीबी से रोती हुई मजदूरिन के माथे की बिन्दी और कानों के लटकते झूमकों का बहते हुए आंसुओं और आहों के साथ जो सामंजस्य होता, उसी की चर्चा से यह 'श्रृंगार' अपना 'पद' ऊपर उठा सकता। फिर यह पुराना होते हुए भी आज के 'युग' का सर्वाधिक महत्वपूर्ण व प्रिय—जनता का अपना—रस बना होता। किन्तु इसका स्थान अब तो वह नहीं रहा, न रह सकता है। इसी कारण यह अब केवल 'सामन्त युग' का प्रतीक हो कर जी रहा है। यह कहने में हर्ज न होगा कि आज वह केवल रसों की रद्दी टोकरी में पड़ा सड़ रहा है। चूंकि सीता जी साधारण जनता की तरह 'श्रमजीवी' बन कर जंगलों में भटकती फिरी थीं और उन्होंने करुणा-कलाप किया था, इस लिए करुण-रस का महत्व भवभूति (जो कि मानिए—मार्क्स का ही अनुयायी था!) ने परखा था। 'एकोरसः करुण एव' कह कर उसने जो रुदन की सराहना की है, उससे वह वास्तव में 'धरती का पूत' सिद्ध होता है!

श्रृंगार-वीर-करुण-अद्भुत-हास्य आदि नवरसों और कटु-आम्ल-लवण-मिष्ट-तीक्ष्ण आदि षड्रसों की बात सच पूछिए तो कौन आज पूछता है! 'षड्रस' भोजन की प्रतिष्ठा और प्रतिपादन भी केवल धनिकों के मनोरंजन, स्वाद, रस-रंजन और सौख्य-साधन के लिए ही तो हुआ है। प्याज के टुकड़े के साथ सूखी रोटी से दो जून—अधिकतर एक ही जून—पेट भर लेने वालों के सामने षड्रस-व्यंजन आदि का गौरव-गान एक प्रकार से जनता-जनार्दन का अपमान ही करना होगा।

अब इन 'रसों' का रोजगार तो एक प्रकार से छिन चुका है। इनका नाम केवल पुस्तकों में संग्रहा-

लय की यादगार के लिए सुरक्षित है। सामन्त-युग की वस्तु मात्र इस प्रजातंत्र की हवा में टिक नहीं सकती। जो इस युग में शोषित और पीड़ित पड़े रहे हैं, उनका जमाना जोर पकड़ता जा रहा है। रसों के विषय में भी यही बात तथ्य समझिए। राजाओं-सामन्तों के प्रचारक पंडितों ने 'नवरसों' और 'षड्रसों' का बोलबाला करके जिन इनसे भी अधिक महत्व रखने वाले अन्य रसों की उपेक्षा कर रखी थी, या यों कहिये कुचल रखा था, वे ही 'रस' अब समय पा कर जीवन पकड़ रहे हैं, करवटें बदलने लगे हैं। उन्हें अपने रूप और सत्ता का भान होने लगा है।

अब यह बात सिद्ध हो गई है कि उस सामन्ती युग में बहुत से रसों ने इस देश में स्थान और जीवन पाना कठिन समझ कर अपना रूप पलट दिया था और मुंह 'बुर्के' में दबा कर अपने को परदेशी तक बना लिया था। फिर भी उनके प्रभाव और प्रसार ने उन्हें आज तक जीवित बनाए रखा है। जैसे—'डेंज-रस' 'रीग-रस', 'को-रस' आदि। इस तरह के 'रस' किसी भी 'नव-रस' से अपने आप में कम महत्व नहीं रखते। 'को-रस' शब्द यद्यपि बाहरी लगता है, परन्तु उसके सहयोगी और सजातीय—(गो-रस, चौ-रस, त्यौ-रस, आदि) शब्दों से टकरा कर देखें तो वह उसी रस-सागर का ही सहयोगी सिद्ध हो जाता है। परन्तु यह भाषा-विज्ञान का गंभीर विषय है—जनता का नहीं, सामन्ती है। इसकी चर्चा यहां अस्थानीय होगी। हां, तो इसी तरह कुछ 'रसों' ने अपनी जान नगर के नामों के साथ जुड़ा कर बचा रखी है, जैसे—'बना-रस' (चिना-रस भी), 'कोलारस' (ग्वालियर स्टेट का एक गांव), 'हाथ-रस' आदि। ये 'रस' जन-साधारण की जबान पर हजार आक्रमण करने पर 'लोक-गीत' लोक-वाणी में मिल-जुल कर जनता के हो कर जिन्दा बने रहे हैं। कई रसों ने अपने को संस्कृत के नव-रसों से जुदा कर जनता की भाषा में मिला दिया है, और जनता की चीज 'धरती के पूतों' की ही हो जाती है; इसलिये वे चिरजीवी बने रहेंगे। जैसे—सरस, नीरस, आम रस, सरस (चिरकाने की चीज नहीं), दरस, परस, चरस, (पीने की नहीं, पानी की—कुएं पर चलाने की) पारस, सारस, फारस, सम्-रस, ब-रस, नरस (नर्स नहीं) आदि अनेकों 'रस' हैं जो जन-वाणी पर जम गए हैं। जूते के तले की तरह ठोकरें खाते रहने पर भी जमाने से जान बचाए ये चले आ रहे हैं। पर अब 'जनयुग' आ गया है। इन्हें अब कोई खतरा नहीं रहा। अब उन 'नव-रसों' और 'षड्रसों' का तो नाम लेवा-देवा भी नहीं रहने का। अब तो इन्हीं नये रसों का बोलबाला रहेगा। षड्रसों ने महलों में महत्व मना लिया होगा, पर अब जब रूखी-सूखी रोटी, और 'विटामिनों' वाली सब्जियों के इस युग से (जो कि 'जनयुग' है) उनका पाला पड़ा है, तो वे पनप नहीं पाएंगे। अस्वाद-व्रत रख कर उबली हुई चीजों को चखने वाले जमाने में तूरे-तीखे और ज्ञानेन्द्रियों को विविध स्वादों से उन्मत्त कर देने वाले 'रसों' का भला क्या काम? हमारा देश अब फिर गाढ़ा-जाड़ा-मोटा कपड़ा पहन कर, रूखा-सूखा खाकर, बिना साज-बाज के, अस्वाद-अनासक्त-व्रती हो, नवरसों की भावना भूल 'धरती का लाल' बन रहा है। 'मौलिकता' की ओर यह उसकी प्रगति का बढ़ा हुआ कदम ही समझिएगा। 'मूल' की महत्ता समझने लगने के मानी हैं—विज्ञान की तह में पहुँच जाना, जहां से 'रसों' की रचना का ही नहीं, बल्कि 'रहस्य' का भी सहज पता चल जाता है। फिर उपभोग में क्या 'तथ्य' बाकी रह जाता है?

विजय-पुस्तक भण्डार की सामयिक पुस्तकें

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित

स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा

इस पुस्तक में लेखक ने भारत एक और अखण्ड रहेगा, भारतीय विधान का आधार भारतीय संस्कृति पर होगा, इत्यादि विषयों का प्रतिपादन किया है। मूल्य १॥) रुपया।

जीवन में विजय प्राप्त करने के लिये
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित

'जीवन संग्राम'

का

संशोधित दूसरा संस्करण पढ़िये। इस पुस्तक में जीवन का सन्देश और विजय ललकार एक ही साथ हैं पुस्तक हिन्दी भाषियों के लिये मनन और संग्रह के योग्य हैं। मूल्य १) डाक व्यय।-)

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति की

'जीवन की झांकियां'

प्रथम खण्ड—दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन, मूल्य ॥)
द्वितीय खण्ड—मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला? मूल्य ॥)
दोनों खण्ड एक साथ लेने पर मूल्य ।॥)

सामाजिक उपन्यास

सरला की भाभी

[ले०—श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति]

इस उपन्यास की अधिकाधिक मांग होने के कारण पुस्तक प्रायः समाप्त होने को है। आप अपनी कापियें अभी से मंगा लें, अन्यथा इसके पुनः मुद्रण तक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।

मूल्य २)

हिन्दू संगठन हौआ नहीं है

अपितु

जनता के उद्बोधन का मार्ग है।

इसलिये

हिन्दू-संगठन

[लेखक—स्वामी श्रद्धानन्द संन्यासी]

पुस्तक अवश्य पढ़ें। आज भी हिन्दुओं को मोहनिद्रा से जगाने की आवश्यकता बनी हुई है, भारत में बसने वाली प्रमुख जाति का शक्ति सम्पन्न होना राष्ट्र की शक्ति को बढ़ाने के लिये नितान्त आवश्यक है। इसी उद्देश्य से पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। मूल्य २)।

पं० मदनमोहन मालवीय

[श्री रामगोविन्द मिश्र]

महामना मालवीय जी का क्रमबद्ध जीवन-वृत्तान्त। उनके मन का और विचारों का सजीव चित्रण। मूल्य १॥) डाक व्यय।=)

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस

नेता जी जन्मकाल से सन् १९४५ तक, आजाद हिन्द सरकार की स्थापना, आजाद हिन्द फौज का संचालन आदि समस्त कार्यों का विवरण। मूल्य १) डाक व्यय।=)

पण्डित जवाहरलाल नेहरु

[श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति]

जवाहरलाल क्या हैं? वे कैसे बने? वे क्या चाहते हैं और क्या करते हैं? इन प्रश्नों का उत्तर इस पुस्तक में आपको मिलेगा।

मूल्य १।) डाक व्यय।=)

प्राप्ति स्थान—विजय पुस्तक भण्डार, श्रद्धानंद बाजार, दिल्ली

हमारा रंगमंच ?

श्री विष्णु प्रभाकर

नाट्य-कला सब कलाओं में सब से अधिक सामाजिक है। वह जाति की मानसिक और आत्मिक अवस्था को सब से अधिक व्यक्त करती है। इस कला के द्वारा कलाकार केवल अपने को व्यक्त ही नहीं करता, बल्कि दूसरों को आकर्षित और प्रभावित भी करता है। जनता के अभाव में नाट्य-कला का कोई मूल्य नहीं है। कालिदास के शब्दों में मुनि-लोगों ने इसे देवताओं का अत्यन्त कमनीय चाक्षुष-यज्ञ कहा है, अर्थात् वह यज्ञ जिसके अनुष्ठान में नेत्रों का व्यापार प्रधान हो। इन तत्वों के कारण इसमें जनता को प्रभावित करने की अपूर्व शक्ति है। आज के प्रचार-युग में जनता की रुचि को परिष्कृत करने के लिए तथा सभ्यता और संस्कृति का शुद्ध स्वरूप विश्व के सामने रखने के हेतु रंगमंच का पुनर्निर्माण स्वतंत्र भारत के जीवन की एक शर्त है।

प्राचीन भारत में नाट्य-कला की उत्पत्ति के बारे में जो कथा आती है, उस से यह स्पष्ट है कि उस काल में भी इस कला की सामाजिक शक्ति अज्ञात नहीं थी। एक बार जब वैवस्वत मनु के युग में लोग बहुत दुखी हुए, तब इन्द्रादि देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि आप मनोविनोद का कोई ऐसा साधन उत्पन्न करें जिस से शूद्रों तक का मन प्रसन्न हो। इस पर ब्रह्मा ने नाट्यशाला का निर्माण किया। यह कथा सत्य है अथवा कल्पित, परन्तु यह बात ऐतिहासिक रूप से सिद्ध हो चुकी है कि इस देश में नाटक-कला बहुत लोक प्रिय रही है। हमारा प्रचुर नाटक-साहित्य इस बात का प्रमाण है। एक और बात है। इस देश में नाट्य-कला को केवल मनोविनोद का ही साधन नहीं माना गया, बल्कि इसे परम मांगल्यजनक कहा है। विधिपूर्वक इसकी आराधना करने से विघ्न दूर होते हैं और पुण्य भी प्राप्त होते हैं।

ह्रास के कारण

जिस देश में नाट्य-कला की इतनी प्रतिष्ठा रही है, उस देश में रंगशाला का विकास भी बड़े नियमित रूप से हुआ है। भारत के नाट्य-शास्त्र का निर्माण लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व माना जाता है। परन्तु जैसे नाट्य-कला का ह्रास हुआ, वैसे वैसे रंगशाला भी समाप्त होती गई। भारत में नाट्य-कला के ह्रास का पहिला कारण धार्मिक है। प्रारम्भिक काल के बाद नृत्य और नाट्य को वासना भड़काने का साधन मान लिया गया था। तब तक यह कला कुछ धनी-मानियों के हाथ में आ गई थी और उन्होंने रूपवती अभिनेत्रियों को अपनी वासना-पूर्ति का साधन बना लिया था; इसीलिए शायद स्मृति-ग्रन्थों में अभिनेता और अभिनेत्री को अनादर के साथ याद किया गया है। बौद्ध ग्रन्थों में भिक्षुकों को नट-नटियों से बातें करने के कारण बाहर निकाले जाने की चर्चा आती है। यूरोप में प्यूरिटिनों का विरोध इसी तरह का था। भारत में जब मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई, तो इस कला का गला घोंट दिया गया। मुस्लिम धर्म में अनुकरण और मूर्ति-पूजा का निषेध है। नाट्य-कला की अवनति का दूसरा कारण तत्कालीन राजनैतिक अस्तव्यस्तता है। जब जीवन ही सुरक्षित नहीं रहता, तब कला की ओर कैसे ध्यान दिया जा सकता है। इंगलैण्ड में गृह-युद्ध के अवसर पर राज्य ने आज्ञा निकाली थी—"जब तक ये दुःखदाई कारण दूर न हो जायें और अपमानजनक घटनाएं घटती रहें, तब तक रंगमंच पर खेले जाने वाले तमाशे वर्जित रहेंगे।"

ये राजनैतिक तत्व कभी मिटने वाले नहीं हैं और यह मान लेने में भी कोई हानि नहीं है कि रंगमंच का दुरुपयोग भी हो सकता है, पर इसी कारण इसकी शक्ति को व्यर्थ नहीं जाने दिया जा सकता। निकट भूत में

भारत में नाट्य-कला के न पनपने का एक और भी कारण था। नाट्य-कला के नाम पर पारसी कंपनियों ने जो अभिनय किया, उसे रंगमंच की अपमानजनक अन्त्येष्टि ही कहा जा सकता है। ऐसी परिस्थिति में जब विज्ञान की प्रगति के कारण चित्रपट का उदय हुआ, तब तो रंगमंच के लिये रहा-सहा उत्साह भी समाप्त हो गया। वैसे रंगमंच का अस्तित्व ही लोप हो गया हो, यह बात नहीं थी। ब्रज की रासलीला, बंगाल की यात्रा तथा गांवों में होने वाले स्वांगों के कारण वह परम्परा बराबर चलती रही।

पुनर्निर्माण के प्रयत्न

जिस समय ह्रास का यह क्रम चल रहा था, उस समय कुछ ऐसी शक्तियां भी थीं जो निर्माण के महत्व को स्वीकार कर रही थीं। उनके प्रयत्न यद्यपि क्षुद्र थे, पर जीवन के अस्तित्व को सिद्ध करते थे। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के प्रयत्न इसी प्रकार के थे। परन्तु महाराष्ट्र और बंगाल में जो प्रयत्न हुए वे अधिक सुसंगठित थे। श्री मुन्शी के अनुसार "मराठी का रंगमंच अपनी उच्च स्थिति का दावा कर सकता है।" और बंगला में 'शांति-निकेतन' के प्रयत्न महत्वपूर्ण हैं। हिन्दी में उदयशंकर ने अल्मोड़ा-केन्द्र में कुछ प्रयत्न किये थे, परन्तु 'जन-नाट्य-शाला' के प्रयत्न अधिक ठोस और व्यापक हैं। उसने घूम घूम कर उन नाटकों का प्रदर्शन किया, जो कला और प्रचार दोनों की दृष्टि से सुन्दर हैं। इधर पृथ्वीराज ने भी उन प्रयत्नों की परम्परा को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाया है। लेकिन इतने बड़े देश में इन प्रयत्नों का मूल्य सागर में बिन्दु के समान है।

आज यह देश स्वतन्त्र हो चुका है और शासन की बागडोर हमारे अपने लोकप्रिय नेताओं के हाथ में है। हमारे राज्य का प्रधान मंत्री भी वह व्यक्ति है जो यह जानता है कि मानवता कला और सौंदर्य की पृष्ठ-भूमि पर ही विकसित होती है। निस्सन्देह आज उनके सामने बड़ी जटिल समस्यायें हैं, परन्तु जन-जागरण के लिये इस कला की उपयोगिता भी स्पष्ट है। इस लिये राज्य को विभिन्न प्रान्तों के प्रमुख नगरों में राष्ट्रीय रंगशालाओं का निर्माण कराना चाहिये। आज की रंगशाला प्राचीन युग की रंगशाला की तरह जटिल नहीं रह गयी है। आज उस में दैवी चमत्कार और आद्भुत्य के लिये कोई स्थान नहीं है। यहां तक कि गद्य के आविर्भाव और एकांकी नाटकों के उदय के साथ संगीत और नृत्य पहले की तरह अनिवार्य नहीं है। पर कुछ भी हो, रंगशाला का निर्माण बिना कलाकारों के सहयोग के नहीं हो सकता। सहयोग का वास्तविक मार्ग यह है कि नाट्यकार नाटक लिखते समय इस बात का ध्यान रखें कि उनके नाटक रंगमंच पर खेले जा सकें। उन्हें स्वयं रंगमंच का निर्माण करना चाहिए। 'शा' के नाटक शुरू में बिल्कुल लोकप्रिय नहीं थे, परन्तु जब उन्होंने नाट्यशाला के निर्माण में रस लिया तो उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी स्वयं रंगशाला के निर्माण और अभिनय में रस लिया है। यही रस आज प्रत्येक नाटककार को लेने की आवश्यकता है।

रंगमंच कई प्रकार के हो सकते हैं। खुले रंगमंच इधर विशेष लोकप्रिय हुये हैं। रासलीला का रंगमंच इसी रूप में आज तक जीवित है। स्थायी रंगशाला के अतिरिक्त घूमने फिरने वाली मण्डलियों के लिये अस्थायी रंगशालाओं के निर्माण की भी आवश्यकता है। नाट्य-कला जनता की कला है। जनता उसका अधिक लाभ उठा सके, इस लिये यह आवश्यक है कि 'जन-नाट्य-शाला' की तरह घूम घूम कर नाटक खेले जायें। इस ओर एक महत्वपूर्ण बात यह है कि नाट्यकला के ह्रास के साथ साथ अभिनेताओं से घृणा करने की जो प्रवृत्ति इस देश में चल पड़ी थी, उसका उन्मूलन होना आवश्यक है। शिक्षित और सुसंस्कृत अभिनेता नाट्यकला के संरक्षक हैं। इस प्रसंग में अर्थ की चर्चा असंगत नहीं होगी। अर्थ में स्वार्थ है और स्वार्थ साधना को खंडित कर देता है; लेकिन परमार्थ भी तो स्वार्थ का विराट रूप है और फिर कलाकार का अपने को सुरक्षित रखने का स्वार्थ जनता और राष्ट्र दोनों के हित में है। इसी लिए उनको उचित धन देना भी कला और राष्ट्र के हित में है।

जनता की धरोहर

राज्य के हस्तक्षेप अथवा राष्ट्रीयकरण की जो बात ऊपर कही गयी है, वह कलाकारों को रुचिकर नहीं लग सकती। उनके लिए कला उद्देश्य से ऊपर है; पर आज मान स्थिर कहां है? आज तो परिवर्तन ही शाश्वत बन गया है। इस लिए आज उद्देश्यहीन कला का कोई मूल्य नहीं रहा है। सच तो यह है, कला स्वयं में एक बड़ा उद्देश्य है। जीना कला है। जीवन की रक्षा कला है। मनोरंजन भी एक उद्देश्य है, परन्तु यदि कोई मनोरंजन के नाम पर अनैतिकता का प्रचार करने लगे, तो क्या प्रजातंत्र का यह कर्त्तव्य नहीं होगा कि वह उसे रोक दे। आज का फिल्म-व्यवसाय देश को धीरे धीरे विष पिला रहा है। इन चित्रपटों में न कला है, न मनोरंजन। वे निम्नतल पर वासना की भूख मिटाने के लिए भोंडे प्रयत्न मात्र हैं। नैतिकता से रहित कोई व्यवसाय राष्ट्र का हित नहीं कर सकता। यह देश अभी अशिक्षित है, इस कारण राज्य का और भी कर्त्तव्य हो जाता है कि वह राष्ट्र के इन दुश्मनों को उचित दण्ड दे। रंगशाला से भी यह भय हो सकता है, परन्तु आरम्भ में ही यदि राष्ट्रीय चेतना और युवकों को विकास-मार्ग पर ले जाने वाली शक्ति का ध्यान रखा जाय, तो देश इस भय से मुक्ति पा सकता है। जब राज्य जनता की शक्ति और उसकी मांग को स्वीकार करता है, तो उसकी रुचि को परिष्कृत करने का साधन अनायास ही उसके हाथ लग जाता है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति का एक मात्र मार्ग सर्वसाधारण की मनोदशा को बदल देना है, क्योंकि इन्हीं सर्वसाधारण में से भावी राष्ट्र-निर्माता पैदा होते हैं। रंगमंच जनता की धरोहर है। राज्य को उसके निर्माण और रक्षण में पूरा पूरा योग देना उचित और आवश्यक है। यदि जनता, कलाकार और राज्य तीनों एक होकर काम करें तो निस्संदेह एक ऐसी संस्कृति का उदय हो सकता है, जो मानव की जय-यात्रा में उसके पथ को सदा आलोकित करती रहेगी।

आर्य संस्कृति एवम् पातित धर्म की प्रबल प्रतीक भारतीय महिलाये जन्मान्तर में भी अपने वर्त्तमान पति प्राप्ति की कामना से सहस्रों की संख्या में विशेष कर पर्व के दिन तीर्थ स्थानों में इस बीसवीं सदी में भी ग्रन्थि बंधित स्नान करती दिखाई पड़ती हैं। इस प्रकार का स्नान उनके वांछित फल प्राप्ति में कहां तक सहायक होता है, यह तो उनके विश्वास का विषय है, पर स्नान का महत्ता सर्वथा निर्विवाद है और विशेषकर जब स्नान "प्रीफेक्ट साबुन" से किया जाता है, जो शरीर को न केवल स्वच्छ एवम शान्त बनाता है वरन अपनी स्नग्ध सुवास में त्वचा के प्रफुल्लित तथा स्नान के बाद भी सुवासित रखता है।

प्रिफेक्ट
टॉयलेट सोप
विशुद्ध वनस्पति तेलों से निर्मित

मोदी सोप वर्क्स, मोदीनगर, यू० पी०
स्थानीय डिपो—मेसर्स मोदी इण्डस्ट्रीज डिपो, दरयागंज दिल्ली।

हास-परिहास

नई रोशनी की दो बहिनों की आपस में कहीं भेंट हुई। एक ने पूछा—"सुना है कि तुम्हारा पति किताबी कीड़ा है?"

दूसरी—"नहीं, किताबी नहीं, साधारण कीड़ा है!"

* * *

एक आदमी एक पैकेट उठाये बड़ी तेजी से जा रहा था कि रास्ते में एक मित्र से टकरा गया। मित्र ने पूछा—"खैर तो है, बड़ी तेजी से भागे जा रहे हो?"

उसने उत्तर दिया—"मुझे जल्दी घर पहुँचना है। मैंने पत्नी के लिये अभी-अभी यह सूट खरीदा है और मुझे डर है कि मेरे घर पहुँचने से पहले ही कहीं इसका फैशन न बदल जाये!"

* * *

वह गंजापन दूर करने की औषधि बड़े दावे के साथ बेचता था, लेकिन स्वयं गंजा था। एक दिन एक ग्राहक ने उससे कहा—"अगर तुम्हारी यह औषधि सचमुच ही अचूक है, तो तुम स्वयं इसका प्रयोग क्यों नहीं करते?"

वह अपनी गंजी चांद पर हाथ फेरते हुए बोला—"मैं इस औषधि का प्रयोग स्वयं इसलिये नहीं करता कि मुझे देख कर मेरे ग्राहकों को गंजेपन की भयानकता का पता चलता रहे।"

* * *

कंजूस सेठ—(दूकानदार से) क्यों जी, आपके पास कोई सस्ती-सी चूहेदानी होगी?

दूकानदार—हां, यह लीजिये। कुल छः आने इसकी कीमत है।

सेठ—है तो यह सस्ती; लेकिन क्या यह ऐसी है कि चूहा बिना रोटी का टुकड़ा खाये इसमें फंस जाय?

* * *

संपादक की डाक में एक यह पत्र भी था—"अबके जब मैंने आपका अखबार खोला तो उसमें एक मकड़ी मिली। कृपया लिखिये कि अखबार में मकड़ी का दिखाई देना अच्छा शकुन है या बुरा?"

संपादक ने उत्तर दिया"—अखबार में मकड़ी का होना शुभ-अशुभ कुछ नहीं है। मकड़ी तो हमारे अखबार में केवल यह देख रही थी कि कौन-सा व्यापारी अपने माल का विज्ञापन इसमें नहीं छपाता, ताकि वह उसके गोदाम के द्वार पर जाकर जाला बुने और सदा के लिये निर्विघ्न वहां अपना आवास बनाये रहे।"

* * *

"मैं आपकी लड़की से शादी करना चाहता हूँ।"

"अच्छा, तो आपकी तनख्वाह क्या है?"

"५० रुपये।"

"केवल पचास रुपये। इतने तो उसके स्नो-पाउडर के लिये भी काफी न होंगे!"

"तो क्या आपकी लड़की इतनी बदसूरत है?"

* * *

विज्ञान का प्रोफेसर एक दिन अपने एक मित्र से बोला—"मैंने आज एक बहुत बड़ी खोज की है।"

"वह क्या?"

"यदि लिखते समय स्याही की बोतल पास ही रख ली जाय, तो फाउण्टेन-पेन का प्रयोग एक साधारण कलम की ही तरह किया जा सकता है—यानी बार-बार स्याही भरने का झंझट नहीं करना पड़ता।"

* * *

नारी की कहानी

सुश्री शकुन्तला बी० ए०

आज के सभ्य जगत् के अधिकतर भाग में नारी पुरुष की गुलाम नहीं रही, बल्कि उसकी सहयोगिनी व समकक्षिणी बन गई है। परन्तु उसकी स्थिति में यह परिवर्तन धीरे धीरे व क्रमशः हुआ है। इस परिवर्तन को हृदयंगम कराने के लिये आज भी नारी की दोनों स्थितियां हमारे सामने हैं—एक ओर तो विश्व के विभिन्न भागों में बिखरी हुई आदिम जातियों की गुलाम नारी और दूसरी ओर अमरीका की प्रभावशालिनी स्वतन्त्र नारी। दोनों स्थितियों का संक्षिप्त-सा सिंहावलोकन निश्चय ही रोचक सिद्ध होगा।

आस्ट्रेलिया के आदिवासी कबीलों में पति अपनी स्त्री का पूर्णरूपेण स्वामी होता है और स्त्री यदि पत्नी के कर्त्तव्यों का पालन करने में चूक जाये तो वह उसके प्राण तक ले सकता है। स्त्री तो गृहस्थी के लिये परिश्रम करती है, अपनी जान खपाती है और पति महोदय शिकार आदि खेल कर अपना मन बहलाते हैं। यदि वह विधवा हो जाये, तो चाहे उसकी इच्छा हो या न हो, उसे अपने पति के भाई की पत्नी बनना पड़ता है।

न्यूजीलैंड की मौरी नामक जाति के लोग लड़की को पैदा होते ही मार डालते हैं।

इन आदिम युगीन टापुओं से जब हम एशिया की ओर आते हैं तो विभिन्न देशों में स्त्रियों की स्थिति विभिन्न प्रकार की पाते हैं। सबसे पहले जापानी स्त्री को ही लें। इस बेचारी को आजीवन पुरुष के शासन में रहना पड़ता है—पहले पिता के शासन में, फिर पति के और फिर पुत्र के। लेकिन इस पराधीनता के बावजूद भी उसे घरेलू जीवन में सहयोगिनी बनने और विभिन्न ललित कलाओं की शिक्षा प्राप्त करने से वंचित नहीं रखा जाता।

फारस में आजकल पर्दा-प्रथा फिर से चालू करने का आन्दोलन जोरों से चल रहा है। इस देश में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में कुछेक और बातें भी बड़ी अजीब हैं। कई घरों में बच्चे के जन्म से पहले दो पालने तैयार रखे जाते हैं—लड़के के लिये बढ़िया रेशम का और लड़की के लिये साधारण सूती कपड़ों का। कुछ ही वर्ष पहले विवाह के समय काजी वर को यह उपदेश देता था कि वह जीवन में कभी भी अपनी पत्नी की सलाह न माने।

अब चित्र का दूसरा रुख देखिये। संसार भर में शायद ही कोई ऐसा देश होगा जहां की स्त्री इतनी स्वतन्त्र और साथ ही इतनी पतिव्रता होगी जितनी कि बर्मा की। बर्मा में लड़का और लड़की समान रूप से पैतृक सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होते हैं और विवाहित स्त्री अपनी इच्छानुसार अपनी सम्पत्ति को बेच सकती है। आम तौर पर वह अपने पति के व्यापार में साझीदार होती है और उसकी सलाह के बिना कोई काम नहीं होता। वह अपना अलग कारोबार भी चला सकती

है, जिसकी आय में पति कोई दखल नहीं दे सकता।

जब बर्मी स्त्री अविवाहित युवती हो तो तब भी वह अधिक से अधिक आदर के योग्य समझी जाती है और प्रेमी के बिना कोई उसे छू तक नहीं सकता।

स्याम में भी स्त्री को यही ऊंचा स्थान प्राप्त है। वहां तो अधिकतर समाचार-पत्रों का संचालन भी स्त्रियां ही करती हैं।

धर्म-गुरुओं और लामाओं के तथाकथित पिछड़े हुए देश तिब्बत में भी जब हम स्त्रियों को स्वतंत्र पाते हैं तो काफी आश्चर्य होता है। वहां वे न केवल स्वतंत्रता-पूर्वक व्यापार-व्यवसाय ही चलाती हैं, बल्कि देश के धार्मिक जीवन में भी उन का महत्वपूर्ण हाथ है। वे स्वच्छन्दता के साथ पुरुषों से मिलती जुलती हैं और आमोद-प्रमोद की गोष्ठियों में सम्मिलित होती हैं। जहां तक विवाह का सम्बन्ध है, तिब्बत की स्त्री और भी स्वतन्त्र है—यदि चाहे तो वह एक ही समय एक से अधिक पतियों से विवाह कर सकती है।

अफ्रीका के श्वेत-नील-प्रदेश की कुछ जातियों में यह अजीब बात पाई जाती है कि डाक्टरी का काम प्रायः स्त्रियां ही करती हैं। वहां स्त्रियां बड़ी भयानक किस्म की कुश्तियां भी लड़ती हैं।

कांगो के आदिवासियों के कबीलों की मुखिया प्रायः स्त्रियां ही होती हैं और राजा से भी अधिक महत्ता राजमाता की होती है।

अब तनिक यूरोप और अमरीका की स्त्रियों की स्थिति पर दृष्टिपात किया जाये। एक आलोचक का कहना है कि "अंग्रेज स्त्री अपने पति के पीछे चलती है, अमरीकन स्त्री अपने पति के आगे चलती है और फ्रांसीसी स्त्री अपने पति के साथ साथ चलती है।" जहां तक अमरीकन और फ्रांसीसी स्त्री का सम्बन्ध है, यह उक्ति सोलह आने सही है, परन्तु अंग्रेज स्त्री के बारे में उपर्युक्त बात अब सही नहीं है। पिछले वर्षों में मताधिकार प्राप्त हो जाने से उसकी स्थिति बिल्कुल बदल गई है।

अमरीका पर तो वस्तुतः स्त्रियों का शासन है। अमरीकन स्त्री को बचपन से ही अपना मत स्थिर करना और प्रकट करना सिखाया जाता है।

कमर पर झालर के साथ साड़ी पहनने का यह नया ढंग वस्तुतः आकर्षक है। साड़ी के पहनावे में जो एकरूपता-सी आ गई है, इस झालर से वह निश्चय ही दूर हो सकती है। नवीनता का नाम ही तो फैशन है!

फेस-पाऊडर

चेहरा चमकता हुआ दिखाई न दे अथवा स्निग्धता से उस पर जो चमक दिखाई देती है, वह ढँक जाय तथा चेहरा सूखा-सा और तेजयुक्त दिखाई दे आदि 'फेस पाऊडर' लगाने के मुख्य उद्देश्य हैं। त्वचा के खुरदरेपन को या उसके दोषों को छिपाना भी 'फेस पाऊडर' लगाने का दूसरा उद्देश्य हो सकता है।

चेहरे पर 'फेस पाऊडर' लगा कर सौंदर्याभास निर्माण करने के लिये उसका कलापूर्ण रीति से उपयोग करना जानना आवश्यक है। पाऊडर लगाने के लिये अच्छी धुनकी हुई रुई का फाहा अथवा पाऊडर लगाने के फूल का उपयोग किया जावे। इसके उपयोग से चेहरे पर एक-सा पाऊडर लगता है। चेहरे पर एक-सा पाऊडर फैला लेने के बाद एक नरम ब्रुश से अधिक लगा हुआ पाऊडर पोंछ कर निकाल डालें। इससे चेहरे पर पाऊडर की मोटी तह दिखाई नहीं देगी। शुष्क त्वचा के लिये हल्का पाऊडर अच्छा है; परन्तु जब शुष्क त्वचा में इतनी स्निग्धता न हो कि उस पर पाऊडर चिपक जाय, तब उस पाऊडर में ही ऐसा गुण निर्माण करना चाहिये कि वह स्वयं चिपक जाय अथवा 'वेनिशिंग क्रीम' जैसा क्रीम लगाने के पश्चात् पाऊडर लगाया जावे। स्निग्ध त्वचा के लिये स्निग्धता नष्ट करने वाला (सोखने वाला) और त्वचा को अच्छी तरह ढंकने वाला पाऊडर उपयोग में लाना चाहिये। उसमें ज्यादा से ज्यादा स्निग्धता नष्ट करने वाले और त्वचा को सूखा रखने वाले द्रव्य (उदाहरणार्थ-केयोलीन, चाक-पाऊडर, जिंक आक्साइड) होने चाहियें। इन द्रव्यों से त्वचा अच्छी तरह ढंक जाती है। ऐसे पाऊडर को 'मोटा' पाऊडर कहा जा सकता है।

पाऊडर का रंग कैसा हो, यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। अपने हाथ की कलाई पर थोड़ा सा पाऊडर लगाइये। पाऊडर लगाने पर त्वचा गहरे रंग की न होकर मामूली सूखी और आकर्षक-सी दिखाई देने लगती है। यदि पाऊडर पारदर्शक हो तो उसमें से त्वचा की चमक स्पष्ट दिखाई देनी चाहिये, और त्वचा पर स्निग्धता का अभाव अथवा सूखापन नजर आना चाहिये। इसके विपरीत यदि पाऊडर अपारदर्शक हो और उसका रंग फीका हो तो त्वचा ऐसी दिखाई देगी जैसे चूना पोता गया हो। कहने का मतलब यह है कि पाऊडर की जांच उसे त्वचा पर लगा कर ही की जा सकती है। मोटा नियम यह है कि पाऊडर का रंग चेहरे के रंग से मिलता जुलता होना चाहिये और उसमें सुगंध मंद और टिकाऊ होनी चाहिये।

रात को, विशेष कर बिजली के प्रकाश में, घूमने वालों को चाहिये कि वे किंचित गहरे रंग का पाऊडर लगावें। बिजली के प्रकाश में जैसा रंग दिखाई देता है, उसमें और दिन के प्रकाश में दिखाई देने वाले रंग में भिन्नता होती है। इस कारण यह फर्क करना पड़ता है। उदाहरणार्थ यदि कोई दिन को पीले-से रंग का पाऊडर लगाता हो और उसका चेहरा फीका हो तो उसे रात को गुलाबी रंग का पाऊडर लगाना चाहिये। यदि त्वचा अच्छी हो और दिन को कोई गुलाबी पाऊडर लगाता हो तो रात को लाल रंग का पाऊडर लगाना चाहिये।

—'उद्यम' से

सम्पादक के नाम

इस स्तम्भ में प्रति मास संपादक के नाम आये पाठकों के कुछ चुने हुए पत्र प्रकाशित किये जाते हैं और सर्वोत्कृष्ट पत्र पर पांच रुपये का पुरस्कार दिया जाता है। पत्र सार्वजनिक हित व रुचि के किसी भी विषय को लेकर लिखा जा सकता है।

पत्र संक्षिप्त, स्पष्ट और सुरुचिपूर्ण होना चाहिये और उसके साथ 'मनोरंजन-पत्र-प्रतियोगिता कूपन' आना चाहिये।

स्वेच्छा-विवाह और तलाक

स्वेच्छा-विवाह एक उचित आदर्श वस्तु है। आम तौर पर सोलह वर्ष के बाद प्रत्येक युवक-युवती को अपनी इच्छा से विवाह करने का अधिकार होना चाहिए। परन्तु इस बात से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि इसके मार्ग में अनेक कठिनाइयां भी हैं। सर्वप्रथम तो यही कठिनाई है कि नवयुवकों व नवयुवतियों की इच्छा स्थिर नहीं रहती। आज यदि एक व्यक्ति पूर्ण दीखता है, तो कल दूसरा व्यक्ति आकर उस भावना का अधिकारी हो सकता है। इसी कारण स्वेच्छा से विवाह करने पर भी कुछ ही दिनों में पति या पत्नी का मन ऊब जाता है। इसका कारण प्रेम की पाश्चात्य परिभाषा है। आजकल उस समाज में प्रेम व्यावहारिक दृष्टि से वासना ही है। उसी परिभाषा को आज भारतीय युवक अपने मस्तिष्क में रक्खे हुए हैं। इसी कारण विवाह के कुछ ही दिन उपरान्त एक दूसरे के प्रति उनके मन में असन्तोष उत्पन्न हो जाता है और जीवन भार बन जाता है। इसको व्यवहार में लाने में दूसरी कठिनाई यह है कि कभी-कभी विवाहार्थियों की इच्छा उनके अभिभावकों की इच्छा के विरुद्ध हो जाती है और सबको क्लेश का भागी होना पड़ता है। विदेशों में भी कभी कभी ऐसा हो जाता है। इन दोनों कठिनाइयों का विदेशी हल है तलाक-जिसे हमारे पाश्चात्य-सभ्यता-प्रेमी समाज-सुधारक अपने समाज में लाने की चेष्टा कर रहे हैं। लेकिन इन दोनों कठिनाइयों का भारतीय दृष्टि से जो हल है, वह कहीं अच्छा है। पहली कठिनाई के लिए तो हम यही कहेंगे कि पति-पत्नी एक दूसरे के प्रति सहिष्णु रहें और जीवन का लक्ष्य भोग न रख कर त्याग रखें। जीवन में वासना नहीं, सच्चे प्रेम का महत्व है। तो फिर मन हटने की बात ही न रहेगी। इसमें याद रखने की बात यह है कि त्याग का ठेका स्त्री ने ही नहीं ले रखा है, पुरुष को भी उससे अधिक नहीं तो कम से कम उसके बराबर त्याग अवश्य करना चाहिये। एक दूसरे की त्रुटियां न निकाल कर एक दूसरे को समझने की चेष्टा करनी चाहिये।

पुरस्कृत पत्र

दूसरी कठिनाई का यह हल है कि माता-पिता को अपने पुत्र-पुत्रियों की भावनाओं का ध्यान रखना चाहिए और पुत्र-पुत्रियों को माता-पिताओं की इच्छाओं का। यदि पुत्र-पुत्री अत्यन्त हठी हों, तो माता-पिता को अपने हितों का बलिदान करना चाहिये और यदि पुत्र-पुत्री कर सकते हों तो उन्हें अपने हितों का बलिदान करना ही चाहिये।

तलाक के समर्थक कहते हैं कि इस से नारियों का बड़ा उपकार होगा। मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि क्या आपने कभी सुना है कि किसी साहब की स्त्री ने साहब को छोड़ दिया? हां, यह आपने बहुधा सुना होगा कि वह इंगलैंड गया था, वहां से मेम लाया है और अपनी पहली स्त्री को छोड़ दिया है। एक भारतीय स्त्री पति को छोड़ना बुरा समझती है और जो छोड़ती है वह नीच समझी जाती है। आप ही सोचिये, वह स्त्री क्या कही जावेगी, जो आठ-आठ या सात-सात विवाह करेगी! विवाह-विच्छेद के बाद इसकी क्या गारन्टी है कि उसका कहीं और विवाह हो जायेगा? विदेशों की सरकारें और विचारक इस फूस की आग के समान बढ़ती हुई तलाकों की संख्या को देख कर परेशान हैं। वे तो इस

रोग को अपने समाज में से निकालना चाहते हैं और हमारे समाज-सुधारक आंख मूंद कर इसे अपने समाज में लाने के इच्छुक हैं। क्या हमारे समाज-सुधारक नकल में अकल से बिल्कुल भी काम न लेंगे ?

अन्त में मैं यही कहूँगा कि जहां स्वेच्छा-विवाह एक आवश्यकता है, वहां तलाक एक बेवकूफी !

बरेली —कैलाश कुमार

★

इसका भी निषेध हो !

यह अभिनन्दनीय ही है कि भारत के स्वतंत्र होने के बाद हमारी केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों ने मदिरा-निषेध का कार्यक्रम आंशिक अथवा पूर्ण रूप से शुरू कर दिया है; परन्तु आश्चर्य है कि हमारी सरकार का ध्यान अभी तक एक ऐसी वस्तु के निषेध की ओर नहीं गया जो राष्ट्र के लिये मदिरा और अफीम जैसे मादक-द्रव्यों से कहीं अधिक हानिकारक सिद्ध हो चुकी है। मेरा आशय हमारी उस धार्मिक विचारधारा से है, जो निराशावाद पर आधारित है और इस संसार को मिथ्या बता कर वैराग्य और परलोक की ओर उन्मुख होने—ऐहिक जीवन से भागने का उपदेश देती है। इस विचारधारा का वेदान्त, भक्तिमार्ग और अध्यात्मवाद के नामों से जब से हमारे देश में अधिक प्रचार हुआ, तभी से हमारा राष्ट्रीय अधः पतन हुआ और हम एक के बाद दूसरे आक्रान्ता के गुलाम बनते चले गये। अब हम पुनः स्वतन्त्र हुए हैं। और यदि हम अब भी इस वैराग्य-मूलक निवृत्ति-प्रधान परलोकवाद तथा भाग्यवाद से चिपटे रहे, तो निश्चय ही हम अपनी स्वतंत्रता को अधिक दिनों तक सुरक्षित नहीं रख सकेंगे। मदिरा की ही तरह सरकार को इस विचारधारा पर भी प्रतिबंध लगाना चाहिये और आशावाद व कर्मवाद को प्रोत्साहन देना चाहिये। दूसरी मदिरा का तो थोड़े समय के लिये ही शरीर और मस्तिष्क पर कुप्रभाव पड़ता है, परन्तु इस परलोकवादी-विचारधारा-रूपी मदिरा का प्रभाव सारे राष्ट्र की आत्मा और शरीर को सदियों से निष्प्राण किये हुए है।

देहरादून —सुरेन्द्र मोहन

★

हमारा राष्ट्रीय खेल

गत मास लंदन में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय ओलिम्पिक खेलों में भारत की हॉकी-टीम विजयी हुई। इस अन्तर्राष्ट्रीय विजय से भारत के गौरव में निश्चय वृद्धि हुई है। इससे पहले निरंतर तीन बार ओलिम्पिक खेलों में—जो हर चार वर्ष के बाद होते हैं—भारत की हाकी-टीम विश्व-विजय प्राप्त कर चुकी है। अब के इस चौथी विजय ने अन्तर्राष्ट्रीय खेलों के क्षेत्र में भारत को हॉकी का निर्द्वन्द्व और श्रेष्ठतम खिलाड़ी सिद्ध कर दिया है। वैसे यदि देखा जाय तो जिस प्रकार ब्रिटेन सगर्व क्रिकेट को अपना राष्ट्रीय खेल कह सकता है, उसी प्रकार भारत हॉकी को अपना राष्ट्रीय खेल मान सकता है। आज के बड़े बड़े मैचों और टूर्नामेंटों की बात तो जाने दीजिये, भारतीय बच्चे अत्यन्त प्राचीन काल से ग्रामों के खुले मैदानों में कपड़े, चमड़े या लकड़ी की गेंदों के साथ वृक्षों से काटी हुई लकड़ी की छड़ियों से खेलने के अभ्यस्त रहे हैं। रामायण और महाभारत-काल में भी इस खेल का खूब प्रचलन था। कहने का मतलब यह है कि हॉकी हमारा वस्तुतः जातीय व राष्ट्रीय खेल है और हमारे स्वतन्त्र भारत की सरकार को चाहिये कि वह इसे इस रूप में घोषित कर दे।

हमारी विश्व-विजयी हॉकी-टीम शीघ्र ही भारत लौटने वाली है। आशा है, राज्य और जनता की ओर से उसका राजसी ठाठ से स्वागत किया जायेगा।

दिल्ली —सतीशकुमार भट्टी

★

'नारी का स्वस्थ रूप कहां ?'

अगस्त के 'मनोरंजन' में प्रकाशित श्रीमती रामेश्वरी शर्मा का लेख 'नारी का स्वस्थ रूप कहां ?' पढ़ कर मुझे संदेह हुआ कि कहीं इसे रामेश्वर शर्मा ने तो नहीं लिखा ('र' में 'ी' की मात्रा शायद प्रेस वालों ने भूल से लगा दी हो) ! नाम के आगे 'श्रीमती' शब्द जुड़ा देख कर ऐसा लगा जैसे आपने भी भूल की है। बात यह है, स्त्रियों की समानाधिकार प्राप्त करने की उचित मांग पर इस लेख में वही युक्तियां और दलीलें देकर 'छिः छिः' की गई है, जो स्त्रियों को दासी

बनाये रखने वाला पुरुष-समाज आज तक देता रहा है और दे रहा है। पुरुष हमेशा से स्त्री को 'जगजननी,' 'ममता की मूर्ति,' 'गृह-लक्ष्मी' जैसे झूठे विशेषणों से छलता रहा है। श्रीमती रामेश्वरी शर्मा ने भी स्त्री के इसी रूप को महत्व दिया है—जिसमें न कोई सार है और न तथ्य। हमारे सामने उन्होंने नारी के स्वस्थ रूप का जो आदर्श रखा है, वह है ग्रामीण नारी—अनपढ़, गंवार, पुराने रीति-रिवाजों, रूढ़ियों और अज्ञान में फंसी हुई, पति के चरणों की दासी, देश-विदेश की हलचल से अपरिचित। कदाचित् इस आदर्श को हमारे सामने रख कर लेखिका का यह अभिप्राय है कि भारत की जाग्रत नारी सौ वर्ष पीछे चली जाये!

यदि उच्च-शिक्षा प्राप्त करके स्त्रियां दफ्तरों में नौकरियां करती हैं और ऊंचे पदों पर आरूढ़ होती हैं, तो इसमें प्रतियोगिता की भावना कहां से आ गई? स्वतन्त्र भारत में स्त्री-पुरुष का भेद किये बिना सभी को जीवन में समान अवसर प्राप्त करने का अधिकार है। श्रीमती शर्मा कहती हैं कि स्त्री जज या कमाण्डर नहीं बन सकती। क्यों? उसका नारीत्व और कोमल स्वभाव उसके मार्ग में बाधक है! वस्तुतः स्थिति इसके बिल्कुल उलट है। आज यदि सभी देशों का शासनाधिकार स्त्रियों के हाथ में हो, तो न युद्धों की विभीषिका रहे और न अहिंसा का ताण्डव-नृत्य। संसार प्रेम, सुख और शांति का स्वर्ग बन जाये।

रही बात बच्चे जनने की। जब पहले पैदा हुए बच्चों (!) को अच्छी तरह अन्न-वस्त्र नसीब नहीं हो रहा, तो जनसंख्या को और बढ़ाने से क्या लाभ?

इलाहाबाद

—सुभद्रा कुमारी

★

बधाई का पत्र

'मनोरंजन' मुझे ही क्या, मेरे घर में सबको प्रिय लगता है, क्योंकि इसमें प्रतिमास उच्चकोटि की कविताएं, सुन्दर कहानियां और सारगर्भित लेख प्रकाशित होते हैं। साथ ही बालकों के लिये पहेली आदि और महिलाओं के लिये 'सलोनी दुनिया' शीर्षक स्तम्भ के अन्तर्गत छपने वाले लेख अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होते हैं। इस प्रकार समस्त सामग्री पठनीय तथा मनोरंजक होती है। प्रत्येक हिन्दी भाषा जानने वाले को इसे अपनाना चाहिये। व्यवस्थापक श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति व सम्पादक श्री चिरंजीत को ऐसा सुन्दर व साहित्यिक पत्र निकालने पर बधाई!

बरेली

—रामावतार गुप्ता 'बन्दे'

कूपन

मनोरंजन-पत्र-प्रतियोगिता

नं० ६

पैट्रोल की रिफाइनरी
बनस्पति
खाद
स्पिरिट का डिस्टिलेशन
सूती कपड़े
स्टोरेज बैटरीज
एनेमल के बर्तन
चमड़ा फैक्ट्री
कोयले का डिस्टिलेशन
गन्धक का तेज़ाब
औद्योगिक प्रयोग के लिये

फिल्मी कहानी

(पृष्ठ १६ का शेष)

कितनी सिचुएशन्स निकल आई ।" मि० नाशाद ने शानदार सुझाव रख अपने काम की भी याद दिला दी।

"लेकिन प्रेमचंद की लाइफ में तो ऐसा कुछ है नहीं। उन दिनों को-ऐजुकेशन भी नहीं थी।" मैंने अधमरे साहस से मुंह खोला।

"भैया, तुम्हें पिक्चर बनानी है या प्रेमचंद की लाइफ देखनी। बण्डल-पिक्चर बना कर तीन लाख रुपया तो मिट्टी में नहीं डालना।" सेठ जी ने कहा।

"अभी जमाना क्या देखा। कालेज में मौजें कीं। बाप ने भेजा, बेटे ने उड़ाया। यहां तो सेठ जी की सेवा में बाल सफेद·····।" 'कलेजा' साहब ने दांत कुरेदते हुए व्यंग्य किया।

"प्रेमचंद गाना भी गायेंगे ?"

'हां, कम से कम तीन गाने तो·····" प्रोडक्शन-इंचार्ज बोले।

"तो बेचारे को नचाओगे भी ?"

"तुम्हारे प्रेमचंद क्या महाराज हरिचंद से भी ज्यादा हो गये ? अहा, काशी के बाजारों में कैसा दर्दीला गीत गाते हुए जाते हैं। शमशान तक गाते हैं। और भरत जी भगवान राम की तलाश करते हुए कैसा रुआंसा गीत··क्या गजब का मुखड़ा है—'बता दो राम गये किस ओर।' और सीता जी का वह गीत—'मुझ को भूल गये निर्मोही।' आ—ा··ा··ा राम गये किस·····किस···ओर।" मि० नाशाद ने बाकायदा गाना ही शुरू कर दिया।

"बिना गाने का सिनेमा क्या! गाने तो १०-१२ हों तो अच्छा।" सेठानी जी भी अब खुल कर सुझाव देने लगीं।

"और क्या, माजी! और उस पिक्चर में गीत का जो मुखड़ा आपने दिया था, वही गीत 'हिट' हुआ। मैं तो तभी से माजी की राय का कायल हूँ।" मुन्शी 'कलेजा' ने माजी की राय पर अपनी भी राय चिपका दी।

"अम्मा, 'रतन' की तरह गाने रखवाना। मुझे तो वह गीत बड़ा प्यारा लगता है—गाऊं ?··'अखियां मिला के, जिया भरमा के, चले नहीं जाना···हो··· चले नहीं जाना।" बेबी ने इस बार तो मन की निकाल ही ली।

"वाह··वाह, मेन तो खूब गाती है! इस घर में हर आदमी लोग कलाकार है।" मि० घोष ने बेबी की कमर पर प्यार से हाथ फेर उस के अरमानों को गुदगुदा दिया। और वह लचक-लचक गई।

बहुत देर के बाद सेठ जी ने मौन तोड़ा, "खैर, तो इस तरह करो। विलेन का करेक्टर बढ़ाना पड़ेगा। हां, एक दिन विलेन हीरो को मारने का षड़यन्त्र रचता है। खीर की प्लेट में विष मिला कर हीरो को खिलाने की कोशिश करता है। हीरो खाने को होता है। चम्मच भर मुंह में डालना चाहता है। आडीएंस धड़कते दिल से देखती है। बाहर शोर होता है। वह ठहर जाता है। फिर चम्मच भर मुंह में डालना चाहता है। हीरोइन बार-बार प्यार से कहती है—'खाइये न। अच्छे, तुम्हें मेरी कसम!' फिर शोर होता है। अचानक बाहर आग लग जाती है। हीरो उठ कर बाहर झपटता है। प्लेट जमीन पर गिर कर टूट जाती है। और उस खीर को कुत्ता खा लेता है·······।"

सेठ जी बात पूरी भी न कह पाये कि चारों तरफ से 'वाहव्वा-वाहव्वा' 'खूब-खूब' का शोर मच गया। सेठ जी ने मुसकाते हुए आगे सुनने का संकेत किया। सब मौन। सेठ जी ने फिर कड़क कर कहना शुरु किया, "हां, एक और नई बात। वाह, यह तो सोचा तक न था।"

सब की आंखें सेठ जी के मुख पर और कान उन की जिह्वा पर। सेठ जी फिर बोले, "हां, कुत्ता मर जाता है। हीरो को पता चल जाता है, खीर में विष था। और विलेन धूर्तता की हंसी हंसते हुए कहता है, 'यह है इसका प्यार! तुम्हें किस तरह राह से अलग करना चाहती है और तुम अब भी बुद्धू बने हो। सच है, आदमी मोहब्बत में अंधा हो ही जाता है। और मालूम है, वह तो प्रोफेसर नाग से·····।' और इसी बात पर हीरो-हीरोइन में अनबन हो जाती है।"

"आइडिया! आइडिया!" कह मुंशी 'कलेजा' ने फुदक कर सेठ जी का हाथ चूम लिया। सेठानी जी लाज के मारे ऐसे सिकुड़ कर रह गई, जैसे उनके साथ ही यह शुभकार्य हुआ हो।

"मारव्हलस! मारव्हलस!" मि० घोष मारे जोश के उछल पड़े।

"और यहीं कहानी का ग्रिप—नायाब सस्पेंस!" मि० नाशाद ने कहा।

"इसे कहते हैं रीयल प्रोड्यूसर! यानी प्रोड्यूसर के

यही माने अमरीका में है—एकजेक्टली यही।" प्रोडक्शन-इंचार्ज ने अपने फिल्मी ज्ञान का परिचय दिया।

"यहां तो बिल्कुल उल्टी बात है। स्टोरी पूरी करें सेठ जी, नाम हो हम भखुओं का।" 'कलेजा' साहब ने फिर सम्मान भेंट किया।

"और इण्डस्ट्री में ऐसे-ऐसे प्रोड्यूसर भी भरे पड़े हैं, रात-दिन खून पसीना एक करके लिखें बेचारे गरीब राइटर और नाम जावे प्रोड्यूसरों का।" कैमरामैन बोला।

मि० नाशाद बोले, "दूर क्यों जाते हो, उन को ही देखो सेठ पन······"

"हुश! किसी का नाम लेने से क्या।" मि० घोष ने बात काट दी।

"कोई किसी से छिपा तो है नहीं लाइन में।" 'कलेजा' जी बोले।

"खैर, इन बातों में पड़ने से क्या। हमें अपना काम देखना है कि दूसरों के कजिये-किस्से शुरू करने!"

सेठ जी बात कह भी न पाये कि 'कलेजा' ने हां में हां मिला कर कहा, "बिल्कुल बिल्कुल। कोई कुंए में जाय, हमें क्या। क्यों मां जी?"

मां जी ने केवल मुसका कर उनकी बात पर सही की मुहर लगा दी। सेठ जी ने फिर बात शुरू की, "खैर, हां, मेरे विचार में अब आप की स्टोरी पूरी हो गई। क्यों भई, है न? अगर कोई कमी हो तो··· खैर, मुंशीजी, इस लड़के से मिल कर इसे सीन-बाइ-सीन लिख डालें। अगले सोमवार तक फाइनल कर लें।"

"और गीतों की सिचुएशन्स?" मि० नाशाद भला अपने लिये निश्चय कराये बिना कैसे उठने दे सकते थे।

"अब रह क्या गया—साफ तो है। १२ गाने तो बहुत हो जायंगे। ८-९ काफी हैं। क्यों मि० घोष जी?" सेठ जी ने अपने निश्चय पर राय मांगी।

"आठ-नौ गाना बस काफी है। एक ड्वेट, दो हीरो का और दो हीरोइन का। एक साइड-हीरोइन का। एक या दो कोरस।" मि० घोष बोले।

"और क्या! और सिचुएशन्स सारी की सारी नेचरल हैं। फीस न दे सकने पर क्लास से निकाले जाते वक्त वह दर्दभरा गाना गाते हुए निकलता है—'बरबाद हो गई मेरे अरमानों की दुनिया।' या 'तुम्हीं ने दर्द दिया है, तुम्हीं दवा देना।' अरे हांहां, 'हमारे जख्म पै मरहम जरा लगा देना। हो··· हो लगा देना।' और गंगा में नैया चलाते हुए भी एक ड्वेट गाते हैं—'चंदा से गोरा है मेरा सजनवा। रेशम से नाजुक है मेरी दुल्हनिया'।" मुंशी 'कलेजा' ने सुझाया।

"क्या डानस नहीं रखना?" सेठानी जी ने नई याद दिलाई।

"क्यों नहीं। चार डांस तो जरूर होंगे।" नाशाद जी बोले।

"दो गाने डांस के साथ दिये जा सकते हैं। हीरोइन प्रेम में मस्त हो जाती है और नाचती है।" सेठ जी बोले।

"और वैसे गाने कहां रखोगे—'अखियां मिला के जिया भरमा के'···और 'सावन के बादलो, उन से य जा कहो···?" बेबी ने पूछा।

"दोनों आ जायंगे। बेबी जी के मन के गाने तो इस बार जरूर देने हैं। थर्ड ईयर की परीक्षा के बाद दो महीने की गर्मियों की छुट्टियों में हीरो घर जाने लगता है तो हीरोइन गाती है—'अखियां लड़ा के····हो, परदेसी बालमा··मो से अखियां लड़ा के··।' और दूसरा गाना वहां आ जायगा, जब हीरो गलतफहमी में पड़ नाराज हो जाता है तो हीरोइन गाती है—'सावन के बादलो··उन से य जा कहो·····।'" 'कलेजा' साहब ने बेबी के मन की भी कर दी।

"अब आपकी कहानी शानदार बन गई। गाने भी सब आ गये। अब आप भी अपना तान-तंबूरा लेकर तैयरी कर दीजिये, नाशाद जी।" सेठ जी ने कहा।

"मैं तो आज से ही तैयार हूँ।" नाशाद साहब बोले।

"अच्छा, मांजी, अब कैसी लगी स्टोरी?" 'कलेजा' साहब ने अंतिम फैसला सुनना चाहा।

"अब तो अच्छी लगै है हमैं भी।" सेठानी जी चमकती आंखों से बोलीं।

कहानी पास हो गई। अब कोई डर नहीं।

"तो अब फिर कब मिल रहे हैं?" सेठ जी ने सब को चले जाने का संकेत किया। सब उठ खड़े हुए। सेठ जी, सेठानी जी, बेबी जी सब को अलग अलग कई कई बार 'साहब जी' कह कर सब कमरे से बाहर हो गये। मैं भी काठ के उल्लू की तरह बगल में फाइल दबाये मुंशी 'कलेजा' के पीछे-पीछे चला आया।

प्रेमचंद जी महाराज, अब चढ़े हो इन अक्ल के दलालों फिल्म वालों के हत्थे! क्या-क्या नाच नचाते हैं, ईश्वर ही मालिक है!

रेडियो के लिये लिखना भी एक कला है (३)

रूपक

श्री कलाधर

रूपक (जिसे 'फीचर' भी कहते हैं) किसी कहानी अथवा घटना के विवरण को रेडियो की विशिष्ट शैली में नाटक के ढंग पर प्रस्तुत करने की एक अलग चीज है। एक तरह से यह रेडियो का अपना आविष्कार है। वास्तव में रूपक एक प्रकार का वर्णनात्मक नाटक है। सूत्रधार की भांति इसमें एकपात्र सूचनात्मक बातचीत के रूप में कहानी अथवा विषय विशेष का इस तरह वर्णन करता जाता है कि एक ऐसा स्थल आ जाता है, जहां कहानी नाटकीय विधि से प्रस्तुत की जाती है। उस दृश्य (अथवा नाटकीय खण्ड) के समाप्त होते ही 'सूत्रधार' अपना वर्णन आरम्भ कर देता है। इस तरह वह अपने वक्तव्यों से विगत घटनाओं (दृश्यों) और आने वाली घटनाओं को कड़ी की भांति जोड़ता जाता है, कथानक में क्रम तथा तारतम्य-सा स्थापित करता जाता है, कथावस्तु को विकसित और अग्रसर करता जाता है, और कहानी समाप्त हो जाती है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि रूपक में मुख्य और महत्वपूर्ण पात्र 'सूत्रधार' ही होता है। अतः रूपक-लेखक के लिये यह आवश्यक है कि वह सूत्रधार के संवादों और वक्तव्यों को खूब प्रभावशाली, मार्मिक और रोचक ढंग से लिखे। लेखन-शैली में विशेषता यह होनी चाहिये कि वह श्रोताओं में आने वाली घटनाओं के प्रति उत्सुकता और कौतूहल का भाव पैदा कर दे। सूत्रधार जितने प्रभावशाली और मार्मिक ढंग से कथा-वस्तु की पृष्ठभूमि व स्वरूप प्रस्तुत करेगा, उतना ही सम्पूर्ण रेखाचित्र श्रोताओं की कल्पना में अंकित हो कर उनके मस्तिष्क और हृदय पर प्रभाव डलेगा और रसानुभूति करायेगा।

कभी कभी रूपक दो या तीन सूत्रधारों की बातों से प्रारम्भ किया जाता है। यह तरीका प्रायः उस समय व्यवहार में लाया जाता है, जब कई वर्षों या समयों की घटनाओं को अथवा किसी अत्यन्त गंभीर या दार्शनिक विषय के विभिन्न पहलुओं को एक ही रूपक में चित्रित करना अभीष्ट हो। दो या तीन सूत्रधारों में से एक तो घटनाओं व परिस्थितियों का परिचय देता है जब कि दूसरे प्रश्नोत्तर द्वारा न केवल अपनी जानकारी ही बढ़ाते हैं, बल्कि कहानी के क्रमिक विकास में भी सहायक होते हैं। लेखक का कौशल इस में है कि वह दोनों या तीनों सूत्रधारों के व्यक्तित्व को अलग अलग प्रदर्शित करे।

महापुरुषों के जीवन-चरित्रों, जातीय इतिहास तथा उत्सवों व समारोहों के विवरणों आदि को भी रूपक द्वारा रेडियो पर प्रस्तुत किया जा सकता है। पूरा रूपक कई खण्डों में इस तरह बांटा जा सकता है कि प्रत्येक खण्ड एक विशेष समय अथवा घटना अथवा दृष्टिकोण से सम्बन्ध रखता हो।

महाकाव्यों और लम्बे उपन्यासों को रेडियो पर रूपक की शैली में ही सफलता पूर्वक प्रस्तुत किया जा सकता है। पुस्तक के मुख्य स्थलों को चुनकर उन्हें सूत्रधार के संवादों से परस्पर सम्बद्ध कर दिया जाता है। सिनेमा वाले भी कभी कभी यही शैली बरतते हैं। संगीत-रूपक में भी इसी तरह सूत्रधार पांच छः गीतों को एक कहानी के रूप में पिरो देता है। प्रायः रविवार को दोपहर समय दिल्ली रेडियो स्टेशन से जो फिल्म-कहानी ब्राडकास्ट हुआ करती है, वह अपने तौर पर संगीत-रूपक का अच्छा निदर्शन है।

नाटककार की तरह रूपक-लेखक को भी इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उसका रूपक केवल श्रव्य है—केवल सुना जा सकता है, देखा नहीं जा सकता।

(क्रमशः)

सी.ए. आई.की
मुफ्त सेवा

किनारा

(पृष्ठ १२ का शेष)

गया पिता जी ?" स्वर में क्रमिक चढ़ाव आता गया। मदन के दोनों हाथ पिता के बाहुओं को झकझोर रहे थे, "आप चुप क्यों हैं ? बोलिए पिता जी ! कौन आ गया ? क्या मां का पता लग गया ? वे लौट आईं ? बोलिए न ? आपने मां को क्यों लौटा दिया ? अभी तो आप उनके लिये इतने व्याकुल हो रहे थे।"

क्रोध से तिलमिला उठे बशेशरनाथ, "पागल हो गया है ? क्या चिल्ला रहा है ? कोई नहीं लौटा ! वहां से कोई नहीं लौट सकता ! यहां कोई नहीं लौट सकता ! इस घर में कोई लौट कर नहीं आ सकता !" स्वर धीरे २ नीचे गिरता गया—जितना उनका स्वर नीचे गिरा, उतना ही ऊंचा स्वर गूंज उठा मदन का—

"आप बात छुपा रहे हैं ! मैंने सब सुना है। किसको आप कांग्रेस में भरती करने को कह रहे थे ? बोलिए न ?... कौन शरणार्थी बसाने में सहायता करेगा, बताइए न पिता जी ? किस- के घर में आने से आप की नाक कटेगी ? बताइए... बताइए... !"

मदन जितना भाव-प्रवण बना, द्रवित हुआ, बशेशर-नाथ उतने ही कठोर होते गए। आंखें मदन पर अंगार बरसाने लगीं, "कह दिया न, अपना काम कर, मगज न चाट ! कोई नहीं लौटा, नहीं लौटा, नहीं लौटा !"

मदन का सिर घूम गया, बैठक घूम गई, सारा घर घूम गया, दुनिया घूमने लगी। बोझिल पैर जीने की सीढ़ियों पर चढ़ने लगे।

जीने से नीचे आती शांति मदन की वह मर्माहत मुद्रा देख सहम गई। चिंता से बोली, "क्या हुआ ? क्यों चिल्लाते थे दोनों बाप बेटे ?"

लेकिन मदन को उसी प्रकार मौन जीना चढ़ते देख शांति और भी चिन्ता से घिर गई। मदन कुछ भी कैसे कहता, कैसे सुनता ? मन में तो गूंज रहा था—"कौन लौट आया है ? बोलिए न पिता जी !"

रसोई में वह पुनः थाली के आगे जड़वत् आ बैठा और यंत्रवत् भोजन के कौर गले से पेट में उतारने लगा। कुछ देर बाद धीमे स्वर में बोला, जैसे अपने आप से कह रहा हो, "जान पड़ता है, मां लौट आई है, पर पिता जी बात छुपा गए...।"

"मुझे तो आश्चर्य हो रहा है। जिस के लिए अभी अभी वे इतने व्याकुल हो रहे थे, बेहोश हुए जा रहे थे, वही जब आई तो उसे घर में घुसने तक नहीं दिया !" शांति ने मदन के सामने एक पहेली-सी रख दी।

कुछ समय तक विचार-मग्न रहने के बाद मदन बोला, "हो सकता है कि समाज के भय से उन्होंने ऐसा किया, लेकिन..."

"मैं कहती न थी, जो विधर्मियों के पल्ले अपना सब कुछ गवां बैठी हैं, उन्हें घर में रख कर कौन अपना हिन्दू-धर्म नष्ट करेगा ? मैं तो...।"

"बस, यहां पंडिताई न छांटो," मदन के भीतर घुमड़ता हुआ खीझ व रोष का मिला-जुला तूफान एकाएक फूट पड़ा। "इस हिन्दू धर्म को रखो अपने आंचल में बांध कर। जब अपनी दुखी निराश्रिता मां-बहिनों के उद्धार का प्रश्न आता है, तब हम मिथ्या समाज के हौवे से डर जाते हैं। पिता जी की क्या मजाल कि मां को घर में न आने दें। मैं अभी शरणार्थी-विभाग जा कर उसका पता लगाता हूँ। देखूं मां कैसे घर नहीं आती है !"

पूछ-ताछ के बाद जब मदन को पता लगा कि पश्चिमी पंजाब से लाई गईं अपहृत महिलाएं म्युनिसिपल बोर्ड स्कूल के विशाल भवन में ठहराई गई हैं, तो उसने स्कूल तक पहुँचने में एक क्षण भी नष्ट नहीं किया। तीव्र अधीरता के कारण मदन को तब अपने नम्बर की प्रतीक्षा में पन्द्रह मिनट भी बाहर खड़े रहना कष्टप्रद लगा। जलाभाव में जैसे मीन इधर-उधर भटकती फिरती है, उसी प्रकार वह द्वार के सामने चक्कर लगाता रहा। और जब

भीतर से आ कर एक संतरी ने खिड़की में से पुकारा, "मदनलाल अग्रवाल !" तो स्कूल के सिंहद्वार पर खड़े दो संतरियों पर एक निगाह डाल, उल्लसित हो वह खिड़की से ही भीतर कूद गया--मछली ने जैसे जल-स्रोत ढूंढ लिया हो।

वह प्रबन्धक के कमरे में पहुँचा। उसने अपना और पिता का नाम, पश्चिमी पंजाब के अपने पहले जिले और नगर का नाम, निष्क्रमण की तिथि आदि सभी आवश्यक बातें बता दीं। पाकिस्तान से लाई गई स्त्रियों के नामों की सूची की पड़ताल करते हुए प्रबन्धक ने पूछा, "क्या नाम बताया आपने ?"

"सोहनदई। वह मेरी मां है। आज सवेरे वह हमारे घर आई थी, परन्तु मेरे बाप ने उसे लौटा दिया। मुझे बाद में पता चला। अब मैं उसे अपने साथ ले जाऊंगा। बाप की मुझे कोई परवाह नहीं..."

मदन एक सांस में ही सब कुछ कह गया !

प्रबन्धक ने उसे बीच में ही टोकते हुए कहा, "आपके इस साहस और कर्त्तव्य-भावना की मैं प्रशंसा करता हूं। इस संकट के समय अपनी निर्दोष मां-बहिनों का उद्धार करने के लिये हमें आप जैसे युवकों की ही आवश्यकता है। हां, तो क्या आपके घर की कोई और स्त्री भी पीछे रह गई थी ?"

मदन की उद्दीप्त मुद्रा कुछ कजला गई। वह बोला, "मेरी पहली स्त्री सावित्री भी पीछे रह गई थी, परन्तु उसकी तो मृत्यु हो चुकी है !"

"यह आपको कैसे मालूम हुआ ?"

"मेरे पिता ने मुझे बताया है। उस दिन मैं घर से बाहर था। पीछे मेरे पिता ने ही सारा काण्ड देखा था।"

"आपके पास कोई और प्रमाण तो नहीं ?"

"नहीं।"

"तो आप के पिता ने आप से झूठ कहा। आपकी पत्नी जीवित है और वही यहां कैम्प में..."

"क्या सावित्री ?" मदन का रंध्र-रंध्र जैसे हिल उठा।

"हां, सावित्री। उसी को आज आपके पिता ने घर में घुसने नहीं दिया।"

मदन को अब सारी बात समझ में आ गई। तभी इतना पूछने पर भी पिता ने उसे आने वाले का नाम नहीं बताया था। पिता के प्रति उसके मन में जो विरोध की भावना थी, उसने अब घृणा का रूप धारण कर लिया।

लेकिन उधर मातृ-प्रेम के कारण उसके अन्दर जो कर्त्तव्य-भावना जागी थी, वह अब इस नई परिस्थिति में जबाव देने लगी। उसे एकाएक शान्ति का वह झूठी रोटी वाला तर्क याद हो आया, जो आज उसने सवेरे खाना खिलाते समय प्रस्तुत किया था। नारी की शरीरगत पवित्रता का वही पुराना तर्क !

प्रबन्धक मदन के इस बदले हुए रुख को ताड़ गया। कुछ देर बाद बोला, "बहिन सावित्री जैसी सती देवियां घर घर में हों। अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिए वह दुमंजले मकान से कूद पड़ी थी और उसकी एक टांग टूट गई। यहां वह अपाहिज होकर पहुँची है। आज आपके साहस की परख है, मदन जी ! आपके पिता जवित हैं। उन्हें सहन न हो, तब भी, हम आशा करते हैं, आप सावित्री बहिन को अपनायेंगे; ठुकरा कर उनकी दीन-दुनिया नष्ट न करेंगे।"

नतमस्तक हो मदन बैठा सुन रहा था। उसके सामने अब शान्ति भी थी, और सावित्री भी, और थीं बशेशरनाथ की दहकती भट्टी-सी आंखें ! प्रबन्धक कह रहा था, "और फिर सतीत्व की रक्षा का प्रश्न तो उठता ही नहीं, मदन बाबू ! जो रक्षा कर सकीं, वे भी आज हमारे समाज के पीलिया-पीड़ित नेत्रों में कलंकिनी हैं, वेश्या है, कायर हैं। लेकिन आप जानते हैं, भारत लौट कर उन्होंने 'परधर्मो भयावहः' की मर्यादा को बनाए रखा है..."

मदन कुछ समझ न सका कि क्या उत्तर दे। और तभी उसने बाहर से यह स्वर सुना—

"नहीं, नहीं ! ईश्वर के लिए मुझे वहां न ले चलिए। भगवती, सोमां, कमला की तरह मैं यहीं रहूँगी। किसी कैम्प में जाकर दुखी बहनों की सेवा-चाकरी कर लूंगी। उनसे नहीं मिलाइये। मैं जानती हूँ, वे अपने बाप की ही मानेंगे..."

"पगली कहीं की!" स्वयंसेविका ने धैर्य बंधाया, "यदि ऐसी बात होती तो वे तुम से यहां मिलने न आते।"

और दूसरे ही क्षण बैसाखी के सहारे चलती हुई सावित्री ने कमरे में प्रवेश किया। पति को सम्मुख देख उसकी आंखों में बाढ़-सी आ गई। बैसाखी संभालते हुए चरणधूलि लेने को झुकी, पर सहम कर खड़ी रह गई। मदन अपने को न रोक सका। "मेरी सावित्री!" कह कर उसने पत्नी को वक्ष से लगा लिया। आंखें भर आईं।

परन्तु दूसरे ही क्षण पिता की रौद्र मुद्रा सामने आते ही मदन सूख-सा गया। सावित्री ने यह मुद्रा-परिवर्तन देखा और आंसुओं की गति आप ही धीमी पड़ गई।

"आप कुशल हैं?" फिर भी उसके मुंह से निकला और नेत्र बन्द हो गए एक क्षण के लिए, मानो भगवान ने कोई चिर-इच्छित वरदान पूरा किया हो!

"हां, सावित्री!" मदन का स्वर निष्प्राण-सा था, "पिता जी ने तुम्हारे आने की बात मुझ से छुपाई, पर मैं उन्हें मनाने का प्रयत्न करूंगा...!"

सुन कर व्याध के तीर से आहत कपोती की तरह सावित्री तड़फड़ा उठी। अश्रु फिर बह चले। "वे नहीं चाहते, तो मैं नहीं चलूंगी! हे भगवान...!"

बिंधा हुआ मर्म मानो चीत्कार कर उठा। द्वार की ओर मुड़ी सावित्री, चल दी। मदन ने उसे सान्त्वना देने में अपने को असमर्थ पाया। रोती हुई सावित्री द्वार से बाहर हो गई।

मदन मूर्तिवत् खड़ा रह गया—अपराधी-सा।

मदन जब घर लौटा तो देखा पिता जी शाम का अखबार पढ़ रहे हैं। एकाएक उसका क्रोध जाग उठा। उसने अखबार छीन लिया उनके हाथों से। जो वाणी पिता के सामने सदैव संयत रही थी, आज पिता का छल, कपट, धोखा, ढोंग देख कर उसका संयम टूट गया। मदन दहाड़ा—"आपने मुझसे छल किया है, पिता जी! आपने क्यों नहीं बताया कि सावित्री लौट आई है..."

"तो क्या तुम वहां हो आए?" बशेशरनाथ की वाणी में प्रतिशोध था।

"हां, मैं सावित्री से मिल आया हूं!" मदन ने विद्रोह किया, "मैं उसे यहां भी लाऊंगा..."

"यदि तुम मुझे छोड़ सकते हो, तो उस कलंकिनी को बेरोक टोक ला कर अपयश कमाओ, कुल के नाम को बट्टा लगाओ!" बशेशरनाथ की वाणी में अतिरेक आता गया, "और इस बूढ़े पिता को जीते जी नरक में धकेल दो...।"

उपेक्षा से मदन हँसा और फिर दांत पीस कर बोला, "आपको याद है कि शांति के साथ मेरा दूसरा विवाह करके भी आपने कितना बड़ा छल किया है। उसकी जात-पांत आपको मालूम है? वह अपने पिता के साथ अकेली ही बच कर लौटी थी, ऐसा आपने कहा था न? क्या उसे गुण्डों का स्पर्श नहीं हुआ? बोलिए? धन के लालच में आपने उसके पिता को 'जिन्दगी के भार' से मुक्त किया और मेरी जिन्दगी के साथ सौदा कर के आपने धर्म की मर्यादा नष्ट की....?"

"मदन!" बशेशरनाथ का स्वर और चढ़ा।

पर पुत्र कहे जा रहा था, "आपने किस मुंह से कहा था कि सावित्री की मेरे सामने गुण्डों ने बोटी-बोटी नोच डाली थी? पिता बन कर पुत्र से छल करना ही क्या आपका धर्म है? खैर, आप तो अपने कर्त्तव्य पथ से हटे हैं, परन्तु मैं नहीं हटूंगा। शान्ति का हाथ मैंने पकड़ा है, उसे मंझधार में नहीं डुबोऊंगा। लेकिन किनारे लगी सावित्री को भी मैं जिन्दगी भर तूफानों से लड़ने के लिए नहीं छोड़ सकूंगा। यहां लाऊंगा उसे। सावित्री इसी घर में आयेगी...!"

"वह इस घर में नहीं आ सकती," बशेशरनाथ ने पूरी दृढ़ता से कहा। "मैं कह चुका, मुझ से अलग होना है तो सौ कुत्तों की चचोड़ी हुई हड्डी को तूभी गले में अटका।"

सुन कर मदन की आंखों के आगे अंधेरा छा गया। कानों में सन् सन् चिऊंटियां-सी रेंगने लगीं। पैरों ने शरीर का बोझ सम्भालने में असामर्थ्य प्रकट की। उसने अनुभव किया कि उसका संकल्प शिथिल होता जा रहा है। वह आजीवन पितृ-भक्त रहा था, यह पहला अवसर था कि उसने पिता का विरोध करने की ठानी थी। 'कुत्तों की चचोड़ी हुई हड्डी' वाले वाक्य ने उसकी

सारी दृढ़ता को छिन्न-भिन्न कर दिया। वह ऊपर कमरे में जाकर पलंग पर लेट गया। नवोढ़ा शान्ति पास थी। पिता-पुत्र की बातचीत वह सुन चुकी थी। पति को दुखी देख कर बोली, "यदि सावित्री बहन को लाकर अलग रहें तो?"

मदन ने आंखें ऊपर उठाईं। शान्ति को लगा जैसे उन में चमक लौट है।

"क्या तुम्हारी भी यही इच्छा है?" मदन ने उस से ऐसे प्रश्न किया जैसे डूबते को तिनके का सहारा मिल गया हो।

दूसरे दिन प्रातः जब मदन म्युनिसिपल बोर्ड स्कूल को जाने के लिये घर से जाने लगा, तो देखा दरवाजे पर ताला पड़ा है। रोष से सारी शिराओं में रक्त का प्रवाह तेज हो गया। दांत आपस में किचकिचा उठे। उस ने बैठक में पहुँच पिता से चाबी मांगी, "सावित्री को मैं वहां भिखारिन - बंदिनी बनकर नहीं रहने दूंगा! मुझे चाबी दे दीजिये!"

पर बशेशरनाथ का पत्थर-सा हृदय न हिला, न पिघला।

"जा आराम कर!" दृढ़ता व उपेक्षा से उन्होंने कहा, "धर्म और कुल की मर्यादा रख! पागल न बन!"

तभी बाहर से आवाज आई, "भला दिन में भी द्वार बन्द करके बैठने लगे! यहां भी क्या दंगे हो रहे हैं?"

स्वर परिचित-सा जान पड़ा। बशेशरनाथ के शरीर में जैसे बिजली सी दौड़ गई। स्वर बदल गया, मुद्रा बदल गई, भाव पलटा खा गए। "जा तो बेटा, रसोई में ठाकुर जी की बगल वाले आले में चाबी रखी है। जल्दी ला तो..."

मदन हर्ष और विस्मय-मिश्रित भाव से दौड़ कर चाबी लाया और द्वार खोलते-खोलते उसने सुना, "किस मुसलमानी मोहल्ले में आकर मकान लिया है। ये स्पेशल पुलिस वाले भाई मेरे साथ न होते, तो जाने कहां-कहां टक्करें खानी पड़तीं।"

इस बार मदन को भी स्वर परिचित-सा जान पड़ा। द्वार खुलते ही सामने खड़ी मदन की मां सोहनदई को देखा, तो प्रसन्नता के मारे बशेशरनाथ के मुंह से बोल न निकला। मदन चुप खड़ा था, पत्थर-सा। सोहनदई घर में आ गई, आंगन में पड़े पीढ़े पर बैठती-बैठती बोली, "नवाब सा'ब के बच्चे खिला-खिला कर किसी तरह दिन काटे। बेचारे ने मुझे कोई कष्ट न होने दिया। यदि कोई मुझे सताने की चेष्टा करता, तो उसको नवाब सा'ब वो डांट लगाते थे कि कुछ न पूछो!"

एक ही सांस में यह सब कह चुकी सोहनदई, तो बशेशरनाथ बोले, "अरी बहू, कहां है? पैरों पड़ आकर सासू जी के।" सोहनदई को सम्बोधित करते हुए वे बोले, "मदन का दूसरा ब्याह कर लिया है—हाल ही में।...पर वह कुलटा भी आ गई है कल...कैम्प में है।"

"यहां आकर क्या आग लगायेगी! वहीं न रहती जिस के पल्ले पड़ी थी। ला बहू, तू तो मुझे गंगाजल पिला, फिर स्नान करूं और अपने ठाकुरजी को भोग धराऊं।"

मदन अब तक मौन खड़ा यह नाटक देख रहा था। मां की ओर तिरस्कार भरी दृष्टि से देख कर वह बोला—"यहां आते तुम पर किसी ने अंगुली न उठाई? रास्ता छोड़ कर लोग दूर न हो गए?"

"मदन!" पैर पटख कर बशेशरनाथ चिल्लए। सोहनदई की आंखें फट गईं और मदन कहता रहा—"तुम्हारी काली छाया से कोई डरा नहीं? लो, तुम्हारे ठाकुर जी को मैं लाये देता हूँ, सेवा-पूजा करो!"

निमिष मात्रा में ही मदन रसोई में से ठाकुर जी की मूर्ति उठा लाया और मां के आगे रख कर बोला—"लो, करो सेवा! और मुझे उसकी सेवा करनी है, जिसे अब तुमने दीन का छोड़ा न दुनिया का! तुम पत्थरों की सेवा करो, मुझे मानव की सेवा प्यारी है!"

यह कह मदन तेजी से चल दिया। पीछे पांव की चाप सुन कर वह रुका, देखा शांति पीछे २ चली आ रही है। उसने प्रश्न सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा।

"बहिन को लिवाने के लिये मैं भी आप के साथ जाऊंगी," शांति ने कहा।

दूसरे दिन मदन ने एक अलग मकान किराये पर लिया और सावित्री व शांति के साथ उस में रहने लगा।

डूबती हुई सावित्री को किनारा मिला और मदन व शांति को सेवा का अवसर।

★ नव प्रकाशन ★

आलोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक और पत्र-पत्रिका की दो प्रतियां आनी चाहियें। —सं०

हमारे नये सहयोगी

नया समाज—संपादक—श्री मोहनसिंह सेंगर, प्रकाशक—नया समाज ट्रस्ट, १०० नेताजी सुभाष-रोड, कलकत्ता; वार्षिक मूल्य ८), एक प्रति बारह आने।

श्री मोहनसिंह सेंगर हिन्दी के पुराने अनुभवी पत्रकार और मंजे हुए प्रगतिशील लेखक हैं। इससे पहले वे 'विशाल भारत' के सम्पादक के रूप में अपने सम्पादनोत्कर्ष की धाक जमा चुके हैं। उनके सम्पादकत्व में निकलने वाला यह नया मासिक उनके सम्पादनोत्कर्ष का परिचायक तो है ही, साथ साथ साहित्यिक साधनों से नये समाज के निर्माण के सदुद्देश्य के उत्कर्ष को भी प्रकट करता है। 'नया समाज' के पहले दो अंक हमारे सामने हैं। दोनों में संकलित पाठ्य सामग्री पत्र के नाम को भलीभांति सार्थक सिद्ध करती है और विज्ञापित उद्देश्यों के प्रति संपादक के जागरूक होने का प्रमाण देती है—लेखकों और पाठकों के सामने पत्र का अभीष्ट स्वरूप उपस्थित करने के लिए कुछेक अन्यत्र प्रकाशित रचनायें भी उद्धृत की गई हैं। पत्र की परामर्श-समिति में श्रीमती महादेवी वर्मा, पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी, काका कालेलकर और श्री जैनेन्द्र कुमार के नाम दिये गये हैं। वैसे भी पत्र को हिंदी के सभी अग्रणी लेखकों व कवियों का सहयोग प्राप्त है। हम अपने इस नये सहयोगी का हृदय से स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि यह अपने घोषित उद्देश्यों व आदर्शों से किसी भी हालत में कभी समझौता नहीं करेगा।

विश्व-दर्शन—संपादक—श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार; प्रकाशक—पब्लिकेशन्स डिवीजन, ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली; वार्षिक मूल्य ६), एक प्रति आठ आने।

भारत सरकार के प्रकाशन-विभाग ने 'आजकल' व 'बाल-भारती' के पश्चात् यह तीसरा हिंदी मासिक निकालना शुरू किया है। जैसा कि नाम से प्रकट है, इस पत्र का उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय व विदेशी मामलों से हिंदी जगत को अवगत कराना है।

वैसे तो हिन्दी के अन्य सभी पत्र विदेशी घटना-चक्र पर थोड़ा बहुत प्रकाश डालते रहते हैं, परन्तु मात्र इसी एक विषय के सम्बन्ध में पाठ्य सामग्री देने वाला कदाचित् यह पहला पत्र है। इसी कारण इस से हिंदी में एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति होती है।

इसका पहला अंक हमारे सामने है। इस में जर्मनी, इण्डोनेशिया, ब्रिटेन, इजराइल, तिब्बत, जापान आदि विभिन्न देशों की सामयिक समस्याओं पर अधिकारी लेखकों के प्रामाणिक लेख हैं। चित्रों, कार्टूनों और मानचित्रों ने इसकी उपादेयता व आकर्षण को और भी बढ़ा दिया है। ऐसा सुन्दर व उपयोगी पत्र निकालने के लिये भारत सरकार का प्रकाशन-विभाग व इसके सम्पादक श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार बधाई के पात्र हैं।

अच्छा हो कि यदि इसमें भारत सरकार की विदेशी नीति पर भी कुछ चर्चा होती रहे।

गुरुकुल पत्रिका—संपादक—श्री सुखदेव व श्री रामेश बेदी; प्रकाशक—गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार; वार्षिक मूल्य ५।), एक प्रति आठ आने।

गुरुकुल कांगड़ी की ओर से यह पत्रिका गुरुकुल के आधारभूत सिद्धान्तों के प्रकाशन व प्रचार के लिये तथा भारतीय संस्कृति की व्याख्या के लिये निकाली गई है। इसके पहले अंक में काफी उपयोगी, गवेषणापूर्ण व ज्ञानवर्द्धक पाठ्य सामग्री संकलित है। आशा है, यह पत्रिका शीघ्र ही लोकप्रिय होगी व उन्नति करेगी। वैसे ३२ पृष्ठ की पत्रिका का आठ आने मूल्य कुछ अधिक है।

— चिरंजीत

वर्षाकाल अभी समाप्त भी नहीं हुआ था कि केन्द्रीय असेम्बली का वर्षाकालीन अधिवेशन समाप्त हो गया। इससे उन सदस्यों को निश्चय ही मर्मांतक अनुताप हुआ होगा जो सारा समय पिछले बैंचों पर दर्शकों की भांति मुंह सिये बैठे रहे और अपनी वक्तृत्व-शक्ति का परिचय न दे सके। इधर कुछ दिनों से गंगा और यमुना ने जो उत्पात मचाया है और जान-माल की भारी क्षति की है, इसी को लेकर वे असेम्बली में एक लम्बा लेक्चर झाड़ सकते थे और अपनी वक्तृत्व-शक्ति की धाक जमा सकते थे। बाढ़ का विषय भी ऐसा है कि जिस पर बोलने के लिये अधिक ज्ञानवान् तथा योग्य होने की आवश्यकता नहीं।

* * *

इस अनुताप का असल कारण, जो हम समझ सके हैं, श्री अनंतशयनम् आयंगर का वह वक्तव्य है जो उन्होंने अपने लोकसभा के उपाध्यक्ष चुने जाने के अवसर पर दिया था। उन्होंने कहा—

"जब १९३५ में मैं कांग्रेस की ओर से केन्द्रीय असेम्बली का सदस्य चुना गया, तब मैं 'काला घोड़ा' समझा जाता था। तब मैं पिछली बैंचों पर बैठता था; लेकिन अधिक बोलने के कारण धीरे धीरे मैं प्रथम पंक्ति के बैंच पर आ गया।"

निस्संदेह अपनी उन्नति का वाचालता सम्बन्धी यह रहस्य बता कर श्री अनंतशयनम् आयंगर ने कई सदस्यों के मन में अनुताप पैदा किया है—उनका दिन का चैन और रात की नींद छीन ली है।

खैर, उन्नति का रहस्य तो मालूम हो ही गया। निराश सदस्य सिर धुनने की बजाय यदि आगामी अधिवेशन तक घर में अधिक बोलने की 'रिहर्सल' करते रहें, तो बेहतर होगा। इस 'रिहर्सल' में वे अपनी श्रीमतियों से बहुत कुछ सीख सकते हैं।

* * *

'रिहर्सल' का शब्द भी क्या मौके पर सूझा है! यह एक हकीकत है कि आम लोग असेम्बली की कार्रवाई में नाटक जैसा ही रस लेते हैं। जब अधिवेशन चल रहा हो, तो संध्या और रात के समय लोगों में यह चर्चा होती है—आज कौन सदस्य सबसे अच्छा बोला, किसने सरकार को खरी खरी सुनाईं, किसने विदूषक का 'रोल' किया, किसकी किस बात पर असेम्बली-भवन कहकहों से गूंज उठा, पं० जवाहरलाल नेहरू ने बहस के बीच में ही बोल कर अमुक सदस्य को क्या उत्तर दिया, सरदार पटेल ने कैसे चुटकी ली, कौन मंत्री प्रश्नों की बौछार की ताब न लाकर हकलाने लगा.........इत्यादि इत्यादि। वैसे तो भारतवर्ष के सभी भागों के लोगों के लिये असेम्बली का यह नाटक दिलचस्पी का विषय है, परन्तु दिल्ली के लोग सब से अधिक इसमें रस लेते हैं। दिल्ली के लोग सब से आगे की सीटों पर जो बैठे हैं!

* * *

'हिन्दू कोड बिल' को खटाई में डाल कर असेम्बली के कर्णधारों ने भारत के समस्त स्त्री समाज का जी खट्टा कर दिया है। यह अच्छा नहीं हुआ, क्योंकि सभी जानते हैं कि स्त्रियों का जी खट्टा होने से घर में असंतोष, लड़ाई-झगड़े और विद्रोह का सूत्रपात हो जाता है। हमारी एक परिचित महिला का कहना है कि संयुक्तप्रान्त में यह जो गंगा और यमुना ने उत्पात मचाया है, यह असेम्बली के पुरुषों द्वारा 'हिन्दू कोड बिल' न पास किये जाने का ही कुफल है। बात पते की है। गंगा-यमुना भी आखिर हैं तो स्त्रियां ही। क्रोध के आवेश में स्त्री जो भी कर डाले थोड़ा है!

खैर, यों विघ्नकारी उत्पात (Nuisance) मचा

कर इन दोनों ने धारासभा के किसी उच्चपद पर पहुँचने का अधिकार तो प्राप्त कर ही लिया है !

* * *

असेम्बली के इस वर्षाकालीन अधिवेशन की सबसे महत्वपूर्ण घटना है अर्थमंत्री श्री षणमुखम् चेट्टी का त्यागपत्र, जो उन्होंने १५ अगस्त के दिन, अर्थात स्वाधीनता-समारोह के दिन दिया था। हमें डर है कि कहीं प्रति वर्ष स्वाधीनता दिवस पर किसी एक मंत्री की यों 'बलि' देने की प्रथा न चल पड़े—भारत और विश्व की जनता के सामने नैतिकता का उच्चतम आदर्श प्रदर्शित करने के लिए !

मन्त्रिपद की आकांक्षा करने वाले असेम्बली के सदस्य तो खैर, इस 'बलि-प्रथा' को स्थायी रूप देने के ही पक्ष में होंगे। समय समय पर छँटन्त होने से ही औरों की बारी आ सकती है !

* * *

यह बारी की समस्या भी बड़ी टेढ़ी है। मन्त्रि-पद-प्रार्थियों का तो मानों एक लम्बा 'क्यू' लगा हुआ है। ईश्वर सब की मनोकामना पूरी करे !

* * *

इधर जब से यार लोगों ने यह अफवाह फैला दी है कि शीघ्र ही हिन्दी के यशस्वी कवि व पत्रकार पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में पहुंचने वाले हैं, तब से हिन्दी के उन कवियों और लेखकों में, जो अपने आपको किसी से भी कम नहीं समझते, एक तरह से खलबली मच गई है। इधर पिछले दो-तीन सप्ताहों में हिन्दी के कई अग्रणी साहित्यकार दिल्ली में आये। हो सकता है कि वे किसी और काम से दिल्ली आये हों, लेकिन यार लोग यह अफवाह फैलाने से बाज नहीं आते कि वे सभी मंत्रि-पद के लिये अपना अपना 'हक' जताने आये थे !

सरकार जहां अन्न-वस्त्र के चोरबाजार को रोकने में प्रयत्नशील है, उसे इन अफवाहों की चोरबाजारी करने वालों के विरुद्ध भी कोई कार्रवाई करनी चाहिए !

* * *

है तो यह कानून और व्यवस्था-विरोधी बात, लेकिन यदि देखा जाय तो प्रत्येक अफवाह का कोई न कोई आधार जरूर होता है और यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि हिन्दी का प्रत्येक छोटा-बड़ा साहित्यिक सोते-जागते उसी प्रकार का स्वप्न देखता है जैसा कि श्री वृन्दावनलाल वर्मा की 'झकोला चारपाई' कहानी में रामदयाल उर्फ 'दयालु जी' देखते हैं। कइयों के यह स्वप्न सत्य सिद्ध होते हैं और कइयों के मात्र मृगतृष्णा !

* * *

इस 'मृगतृष्णा' नाम की बीमारी का भी बुरा हो। इसके शिकार हो हमारे कई स्वनामधन्य साहित्यकारों ने लिखना तक छोड़ रखा है—बैठे पुरानी पूंजी का सूद खा रहे हैं !

* * *

अपने बड़े बड़े साहित्यकारों का जिक्र चलते ही हिन्दी के लिए गौरव-स्वरूप युगान्तरकारी कवि श्री निराला जी का ध्यान आ जाना अनिवार्य है—इस लिए भी अनिवार्य है कि 'मनोरंजन' के इसी अंक में हिन्दी के चिर-परिचित तथा अद्वितीय व्यंग्यकार श्री·····श्री विनोद शर्मा की (दूसरा नाम प्रकट करने की मनाही है!) उनके प्रति एक श्रद्धाञ्जलि छपी है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि यह श्रद्धांजलि श्री विनोद शर्मा द्वारा लिखित 'मरम्मत सिरीज' की बानगी मात्र है !

* * *

हमारे चिर-निर्बन्ध-स्वच्छन्द कवि श्री निराला जी ने तो 'पुण्यतोया धार' में हिन्दुस्तानी का 'गंदा नाला' मिलाने का काम तो शायद कौतुक-वश ही किया है, परन्तु हमारे कई पूजनीय महानुभाव बड़ी गंभीरता व मनोयोग के साथ इस कार्य में संलग्न हैं !

* * *

हमारे प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने हिन्दुस्तानी के पक्ष का समर्थन करके राहुल जी को ऑक्सफोर्ड व कैम्ब्रिज का रंग पोत कर धाक जमाने वाले, हिलते सिरों वाले श्वेतकेशी 'बाबुओं' की कलई खोलने का खूब मौका दिया।
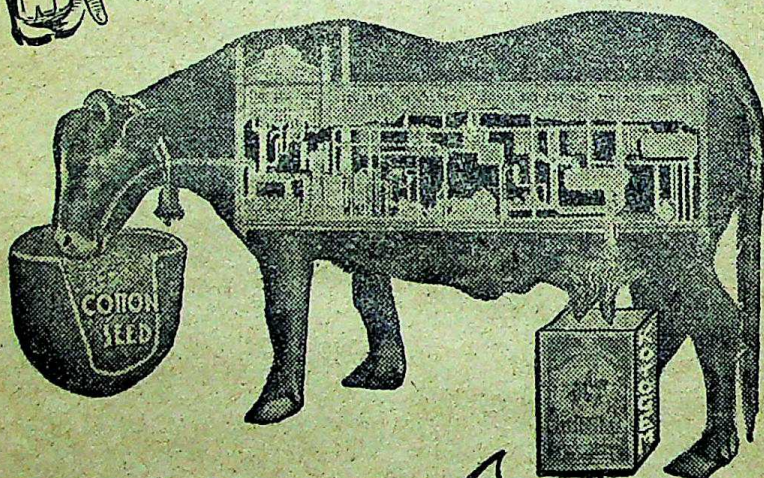
आपकी घी की समस्या हल हो गई
COTTON SEED
MP
कौटोजम
भोजन पकाने का उत्तम माध्यम
मोदी वनस्पति मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी, मोदीनगर, यू० पी०

कागज की नाव

श्री राजेश्वर शुक्ल 'राजेश'

मेरे बाल्यकाल का वह दिन याद मुझे जब आता है,
जीवन में उन छलनाओं का दृश्य पुनः दिखलाता है।
बहुधा मैं खेला करता था कागज की नैया के साथ,
जिसे चलाते थे पानी पर बड़ी खुशी से दोनों हाथ।

एक दिवस ऐसे अवसर पर काले बादल घिर आए,
अपने संग न जाने कितना सागर का जल भर लाए।
आंधी आई, बिजली कड़की, व्योम फटा, जल-धार बही,
उस प्रवाह में पड़ मेरी कागज की नैया डूब गई।

लगा सोचने खीझ-खीझ कर, ये बादल क्यों आए थे !
क्या मेरी सुख-शान्ति लूटने, या जल देने आये थे !
मेरे बाल्यकाल का वह दिन याद मुझे जब आता है,
जीवन में उन छलनाओं का दृश्य पुनः दिखलाता है !

हाथियों का मित्र

★

श्री चक्रचरण

★

जहां देखो वहां हाथी ही हाथी! छोटा हाथी, बड़ा हाथी, सीधा हाथी, बिगड़ैल हाथी! इनको पालना और सुधारना कोई आसान काम नहीं। हाथी के मुकाबले में भला मनुष्य की क्या बिसात! परन्तु कुछ वर्ष हुए इसी मैसूर शहर में एक साबू नाम का छोटा-सा लड़का रहता था, जो भयंकर से भयंकर हाथियों के साथ चौबीसों घंटे बिताता था— उनके साथ माथापच्ची करता था और उन्हें सुधारता था।

साबू एक महावत का ही लड़का था। पिता के महावत होने के कारण साबू को ठीक ठीक पता था कि हाथियों का पालन-पोषण किस तरह होता है। पिता के मरने के बाद वह हाथियों का पालक बन गया। वह हाथियों को उठाता, बैठाता, खिलाता और पिलाता। पिता के परलोक सिधार जाने के बाद हाथी ही उसके कुटुम्बी बन गये।

ईसवी सन् १९३६ की बात है। लन्दन की एक प्रसिद्ध फिल्म कम्पनी के मालिक का पुत्र हिन्दुस्तान की सैर करने आया। उसने हाथियों से खेलने वाले बालक साबू की ख्याति पहले ही से सुनी हुई थी; इसलिये यहां आकर वह सबसे पहले साबू का हाथीखाना देखने गया। साबू ने उसे अच्छी तरह दिखाया और बताया कि किस प्रकार वह हाथियों को पालता है और उन्हें सुधारता-सिखाता है। यह सब देख व सुन कर वह अंग्रेज

बहुत खुश हुआ। उसे तुरन्त अपने देश के जंगलों की कहानियां लिखने वाले प्रसिद्ध लेखक रुडयार्ड किप्लिंग की 'हाथियों का मित्र' नामक पुस्तक याद आ गई। उस पुस्तक के आधार पर बनने वाली फिल्म के 'हीरो' के लिये उसने इस हाथियों के दोस्त साबू को चुना। साबू के निष्कपट व्यवहार और उसके मधुर स्वर से वह और भी अधिक प्रभावित हुआ। जंगल की फिल्म तैयार करने के लिये साबू को कुछ सिखाने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि वह पहले ही बहुत जानता था।

इस प्रकार उस अंग्रेज को किप्लिंग की काल्पनिक कहानी का सच्चा 'हीरो' मिल गया। फिल्म तैयार करते समय वह अंग्रेज साबू को जैसा भी अभिनय करने का निर्देश देता, वह वैसा ही कर दिखाता। पर यदि कहीं किसी प्रसंग में हाथियों को मारने पीटने के लिये कहा जाता, तो वह ऐसा करने से इन्कार कर देता। हाथियों के साथ उसका इस प्रकार का हार्दिक प्रेम था!

वह फिल्म बनने के बाद साबू बाल-अभिनेता के रूप में प्रसिद्ध हो गया। स्थान स्थान पर साबू की फिल्म देखने के लिये लोगों की धकापेल होने लगी। सब जगह उसकी प्रशंसा होने लगी। सब लोग कहते, कितना असाधारण बालक है!

उस दिन से लेकर अब तक साबू अनेकों अंग्रेजी फिल्मों में काम कर चुका है।

हाथियों के साथ खेलने के अलावा साबू को और खेलों का भी खूब शौक है। उसे फुटबॉल का खेल बहुत पसन्द है।

एक बार इंगलैण्ड में एक बहुत बड़े भयंकर हाथी ने साबू को सूंड से उठा कर अपनी पीठ पर बैठा लिया था। साबू तो हंसता-हंसता उसकी पीठ पर बैठ गया, पर लोग आश्चर्य करते रहे।

यूरोप में भारत के इस छोटे से बालक ने अभिनेता के रूप में काफी ख्याति पाई है और संसार भर में भारतवर्ष का नाम उज्ज्वल किया है। साबू इस समय अमेरिका के हॉलीवुड नामक स्थान में है—जो संसार का फिल्में बनाने का सब से बड़ा केन्द्र है।

★

बिना शुल्क

बाल-पहेली नं० ११

२५ सितम्बर १९४८ तक सही उत्तर आने पर पांच रुपये नकद पुरस्कार

दायें से बायें

१. दीपावली के अवसर पर 'मनोरंजन' का यह बड़ी सज-धज से निकल रहा है। ५. काम में यह करने वाला नौकर मालिक को कभी पसंद नहीं आता। ६. आसाम का एक प्रसिद्ध नगर। ७. अंतिम समय महात्मा गांधी के मुंह से यह शब्द निकला था। ९. इसके लिये बेचारे मजदूर को घोर परिश्रम करना पड़ता है। १०. कई बच्चों को इसका बहुत चसका होता है। १२. सीटी।

ऊपर से नीचे

१. यहां किसे अपने घर की याद न सताती होगी! २. जंगल का राजा। ३. 'कविशिरोमणि' के उलट-पुलट अक्षर। ४. अमरीका में इस के साथ पशुओं जैसा व्यवहार किया जाता है। ८. इसमें यदि उंगली फंस जाय तो बड़ी कठिनाई से निकलती है। ११. अच्छी खेती के लिये इसका अच्छा होना भी आवश्यक है।

बाल-पहेली नं० १० का पुरस्कार

अगस्त १६४८ के 'मनोरंजन' में प्रकाशित 'बाल-पहेली नं० १०' का सही उत्तर कुमारी हृदयेश्वरी त्यागी, उत्तम वाटिका, वैस्ट्रन रोड, मेरठ ने भेजा है। अतः उसे पांच रुपये का पुरस्कार दिया गया है। सही उत्तर निम्न-लिखित है :—

दायें से बायें—१. आसान, ३. मान, ५. कानी, ६. दोतारा, ८. लीलावती, १०. नाग, १२. पनघट।

ऊपर से नीचे—१. आकाश, २. सानी, ३. माता, ४. नराश, ७. जाला, ८. लीग, ६. वजन, १०. नाम, ११. झट।

पहेली के नियम

१. केवल १४ वर्ष की आयु तक के लड़के-लड़कियां ही इस प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं। आयु के सम्बन्ध में माता-पिता अथवा स्कूल के अध्यापक का प्रमाण-पत्र भी उत्तर के साथ आना चाहिये।
२. उत्तर 'मनोरंजन' में छपे खाके को काट कर और भर कर भेजना चाहिए। किसी और कागज पर अलग से भेजे गये उत्तर पर विचार नहीं किया जायेगा। एक व्यक्ति एक से अधिक पूर्तियां भी भेज सकता है।
३. खानों को स्याही से सुस्पष्ट लिखे अक्षरों से भरना चाहिये। कटे-छंटे या पैंसिल आदि से लिखे अक्षर को सही नहीं माना जायेगा।
४. उत्तर २५ सितंबर १६४८ को शाम तक 'मनोरंजन' कार्यालय, श्री श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली में पहुंच जाना चाहिये।
५. सम्पादक का निर्णय अन्तिम होगा।

शायद अभी दो चार और भी इस पर बैठ सकें!

प्रिंटर पब्लिशर श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा द्वारा, अर्जुन प्रेस देहली से छप कर प्रकाशित।

रजि० नं० —— डी १०२

डनलप

जमीन कैसी भी हो,

यह टायर फिसलेंगे नहीं

DCI-4